काव्योंमें

शैली और कौशल

★

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,
एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास और संस्कृति), बी० टी०, एल्० एल्० बी०, साहित्याचार्य

हिन्दी साहित्य कुटीर
हाथी गली,
बनारस–१

प्रकाशक
श्री द्वारकादास गुजराती,
हिन्दी साहित्य कुटीर,
बनारस—१

मूल्य : ६)

(छह रुपये)

मुद्रक
दुर्गा प्रेस,
३८/२०, आदिविश्वेश्वर,
बनारस—१

परिचय

आजकल जो भी हाथमें लेखनी उठा लेता है वही लेखक बन जाता है और यदि उसके कुछ थोड़ेसे शिष्य, प्रशंसक और अनुगामी हुए तो वे उसकी जैसी-तैसी रचनाको भी अपनी प्रशंसाओंके द्वारा विशिष्ट सिद्ध करके साहित्यमें उनका साका जमा देते हैं। संभवतः सभी साहित्योंमें इस प्रकारके लोग होते हैं और होते रहेंगे। किन्तु जब साहित्य प्रौढ हो चलता है और भाव अपनी विविधताओंके कारण नई-नई अभिव्यक्तियों-में ढलनेके लिये मार्ग ढूँढ़ने लगते हैं तब मनुष्यके भीतर स्वाभाविक अहंभावना यह प्रेरणा देती है कि जब अमुक भावको अमुक कवि और लेखकने अमुक भाषा-शैलीमें रक्खा है तो कोई दूसरी भाषा-शैली ढूँढ़नी चाहिए। किन्तु भाषा-शैलियाँ बहुत नहीं हो सकतीं। वह सरल हो सकती है, ठेठ हो सकती है, लाक्षणिक हो सकती है, संक्षिप्त हो सकती है, विस्तृत हो सकती है, अलंकृत हो सकती है, अथवा अतिशय मृदुल या कठोर शब्दोंमें ढलकर चल सकती है। उसके लिये और अधिक रूप ग्रहण करनेका क्षेत्र नहीं है।

ऐसी दशामें लेखक अपनी रचनाकी रूप-शैलीमें विचित्रता लानेका प्रयत्न करने लगता है। वह सीधे कथा या कहानी न कहकर उसे छन्दमें ढालकर महाकाव्य या खंड-काव्यके रूपमें लिखता है या फिर उपन्यास, कहानी, मुक्तक, निबंध, पत्र, गीत आदि रूपोंमें ढालनेका प्रयास करता है। किन्तु ये रूप भी तो अपरिमित नहीं हो सकते। इनकी भी कुछ सीमा होती है। यद्यपि रूप-शैलियाँ भी सैकड़ों प्रकारकी चल निकली हैं फिर भी प्रतिभाशाली कवि और लेखक नए-नए रूप ढालते निकालते ही चलते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक कुछ अपनी प्रकृतिके अनुसार और कुछ परिस्थिति तथा विषयके अनुसार अपनी शैली ढालता चलता है। इसीलिये उसकी यह भावात्मिका शैली कभी विनोदपूर्ण, कभी व्यंग्यपूर्ण, कभी विचारात्मक, कभी गंभीर, कभी ओजपूर्ण और कभी रहस्यमयी हो जाती है। ये भावशैलियाँ अनंत हैं किन्तु इनकी खोज करके इनके अनुसार अपनी पूरी रचना ढालना अथवा रचनाके स्वरूपमें स्थान-स्थानपर इनका यथोचित सन्निवेश करना सुलझे हुए लेखकोंका काम है। सामान्यतः कथाओं और महाकाव्योंमें इस प्रकारकी भावात्मक शैलियाँ शब्दोंकी प्रकृति और प्रवाहमें ऐसा अन्तर उपस्थित करती चलती हैं कि भावशैलियोंका स्वतः अपना रूप निखरता चलता है।

किन्तु इन सबसे भी अधिक प्रभावशाली होता है विषय-वस्तुको प्रस्तुत करनेका ढंग, जिसे कौशल कहते हैं। यह कौशल केवल मेधावी और विशेष प्रतिभाशाली लेखकोंके मस्तिष्ककी उपज है क्योंकि उसके लिये न कोई रूढ व्यवस्था ही है और न किसी काव्यशास्त्रीने इस सम्बन्धमें कोई निश्चित आदेश ही दिए हैं। जो लेखक जितना अधिक भावशील होगा और जितनी ही उसमें प्रखर प्रतिभा होगी उतने ही कौशलके साथ वह अपनी कथावस्तुको ऐसा घुमाव देकर और इस पकड़के साथ ला रक्खेगा कि पाठक या श्रोताको सब काम छोड़कर अपना ध्यान एकाग्र करके उसे ग्रहण करनेके लिये बाध्य होना पड़ेगा।

नागरी गद्य और पद्यमें अभी शैली और कौशलके सम्बन्धमें बहुत कम लोगोंका ध्यान गया है। हिन्दीके जिन बड़े-बड़े उपन्यासकारोंका नाम और प्रचार बहुत है उन्हें यदि भाषा, भाव और कौशलकी दृष्टिसे परखा जाय तो प्रतीत होगा कि केवल प्रचारके बलपर उन्होंने इतना नाम कमाया है, वास्तविक मूल्य उनका कुछ भी नहीं। यही बात अन्य प्रकारके लेखकोंकी भी है जिनमें न भाषाकी एक-रूपता है, न भाव-शैलीका रूप है, न रूप-शैलीकी विविधता है और

न कौशलका ही नाम है। यद्यपि आजकल कौशल (टेकनीक) का होहल्ला बहुत मचाया जा रहा है किन्तु न तो उसका लोगोंको वास्तविक ज्ञान ही है और न उस सम्बन्धमें हमारे लेखक ही सजग या प्रयत्नशील हैं। किन्तु यदि नागरी साहित्यको प्रौढ, सशक्त, सजीव, सरस और आकर्षक बनाना है और विश्व-साहित्यमें उसे प्रमुख स्थान प्राप्त कराना है तो उसकी भाषा-शैली, रूप-शैली, भाव शैली और कौशलके सम्बन्धमें अत्यन्त सजग होकर पथ निर्धारण करना होगा और समीक्षकोंको भी सावधान होकर अत्यन्त गम्भीर और पैनी दृष्टिसे शैली और कौशलकी उचित मीमांसा करते हुए प्रत्येक लेखकका परीक्षण करके उसे ठीक पथपर चलनेकी प्रेरणा देनी होगी।

हमें विश्वास है कि इस ग्रन्थसे वर्तमान लेखकोंको अपनी रचनाओंके परीक्षणमें और उनके शोधनमें सहायता मिलेगी तथा भावी लेखकोंका पथप्रदर्शन होगा और वे अपनी अभिव्यक्तिको सुचारु सज्जासे समलंकृत करके उसे अधिक मनोहर बनानेका प्रयत्न कर सकेंगे।

इस ग्रन्थमें अधिकांश उदाहरण हमने स्वयं अपनी रचनाओंमेंसे दिए हैं और अपने अन्य ग्रन्थोंसे ज्योंके-त्यों अंश लेकर इसमें समाविष्ट कर लिए हैं। अपना यह अधिकार मैंने सुरक्षित रक्खा है कि अपने किसी भी ग्रन्थका कोई अंश मैं अपने किसी अन्य ग्रन्थमें ले सकता हूँ या किसीको उसका प्रयोग करनेको अनुमति दे सकता हूँ। इस सम्बन्धमें मुझपर किसीका कोई बन्धन नहीं है। जहाँ कहीं किसी अन्य ग्रन्थकार अथवा लेखकका उदाहरण दिया गया है वहाँ उसके नामका निर्देश कर दिया गया है। हम उन सभी कवियों और लेखकोंके आभारी हैं जिनकी रचनाओंसे हमें अनेक प्रकारकी शैलियों और कौशलोंका परिज्ञान हो सका है।

अक्षय तृतीया, संवत् २०१३
उत्तर बेनिया बाग, बनारस। } **सीताराम चतुर्वेदी**

विषय-सूची

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

काव्योंमें शैली और कौशल

१

प्रस्तावना

आचार्योंका मत है कि 'लेखकको ग्रन्थ लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह जो कुछ लिख रहा है वह पाठकके लिये लिख रहा है और वह पाठक भी ऐसा है जिसे प्रत्येक बात भली भाँति समझनी पड़ेगी। यद्यपि किसी भी लेखकके लिये यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक पाठककी बौद्धिक और भाषा-सम्बन्धी योग्यताका परिचय पा सके किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक लेखकको यह समझकर अवश्य लिखना चाहिए कि मेरा ग्रन्थ उस श्रेणी तथा उस बौद्धिक स्तरके लोगोंके लिये लिखा जा रहा है जिनका भाषा-सम्बन्धी ज्ञान इतना अवश्य है कि वे उस भाषा-शैलीके सहारे ग्रन्थमें निरूपित विषयको भली भाँति समझ लें। पाठकसे सीधा सन्बन्ध स्थापित कर लेनेमें प्रायः बहुतसे लेखकोंका स्वाभाविक

कठिनाइयाँ इसीलिये हो जाती हैं कि वे पाठकका ध्यान न करके अपने पाण्डित्य-प्रदर्शनका अधिक ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि उनके ग्रन्थ लोकमानसको तृप्त करनेमें सर्वथा असफल रह जाते हैं। हिन्दी साहित्यमें ऐसे बहुतसे ग्रन्थ-लेखक हैं जिन्हें प्रचारके बलपर विश्वविद्यालयके पाठ्यक्रममें रखकर जिलाया जा रहा है किन्तु उनकी रचनाओंमें स्वतः ऐसी कोई कला नहीं है कि वे सहसा सब प्रकारके पाठकोंका उसी प्रकार अनुरञ्जन कर सकें जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस।

लेखकसे पाठककी आत्मीयता

जो लेखक अपने पाठकसे आत्मीयता स्थापित करनेकी वृत्तिसे रचना करता है वह अपनी रचनामें कई बातोंका ध्यान रखता है—

१. मेरा विषय नया, आकर्षक, असाधारण और अद्भुत हो।

२. मेरी भाषा-शैली मनोरञ्जक, सर्वबोध्य और कलात्मक हो।

३. मेरी रचनाकी रूप-शैली मेरे उद्दिष्ट विषयके लिये ऐसी अनुकूल हो कि उसके द्वारा उस विषयके सम्बन्धमें मेरी भावनाओंकी उचित अभिव्यञ्जना हो सके।

४. विषयका निरूपण इस प्रकारकी भाव-शैलीमें किया जाय कि वह अधिक सुन्दर, मोहक और आकर्षक लगे।

५. विषय या कथा प्रस्तुत करनेमें मैं ऐसे कौशलका प्रयोग करूँ कि वह आदिसे अन्ततक पाठककी चित्तवृत्तिको एकाग्र किए रक्खे, बाँधे रक्खे और आकृष्ट किए रक्खे।

पाठकसे इस प्रकारकी आत्मीयता स्थापित करनेके दो ढङ्ग

बताए गए हैं—एक तो वाक्प्रगल्भता अर्थात् वाणीका संस्कार और दूसरा, पाठकको अपना विश्वासपात्र बनाना अर्थात् इस प्रकारका कथा या विषयको प्रस्तुत करना कि वास्तवमें जो कुछ कहा जा रहा है उसे पाठक पढ़ने-सुननेके योग्य समझे। पाठकसे इस प्रकारकी आत्मीयता स्थापित करनेके लिये दो शक्तियाँ मुख्य मानी गई हैं—पारस्परिक सौमनस्य और आगेके लिये विश्वास।

शैलीका प्रधान गुण : सरलता

हमारे यहाँ जब कोई लेखक ग्रन्थ लिखने लग जाता है तब वह यह नहीं सोचता कि हम जिस रूप-शैली और भावशैलीमें जो विषय प्रस्तुत करना चाहते हैं उसके लिये हमारी भाषा-शैली कहाँ-तक उपयुक्त है। जैसे विभिन्न प्रकारके चित्र बनाते समय चित्रकार इस बातका ध्यान रखता है कि किस चित्रमें कौनसा रंग लगाया जाय उसी प्रकार लेखकको भी सावधान होकर भाषाका संयोजन करते समय ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना चाहिए कि उनके अर्थ तत्काल लेखकके भावों और विचारोंको पाठकके मनतक पहुँचा दें। इसीलिये संसारके सभी आचार्योंने बताया है कि काव्य-भाषा सरल होनी चाहिए, इतनी सरल कि उसका अर्थ समझनेमें बौद्धिक व्यायाम न करना पड़े। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइनने भौतिक विज्ञानपर लोकप्रिय पुस्तक या एच० जी० वेल्सने 'विश्व-इतिहासकी रूपरेखा' ऐसी सरल शैलीमें लिखी है कि लेखकके प्रति पाठकका तत्काल सौमनस्य बन जाता है और उसे विश्वास हो जाता है कि पूरी पुस्तक मेरी समझमें आ जायगी। इसलिये लेखक और पाठकके बीच

आत्मीयता स्थापित करनेका सबसे सरल साधन है सरलीकरण। गोस्वामी तुलसीदासजीने इसीलिये 'सरल कबित'की बड़ी महिमा बताई है। यदि ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते पाठक ऊब जाय और समझने लगे कि यह रचना नीरस या अविश्वसनीय है या लेखकके भावों और शब्दोंका ठीक-ठीक मेल स्पष्ट नहीं होता तो पाठक कभी लेखकके साथ आत्मीयता नहीं स्थापित कर सकता। इसीलिये सरलताको शैलीका प्रधान गुण समझा जाता रहा। बहुतसे लोग शब्दोंका कोई महत्त्व नहीं मानते और समझते हैं कि कोई भी बात किसी भी प्रकारके शब्दोंमें कही जा सकती है किन्तु वे यह नहीं जानते कि शब्द ही तो विचारोंके वस्त्र हैं। यदि शब्द दरिद्र होंगे तो सुन्दरसे सुन्दर विचार भी दरिद्र लगने लगेगा। इसीलिये लौंगिनसने कहा है—'सुन्दर शब्द ही व्यवहारतः और वस्तुतः भावनाके प्रकाश हैं।' मोपासाँने कहा है कि 'शब्दोंके भी आत्मा होता है। अधिकांश पाठक शब्दोंसे केवल अर्थ मात्र लेना चाहते हैं और कुछ नहीं। किन्तु आवश्यक यह है कि शब्दोंका वह आत्मा खोजकर प्रकट किया जाय जो अन्य शब्दोंके सम्पर्कमें आकर व्यक्त होता है और जिसका थोड़ा-सा आलोक मिल जानेसे ग्रन्थ चमक उठते हैं।'

असाधारण शब्द

यह पूछा जा सकता है कि कौनसा शब्द कहाँ ठीक बैठता है इसकी पहचान कैसे की जाय। इस सम्बन्धमें औस्कमने एक सिद्धान्त बताया है जिसे 'औस्कमका छुरा' (औस्कम्’स रेज़र) कहते हैं कि 'जबतक असाधारण शब्दके प्रयोगका पर्याप्त कारण

न हो तबतक परिचित शब्द ही सर्वश्रेष्ठ होता है।' असाधारण या अप्रयुक्त शब्द चाहे जितना भी सटीक हो किन्तु वाक्यमें प्रयुक्त हो जानेपर पाठकका सारा ध्यान उस शब्दमें केन्द्रित हो जाता है और भाव लुप्त हो जाता है। हिन्दीके कुछ वर्त्तमान कवियोंकी बहुतसी रचनाएँ असाधारण शब्दोंकी भर्तीसे इतनी लद गई हैं और भाव इतने अस्पष्ट तथा दुरूह हो गए हैं कि जितने पाठक और अध्यापक हैं उतने ही अर्थ लगाते हैं, और जहाँ अर्थ लगानेमें कुछ द्विविधा होती है वहाँ झट उसमें सांख्य और वेदान्त खोजने लगते हैं। इन लोगोंका साहित्यमें इतना प्रचार कर डाला गया है कि सज्जनोंकी गति साँप-छछूँदर जैसी हो गई है कि न उगते बनता है न निगलते।

साधारण शब्द

दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनकी भाषा इतनी अधिक शिथिल और असङ्घटित है कि वह केवल विषयके आधारपर साँस ले रही है। अतः साधारण या सरल शब्दका अर्थ बहुत साधारण नहीं समझना चाहिए। जौवर्टने साधारण शब्दका महत्त्व बताते हुए कहा है—'परिचित शब्दोंमें रची हुई शैली पाठकके अन्तःकरणको बेधती है। उन्हीं शब्दोंके द्वारा बड़े-बड़े विचार लोक-प्रचलित होते हैं और उसी प्रकार टकसाली बनकर सत्य निष्ठाके साथ सबके द्वारा स्वीकृत होते हैं जैसे किसी परिचित छापके चाँदी और सोनेके सिक्के।' जो व्यक्ति अपने भाव स्पष्ट करनेके लिये परिचित शब्दोंका प्रयोग करते हैं उनमें आत्मविश्वास होता है कि

इस प्रकारके प्रयोगसे पाठकको यह प्रतीत होगा कि मनुष्य-जीवनको लेखक ठीक-ठीक समझता है और उसके सम्पर्कमें है। साधारण शब्दोंके प्रयोगसे शैली भी स्पष्ट हो जाती है। ऐसे शब्द पुकार-पुकार कर कहते हैं कि 'लेखकने ग्रन्थके विचार या भावना-पर भली भाँति विचार किया है और उस विचार या भावनाको इतना आत्मसात् कर लिया है कि वह उसे साधारण शब्दोंमें कह डाल सकता है क्योंकि इस प्रकार जो कुछ वह कहता है अधिक सत्य प्रतीत होता है।' इसके अतिरिक्त जो शैली होगी वह कृत्रिम और बलपूर्वक गढ़ी हुई होगी। उसमें स्वाभाविकता नहीं होगी, प्रवाह नहीं होगा। इसलिये वह सीधे पाठकके हृदयमें ढलकर नहीं पहुँचेगी। वह मस्तिष्कके साथ टकराकर चूर-चूर होकर तब कहीं बड़ी कठिनाईसे इस योग्य हो पावेगी कि हृदयङ्गम की जा सके। अतः परिचित शब्दावलीके अतिरिक्त अन्य शैली स्पष्ट नहीं हो सकती और स्पष्टता ही स्वयं सत्यका लक्षण है। सम्पूर्ण लेखोंका आधार ही परिचित शब्द हैं और ये लक्ष्यके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें उलट-पुलटकर नमक-मिर्चके साथ लोक-वाणीमें ढलते रहते हैं। इसीलिये सिद्धोक्तिपूर्ण (मुहावरेदार) भाषाकी प्रशंसा सब कालों और सब देशोंमें सदा होती रही।

शब्दमें ध्वनितत्त्व

शब्दोंमें अर्थके अतिरिक्त एक संगीत-ध्वनि भी होती है। श्रुतिमधुर या श्रुतिकटु शब्दोंकी योजनाके अनुसार पाठकके हृदयपर रचनाका एक विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि शब्द श्रुतिमधुर

हों, तो विषय या वस्तुकी कोमलताका बोध होता है, श्रुतिकटु हों तो विषय या वस्तुकी कठोरता और भयङ्करताकी प्रतीति होती है। इसीलिये भारतीय काव्य-शास्त्रियोंने वृत्तिका विचार करते हुए कोमला, परुषा आदि वृत्तियोंका विधान किया है और यह बतलाया है कि किस प्रकारके विषयका निरूपण करनेमें कौन-सी वृत्ति काममें लाई जाय।

भाव-शैली

किन्तु भाषा-शैली ही सब कुछ नहीं है। विषयका प्रतिपादन करनेमें भाव-शैली भी विचारणीय होती है। यदि हमें किसी व्यक्ति या समाजपर आक्षेप करना हो तो हमें व्यंग्यात्मक शैलीका प्रयोग करना चाहिए; किसी मनोरञ्जक विषयका वर्णन करना हो तो विनोदात्मक शैलीमें करना चाहिए, किसी शास्त्रीय विषयका प्रतिपादन करना हो तो विचारात्मक शैलीका प्रयोग करना चाहिए और यदि पाठकों या श्रोताओंके हृदयको प्रभावित करना हो तो भावात्मक तथा उत्तेजनात्मक शैलीका प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार प्रभाव और विषयकी दृष्टिसे भाव-शैलीका चयन भी अत्यन्त आवश्यक है। भाव-शैलीका उचित चयन न करनेसे कभी-कभी बहुतसे सामाजिक और मानसिक सङ्कट तो उपस्थित होते ही हैं साथ-साथ उद्दिष्ट प्रभावकी सिद्धि भी नहीं होती और लेखकका लक्ष्य भी पूर्ण नहीं हो पाता।

रूप-शैली

जैसे विभिन्न प्रकारके विषयोंके लिये भाषा और भाव-शैलीका

निर्णय अनिवार्य होता है, उसी प्रकार किसी विषय, कथा या सिद्धान्तको व्यक्त करनेके लिये यह भी आवश्यक है कि हम उसकी रूप-शैली भी चुन लें। असाधारण सांस्कृतिक महापुरुषोंकी कथाएँ प्रबन्ध-काव्यमें अधिक खिलती और अधिक प्रभाव-शालिनी होती हैं। इसी प्रकार किसी वीर या महापुरुषका कोई विशेष व्यक्तिगत गुण या सार्वभौम आदर्श उपस्थित करनेके लिये नाटक सर्वश्रेष्ठ होता है। किसी सामाजिक सिद्धान्त या विचारका प्रचार करनेके लिये वर्त्तमान छोटी कहानी या उपन्यास सर्वश्रेष्ठ साधन है और शास्त्रीय या दार्शनिक विषयोंके निरूपणके लिये निबन्ध सर्वश्रेष्ठ होता है। इसमें जहाँ व्यतिक्रम हुआ कि वहीं असफलता हाथ लगी। भवभूतिने महावीरचरित लिखा किन्तु वह असफल हुआ क्योंकि महावीरचरितकी कथा प्रबन्ध-काव्यके अनुकूल है नाटकके नहीं। किन्तु उत्तररामचरित इसलिये सफल है कि उसमें रामके एक विशेष आदर्श गुणकी प्रतिष्ठा की गई है। इसीलिये उसका निर्वाह ठीक हो पाया है। कादम्बरीकी कथा यदि पद्यात्मक प्रबन्ध-काव्यके रूपमें लिखी जाती तो वह उतनी सफल न हो पाती जितनी गद्य-प्रबन्धके रूपमें हुई है। अतः लेखकको ग्रन्थ लिखनेसे पूर्व रूप-शैली अर्थात् विषय या वस्तुको प्रस्तुत करनेके काव्य-रूपका भी निर्णय कर लेना चाहिए कि वह जिस विषय या वस्तुका प्रतिपादन करना चाहता है उसे वह काव्य-रचनाके किस रूपमें प्रस्तुत करे।

रचना-कौशल

भाषा-शैली, भाव-शैली और रूप-शैलीके अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है वस्तुको प्रस्तुत करनेका कौशल। 'किसी भी कलाकृतिमें विशेष सौन्दर्य उत्पन्न करनेका जो बौद्धिक नियोजन किया जाता है उसीको कौशल कहते हैं।' वे सब साधन, प्रयोग तथा विन्यास मिलकर कौशल कहलाते हैं जिनके कारण कोई कृति 'इस विशिष्टताके साथ सुन्दर प्रतीत होने लगे कि बलवश सब पाठक उसकी ओर प्रवृत्त हो जायँ।' अनेक आचार्य मानते हैं कि 'कलामें यह शक्ति होनी चाहिए कि वह दूसरोंको प्रभावित करे।' इस प्रभावित करनेके लिये कलाकार अपनी कलाकृतिमें जो नवीनता, विशेषता अथवा विचित्रता उत्पन्न करता है, वही उसका कौशल है।

योरपके प्राचीन कलाचार्य परिश्रमको ही कौशल समझते हैं। यह परिश्रम चित्र और मूर्त्तिके लिये तो ठीक है किन्तु काव्यके लिये नहीं, यद्यपि कौशलके सम्बन्धमें प्रायः सभी पूर्वी और पश्चिमी कलाकारोंका यही मत रहा है। प्रसिद्ध चित्रकार लियोनार्दो द विञ्चीने कहा था—'हे ईश्वर! तुम हमें सब सुन्दर वस्तुएँ परिश्रमके मूल्यपर बेचते हो।' द विञ्चीने अपनी सम्पूर्ण कृतियोंमें अन्तः-स्फुरणकी अपेक्षा परिश्रमको ही अपने कौशलका अधिक आधार माना। टर्नरने भी कहा था कि 'मेरी सफलताका रहस्य कठोर परिश्रम है।' एक चीनी चित्रकारने कहा है—'कोई मनुष्य अपनेको तबतक कलाकार नहीं कह सकता जबतक कि उसने

इस सहस्र चित्र न बना लिए हों।' किन्तु जिन लोगोंने स्वयं किसी कलाकृतिकी रचना नहीं की है और जिन्होंने केवल सौन्दर्यवादी सिद्धान्तकी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार किया है उनका मत है कि 'एक रहस्यमयी अन्तःप्रवृत्त दैवी वासना ही कौशलको भी आभास देती है।' यह सब सत्य हो या न हो किन्तु इतना तो निश्चय है कि प्रत्येक कवि अपनी रचनामें कुछ मौलिकता, कुछ नवीनता लाना चाहता है। उसका अहं तबतक तृप्त नहीं होता जबतक वह अपनेको सबसे भिन्न और विशिष्ट सिद्ध न कर दे। इसीलिये सभी कवियों और लेखकोंने अपनी रचनाओंमें नवीनता और आकर्षण उत्पन्न करनेके लिये इतने अधिक कौशलोंका प्रयोग किया है कि उनकी गणना नहीं की जा सकती। फिर भी उन सबका वर्गीकरण तो किया ही जा सकता है। कौशलके कुछ उदाहरण लीजिए। कोई कथा प्रारम्भसे न कहकर बीचसे उठा देना, कथाको अन्तसे आरम्भ करना और आरम्भपर ले जाकर समाप्त कर देना (रिवर्स प्लौट टेकनीक), किसी विषय या अनुभवको इस प्रकार वर्णन करना मानो वह आपकी आप-बीती हो, अन्तमें जाकर कथाका रहस्य खोलना, कोई कथा पूर्ण करते हुए ऐसे स्थानपर लाकर छोड़ देना कि स्वयं पाठकको उसके परिणामकी कल्पना करनी पड़े, कथाका नायक ही लुप्त कर देना, पूरी कथाको स्वप्नके रूपमें उपस्थित करना आदि अनेक प्रकारके कौशल ही हैं। यह कौशल जितना अद्भुत, नवीन, विलक्षण होगा उतनी ही वह रचना आकर्षक और लोकप्रिय होगी। अतः शैलीका

विवेचन करते समय रचना-कौशल (टेकनीक) की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

कौशल, योजना और सूत्र

हमारे बहुतसे मित्रोंने आजकल रचना-कौशल (टेकनीक) शब्दका बड़ा विचित्र प्रयोग करना प्रारम्भ किया है । वे शैलीको ही कौशल समझ बैठे हैं । किन्तु भाषा-शैली, भाव-शैली या रूप-शैलीको कौशल नहीं कहते हैं । कौशल तो वस्तुगत विषयको प्रस्तुत करनेके क्रम और संयोजनकी विचित्रताको कहते हैं । इसीलिये कुछ लोगोंने उसे कौशल न कहकर योजना ही कहा है। उनका मत है कि 'प्रत्येक कलाकार अपनी कलाकृतिके निर्माणके लिये जो प्रक्रिया-क्रम बनाता है वही योजना कहलाती है।' किन्तु इन लोगोंका यह मत भी है कि 'ऐसी बँधी हुई योजनाका पालन करनेसे रचना भी अत्यन्त यन्त्रवत् हो जाती है और अन्तःस्फुरण भी कुण्ठित हो जाता है ।' इसीलिये बहुतसे कलाकार मानते हैं कि 'रचनाक्रम तो स्वयं बनता-चलता है, उसके लिये योजनाकी आवश्यकता ही नहीं है ।' किन्तु संसारमें जितने श्रेष्ठतम प्रबन्ध-काव्य, उपन्यास, नाटक आदि रचे गए हैं, सबको देखनेसे प्रतीत होता है कि सबमें किसी व्यवस्थित रचना-कौशलका आश्रय अवश्य लिया गया है । अतः यह कहना उचित नहीं है कि रचना-क्रम स्वयं बनता चलता है । कुछ आचार्योंका मत है कि 'किसी भी प्रकारकी रचनाके लिये कुछ बँधे हुए सूत्र होते हैं, जिनकी सहायता लेकर उस प्रकारके साँचेकी रचना की जाती है । रहस्यात्मक आरभटी

नाटक (मैलोड्रामा) के लिये यह सूत्र बन गया है कि 'प्रथम अङ्कमें किसीपर सन्देह न करो, द्वितीय अङ्कमें सबपर सन्देह करो और तृतीय अङ्कमें उस अपराधीको पकड़ लो जिसपर किसीका सन्देह न हो।' जासूसी उपन्यासोंके लिये भी इसी प्रकारके सूत्र बन गए हैं और बहुतसे लोगोंने अपने-अपने साहित्यिक वादके अनुसार छोटी कहानी लिखनेके सूत्र भी विस्तारसे बना डाले हैं। मालेविन्स्कीने 'नाटक लिखनेका विज्ञान' नामकी एक पुस्तकमें नाटक रचने तथा नये नाटकका विश्लेषण करनेका सूत्र बताया है। किन्तु इस प्रकार सूत्रोंके अनुसार रचे हुए उपन्यास या नाटक तो निश्चय ही निर्जीव और नीरस होते हैं क्योंकि वे एक बँधे-बँधाए साँचेमें ढल जाते हैं। किन्तु कौशल तो प्रत्येक रचना तथा विषयकी प्रकृतिके अनुसार अलग-अलग रूप और व्यवस्था लेकर चलता है। अतः शैलीके साथ कौशल-निरूपण भी भावी लेखकोंके निर्देशनके लिये और विभिन्न प्रकारकी रचनाओंके समीक्षणके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

इस ग्रन्थमें हम उदाहरण-सहित यह प्रतिपादित करनेका प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकारके विषयके लिये किस प्रकारकी रूप-शैली, भाव-शैली भाषा-शैली तथा रचना-कौशलका संयोजन करना चाहिए। इस प्रकारकी मीमांसाके लिये हम मनोवैज्ञानिक और शास्त्रीय दोनों दृष्टियोंसे विचार करेंगे और साथ ही अन्य देशोंमें इस सम्बन्धमें जितना कुछ विचार हुआ है उसका भी यथावसर परिचय देंगे।

२

शैली और कौशलके रूप

सम्पूर्ण वाङ्मय, चाहे वह काव्य हो या शास्त्र, सब शब्दोंमें ही लिखा या कहा जाता है। किन्तु काव्यात्मक रूपोंकी रचना करते समय केवल यही ध्यान नहीं रक्खा जाता कि वह किसी प्रकार व्यक्त कर दिया जाय वरन् यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि उसके लिये किस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग किया जाय। हमारे यहाँ वृत्तिके सिद्धान्तका विवेचन करनेवाले आचार्योंने इस सम्बन्धमें विस्तारसे विचार किया है। अरस्तूने भी अपने काव्यशास्त्रमें कहा है कि 'सचेत तथा सावधान होकर नियमित रूपसे अलंकार करना ही काव्य-शैली है।' आगे चलकर उसने बताया कि 'साहित्यमें कभी तो जीवनको श्रेष्ठतर चित्रित किया जाता है, कभी हीनतर और कभी यथार्थ। इन तीनों प्रकारकी रचनाओंके लिये आचार्योंने उच्च, निम्न और मध्यम शैलीकी व्यवस्था दी है।' यूनान और रोमके भाषण-शास्त्री अरस्तू, सिसरो और क्विन्तीलियन आदिने यही बात दुहराई कि 'कवियोंको सावधान होकर अर्थात् जानबूझ-कर भाषाका शृङ्गार करना चाहिए।' हमारे यहाँ अलंकार-वादियोंने तो स्पष्ट रूपसे कह ही दिया कि 'अलंकारका योजन काव्यके

सौन्दर्यके लिये आवश्यक है।' भामह, दण्डी, रुद्रट आदि आचार्य तो अलंकारहीन रचनाको कविता ही नहीं मानते। योरपमें भी जब भाषाके अलंकारकी आवश्यकता समझ ली गई तब वाणीकी वक्रता और अलंकार-योजनाके लिये नियम ढाले जाने लगे कि किस प्रकारका प्रभाव उत्पन्न करनेके लिये कैसी भाषाका प्रयोग किया जाय। दाँतेने तो शब्दोंकी श्रेणियाँ-तक बाँध दी—बचपन-भरी, स्त्रैण, पौरुष-भरी, सँवारी हुई और फूहड़ आदि। इस प्रकार उसने काव्यमें काम आनेवाले शब्द-समूहको अलग छाँटकर बताया कि किस प्रकारके काव्यके लिये तथा किस प्रकारका प्रभाव उत्पन्न करनेके लिये किस प्रकारकी शब्द-योजना उचित है। फ्रांसमें प्लीआदने और इङ्गलैंडमें जौन्सन और बेन्-मण्डलीने काव्यको उदात्त बनानेके निमित्त भाषाका संस्कार प्रारम्भ किया। इँग्लैंडमें सत्रहवीं शताब्दिके अन्त और अठारहवींके प्रारम्भमें उचित, ललित और अत्यन्त उच्च प्रकारकी चुनी हुई भाषा ही कविताके लिये श्रेष्ठ मानी गई तथा फूहड़, विशिष्ट (शास्त्रीय, असाधारण, अपरिचित) और सनक-भरी भाषाका बहिष्कार किया गया। लौंगिनसने कल्पना, अलंकार, रूपक तथा शक्तिशाली विचारों और भावोंको ही शैलीका तत्त्व माना है। जौन्सनने कहा है कि 'कविता सर्व-बोध्य और सार्वभौम होनी चाहिए अर्थात् वह ऐसी सरल हो कि किसी भी युग, जाति या वर्गके लोग उसे समझ सकें। कविता ऐसी होनी चाहिए कि उसमें प्रकृतिकी व्याख्या हो और मनुष्योंका पथ-प्रदर्शन हो। कविको यह समझ लेना चाहिए कि मैं

ही भावी पीढ़ियोंके आचार-विचारका अधिष्ठाता हूँ।' राजशेखरने अपनी काव्य-मीमांसामें भी सारस्वत कवि अर्थात् सर्वश्रेष्ठ रचयिता उसे ही बताया है जिसकी रचना इतनी सर्वबोध्य हो कि वह हलवाहेके झोंपड़ेसे लेकर राजप्रासाद-तक तथा मूर्खसे लेकर पण्डित-तक सबके द्वारा समान रूपसे आहृत हो। अतः प्रत्येक रचनाकी भाषा ऐसी अवश्य होनी चाहिए कि वह मानवीय अनुभूति अथवा कविकी भावनाको शुद्ध, पूर्ण, समृद्ध और तीव्र गतिसे पाठकके हृदय-तक पहुँचा सके।

अरस्तू, दाँते तथा अन्य कुछ विद्वानोंने कहा है कि कविको अत्यन्त उदार और भव्य शब्दावलीका प्रयोग करना चाहिए। इसीलिये कुछ कवियोंने जान-बूझकर अपनी भाषा कृत्रिम रूपसे अलंकृत और दुरूह कर डाली। वर्डस्वर्थने इस अलंकरण-शैलीके विरुद्ध विद्रोह करते हुए कहा कि—'कवितामें भी गद्यकी भाषाका प्रयोग करना चाहिए।' इस वक्तव्यका दुष्परिणाम यह निकला कि बीसवीं शताब्दिमें कुछ लोगोंने इस झोंकमें जहाँ बहुतसे ग्रामीण, लौकिक और व्यावसायिक शब्दोंका प्रयोग चलाया वहाँ विदेशी और अश्लील शब्द भी कवितामें आ घुसे। किन्तु 'गद्यकी भाषा'का अर्थ यही था कि कवितामें भी स्पष्टता हो। कुछ आचार्योंने कहा है कि काव्य-शैलीमें भावरंग (टोनकलर) लाना चाहिए, अर्थात् जो भाव व्यक्त किया जानेवाला हो वह तदनुरूप शब्दावलीकी योजनाके साथ इस रूपमें प्रस्तुत किया जाय कि उसका विवेचन और वर्णन अधिक स्पष्ट, प्रभावशाली

और हृद्य होता चले। इसी भावनासे फ्रान्समें गोन्कोर बन्धुओंने प्रभाववादी शैली (ऐक्रीतूरे आर्तिस्ते) चलाई और विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करनेके फेरमें व्याकरण तथा वाक्य-विन्यासके नियमों-तककी कोई चिन्ता न की।

यदि कलाकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि काव्य-रचना भी कला है। कला सदा सौन्दर्यके साथ हाथ मिला कर चलती है और सौन्दर्यकी प्रवृत्ति ही है अयत्नज (स्वाभाविक) या यत्नज (कृत्रिम) अलंकारोंसे सज-धजकर चलना। अतः सुन्दरसे सुन्दर विचार भी तबतक व्यर्थ है जब-तक उसे उचित तथा सुन्दर भाषाका आवरण न पहनाया गया हो। यह भाषाका प्रयोग अभ्याससे आता है और यह अभ्यास अनेक ग्रन्थोंके अध्ययन अथवा विद्वानोंके सहयोगसे आता है। अतः शैलीमें सर्वप्रथम विचारणीय बात उसकी भाषा-शैली है जो लोक-सिद्ध प्रयोगसे समन्वित हो, जो अपने देशकी जान पड़े, जिसके द्वारा उचित प्रभाव डाला जा सके और जिसमें उचित तथा शिष्ट शब्दोंका प्रयोग हो। शैलीका प्रमुख गुण प्रभावोत्पादक होना ही है। यह तभी सिद्ध हो सकता है जब हम दो बातें भली-भाँति समझ लें—१. हम किसके लिये कह या लिख रहे हैं? २. हम किस प्रकारके विषयका निरूपण कर रहे हैं? तात्पर्य यह है कि पाठककी बौद्धिक अवस्था और विषयकी प्रकृति समझकर ही हमें अपनी भाषा-शैली निश्चित करनी चाहिए।

भाषा-शैलीकी दृष्टिसे हिन्दीमें चार शैलियाँ अधिक प्रचलित हैं—

१. ठेठ तद्भवात्मिका, २. सिद्धोक्ति या मुहावरोंसे पूर्ण, ३. संस्कृतनिष्ठ, ४. सब प्रकारके शब्दोंसे भरी हुई शैली।

नीचे हम इन चारों शैलियोंके उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. ठेठ तद्भवात्मिका शैली—

तड़के-तड़के एक बन्दरने आकर मेरे सारे कपड़े फाड़ डाले।

इस प्रकारकी शैलीमें सब शब्द तद्भव होते हैं या देशी और उनका वाच्यार्थ ही प्रधान होता है, अर्थात् जो शब्द प्रयोगमें आते हैं उनके प्रचलित या मुख्य अर्थोंका ही बोध होता है।

२. सिद्धोक्ति या मुहावरेसे पूर्ण—

अभी पौ नहीं फटी थी कि एक ललमुँहेने आकर मेरे सब कपड़े-लत्ते तार-तार कर डाले।

इस प्रकारकी शैलीमें लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ ही प्रधान होता है।

३. संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक शैली—

आज ब्रह्मवेलामें एक शाखामृगने मेरे सम्पूर्ण वस्त्र खण्ड-खण्ड कर डाले।

इस शैलीमें ठेठ देशी और तद्भव शब्द हटाकर उनके बदले संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग किया जाता है।

४. सब प्रकारके शब्दोंसे भरी हुई शैली—

आज सुबू एक बन्दरने मेरे तमाम कपड़े टीअर कर डाले।

इस प्रकारकी शैलीका प्रयोग वे लोग करते हैं जो भाषाके प्रयोगमें सावधान नहीं रहते या जिन्हें किसी भाषापर अधिकार नहीं होता। अँगरेजी पढ़नेवाले लोग तो ऐसी भी बेढङ्गी शैलीका प्रयोग करते हैं—

आज मौर्निङ्गमें एक मन्कीने मेरे सब क्लोद्ज़ टीअर कर डाले।

इसी प्रकारकी शैली वह भी है जिसे 'उर्दू' कहते हैं, जिसमें छाँट-छाँटकर संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्द निकालकर उनके बदले अरबी-फ़ारसी-तुर्की (सेमेटिक भाषाओं) के शब्द ला भरे जाते हैं। उदाहरण लीजिए—

इमरोज़ बवक्ते शफ़क़ यक बूज़नाने बन्देकी तमाम पोशाक नेस्त-नाबूद कर डाली।

राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार बढ़ जानेके कारण भारतकी विभिन्न भाषाओंके मिले-जुले शब्दोंवाली निम्नाङ्कित भाषा-शैली भी हिन्दीमें दिखाई पड़ने लगी है—

आज सकाल एक वाँदराने आकर मेरी सारी पोषाख फाड़कर चिंध्या कर दिया।

इस प्रकारकी बनावटी और बेढङ्गी शैलियाँ सर्वथा त्याज्य हैं क्योंकि एक भाषामें दूसरी भाषाके शब्द मिलाकर लिखना-बोलना भाषाका सबसे बड़ा दोष है।

वाक्योंकी बनावट

उपर्यङ्कित शब्द-रूपोंकी शैलियोंके अतिरिक्त वाक्योंकी बनावटसे भी शैलीका रूप बनता है। कुछ लोग छोटे-छोटे एक-एक क्रियावाले सरल स्वतन्त्र वाक्य लिखते हैं—

दिन ढल रहा था। एक भौंरा कमलकी पँखुड़ियोंमें घुसकर रस पी रहा था। देखते-देखते पँखड़ियाँ सिमटने लगीं। भौंरा कमलमें बन्द हो गया।

कुछ लोग कई स्वतन्त्र वाक्य मिलाकर बड़े-बड़े संयुक्त वाक्य बनाते हैं—

उधर दिन ढल रहा था इधर एक भौंरा कमलकी पँखड़ियोंमें घुस-कर रस पीने लगा पर देखते-देखते पँखड़ियाँ सिमटने लगीं और भौंरा कमलमें बन्द हो गया।

कुछ लोग प्रधान और सहायक वाक्य मिलाकर लम्बे-लम्बे मिश्रित वाक्य बना कर लिखते हैं।

जब दिन ढल रहा था तभी एक भौंरा कमलकी पँखड़ियोंमें घुसकर वह रस पीने लगा, जिसके लिये वह उड़कर इतनी दूरसे आया और जिसके कारण वह उस कमलमें बन्द हो गया जिसकी पंखड़ियाँ दिन ढलनेपर सिमट गईं।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग तो अलग-अलग शब्दोंवाले वाक्य लिखते हैं जैसे ऊपरवाले वाक्योंमें है किन्तु कुछ लोग लम्बे-लम्बे समास बनाकर लिखते हैं—

दिनमणि-तेज-तीव्रता-विगत-दिवस नील-धूसर-वर्णान्वित-सन्ध्यामें अनवरत-ताप-जन्य-श्रान्ति-सुलभ-विश्राम लेने चला गया।

कुछ लोग बिना विशेषणके ही पूरी रचना कर डालते हैं जैसे ऊपरके प्रथम तीन वाक्य-समूहोंमें, किन्तु कुछ लोग लम्बे-लम्बे विशेषण देकर वाक्य बनाते हैं। जैसे—

प्रचण्ड लूसे धरतीको झुलसानेवाला, पशु-पक्षियोंको गर्मी और प्याससे व्याकुल कर देनेवाला तथा वृक्ष-लता-गुल्मोंको जलाकर सुखा डालनेवाला जेठका दिन उष्ण निःश्वासके साथ ढल रहा था।

इस प्रकार वाक्योंकी प्रकृति विभिन्न प्रकारकी हो जाती है।

वाक्य, महावाक्य, अनुच्छेद और प्रकरणकी व्याख्या आगे यथा-स्थान की जायगी।

विषयानुरूप शब्द-योजना

किन्तु इन सबके अतिरिक्त विषयके अनुरूप भी शब्द-योजना होती है अर्थात् यदि शृङ्गारका प्रसङ्ग हो, किसी सुन्दर रमणीक स्थलका वर्णन हो तब कोमल, श्रुति-मधुर शब्दोंकी योजना की जाती है। जैसे—

नन्दनवनका मन्द गन्धवाह मन्दारके मरन्दकी अमन्द गन्ध अपने नवनन्दित कन्धोंपर आनन्दसे लिए मन्द-मन्द संचरण कर रहा थ।

यदि कोई भयङ्कर स्थान हो, बीहड़ दृश्य हो, रौद्र, भयानक और वीभत्स अवसर हो या प्रतापी व्यक्तिका वर्णन हो तब शब्दावली श्रुति-कटु, गम्भीर, घोष महाप्राण तथा द्वित्व वर्णोंसे लदी चलती है। तभी उसका वह समुचित प्रभाव पड़ता है जिसे आइ० ए० रिचार्डस्‌ने इमोटिव (भावात्मक) कहा है। जैसे—

अखण्ड ब्रह्माण्डका प्रकाण्ड पाखण्ड अपने प्रचण्ड दोर्दण्डसे डगमगा देनेवाले, अपने भास्वर भव्य भालपर भगवान् भूतभावनकी भूतिमय विभूतिका भासमान त्रिपुण्ड अङ्कित करके भूर्भुवस्स्वर्लोकको भास्वरताका दुर्दान्त दम्भ विदीर्ण कर डालनेवाले भगवान् परशुराम आप ही हैं।

शैलीके गुण

पाश्चात्य आचार्योंने भव्य शैलीके छह गुण बताए हैं—सरलता, स्पष्टता, स्वच्छता, प्रभावोत्पादकता, शिष्टता तथा

लयात्मकता। भारतीय आचार्योंने यद्यपि इस प्रकारका कोई विवेचन नहीं किया है किन्तु उन्होंने प्रसाद, माधुर्य और ओजको ही शैलीका गुण माना है। किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने रीति, शब्द-शक्ति, गुण और दोषकी विवेचनाके साथ रीतिके पोषक, रसके सहायक तथा कुछ स्वतन्त्र गुणोंके रूपमें अलग-अलग ढङ्गसे शैलीकी विवेचना की है।

शैली, रीति और वृत्ति

कुछ लोगोंने रीतिको ही शैली मान लिया है। किन्तु रीति तो केवल काव्य-रचनाका ढङ्ग है। इसके विपरीत 'शैली वह साधन है जो वाणीकी अभिव्यक्तिमें अभिनव आकर्षण-शक्तिका सञ्चार करे। वामनने अपने काव्यालङ्कार-सूत्र-वृत्तिमें 'पदोंकी विशेष रचनाको रीति' (विशिष्टा पद-रचना रीतिः) माना है किन्तु गुणोंके आधारपर की हुई विशेष पद-रचनाकी इस रीतिको शैलीके विशिष्ट और व्यापक रूपसे सर्वथा भिन्न मानना चाहिए। भामहने यद्यपि रीतियों और वृत्तियोंका निर्देश नहीं किया किन्तु उन्होंने माधुर्य, प्रसाद और ओजकी चर्चा करते हुए कहा कि समासवाले लम्बे-लम्बे पदोंके प्रयोगसे रचनाका माधुर्य और प्रसाद गुण नष्ट हो जाता है किन्तु ओज गुणकी सिद्धिके लिये समासकी बहुलता नितान्त आवश्यक है। भामहका यह तर्क निःसार है क्योंकि आजकलकी अनेक समासहीन भाषाओंमें ओजका अभाव नहीं है।

भामहने रीतिमें दस गुण गिनवाए हैं—१. श्लेष (रचनामें ढिलाई न होना), २. प्रसाद (सुनते ही या पढ़ते ही समझमें

आ जाना), ३. समता (आद्यन्त प्रवाह बने रहना), ४. मधुरता (सुनने और समझनेमें मधुर प्रतीत होना), ५. सुकुमारता (कोमल अक्षरोंका प्रयोग), ६. अर्थव्यक्ति (बिना किसी रुकावटके अर्थ समझमें आना), ७. उदारता (उक्तिमें गम्भीरता हो, छिछलापन नहीं), ८. कान्ति (सबको प्रसन्न करनेवाली उक्तियोंका विधान), ९. ओज (समाससे भरपूर होना) और १०. समाधि (लक्षणा, व्यञ्जना आदिका सावधानी-पूर्वक) प्रयोग।

उद्भटने अनुप्रासका विवरण देते हुए तीन प्रकारकी वृत्तियाँ बताई हैं—१. परुषा : जिसमें **श**, **ष**, रेफवाले वर्ण, **ह**, ह, **ह्य** और **ट** वर्गका प्रयोग हो, २. उपनागरिका : जिसमें द्वित्व और **ट** वर्ग छोड़कर शेष वर्गोंके अक्षरोंका पञ्चम वर्णोंसे अधिक संयोग दिखाया जाता हो, ३. ग्राम्या या कोमला: जिसमें परुषा और उपनागरिका वृत्तिवाले वर्णोंको छोड़कर शेष अक्षरोंका प्रयोग होता हो, विशेषतः **ल**, **क** तथा **र** की आवृत्ति हो। अनुप्रासकी व्याख्या करते हुए रुद्रटने जो मधुरा, प्रौढा, परुषा, ललिता और भद्राका निर्देश किया है वह ध्वनि-विन्यासके आधारपर ही किया। साहित्य-दर्पणकारने 'पदोंकी सङ्घटनाको ही रीति' (पदसङ्घटनादि रीतिः) माना है और माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणोंको उसने वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी रीतियोंका उपकारक गुण माना है। मम्मट और विश्वनाथने भी सब आचार्योंके मतोंकी सूक्ष्म विवेचना करनेके पश्चात् यह घोषित किया कि माधुर्य, ओज और प्रसाद ये ही तीन मुख्य गुण हैं। उपर्युक्त गुणोंमेंसे कुछ तो इन्हींमें

आ जाते हैं और कुछ वास्तवमें गुण न होकर दोषके अभाव हैं। उन्होंने गुणको रसका धर्म माना है और बताया है कि इन गुणोंकी सहायतासे काव्यके आत्मामें उत्कर्ष आ जाता है। उनका मत है कि 'माधुर्य गुणके कारण चित्त कोमल होकर आनन्दमय हो जाता है। अतः उसका प्रयोग शृङ्गार, करुण और शान्त रसोंमें होना चाहिए। ओज गुणसे हृदय दीप्तिमय होकर अत्यन्त विशाल और विस्तृत हो जाता है। अतः वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसोंमें ओजका प्रयोग करना चाहिए। जिन पदोंको सुनकर सरलता और सुगमतासे अर्थ समझमें आ जाय उनमें प्रसाद गुण समझना चाहिए। उसका प्रयोग सब रसों और रचनाओंमें करना चाहिए।' ये लोग भी मानते हैं कि सभी रचनाओंमें यह गुण तो अवश्य ही होना चाहिए कि वह सरल है, सबकी समझमें आ सके।

शैलीपर विचार करते समय हमें देखना चाहिए कि—

१. जिस समाजके लिये यह रचना लिखी गई है उसकी समझमें आती है या नहीं।

२. जो प्रभाव लेखक डालना चाहता है वह शैलीसे उत्पन्न होता है या नहीं।

३. उसमें अशिष्टता या फूहड़पन तो नहीं है।

४. विषयके अनुरूप भाषा-शैली, भावशैली और रूपशैली है या नहीं, तथा

५. विषयकी प्रकृतिके अनुकूल शैली है या नहीं।''

रूपशैली

पीछे बताया जा चुका है कि किसी विषयका निरूपण करते समय यह भी विचार करना चाहिए कि इसे कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, गद्यकाव्य, पत्र, आत्मकथा आदिमेंसे किस रूपशैलीमें व्यक्त किया जाय। क्योंकि प्रत्येक विषयकी प्रकृतिके लिये ऐसे रूपमें उसे अवश्य उपस्थित करना चाहिए कि उसके द्वारा कवि जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है वह ठीक-ठीक व्यक्त हो सके। आजतक जितनी रूपशैलियाँ चल रही हैं उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

१. **वर्णन** (व्यक्ति, स्थान, वस्तु, दृश्य और अवसर का) : ये सब वर्णन भी दो प्रकारसे किए जाते हैं—सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म वर्णनमें वर्णनीय वस्तु या दृश्यके सम्बन्धमें आनेवाली प्रत्येक छोटीसे-छोटी बात या लक्षणका विवरण आ जाना चाहिए। किन्तु स्थूलके अन्तर्गत केवल उतना ही अंश अपेक्षित होता है जितना उस दृश्यके वर्णनसे सम्बद्ध हो और कथा अथवा प्रसङ्गके लिये सङ्गत हो।

२. **इतिवृत्त या कथन :** इतिवृत्त भी तीन प्रकारके होते हैं—क. कथाके रूपमें, ख. बच्चोंको समझाई जानेवाली कहानीके रूपमें, ग. हुँकारीके साथ कही जानेवाली नानी-दादीकी कहानीके रूपमें।

३. **वर्णन और कथन-(इतिवृत्त) मिश्रित :** कुछ ऐसे भी

कथानक होते हैं जिनमें इतिवृत्तात्मकता तो होती ही है किन्तु साथ ही बीच-बीचमें आए हुए व्यक्तियों, वस्तुओं, अवसरों, दृश्यों और स्थानोंका सूक्ष्म (विस्तृत) या स्थूल वर्णन भी होता है।

४. **कविता :** साधारण कविता चार श्रेणियोंमें बाँटी जा सकती है—

क. **मुक्तक :** जिसमें कोई एक घटना, विवरण, चित्र या भाव एक छन्द या एक बन्धमें वर्णन कर दिया जाय।

ख. **प्रगीत :** वे छोटे भावात्मक कविता-रूप होते हैं जिनमें तीन-चार या थोड़ेसे थोड़े पदोंमें एक विशेष भाव या दृश्य अङ्कित कर दिया जा सके। किन्तु प्रगीतका मुख्य उद्देश्य प्रकृतिसे प्रेरणा पाकर किसी मानव-भावकी अभिव्यञ्जना भी होनी चाहिए।

ग. **उक्तिबन्ध :** केवल उक्ति-कौशलसे पूर्ण इस प्रकार कुछ चरणोंका ग्रथन किया जाय जिसका सम्बन्ध कविके सात्त्विक भावसे न हो, वह केवल उक्ति-कौशलसे पूर्ण हो, जैसे प्रायः उर्दूकी ग़ज़लें होती हैं।

घ. **वर्णनात्मक कविता :** जिसमें किसी दृश्य, वस्तु या व्यक्तिका पद्यमय वर्णन होता है। कविताके प्रकारोंमें यह सबसे दरिद्र प्रकार है।

इनमें सर्वश्रेष्ठ मुक्तक है, जिसमें मनुष्यके हृदयकी अनुभूत भावना व्यक्त की जाती हो, सात्त्विक हो, पाठक या श्रोताके हृदयको भावित करनेवाली हो और केवल वस्तुओंकी सूची मात्र न हो।

५. **गीत :** बहुत-सी पद्य रचनाएँ किसी विशेष अवसरपर राग और तालके साथ गानेके लिये रची जाती हैं। उनका उद्देश्य किसी परिस्थितिका अङ्कन, किसी अपने प्रिय या इष्टके रूप, गुण, लीला तथा तत्सम्बन्धी विषयोंका गायन या उसके प्रति अपने हृदयके भाव व्यक्त करना हो। मीरा, सूर और तुलसीके गीत इसी श्रेणीके हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त वे लोकगीत भी गीतकी ही श्रेणीमें आते हैं जिनमें साधारण मानव-जीवनकी भावात्मक अभिव्यक्ति होती है, किसी प्राचीन महापुरुष या प्रिय पुरुषका चरित्र गाया जाता है अथवा किसी प्रसिद्ध घटनाका अङ्कन करके मनोविनोद किया जाता है। कजरी, बिरहा आदि इसी श्रेणीकी रचनाएँ हैं।

६. **पद्यप्रबन्ध :** जिसमें किसी महापुरुष या किसी घटना का आद्यन्त वर्णन हो अथवा किसी विशेष कुल, युग, देश अथवा व्यक्तिका पूरा या अधूरा वर्णन किया जाय। इनमेंसे जिसमें पूरा वर्णन किया जाता है वह महाकाव्य कहलाता है और जिसमें अधूरा या खण्ड वर्णन होता है उसे खण्डकाव्य कहते हैं। जिन काव्योंमें किसी साधारण ऐतिहासिक या लौकिक कथाको आधार बनाकर कोई दार्शनिक तत्त्व निरूपित किया जाता है उन्हें भाव-रूपक कहते हैं, जैसे—कामायनी या पद्मावत। कभी-कभी कुछ कवि ऐसी भी रचनाएँ करते हैं जो प्रकृतिमें मुक्तक होती हैं किन्तु यदि उन मुक्तक रचनाओंको एक क्रमसे रख दिया जाय तो वे पूरी कथा भी बन जाती हैं। ऐसी रचनाओंको कथात्मक मुक्तक अथवा मुक्तकात्मक

प्रबन्ध कहते हैं जैसे रत्नाकरका 'उद्धव-शतक' या तुलसी-दासजीका 'बरवै रामायण'।

७. **गद्यप्रबन्ध :** जिस प्रकार पद्यमें काव्यात्मक कथा लिखी जाती है उसी प्रकार काव्यात्मक गद्यमें भी पूरा महाकाव्य लिखा जा सकता है। यद्यपि इस प्रकारका प्रयास हिन्दीमें हुआ नहीं है किन्तु इसकी सम्भावनाएँ अवश्य हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास, व्यंग्याख्यान, युगचित्र, कहानी, आख्यायिका, चुटकुले, उपदेशात्मक कथाएँ सभी गद्यात्मक प्रबन्ध-काव्यके अन्तर्गत आ सकती हैं यदि उनमें केवल कथा-मात्रकी प्रवृत्तिके बदले काव्य-संयोजनकी भी प्रवृत्ति हो।

८. **पत्र :** इस श्रेणीके अन्तर्गत वे ही पत्र आ सकते हैं जिनमें काव्य-सौष्ठव भी हो।

९. **समीक्षा :** किसी लेख, पुस्तक, समाज, रीति-नीति, विचार, सिद्धान्त या रचनाकी आलोचनाएँ सब समीक्षाके भीतर ही आ जाती हैं।

१०. **दिनचर्या :** नित्यकी दिनचर्या लिखनेके रूपमें भी गद्य या पद्यकाव्यकी रचना की जा सकती है। गद्यकाव्य तो इस रूपमें बहुत मिलता है किन्तु पद्यका लगभग अभाव है।

११. **यात्रा :** यह दोनों प्रकारकी हो सकती है, वास्तविक भी और काल्पनिक भी।

१२. **निमन्त्रण-पत्र।**

१३. **आवेदन-पत्र।**

१४. **सूचना :** जो प्रायः समाचारपत्रोंमें भेजी जाती है।

१५. **अभिनन्दन :** जिसके अन्तर्गत स्वागत-पत्र, विदा-पत्र, सम्मान-पत्र, अभिनन्दन-पत्र, कृतज्ञता-पत्र और स्नेह-पत्र सब सम्मिलित हैं।

१६. **अभ्यर्थना।**

१७. **समाचार।**

१८. **विज्ञापन।**

१९. **निबन्ध :** ये निबन्ध समीक्षात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक, तर्कपूर्ण अध्ययनात्मक, गवेषणात्मक और भावात्मक (आवेगात्मक) सब प्रकारके हो सकते हैं।

२०. **संवाद :** ये संवाद दो, तीन या चार व्यक्तियोंके बीच वार्त्तालापके रूपमें होते हैं।

२१. **स्वगत-कथन।**

२२. **नाटक :** इसके अन्तर्गत एकाङ्की, अनेकाङ्की, नृत्यनाट्य, श्रव्य-नाट्य (रेडियो फीचर) आदि नाटकके सभी प्रकार आ जाते हैं।

२३. **गद्यकाव्य :** इसके अन्तर्गत ईश्वर या किसी इष्ट व्यक्ति या वस्तुको सम्बोधन करके रागात्मक और भावात्मक निवेदन किया जाता है।

२४. **भूमिका या प्रस्तावना।**

२५. **संक्षेपीकरण।**

२६. **लेख-संपादन।**

२७. **व्याख्या**।

२८. **टीका**।

२६. **आत्मकथा** : यह वास्तविक और काल्पनिक दोनों प्रकारकी होती है।

३०. **परिचय** : इसके अन्तर्गत व्यक्ति, वस्तु, विषय या ग्रन्थ सबका परिचय आ सकता है, यहाँतक कि एक नगर, राष्ट्र या जातिका भी परिचय दिया जा सकता है।

३१. **जीवन-चरित**।

३२. **रेखा-चित्र**।

३३. **श्रव्य-व्याख्या** (रेडियो कमेन्ट्री)।

३४. **भविष्य-वाणी**।

३५. नाटकीय आत्म-परिचय (ड्रैमेटिक मोनोलोग) : इसमें किसी कथाके पात्र स्वगत-भाषण-द्वारा अलग-अलग स्वतः गद्य या पद्यमें अपना मनोविश्लेषण और चित्रण करते हुए अङ्कित किए जाते हैं।

३६. **प्रवचन**।

भावशैली

कभी-कभी लेखक केवल लिखना ही नहीं चाहता वरन् वह उसे विशिष्ट भावके अनुसार लिखना चाहता है अर्थात् वह स्वयं अपनी प्रकृति अथवा विषयकी प्रकृतिके अनुसार अपने पाठकके हृदयको भी उस एक विशेष भाव या प्रभावमें ढाल लेना चाहता है।

यदि वह पाठकका मनोविनोद करना चाहता है तो वह विनोदात्मक शैलीका प्रयोग करता है। यदि वह सामाजिक या व्यक्तिगत व्यंग्य करना चाहता है तो वह व्यंग्यात्मक शैलीका प्रयोग करता है। यदि वह समझता है कि जिस विषयका मैं प्रतिपादन कर रहा हूँ वह कुछ विशिष्ट लोगोंकी चिन्तन-शक्तिको उत्तेजित और समृद्ध करनेके लिये है तो वह दार्शनिक शैलीका प्रयोग करता है। यदि वह समझता है कि किसी विषयके सम्बन्धमें जो मेरे विचार हैं उससे विरोधी विचार मेरे पाठकोंके मनमें होंगे और मेरे पाठक निश्चय ही विपथगामी हो रहे हैं तब वह तर्क-प्रधान शैलीका आश्रय लेता है। यदि वह समझता है कि हमारे पाठक या श्रोता दुर्बल हृदयके हैं, अधिक विवेक-शील नहीं हैं और उनकी किसी भावात्मक दुर्बलताका प्रयोग करके उन्हें अपने वशमें किया जा सकता है तब वह आवेगात्मक शैलीका प्रयोग करता है। ऐसी सब रीतियाँ भाव-शैलियाँ कहलाती हैं जो लेखककी प्रकृतिका भी परिचय देती हैं और साथ-साथ पाठककी भाव-भूमिको स्पर्श करनेकी रीतिका भी। इनमेंसे मुख्य भाव-शैलियाँ ये हैं—

१. विनोदात्मक : जिसका लक्ष्य हास्य और विनोदकी परि-स्थितियाँ उत्पन्न करते हुए विषयका विवेचन करना होता है।

२. आत्मचिन्तन शैली : जिसमें मनुष्य अपने किसी व्यवहार, चरित्र या योजनाके सम्बन्धमें विचार करता है।

३. आत्म-विश्लेषण : जिसमें मनुष्य स्वयं अपने चरित्रके

विभिन्न पक्षोंका सचेतन विश्लेषण करके स्वयं आत्म-परीक्षण करता है।

४. विचारात्मक : जिसमें मनुष्य गम्भीर चिन्तनके द्वारा किसी उद्दिष्ट विषयपर ऊहापोहके साथ विचार करता है।

५. प्रमाणबहुला : जिसमें कोई व्यक्ति अपने उद्दिष्ट भाव या विचारके समर्थनके लिये दूसरे विद्वानोंके प्रमाण उपस्थित करता है।

६. व्यंग्यात्मक : जिसमें लेखक किसी व्यक्ति, समाज, वर्ग या व्यवस्थामें दोष ढूँढ़कर उसकी खिल्ली उड़ानेका प्रयास करता है।

७. व्यास-शैली : जिनमें लेखकका लक्ष्य यह होता है कि वह किसी विशेष भाव या पद या विचारकी विस्तारसे व्याख्या करे और उसके सब पक्षोंको सप्रमाण, सयुक्ति, तर्कसङ्गत, मधुर तथा प्रभावोत्पादक ढङ्गसे समझानेका प्रयत्न करे।

८. आवेगात्मक : जिसमें लेखक आरोह-अवरोहके साथ बीच-बीचमें आलङ्कारिक प्रश्नावलीका प्रयोग करके अपने विषयको इस प्रकार उपस्थित करे कि श्रोता या पाठक तत्काल उत्तेजित हो जाय।

९. भावात्मक : जिसमें लेखकका लक्ष्य यह होता है कि वह किसी सम्बोध्य व्यक्ति या वस्तुके प्रति एक विशेष राग या विरागके साथ उसे सम्बोधन करता हुआ उसका विवेचन करता चले।

१०. उपालम्भात्मक : जिसके अन्तर्गत वे सभी विवरण आते हैं जिनमें लेखक उपालम्भके द्वारा अपना पक्ष उपस्थित करता है। ये उपालम्भ कभी तो स्नेहपूर्ण होते हैं और कभी रोषपूर्ण।

११. लोमहर्षण शैली : प्रायः अति साहसके भयानक, रोमाञ्च-कारी विवरण या कथाएँ सब इसी शैलीमें लिखी जाती हैं।

१२. क्रमिक उत्तेजन शैली : कुछ ऐसी रचनाएँ होती हैं जिनमें लेखकका लक्ष्य सहसा पाठकको उत्तेजित और उद्विग्न न करके धीरे-धीरे उत्तेजित करना होता है।

कौशल (टेकनीक)

किसी भी रचनाको आकर्षक बनानेके लिये ही कौशलका प्रयोग किया जाता है। कौशल के लिये निर्जीव वस्तुओंका वर्णन करते समय उन वस्तुओंको मूर्त्त करके अर्थात् उन्हें सजीव व्यक्ति मान लिया जाता है। ऐसी परिस्थितिमें उन्हें प्रिय या प्रेमी या उनके अन्तरमें छिपे हुए किसी पारमार्थिक तत्त्वकी सत्ता मानकर उससे संकेत, सन्देश या अन्तःप्रेरणा प्राप्त की जाती है। किन्तु जिन रचनाओंमें कथाका संयोजन होता है उनमें यह कौशल छह प्रकारसे आयोजित किया जाता है—

१. शीर्षक-कौशल : रचनाका शीर्षक या नामकरण इतना विचित्र, आकर्षक तथा अद्भुत रख दिया जाता है कि वह तत्काल हृदयको आकृष्ट कर ले। साधारणतः रचनाओंका नामकरण उस कथाके नायक या नायिका या दोनोंके सम्मिलित नामसे अथवा कथाकी मुख्य घटना या व्यापारके अनुसार किया जाता है है। जैसे—

वेणी-संहार, सुभद्रा-हरण, उरुभङ्ग आदि।

कभी-कभी नामकरणमें पात्र और विशेष घटना दोनोंका संयोग होता है। जैसे—

अभिज्ञान-शाकुन्तल, स्वप्नवासवदत्ता।

यदि किसी विशेष जाति या वर्गकी कथा हो तो उस जाति और वृत्ति दोनोंके संयोगसे नामकरण होता है। जैसे—

नाईकी करतूत, वेनिसका व्यापारी।

किन्तु अधिकांश लोग अपनी रचनाओंके लक्ष्य या परिणामके अनुसार नामकरण करते हैं। जैसे—

प्रायश्चित, बलिदान, परित्याग, आत्मोत्सर्ग।

कभी-कभी कुछ वस्तुएँ या स्थान ही रचनाके नामकरणके लिये उपयुक्त समझे जाते हैं। जैसे—

हीरेका हार, काशीका कुम्हार, साकेत, मृच्छकटिक।

किन्तु नामकरणके इन सब प्रकारोंके अतिरिक्त लाक्षणिक नाम लिखनेकी भी सुन्दर प्रणाली चल पड़ी है। जैसे—

अङ्गदका पैर, अर्थपिशाच, राक्षसका मन्दिर, देवता, प्यारके आँसू, विश्वास की राख, सतीका शाप, आगकी चिनगारी, हृदय-मन्थन, जीवित समाधि, स्वर्गमें नरक, नरककी आग, उजड़ा स्वर्ग।

अमरीका और योरपमें कुछ और भी नए ढङ्ग चले हैं जिनमें लोग वाक्यों या वाक्यांशोंमें अपनी रचनाओंका नामकरण करते हैं। जैसे—

'वायुके साथ उड़ गया' (गौन विद दी विन्ड), आओ प्रियतम ! मैं तुम्हारा हूँ, घटा छा गई, चलो दिल्ली, कश्मीर हमारा है, दुर्ग टूट गया, बोलो सखी बोलो !, जब तारे भी रोए थे, धरती काँप उठी।

ऐसे नामकरण स्नेहाविष्ट, भयानक, अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी घटनाओंके लिये अधिक उपयुक्त होते हैं। अतः नामकरण स्वयं सबसे बड़ा कौशल है जो सर्वप्रथम अपनी व्यञ्जनासे पाठकका हृदय आकृष्ट कर लेता है।

२. **इतिवृत्त-पुरुष कौशल :** साधारणतः लोग तृतीय पुरुष या अन्य पुरुषमें ही रचना करते हैं और घटनाओंका इस प्रकार वर्णन करते हैं मानो स्वयं द्रष्टा हों। ऐसी रचनाएँ इस प्रकार प्रारम्भ होती हैं—

'एक था राजा...........।'

दूसरे प्रकारका पुरुष-रूप कौशल वह होता है जिसमें अपनेको उस कथाका एक पात्र बनाकर या स्वयं अपनेको ही नायक बनाकर कथा कही जाती है। यह प्रथम पुरुष कौशल कहलाता है। ऐसी कथाएँ 'मैं' के आधारपर चलती हैं—

'मैं अपने घरमें सोया पड़ा ही था कि इतनेमें देखा कोई एक चिट्ठी डाल गया। मैं उठा...........'।

तीसरा मध्यम पुरुष-कौशल अर्थात् यह मानकर चलना होता है कि आप कथाके किसी पात्रको सामने देख रहे हैं और उसे सम्बोधित करके पूरी कथा कहते चले जा रहे हैं। इस कौशलमें बड़ी बुद्धि लगानी पड़ती है और इसका प्रयोग भी बहुत कम लोगोंने किया है। मान लीजिए आप कैकेयीको सम्बोधित करके रामायणकी कथा कह रहे हैं—

'अच्छा आप ही कैकेयी हैं? आप ही महाराजा दशरथकी वह मुँहलगी प्रियतमा हैं जिन्होंने उस कुबड़ी मन्थराके कहनेसे श्रीरामचन्द्र-

जैसे योग्य, लोकप्रिय और साधुको वनवास दिलाया? पर मैं पूछता हूँ इस सबसे आपके हाथ क्या लगा? न तो आपके पुत्र भरतने ही राजगद्दी ली और न आपको ही सुख मिल पाया। क्यों! आप सकुचा क्यों रही हैं? सम्भवतः आपके मनमें आत्म-ग्लानि होगी! पर अब आत्मग्लानि दिखानेसे होता क्या है?.........।'

रूप-कौशल

ऊपर बताया जा चुका है कि जितने रचना-रूप दिए गए हैं उन सब रूप-शैलियोंमें भी रचनाएँ की जा सकती हैं अर्थात् किसी भी प्रबन्धको इतिवृत्त और वर्णनके अतिरिक्त गद्यात्मक प्रबन्ध, उपन्यास या कहानीके रूपमें लिखते हुए उसे पत्र, संवाद, आत्मकथा, परिचय, जीवनचरित, रेखाचित्र, श्रव्य-विवरण आदि अनेकों रूपोंमें प्रस्तुत किया जा सकता है। यह भी वास्तवमें इतिवृत्त-कौशल ही है!

३. कथावस्तु-निर्वाह-कौशल : किसी भी रचनाका वास्तविक कौशल उसकी कथावस्तुके निर्वाहमें अर्थात् इस योजनामें है कि कथाकार अपनी कथावस्तुको किस प्रकारसे प्रस्तुत करता है। साधारणतः लोग क्रमिक वर्णनके अनुसार ही प्रबन्ध-रचना करते हैं, जिसे क्रमिक प्रवाह-वस्तु (रनिङ्ग प्लौट) कहते हैं। किन्तु विशिष्ट कौशलसे रचनेवाले लोग क्रमिक प्रवाहकी चिन्ता नहीं करते। इनमेंसे कुछ लोग तो बीचमें सहसा कथा तोड़कर कथा-भाग-का दूसरा अंश प्रारम्भ करके कुतूहल बनाए चलते हैं। इस प्रकारकी कथावस्तुको बाधित संविधानक (बार्ड प्लौट) कहते हैं। कुछ लोग किसी कथाको बीचसे प्रारम्भ करके फिर उससे पूर्वकी कथाको

कहीं बीचमें प्रसङ्ग लाकर जोड़ देते हैं। इसे पूर्वाभास कौशल (फ्लैश-बैक टेकनीक) कहते हैं। कुछ लोग घटनाओंको आगे-पीछे करके उन्हें ऐसा गूँथ देते हैं कि आरम्भमें तो उनका क्रम ठीक नहीं प्रतीत होता किन्तु अन्तमें चलकर सहसा कथाका उद्घाटन होने लगता है। इसे प्रतिबद्ध-वस्तु-कौशल (इन्टरलौकिंग टेकनीक) कहते हैं। कोई-कोई लेखक अपना कथानक उलटा चलाते हैं अर्थात् अन्तसे आरम्भ करके आरम्भमें अन्त करते हैं। इसे प्रतिलोम कथा-कौशल (रिवर्स-प्लौट टेकनीक) कहते हैं। कुछ लोग इस प्रकार अपनी कथा चलाते हैं कि उसमें अन्ततक कुतूहल बना रहता है और परिणाम जाननेके लिये तीव्र उत्कण्ठा बनी रहती है। ऐसी कथाओंमें क्षण-क्षणपर यह आशा बनी रहती है कि बस अब परिणाम आने ही वाला है किन्तु फिर बीचमें सहसा ऐसी बाधा उठ खड़ी होती है कि परिणाम दूर हो जाता है। इस प्रकारकी कथावस्तुमें विलम्बित कुतूहल-कौशल (सस्टेंड सस्पेन्स टेकनीक) होता है जैसे महाकवि कालिदासके अभिज्ञान-शाकुन्तलमें। कुछ कथाकार बीच-बीचमें किन्हीं मौन पात्रोंके मनमें उठनेवाली पुरानी घटनाओंका चित्र समझानेका प्रयत्न करते हैं अर्थात् इस प्रकार किसी पात्रको प्रस्तुत करते हैं मानो वह कोई प्राचीन घटना सोच रहा हो। यह घटना-स्वप्न कौशल (इन्सिडेन्ट फैंटेसी टेकनीक) कहलाता है। कुछ लोग पूरी कथा इस प्रकार कहते हैं मानो स्वप्नमें देखी हुई हो। कुछ लोग इसे स्वप्न-कौशल (ड्रीम टेकनीक) या शेखचिल्लीकी कहानियोंके

समान प्रस्तुत करते हैं। कुछ लोग अपनी कथावस्तुका आरम्भ नाटकीय कौशल (ड्रैमेटिक बिगिनिंग टेकनीक) या कथाके चरमोत्कर्षसे करते हैं। कुछ लोग कथाका अन्त इस प्रकार करते हैं कि पाठकको स्वयं उसका परिणाम निकालना पड़े। इसे अन्ध-परिणाम कौशल (ब्लाइण्ड ऐंड टेकनीक) कहते हैं। कुछ लोग जासूसी उपन्यास या आरभटी नाटकोंके समान लोमहर्षण नाट्य-कौशल (मैलौड्रामेटिक टेकनीक) का आश्रय लेकर रचना करते हैं। कुछ लोग पागल अथवा मदोन्मत्त व्यक्तिके प्रलाप-कौशल (ल्यूनेटिक टौक टेकनीक) से कथा कहते हैं। कुछ लोग इस कौशलसे कथा प्रस्तुत करते हैं कि संविधानका कुछ ज्ञान ही न हो। वे संविधानक-लोप-कौशल (प्लौटलेस प्लौट टेकनीक) का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग उद्देश्य-लोप-कौशल (मोटिव-ड्रौप टेकनीक) में उद्देश्य ही लुप्त कर देते हैं। कुछ भूतप्रेतसे वार्तालापके रूपमें भूतप्रेत-कौशल (घोस्ट टेकनीक) से कथावस्तु चलाते हैं। कुछ लोग पिछले या अगले जन्मके कथानक-कौशल (पैरा-साइकोलौजिकल टेकनीक) से कथावस्तु चलाते हैं। कुछमें शुद्ध भविष्यवाणी-कौशल (सीअर टेकनीक) का पुट होता है। कुछ लोग बीचसे कथा उठाकर पहले आगे आनेवाली कथा समाप्त कर देते हैं और फिर लौटकर बीती हुई कथा कहनेके पश्चात्पद कौशल (स्टैप-बैक टेकनीक) का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग प्रारम्भमें तो अत्यन्त सरल और शान्त ढङ्गसे कथा चलाते हैं किन्तु उसमें धीरे-धीरे इस प्रकार उत्तेजना भरते चलते हैं कि

पाठकका क्रमिक भावोत्तेजन हो। इसे क्रमिक भावोत्तेजन-कौशल (ग्रेजुअल इन्सेंटिव टेकनीक) कहते हैं। कुछ लोग एक ही कथावस्तुमें कई प्रकारके कौशलोंका संयोजन करते हैं। इसे बहुफलक-कौशल (प्रिज्मिक या मल्टीप्लेन टेकनीक) कहते हैं। कौशलोंकी यह सूची पूर्ण नहीं है। इनके अतिरिक्त भी और बहुतसे कौशलोंकी कल्पना की जा सकती है।

४. **पात्र-योजना-कौशल :** यों तो साधारणतः प्रत्येक कथा-रचनामें नायक और नायिका दोनों होते ही हैं किन्तु लोग ऐसे कौशलसे कथा-रचना करते हैं कि घटनाएँ तो नायकके आधारपर चलें किन्तु नायक लुप्त रहे। इसे नायक-लोप-कौशल (सॉ हीरो टेकनीक) कहते हैं। इसी प्रकार नायिका-लोप-कौशलका भी प्रयोग किया जाता है। पात्रोंके चित्रणमें अच्छेको अच्छा दिखाना और नीचको नीच दिखाना कोई कौशल नहीं है किन्तु किसीको नीच चित्रित करते-करते उसे सहसा उच्च या उच्चको सहसा नीच बना देना कौशल है। इसी प्रकार पात्रको परिस्थितियोंका दास बना कर चित्रित करना, नायकको सब परिस्थितियोंका स्वामी बना देना, पात्रकी दुर्बलता होनेपर भी उसीके बलपर सारी कथाका सञ्चालन करना, अनेक पात्रोंका संयोजन करके सबका अलग-अलग चरित्र स्पष्ट करना, अत्यन्त कम पात्र लेकर किसी बड़ी कथाका निर्वाह करना, अत्यन्त अधिक पात्र लेकर छोटी-सी कथा कहना, केवल एक ही वर्ग या वृत्तिके पात्र रखना, अनेक स्वभाव और वर्गोंके

पात्रोंमें समुचित समन्वय करना, ये सब पात्रनियोजन-कौशलके ही अनेक रूप हैं।

इनमें भी द्वन्द्व-योजनाके पुटसे अलग-अलग कौशल उत्पन्न किया जा सकता है। अन्तर्द्वन्द्व केवल एक ही ओर दिखाना, एक साथ बहुत लोगोंके मनमें दिखाना, या बहुतोंके मनमें एक साथ विभिन्न प्रकारके अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करना वास्तवमें कौशलकी बात है। इसी प्रकार अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व दोनोंका समाहार या केवल बाह्य द्वन्द्वको ही प्रदर्शित करके पूरी घटनाका वर्णन कर देना भी पात्र-नियोजन-कौशल ही है।

५. देश-काल-योजना-कौशल : साधारणतः कथाओंमें भूत कालका ही प्रयोग किया जाता है और प्रायः घटनाएँ किसी एक देश या प्रदेशसे सम्बद्ध होती हैं। किन्तु कौशल यह है कि एक कालमें कई देशोंका घटनाक्रम कथामें आ जाय, अथवा अनेक कालोंमें एक देशकी घटनाका क्रम चले, अथवा एक देशमें एक ही कालकी घटना हो, अथवा कई देशोंमें कई कालोंकी एक साथ घटना चले। साधारणतः लोग पृथ्वीकी ही घटनाओंका वर्णन करते हैं क्योंकि वे पृथ्वीपर ही रहते हैं। यद्यपि पुराणोंमें स्वर्ग और पातालका भी वर्णन होता है किन्तु साधारणतः प्रबन्ध-रचनाओंमें पृथ्वीकी ही घटनाओंका वर्णन होता है। किन्तु कौशल इस बातमें है कि कथामें पृथ्वी, आकाश, समुद्र तीनोंका; अथवा आकाश और समुद्रका; अथवा केवल समुद्रका; अथवा पृथ्वी और समुद्रमें व्याप्त होनेवाली घटनानोंका समाहार किया जाय। इसी प्रकार

एक ही कथामें भूत, भविष्य, वर्तमान तीनोंका समावेश करनेसे कथा अधिक रोचक और अद्भुत रसके योगसे पूर्ण होनेके कारण अधिक आकर्षक हो जाती है।

६. **लक्ष्य-कौशल :** लक्ष्यका कोई विशेष कौशल तो नहीं होता किन्तु जैसे लक्ष्यवाली कथाकी कल्पना की जा सकती है, वैसे ही बहुतसे लक्ष्योंकी कल्पना करके भी कथा लिखी जा सकती है, लक्ष्यको अन्त या परिणाममें ही प्रकट न करके बीच-बीचमें बड़े कौशलसे इस प्रकार प्रकट करके भी कथा चलाई जा सकती है कि विभिन्न स्थलोंपर विभिन्न लक्ष्य प्रकट हों और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जायँ कि उनके आधारपर लेखकका लक्ष्य, बिना बताए ही स्वयं ध्वनित हो जाय।

७. **वर्णन-कौशल :** किसी भी कथामें यद्यपि वर्णन केवल उतना ही होना चाहिए जितना आवश्यक और अनिवार्य हो और जिसके बिना कथाका प्रवाह समझनेमें कठिनाई न हो किन्तु विशेष कौशलका पुट देकर उसे भी आकर्षक बनाया जा सकता है। कथाओंमें प्रायः उन्हीं पात्रों, वस्तुओं और स्थानोंका ही चित्रण या वर्णन किया जाता है जिनका विवरण जाननेके लिये पाठक समुत्सुक हों। ये वर्णन-कौशल कई प्रकारके होते हैं—अत्यन्त सूक्ष्म विस्तृत वर्णन, जैसे चार्ल्स डिकिन्सके वर्णनोंमें; चलतेसे वर्णन, जो प्रायः अध्यायोंके प्रारम्भमें कथा-निर्वाहके लिये दे दिए जाते हैं; वे वर्णन, जो कथाकी धाराकी बीच-बीचमें परिस्थिति स्पष्ट करनेके लिये और व्यक्तिगत विशेषताएँ दिखानेके लिये प्रस्तुत किए

जाते हैं। किन्तु कौशलकी दृष्टिसे वही वर्णन समुचित कहा जा सकता है जिसमें लेखक कुतूहल-वृद्धिके लिये वर्णनका आश्रय ले और धीरे-धीरे उस वर्णनके द्वारा ही भावोत्तेजन करते-करते रसकी अभिव्यक्तिमें सहायता पहुँचावे। इस प्रकारके वर्णन वास्तवमें बड़े सहायक होते हैं। कुतूहल-वृद्धिकी दृष्टिसे वर्णन अधूरा छोड़कर वस्तु या व्यक्तिके प्रति उत्कण्ठा जागरित कराना; अनुभव-क्रमसे वस्तुका वर्णन करना, (जैसे शिशुपालवधके प्रारम्भमें नारदका वर्णन है), तुलनात्मक वर्णन अर्थात् एक ही वस्तु या स्थानकी दो दशाओंका साथ-साथ वर्णन करना (जैसे अयोध्याकी राज्यलक्ष्मीसे कालिदासने कुशके आगे अयोध्याके वैभव और विनाशका साथ-साथ वर्णन कराया है), सब कौशलकी दृष्टिसे अत्यन्त कलापूर्ण होते हैं।

३

शैलीके तत्त्व

शब्द-योजना, वाक्य-योजना, भाव-योजना और वस्तु-योजनाके विलक्षण संयोगको शैली कहते हैं। पीछे बताया जा चुका है कि भाषा-शैलीमें कुछ लोग विषयके अनुकूल कोमल श्रुतिमधुर वर्णोंका प्रयोग करते हैं, कुछ लोग अकोमल और कठोर वर्णोंका। इस शब्द-योजनाको ध्वनि-योजना (वर्ड-मैलडी) कहते हैं और यह शैलीका बाह्य तत्त्व है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखकको संज्ञा, विशेषण और क्रिया-पदके प्रयोगोंकी योजना करनी पड़ती है। यह भी पीछे बताया जा चुका है कि कुछ लोग केवल संज्ञाओंका प्रयोग करते हैं और कुछ लोग उन संज्ञाओंके साथ कभी थोड़े और कभी बहुतसे विशेषण लगा देते हैं। विशेषण लगानेसे शब्दमें चमत्कार आ जाता है, संज्ञाकी प्रकृति अधिक मनोहर और स्पष्ट हो जाती है, भाव समझनेमें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होती। किन्तु विशेषणसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण धाराबद्ध क्रिया-पदोंका प्रयोग होता है जिनके उदाहरण कादम्बरी या हर्षचरितके वर्णनोंमें बहुत प्राप्त होते हैं। उस प्रकारका एक उदाहरण लीजिए—

"उसके भालपर घुँघराली लटोंका मनोहर, रसीला, फूलके गुच्छोंसे सजा हुआ, मोतियोंसे पोहा हुआ, कई नागिनोंको गूँथकर बटा हुआ-सा और भौंरोंके झुण्डको काले डोरोंमें बाँधकर समेटा हुआ-सा जूड़ा उसकी हिम-धवल ग्रीवापर झूलकर अपने मदिर सौरभसे शीतल, मन्द, सुगन्ध बयारको सुरभि दान कर रहा था। आँखोंपर छाई हुई काली भौंहोंकी दो रेखाएँ कानोंतक फैलकर बड़ेसे बड़े धन्वीसे आत्मसमर्पण करानेके लिये पुष्पधन्वाका कार्मुक बनी हुई थी। उन कँटीली छबीली, कर्णस्पर्शी, धनुषकी कोरके समान नोकीली, सैकड़ों बर्छियों और भालोंको एक साथ परास्त कर देनेवाली भौंहोंके कठोर तथा सजग संरक्षणमें पली हुई वे अनियाली, विशाल, बड़ी-बड़ी, फैली हुई, कमल, मीन और खंजन सबको एक साथ परास्त करनेवाली, अमिय-हलाहल-मद-भरी आँखोंके कोरोंपर बिछे हुए लाल डोरों में फाँसकर वह अच्छी अच्छी आँखवालोंको अपनी ओर खींचे ले रही थी। वह मद-भरी-सी, रस-भरी-सी, मुस्कराती-सी, झेंपती-सी, ठहरती-सी, चलती-सी, लजाती-सी, गुदगुदाती-सी, छेड़ती-सी, बुलाती-सी, दुरदुराती-सी, झूमती-सी, घूमती-सी, झपटती-सी, लिपटती-सी नवेली ऐसी आगे बढ़ी चली आ रही थी कि उसके गोरे, गर्वीले, गोल, गदकारे, गुलाबी, नवीन यौवनके गोलेके समान गदेले गालोंपर उसकी बड़ी-बड़ी रतनारी आँखें झुकी और फिसली पड़ रही थीं और वे कपोल भी उन मुस्कराती हुई आँखोंको अपना स्निग्ध, कोमल और रसमय आश्रय देनेके लिये थोड़ा ऊपर खिंच गए थे। उसके मुस्कानकी प्रभाको विज्ञप्त कर देनेवाला, प्रचारित करनेवाला, ढिंढोरा पीटनेवाला, डंकेकी चोट घोषणा करनेवाला उसका सलोना, गोल, गोरा मुख, अपने दोनों रसीले, लाल पल्लवोंके समान ओठोंकी अद्भुत लालिमा लालीसे उसके दाड़िमदन्तपर कोमल लाल आभा डालकर मोहक बनाते हुए उसकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा रहा था। इन सब स्वाभाविक सौन्दर्य-

विभूतियोंको शाणपर चढ़ा रही थीं उसके कानोंमें खुँसी हुई दो कुमुदिनियाँ, गलेमें झूलता, लटकता, लहराता, झूमता, इतराता, ऐंठता हुआ बड़े बड़े गोल गजमुक्ताओंका हार, अत्यन्त भासमान चन्द्रकी किरणोंसे बुना हुआ झीना छाया-मात्र उत्तरीय, उसकी कटिमें लिपटा हुआ उसी प्रकारका प्रभामय, ज्योतिमय, आनन्दमय, चिन्मय कौषेयका अधोवस्त्र, जो उसके हाथ और गलेसे उलझता हुआ, खेलता हुआ, लिपटता हुआ, आँखोंपर परदे डाले दे रहा था, चकाचौंध किए डाल रहा था, आश्चर्यान्वित किए डाल रहा था, जिसपर गुँथी हुई झूल रही थी मन्दारके सद्यः चुने हुए मदिर—गंध सुमनोंकी कोमल मालाएँ, जिन्हें देवबालाओंने गूँथकर उसकी कोमल ब्रह्ममय, सूक्ष्म कटिका मनोहर शृंगार किया था। उसके आलक्तक-हीन स्वाभाविक रक्तिम चरणोंमें कुछ ऐसी ही सुन्दर वन्य फलियोंकी पैंजनी बँधी थी जो तनिक-सा पैर चला देनेपर सिसकारी भरकर निषादसे षड्ज-तकके अवरोहकी मूर्च्छना देती हुई, श्रोताके हृदयमें कम्प और मूर्च्छा उत्पन्न करती हुई, उसके प्राण खींचती हुई गूँज उठती थी और दाएँ पैरका उठा हुआ लाल तलवा और एड़ी एक साथ लाक्षारस, बिम्बा, पल्लव, प्रातः और सायंकी अरुणिमा तथा पाटल सबको परास्त किए डाल रही थी।''

उपर्युक्त उद्धरणमें संज्ञा, विशेषण और क्रियापद सबका ऐसा सटीक, सुन्दर, मधुर और उचित समन्वय किया गया है कि इसे पढ़कर व्यक्ति या वस्तुका चित्र तो सामने उपस्थित हो ही जाता है, साथ ही हमारी कल्पनामें जो उसका बिम्ब-चित्र बनता है वह हमारी भाव-भूमिको इस प्रकार प्रभावित और परिष्कृत करता चलता है कि हमारे आत्मामें उस सत्त्वका उद्रेक होने लगता है जो रसास्वादनका मूल आधार है। संज्ञाओंके प्रयोगमें लेखकको

विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि एक शब्दके अनेक पर्याय होते हैं, किन्तु कौन-सा पर्याय, किस विशेष अर्थमें, कहाँ प्रयोग करनेसे, क्या विशेष प्रभाव या योग्यता उत्पन्न करता है यही विचारणीय है। 'घट' शब्द 'कलश' का ही पर्याय है। इसके साधारण देशी रूप 'घड़ा, गगरा, कलसा और कलसी' हैं किन्तु इन सबमें आकार और प्रकार दोनोंका भेद है। उस भेदके अनुसार ही इन शब्दोंका प्रयोग करनेसे अधिक सरसता आ सकती है। यही बात विशेषण और क्रियापदके प्रयोगके सम्बन्धमें भी है। ये ध्वनि, संज्ञा, विशेषण और क्रियापद सब शैलीके बाह्य तत्त्व हैं।

वाक्य और महावाक्य

ध्वनि, संज्ञा, विशेषण और क्रियापदके अतिरिक्त वाक्य और महावाक्यका निर्माण भी शैलीके लिये अत्यन्त आवश्यक है। वाक्यके बिना कोई भी भाव पूरा नहीं होता। स्फोटवादियोंने भी सब शास्त्रार्थ करके अन्तमें यही माना है कि अर्थका स्फोट वाक्यसे ही होता है—

वाक्यस्फोटोतिनिष्कर्षस्तिष्ठतीति मतस्थितिः ।

[वाक्यसे ही अर्थका बोध होता है इसलिये भाषाका परम अवयव वाक्य ही है।]

कभी-कभी लोग एक शब्दसे ही वाक्यका काम चला लेते हैं जैसे किसीको सामने देखकर हम कहते हैं—'आइए।'

इसका अर्थ है—

'आप कृपाकर भीतर आइए।'

इसी प्रकार बहुत दिनोंपर किसी अपने मित्रको आए देखकर जब आप कहते हैं—'अरे आप !' तो इसका भाव है कि—

'आप बहुत दिनोंपर दिखाई पड़े हैं। यहाँ कहाँ अचानक आ गए ?'

कहनेका अर्थ यह है कि पूर्ण भाव केवल वाक्यसे ही व्यक्त होता है।

यों तो उद्देश्य और विधेय दोनोंसे युक्त रचना ही वाक्य कहलाती है किन्तु भारतीय विद्वानोंने वाक्यकी परिभाषा बताते हुए कहा है—'उस उच्चरित अथवा अनुमित पद-समूहको वाक्य कहते हैं जो आकांक्षा, योग्यता और आसत्तिसे युक्त होकर किसी अर्थ का बोध करावे।'

आकांक्षाका अर्थ है कि वाक्यके सब शब्द पढ़कर यह जाननेकी इच्छा न रहे कि किसने क्या किया। यदि हम केवल 'मोहन' शब्द कहें तो यह जाननेकी आकांक्षा बनी रह जाती है कि 'मोहनने क्या किया ?' या, 'मोहनको क्या हुआ ?' इसी प्रकार यदि हम कहें 'वंशी बजा रहा है' तो यह जाननेकी आकांक्षा रह जाती है कि 'वंशी किसने बजाई ?' अतः, वाक्यमें जो शब्द आवें उन्हें कहने या लिखनेके पश्चात् अर्थके सम्बन्धमें कुछ जाननेकी आकांक्षा नहीं रहनी चाहिए। जब हम कहते हैं—'मोहन वंशी बजा रहा है', या 'मोहनने वंशी बजाई', तब वाक्य पूरा हो जाता है, कुछ और जाननेकी आकांक्षा नहीं रहती।

वाक्यमें योग्यता भी होनी चाहिए। वाक्यके शब्द मिला देनेसे उसका अर्थ भी बुद्धिसंगत होना चाहिए। यदि हम कहें—'वह आगसे नहा रहा है' तो यह वाक्य योग्यताकी दृष्टिसे असंगत है क्योंकि कोई मनुष्य आगसे नहीं नहा सकता। किन्तु यदि कहा जाय कि 'वह जलसे नहा रहा है' तो वाक्य बुद्धि-संगत और योग्यतापूर्ण होगा। अतः वाक्यके लिये आवश्यक है कि उसका अर्थ बुद्धिसंगत हो, उसमें योग्यता हो।

वाक्यकी तीसरी आवश्यता है 'आसत्ति', अर्थात् शब्दोंका पास-पास होना। यदि हमें कहना हो—'मोहन वंशी बजा रहा है' और हम उसे इस प्रकार कहें—

मोहन—कौन, भूसा रखवा दो—कुँआँ—पानी लाओ—वंशी—आ गए ?—बजा रहा है।

—तो इस वाक्यमें 'मोहन, वंशी, बजा रहा है' तीनों शब्दोंके बीचमें न जाने और कितनी बातें आ गई। अतः, यह वाक्य नहीं बना। वाक्य तभी बन सकता है जब हम कहें—'मोहन वंशी बजा रहा है'। इसका अर्थ हुआ कि 'वही पद-समूह वाक्य हो सकता है जिसके सब पद (शब्द) आकांक्षा, योग्यता और आसत्तिसे युक्त हों।'

वाक्यके रूप और गुण

ये वाक्य तीन प्रकारके होते हैं—सरल, मिश्रित और संयुक्त। इन तीनों प्रकारके वाक्योंका विवेचन पीछे किया जा चुका है। साहित्यिक दृष्टिसे किसी वाक्यको रमणीय और प्रभावोत्पादक

बनानेके लिये उसमें चार गुण आवश्यक हैं—१. शुद्धता, २. कलात्मकता, ३. मधुरता और ४. समर्थता। शुद्धताके अन्तर्गत व्याकरणकी शुद्धताके साथ-साथ भाव या अर्थकी स्पष्टता भी आती है। स्पष्टताको ही प्रसाद गुण भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वाक्य पढ़ते ही या सुनते ही पाठक या श्रोता तत्काल लेखकका उद्दिष्ट अर्थ समझ ले। इसी गुणको गोस्वामी तुलसीदासजीने 'सरल कबित' कहकर आदृत किया है। श्रुति-मधुरताका तात्पर्य यह है कि वाक्यके शब्द कानोंको कटु न लगें, मधुर लगें। समर्थताका अर्थ यह है कि वाक्यमें सब शब्दों, सिद्धोक्तियों (मुहावरों) और वाक्य-खण्डोंका संयोजन गठा हुआ हो। वे उखड़े-उखड़े, असम्बद्ध, कृत्रिम अथवा असङ्गत न जान पड़ें।

रचनाकी दृष्टिसे वाक्य-भेद

वाक्य-रचनाकी दृष्टिसे वाक्यके तीन भेद माने गए हैं—१. संयत, २. शिथिल और ३. सन्तुलित।

संयत वाक्यके शब्द, उपवाक्य और सहायक वाक्य सब एक प्रवाहमें बँधकरसम्मिलित प्रभाव डालते हैं जैसे—

'उस समय दार्शनिकताके बदले हमारे हृदयपर भयंकर विभीषिका अधिकार जमाए बैठी थी क्योंकि चीतेको हम लोगोंकी गन्ध मिल गई थी और वह अपने आखेटोंसे तृप्त होकर उसी वृक्षका चक्कर काट रहा था जिसपर हम लोग विराजमान थे।'

शिथिल वाक्यको संयत वाक्यका ठीक विपरीत रूप समझना चाहिए। इसमें मुख्य भाग पहले ही दे दिया जाता है और पीछे आनेवाले शेष वाक्योंमें प्रवाह और ओज नहीं रहता। ऐसे वाक्योंमें

कुतूहलकी निवृत्ति प्रारम्भमें ही हो जाती है और शेष वाक्य ऐसे जान पड़ते हैं मानो भरतीके हों, जिनका कोई प्रयोजन न हो। ऐसे वाक्योंमें प्रभावोत्पादकता अभाव रहता है। उदाहरण लीजिए—

चीता उसी वृक्षका चक्कर काटने लगा जिसपर हम लोग विराजमान थे क्योंकि उसे हम लोगोंकी गन्ध मिल गई थी, इसलिये उस समय दार्शनिकताके बदले हमारे हृदयपर भयंकर विभीषिका अधिकार जमाए बैठी थी।

सन्तुलित वाक्य वह होता है जिसके वाक्य एक दूसरेपर आश्रित और एक दूसरेसे सम्बद्ध होकर प्रभावित करनेवाले होते हैं। जैसे—

ब्रह्मचर्य ही जीवन है, विलास ही मृत्यु है।

संघर्ष ही जीवन है, निश्चेष्टता ही मृत्यु है।

अतः अच्छे लेखककी रचनामें संयम और सन्तुलन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना वाक्य निर्जीव हो जाते हैं।

महावाक्य या अनुच्छेद

किसी एक भाव, विचार, वस्तु या क्रियाकी व्यवस्थित व्याख्याके लिये जो एक वाक्य-समूह बनता है उसे अनुच्छेद या महावाक्य कहते हैं। एक अनुच्छेदमें एक पूरी कथा या विषयके किसी एक अङ्ग या पक्षका एक संयत पूरा वर्णन अवश्य निहित होना चाहिए अन्यथा वह अनुच्छेद अपूर्ण और अव्यवस्थित माना जाता है। ये अनुच्छेद प्रायः दो प्रकारके होते हैं—१. सिद्धान्तारब्धी, २. परिणामान्तक। पहलेमें लेखक जिस बातका विवेचन करना चाहता है उसे अनुच्छेदके प्रारम्भमें देकर तदनन्तर उसकी

व्याख्या करता है। ऐसे अनुच्छेद सिद्धान्तारम्भी कहलाते हैं। इन्हींको वर्णनात्मक निबन्धों या कथाओंमें मुख्यार्थवाची कहते हैं। जैसे—

लज्जा नारीका आभूषण है। जिस नारीकी आँखोंमें शील नहीं, लाज नहीं, संकोच नहीं, उस नारीका कहीं आदर नहीं होता। उसे लोग कर्कशा, लड़ाकी, टर्रा तो कहते ही हैं, उसे कुलटा, पुँश्चली और छिनाल भी समझते हैं। किन्तु जो नारी अपनी आँखें ऊपर न उठने दे, किसीके आगे कभी मुँह न खोले, ठठाकर हँसे नहीं, अधिक और अनावश्यक बोले नहीं, उसके पैरोंमें सबके सिर, सबकी आँखें झुक जाती हैं।

परिणामान्तक वाक्य वे होते हैं जिनमें लेखक कुछ वर्णन या विवरण देकर अन्तमें परिणाम निकालता और वर्णनीय वस्तुका परिचय देता है। ये वाक्य परिणामवाची कहलाते हैं। ऐसे वाक्योंमें अन्ततक कुतूहल बना रहता है और संयत वाक्योंकी रचना करनेमें अधिक सुविधा होती है। जैसे—

जिस नारीकी आँखोंमें शील नहीं, लज्जा नहीं, संकोच नहीं, उस नारीका कहीं आदर नहीं होता। उसे लोग कर्कशा, लड़ाकी और टर्रा समझते हैं। किन्तु जो नारी अपनी आँखें ऊपर न उठने दे, किसीके आगे मुँह न खोले, ठठाकर हँसे नहीं, अधिक और अनावश्यक बोले नहीं, उसके पैरोंमें सबके सिर, सबकी आँखें झुक जाती हैं। अतः लज्जा ही नारीका आभूषण है।

प्रकरण, परिच्छेद अध्याय या सर्ग

प्रकरण, परिच्छेद, सर्ग या अध्याय सब समानार्थवाची शब्द हैं। ये विचारात्मक, दार्शनिक अथवा गूढ विषयोंके विभिन्न

तत्त्वोंका अलग-अलग निरूपण करनेके काममें भी आते हैं और कथाके भागोंको अलग करनेके लिये भी। अध्याय या प्रकरणका तात्पर्य यह है कि किसी एक ग्रन्थके प्रतिपादित विषय अथवा कथाका एक निर्दिष्ट और पूर्ण अंश उस प्रकरण या अध्यायमें पूरा आ जाय। प्रायः कथाओंमें कुतूहलका निर्वाह करनेके लिये किसी ऐसी घटना या प्रसङ्गपर लाकर परिच्छेद, प्रकरण या अध्याय समाप्त किया जाता है कि आगे जानने और पढ़नेकी जिज्ञासा बनी रहे। यह जिज्ञासा आगे दूसरे किसी सर्ग, प्रकरण या अध्यायमें पूरी कर दी जाती है और बीचमें अध्याय या प्रकरणका व्यवधान देकर अथवा बिना कथाका व्यवधान दिए ही नया प्रकरण चलाकर भी कथा-निर्वाह या विषय-निर्वाह किया जाता है। प्रबन्ध-काव्योंमें यही क्रिया सर्ग-रचनाके द्वारा और नाटकोंमें अंकों तथा दृश्योंकी योजनासे की जाती है। ये प्रकरण एक विशेष कौशलसे प्रारम्भ किए जा सकते हैं और एक विशेष कौशलसे ही समाप्त किए जा सकते हैं। इसका विशेष विवरण कौशलके अध्यायमें दिया जा चुका है।

४

शैलीके गुण

शैलीके गुणोंके सम्बन्धमें भारतीय और योरोपीय आचार्योंने अत्यन्त विस्तारसे विचार किया है। कुछ अंशोंमें दोनोंमें समानता भी है किन्तु तत्त्वतः दोनोंकी दृष्टि पूर्णतः भिन्न रही है। योरपमें शैलीपर जो प्रारम्भमें विचार हुआ वह भाषण-कलाकी दृष्टिसे हुआ, लेख-रचना या काव्य-रचनाकी दृष्टिसे नहीं, क्योंकि प्रारम्भमें यूनान और रोम दोनों देशोंमें श्रेष्ठ भाषण-शक्ति या भाषण-कला ही नागरिककी योग्यताका प्रमुख गुण माना जाता रहा।

विदेशी विद्वानोंका मत है कि शैलीमें दो प्रकारके गुण होते हैं—बौद्धिक और भावात्मक। उनका मत है कि शुद्धता, सरलता, स्पष्टता, अलङ्करण और औचित्य तो बौद्धिक गुण हैं क्योंकि इनका संयोजन बुद्धिपूर्वक किया जाता है। कुछ आचार्योंका मत है कि शुद्धताकी गणना बौद्धिक गुणोंमें नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसका सम्बन्ध तो व्याकरणसे है। उन लोगोंके मतसे स्पष्टता और अलङ्करण ही शैलीके दो गुण हैं। वे सरलताको स्पष्टताके अन्तर्गत ही मानते हैं। यह विचार कुछ ठीक भी है, क्योंकि जो सरल होगा

वह स्पष्ट भी होगा और जो स्पष्ट होगा वह अवश्य सरल होगा। अतः सरलता और स्पष्टता, दोनों पर्याय न होते हुए भी परस्पर इतने सम्बद्ध हैं कि इन्हें एक ही गुण समझना चाहिए, दो नहीं।

औचित्यको भी शैलीका गुण माननेवालोंका सिद्धान्त है कि 'लेखकको अपने काव्य या लेखमें शब्द, रस, अलङ्कार आदि सबका प्रयोग उचित रीतिसे और उचित अनुपातसे करना चाहिए।' क्षेमेन्द्रने औचित्यके सम्बन्धमें जो विचार किया है वही लगभग योरोपीय आचार्योंका भी मत है।

औचित्यका योरोपीय रूप

क्षेमेन्द्रने कहा है कि 'कविको काव्य-रचनामें छन्द, अलंकार, रस आदि सब विषयोंमें औचित्यका विचार करना चाहिए।' योरोपीय आचार्योंने माना है कि 'परस्पर एक दूसरेसे संबद्ध वस्तुओंका संगत होना अर्थात् अनुपात आदिकी दृष्टिसे प्रत्येक अंगका उचित स्थानपर उचित रूपसे अधिष्ठान ही औचित्य कहलाता है। किसी सम्बन्धके लिये, किसी मान्य आदर्शके आधारपर, किन्हीं संबद्ध वस्तुओंका संगत होना अर्थात् परस्पर सम्बद्ध की जानेवाली या हो जानेवाली वस्तुओंका ठीक बैठ जाना अथवा 'क्या है और क्या होना चाहिए' में ठीक मेल बैठ जाना ही औचित्य कहलाता है।' संसारमें प्रत्येक वस्तु एक दूसरेसे किसी-न-किसी प्रकारसे सम्बद्ध है। इसलिये औचित्यका विचार संसारकी प्रत्येक परीक्षणीय वस्तुमें अवश्य किया ही जाना चाहिए। इसे चाहे संगति (हार्मनी), सामंजस्य (कौंग्रूइटी) सटीकता (प्रोप्राइटी), या योग्यता

(ऐप्टनैस) कुछ भी कहें पर कलाके सिद्धान्त और सौंदर्यात्मक अनुभूतिके लिये तो इसका महत्त्व है ही।

अनुभवके आधार हम इस औचित्यके सिद्धान्तको एक प्रकारका संयोग मान सकते हैं क्योंकि जबतक किसी वस्तुके सब अङ्ग उचित रूपसे संयुक्त नहीं होते तबतक उनमें एकता या पूर्णता आ ही नहीं सकती। इसे हम यों नहीं कह सकते कि कोई वस्तु एक है इसलिये उसके सब सम्बन्ध, उसके सब अंगोंका मेल भी उचित है। औचित्यका विचार एकत्वके विचारसे कहीं अधिक विस्तृत है क्योंकि इसका प्रयोग किसी वस्तुके भीतरके सब सम्बन्धोंके परीक्षणके लिये तथा उस वस्तुका अन्य वस्तुओंसे पारस्परिक सम्बंधके परीक्षणके लिये होता है अर्थात् औचित्यमें उन सब तत्त्वोंका भी परीक्षण होता है जो किसी प्रक्रियाको सिद्ध करनेके लिये प्रयोगमें लाए जाते हैं। पूटेनहमने प्राचीन समीक्षकोंका अनुगमन करते हुए वाणीमें औचित्यकी जटिलता इस प्रकार समझाई है—"मनुष्यके कार्य और व्यापार इतनी अधिक परिस्थितियोंसे प्रभावित हैं कि भाषाका रूप भी निरन्तर परिवर्त्तित और अनेक प्रकारका होता चलता है क्योंकि हमारी वाणी कभी तो वक्ताके अनुसार ढलती है, कभी संबोध्यके अनुसार, कभी उस व्यक्तिके अनुसार जिसके विषयमें हम कहते हैं, कभी उस विषयके अनुसार जो हम कहना चाहते हैं, और कभी-कभी तो देश, काल और उद्देश्यके अनुसार भी रूप ग्रहण करती है। इस प्रकार औचित्यकी सीमाका निर्णय

करना सापेक्ष्य और विशिष्ट परिस्थितियोंकी इन समस्याओंसे जटिल हो गया है। बाह्य दृष्टिसे यदि हम औचित्यका मान निर्धारित करें तो दो बातें आती हैं—१. प्रकृति या स्वभाव और २. रूढि या परिपाटी। रूढिके द्वारा जो औचित्यके मान स्थिर किए गए हैं वे तभीतक निर्विवाद रहते हैं जबतक वह परंपरा बनी रहती है। जहाँ कहीं प्रकृति और रूढिमें अन्तर पड़ा कि स्वाभाविकके बदले लोग रूढिको ही स्वीकार करने लगते हैं।' 'तशरीफ रखिए!' एक रूढ वाक्य है, इसके बदले उर्दूकी औपचारिक भाषामें कोई दूसरा प्रयोग नहीं होता है। इसीलिये बेकनने कहा है कि 'लोक-परिपाटीने जो प्रयोग निश्चय कर दिया है वह अच्छा भले ही न हो, पर उचित वही है।'

औचित्यका स्वाभाविक मान क्या हो यह निश्चित करना अत्यंत कठिन है। किसी एक विशेष और निश्चित कलात्मक रचनामें औचित्यका मान क्या हो इस बातका निश्चय तो प्रायः उसका उद्देश्य ही कर देता है। किन्तु कभी-कभी ये उद्देश्य स्वयं इतने जटिल हो सकते हैं कि कलात्मक रचनाओंका ठीक मूल्यांकन करनेमें बाह्य पूर्णता प्रायः प्रासंगिक-मात्र रह जाती है। ऐसी रचनाओंमें उनकी आन्तरिक बनावट और उनके संबद्ध तत्त्वोंकी संगति तथा प्रत्यक्ष सामंजस्य होनेके साथ-साथ किसी प्रकारका कोई ऐसा विरोध या द्वंद्व भी नहीं होना चाहिए जिसका समाधान न हो सके। फिर भी यह कहना कठिन ही है कि औचित्यकी सीमा इसमें पूर्ण रूपसे स्पष्ट कर दी गई है। कलात्मक और नैतिक

मूल्यांकनमें प्रायः किसी विशेष गुणका निर्धारण होता है और वह विशेष गुण अकेला, अप्रतिम होता है, इसलिये उसका निर्णय करनेमें कोई गुर या सूत्र नहीं लगाना पड़ता, यद्यपि उसे समझानेके लिये कोई गुर निकाल अवश्य लिया जा सकता है।

कलात्मक तथा साहित्यिक सिद्धान्तोंके संबन्धमें पूर्वी और पश्चिमी सभी देशोंमें औचित्यपर निरन्तर विचार होता रहा है। यूनानमें संभवतः संगीतके सिद्धान्तसे इसका श्रीगणेश हुआ। वहाँसे वह भाषण-शास्त्रमें पहुँच गया जहाँ सर्वप्रथम व्यावहारिक सिद्धान्तके रूपमें औचित्यके भाव (तो प्रेपोन) का प्रयोग अरस्तूने अपने काव्य-शास्त्रमें किया और जिसके प्रभावशाली शिष्य थियोफ्रास्तसने शैलीके गुणोंमें उसका सन्निवेश कर लिया। स्थितप्रज्ञतावादी स्तोइकोंने इस औचित्यका प्रयोग जब अपने नैतिक शिक्षणमें प्रारम्भ किया तब उन्हींके प्रभावसे साहित्यमें भी यह सिद्धान्त प्रयुक्त होने लगा। हैलिकारनैससके दिअनूसिअसने कहा है कि 'किसी लेखके जिस भागमें औचित्य नहीं होता वह पूर्णतः भले ही न असफल हो किन्तु उसका मुख्य भाग अवश्य असफल हो जाता है।' सिसरो, हौरेस, क्विन्तीलियन, दाँते आदि सभी आचार्योंने इस औचित्यका महत्त्व माना है। इँगलैण्डमें भी पूटेनहम, सिडनी और जौन्सनने इसीकी आवृत्ति की है। ड्राइडनने 'लेखन-कौशलको विचारों और शब्दोंका औचित्य' ही माना है। वह कहता है कि 'विचारोंका औचित्य वह कल्पना है जो विषयमेंसे स्वभावतः उत्पन्न होती है और

शब्दोंका औचित्य वह विचारोंका अलंकरण है जो स्वाभाविक शब्दावली या सूक्ति-द्वारा उचित रूपसे प्रयोग किया गया हो। इन्हीं दोनोंके विवेकपूर्ण संयोगसे कविताका आनंद उत्पन्न होता है।' अठारहवीं शताब्दिमें संभवतः जौन्सनने इसी विचारको अधिक स्पष्ट करके समझाया था और स्वैरवादी आलोचकोंने इसीकी पुनर्व्याख्या करते हुए प्राचीन समीक्षकोंके रूढ प्रयोगका महत्त्व माननेके बदले प्रकृतिको ही आदर्शका स्रोत मान लिया था।

कुछ लोगोंका मत है कि बौद्धिक गुणोंके अतिरिक्त शैलीमें भावात्मक गुण भी होते हैं जिनके अन्तर्गत दो बातें आती हैं—१. मर्मस्पर्शिता, अर्थात् कानमें पड़ते ही लेखककी भावनाओंके साथ तत्काल श्रोता तन्मय हो उठे, और २. सजीवता, अर्थात् जो भी लिखा जाय उसे पढ़कर वर्णित दृश्य या विवरण साकार हो उठे, उसका बिम्ब-चित्र कल्पनाकी आँखोंके सम्मुख उपस्थित हो जाय। अतः, वर्णन जितना ही सजीव होगा उतना ही वह बिम्ब-चित्रका अधिकाधिक प्रभावशाली रूप प्रस्तुत कर सकेगा।

योरपके कुछ आचार्योंने कहा है कि 'लेखककी शैलीसे पढ़नेवालेके मस्तिष्क या हृदयपर जो प्रभाव पड़ता है उसे गुण कहते हैं।' इस आधारपर उन्होंने कहा है कि 'कोई भी रचना व्याकरणसे शुद्ध तो होनी ही चाहिए किन्तु इसके अतिरिक्त उसमें स्पष्टता (पर्स्पिकुइटी), सजीवता (विवैसिटी), लालित्य (ऐलिगैन्स), उल्लास (ऐनीमेशन) और श्रुतिमाधुर्य (म्यूज़िक),

ये पाँच गुण अवश्य होने ही चाहिएँ।' स्पष्टताका अर्थ तो स्पष्ट ही है कि 'पढ़ते ही उसका अर्थ समझने और उसका भाव हृदयंगम करनेमें किसी प्रकारकी कोई कठिनाई न हो।' सजीवताकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। लालित्यका अर्थ यह है कि ऐसे शीलयुक्त वर्णों और शब्दोंका संयोजन हो कि किसी प्रकारके अभद्र या फूहड़ वाक्यविन्यासके कारण सुरुचिमें बाधा न पड़े। उल्लासका अर्थ है वह ओज, जो पाठकके मनमें वाणीके प्रभावके कारण आगे पढ़ते जानेको उत्साहित करता रहे। श्रुति-माधुर्यका अर्थ है कि रचनामें ऐसा नाद-सौंदर्य भी विद्यमान रहे कि उसे पढ़कर कान भी तृप्त होते चलें। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक रचनामें संक्रमण-शीलता (कौम्यूनिकेबिलिटी) अर्थात् भावको पाठक-तक पहुँचानेकी, उसे प्रभावित करनेकी शक्ति होनी चाहिए।

मिन्टोने कहा है कि शैलीमें ये गुण होने ही चाहिएँ : सरलता (सिम्प्लिसिटी), स्वच्छता (क्लीयरेन्स), प्रभावोत्पादकता (स्ट्रैन्थ), मर्मस्पर्शिता, (पैथौस), सुसंगति (हार्मनी) और श्रुति-माधुर्य (मैलडी)।

यद्यपि योरोपीय आचार्योंने काव्यमें इतने गुणोंका सन्निवेश तो कर दिया किन्तु यह ध्यान नहीं दिया कि सब प्रकारकी रचनाओंमें सब प्रकारके गुणोंका सन्निवेश नहीं किया जा सकता। यदि हमें कई अभिनन्दन-पत्र देना हो तो उसमें हम ऐसी अत्यन्त अलंकृत भाषाका प्रयोग कर सकते हैं जिसका अर्थ पूर्ण रूपसे शब्दशः किसीके समझमें न आवे क्योंकि उसका उद्देश्य तो किसी व्यक्ति-

विशेषकी प्रशंसा मात्र करना होता है और वह केवल एक दिनके लिये, एक क्षणके लिये ही केवल किसी व्यक्तिकी अतिशयोक्ति और अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसाके रूपमें रहता है। उसका उद्देश्य भी यह नहीं होता कि श्रोता उसका एक-एकशब्दार्थ समझता भी जाय। ऐसी परिस्थितिमें दुरूह, अतिलाक्षणिक और अत्यलंकृत शैलीका भी प्रयोग किया जा सकता है।

उपर्युक्त गुणोंमें सरलताका अर्थ तो स्पष्ट ही है। स्वच्छताका तात्पर्य है इस प्रकार वाक्य रचना करना कि कोई बात छिपी न रह जाय।

निम्नाङ्कित वाक्यमें 'स्वच्छता' नहीं है—

जो वह कहना चाहता था वह उसके हृदयमें उसके रूपको ठीक नहीं ला रही थी।

इस वाक्यका स्वच्छ रूप लीजिए—

वह जो बात कहना चाहता था वह उसके हृदयमें ठीक-ठीक आ नहीं पा रही थी।

प्रभावोत्पादकताके लिये वाक्योंका परस्पर-सम्बद्ध मार्मिक आरोह आवश्यक होता है। जैसे—

'प्रयागके वकीलोंमें इतने आगेतक बढ़कर भी मालवीयजी क्यों लौट आए? पीछेसे उन्हें कोई पुकार रहा था—बड़े दर्दसे कराह-कराह-कर। मालवीयजी हाथमें आई हुई अपनी सोनेकी दुनिया छोड़कर उस पुकारपर लौट पड़े। तपस्वी ब्राह्मण! कितना अधिक तेरा त्याग है! जिस कोलाहलमें लोग रुपएकी खनखनाहट और स्वार्थपूर्ण चाटुकारीके अतिरिक्त कुछ नहीं सुन पाते, उसीमें तुमने बेचारी लुटी हुई, कसी हुई

माँकी क्षीण पुकार सुन ली और पागलके समान सोनेके ढेरपर लात मारकर दौड़ पड़े उसी पुकारपर, वैसे ही जैसे द्रौपदीकी पुकारपर दौड़ पड़े थे कृष्ण। जिस समय लक्ष्मी द्वार खोलकर, आरती और फूल-माला लिए तुम्हारा स्वागत करनेको खड़ी थी उसी समय द्वार-पर पहुँचते-पहुँचते तुमने भारत माताकी करुणा-भरी धीमी कराह सुनी और वहाँसे लौट पड़े—भिखमंगेके वेषमें, झोली हाथमें लिए हुए और सारे देशने एक स्वरमें पुकारकर तुम्हारा अभिनंदन किया—

फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलिया भर दो।

शिष्टका अर्थ यह है कि 'कहीं भी कोई ऐसा वाक्य, शब्द या ध्वनि न आ जाय जिसमें किसी फूहड़पन, गँवारपन या असामाजिकता की गन्ध हो अर्थात् उसमें कहीं भी अश्लीलता नहीं होनी चाहिए। भारतीय साहित्यशास्त्रोंने अश्लीलता और ग्राम्यत्यको दोष माना है। जिन पदों या वाक्योंको सुनकर शिष्ट समाज लज्जा और घृणासे सिर झुका ले या अमंगलकी आशंकासे भयभीत हो जाय अथवा फूहड़ समझे वे अशिष्ट कहलाते हैं। भारतीय साहित्यकारोंने अश्लीलताकी व्याख्या करते हुए कहा है—

सभ्य-वशीकरणसम्पत्तिः श्रीः तां लाति गृह्णातीति श्लीलम् (श्रीलम्) न श्लीलमित्यश्लीलम्।

—काव्यप्रकाश वामनी टीका, पृष्ठ ३१०

[सभ्य लोगोंको वशमें करनेकी शोभा, अलङ्करण या संयोजनको ही श्री कहते हैं। वह शोभा जिसमें हो उसे श्लील कहते हैं और जिसमें वह शोभा न हो अर्थात् जिसे सुनकर सभ्य लोग नाक-भौं सिकोड़ें, उसे अश्लील कहते हैं।]

लय या संगीतात्मकताका अर्थ तो स्पष्ट ही है अर्थात् शब्द-योजना ऐसी होनी चाहिए कि उसके वर्ण सुनकर प्रतीत हो मानो संगीतकी ध्वनि आ रही हो, जैसे—

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि।
कहत लखन-सन राम हृदय गुनि॥

यह संगीतात्मकता शब्दोंमें तो होती ही है, किन्तु वाक्योंमें भी होती है।

कुछ लोगोंने निबन्ध, आलोचना आदिकी शैलीमें विनोद (ह्यूमर) या हास (लुडिक्रस) को भी आवश्यक गुण माना है। उन्होंने इस हासके दो भेद माने हैं—१. संयत हास (ह्यूमर) और २. उपहास (विट)। संयत हासमें तो हासका पुट संयत और अल्प मात्रामें रहता है किन्तु उपहास (विट) में व्यंग्य अधिक छिपा रहता है।

भारतीय अलंकार-शास्त्रियोंने तो शोक, उत्साह आदिके समान हासको भी एक स्थायी भाव माना है और फिर सब प्रकारक रचनाओंमें हास हो भी तो नहीं सकता। इसलिये उसे शैलीका गुण न कहकर उसका प्रभाव मात्र मानना ही ठीक होगा।

विनोदका तात्पर्य मनोरंजन करना होता है, किसीपर छींटे कसना, किसीकी चुटकियाँ लेना या खिल्ली उड़ाना नहीं। यह वृत्ति ही अत्यन्त निन्द्य वृत्ति है और जब हम काव्यका उद्देश्य ही कान्तासम्मित उपदेश देना मानते हैं तब तो इस प्रकारका कटु व्यंग्य और भी अधिक उपेक्षणीय हो जाता है।

योरपमें जिस प्रकारके सेटायर (व्यंग्य-काव्य) लिखे गए, वैसे हमारे यहाँ नहीं लिखे गए क्योंकि हमारे यहाँ तो काव्यका उद्देश्य ही उपदेश और लोकहित था। अतः केवल मनोरंजक और लोककी निन्द्य तथा असंगत रूढ़ियोंपर व्यंग्य करनेके लिये ही विनोदपूर्ण शैलीका नियोजन और प्रयोग करना चाहिए। यह एक प्रकारकी भावशैली है इसलिये भावशैलीके प्रसंगमें ही उसका विवेचन कर दिया गया है। भारतीय दृष्टिसे शैलीके गुणोंका विवेचन पीछे किया जा चुका है।

१

तद्भवनिष्ठ भाषा-शैली

सरल तद्भवनिष्ठ भाषामें सरल वाक्य

सरल शब्दका अर्थ है साधारण या प्रचलित शब्द अर्थात् वह शब्द जो व्यापक रूपसे किसी एक शिष्ट लोकभाषाके क्षेत्रमें बोला जाता हो। इसके अन्तर्गत किसी प्रदेशमें विशेष प्रचलित अथवा ग्रामीण तथा अशिष्ट शब्द नहीं आते। सरल वाक्य वह है जिसमें एक ही क्रिया हो। आख्यायिका, छोटे वर्णन, बच्चोंकी कहानियाँ, दादी-नानी आदिकी कहानियाँ या परियोंकी कहानियाँ इसी शैलीमें लिखनी चाहिए कि एक भी तत्सम शब्द न आवे, कहीं भी कोई लाक्षणिक या व्यंग्य प्रयोग न हों और सब वाक्य एक क्रियावाले हों। जैसे—

सारस और लोमड़ी

एक जंगलमें एक सारस रहता था। उसी जंगलमें एक लोमड़ी भी रहती थी। दोनोंमें बड़ा मेल था। एक दिन लोमड़ीने सारससे

कहा—'सारस भाई! कल सबेरे तुम मेरे यहाँ खाना खाने आ जाना।' सारसने मान लिया।

सारस अगले दिन सबेरे लोमड़ीके यहाँ पहुँच गया। लोमड़ीने एक थालीमें खीर परसकर रख दी। सारसको देखकर वह बोली—'सारस भाई! खीर परसी धरी है।' सारस कैसे खीर खाता? उसकी चोंचमें तो चावलके एक-दो दाने आ पाते थे। पर लोमड़ी सब खीर सड़प गई।

सारसने भी लोमड़ीसे कहा—'बहन! कल हमारे यहाँ खाना खाने आना।' लोमड़ी मान गई। वह अगले दिन सारसके यहाँ पहुँची। सारसने एक सुराहीमें चने डालकर रख दिए थे। भला लोमड़ी कैसे खा पाती। सुराहीके पतलेसे मुँहमें चोंच डाल-डालकर सारस चने खाने लगा। उसकी चोंचसे गिरे हुए दो-चार दाने ही लोमड़ीको मिल पाए। वह भूखी रह गई।

प्रायः छोटे बच्चोंकी पाठ्यपुस्तकोंमें जिस प्रकारकी कहानियाँ होनी चाहिएँ उसके लिखित और कथित दोनों रूपोंके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

मेंढक और बैल

[लिखित कहानी]

एक दिन एक छोटेसे मेंढकने अपने बापसे कहा—'दादा! मैंने एक बहुत बड़ा वह देखा है। वह पहाड़ जैसा ऊँचा है। उसके सिरपर दो सींगें हैं। उसके चार पैर हैं। उसकी पीठके पीछे एक पूँछ है।'

बूढ़ा मेंढक बोला—'वह तो भग्गल किसानका बैल है। वह तो कुछ भी बड़ा नहीं है। मैं भी उतना बड़ा बन सकता हूँ।'

यह कहकर उसने साँस फुलाई और पूछा—'इतना बड़ा था?' मेंढकका बच्चा बोला—'नहीं'। बूढ़े मेंढकने फिर साँस फुलाकर पूछा—'इतना बड़ा था?' बच्चे मेंढकने सिर हिलाकर कहा—'नहीं'। बूढ़ा मेंढक

आईं। पर मुटर्रे कहता रहा—दद्दा! वह बहुत बड़ा था। टर्रेखाँने और साँस खींची—हुँः। पर मुटर्रे यही कहता रहा—दद्दा! वह बहुत बड़ा था। इस बार टर्रेखाँ झुँझलाए और पूरे झोंकसे साँस जो खींची तो आँखें बाहर निकल आईं, पेट कुप्पा बन गया। मुटर्रेखाँने कहा—टर्रे टर्रे, अभी नहीं हुआ। फट्ट! टर्रेखाँ का पेट फट गया। बेचारे टर्रे खाँ बड़े बनते-बनते यहाँसे चल बसे। जो छोटा होनेपर भी बड़ा बनने चलता है उसकी ऐसी ही बुरी होती है। समझे!

कथाएँ

इस सरल शैलीमें बच्चोंके लिये अच्छी कथाएँ और जीवन-चरित भी दिए जा सकते हैं। यह उपमन्युकी कथा लीजिए—

उपमन्यु

बहुत दिन हुए एक गुरुजी थे। वे जंगलमें नदीके तीरपर कुटिया बनाकर रहते थे। उनके यहाँ सैकड़ों बच्चे दूर-दूरसे पढ़ने आते थे। उन्हें वे खाना-कपड़ा भी देते थे। इन्हीं बच्चोंमें एक उपमन्यु भी था।

एक दिन गुरुजीने उपमन्युको बुलाकर कहा—'देखो बेटा! तुम तड़के-तड़के उठकर गौओंको जंगलमें हाँक ले जाया करो। दिनभर चराकर साँझको तुम उन्हें लौटा लाया करो।'

उस दिनसे वह दिनभर गौएँ चराया करता। साँझ होनेपर वह उन्हें लौटा लाता था।

एक दिन गुरुजीने उपमन्युसे पूछा—'क्यों बेटा! तुम आजकल कुछ मोटे क्यों दिखाई पड़ रहे हो?'

वह बोला—'गुरुजी! मैं दिनमें माँग लाता हूँ। उसीसे पेट भर लेता हूँ।'

गुरुजी बोले—'नहीं बेटा! बिन गुरुजीको दिए एक दाना भी मुँहमें नहीं डालना चाहिए।'

उस दिनसे वह माँगकर लाया हुआ, सब गुरुजीके आगे धर देता। गुरुजी उसमेंसे एक दाना भी उपमन्युको न देते।

एक दिन फिर गुरुजीने पूछा—'क्यों बेटा! तुम आजकल क्या खाते हो?'

उपमन्यु बोला—'गुरुजी! मैं एक बार माँगकर आपको दे देता हूँ। दूसरी बार माँगकर अपने आप खा-पी लेता हूँ।'

गुरुजी बोले—'राम राम! दो बार नहीं माँगना चाहिए।'

उपमन्युने बात मान ली। वह फिर वैसे ही गौएँ चराता रहा। गुरुजीने देखा कि उपमन्यु अब भी वैसा ही मोटा है। उन्होंने पूछा—'क्यों बेटा उपमन्यु! आजकल क्या खा रहे हो?'

उपमन्यु बोला—'गुरुजी! अब तो मैं गौओंके दूधसे ही पेट भर लेता हूँ।'

गुरुजीने कहा—'राम राम! बिना पूछे तुम्हें गौओंका दूध नहीं पीना चाहिए। आजसे मत पीना।'

उपमन्युने गुरुजीकी यह बात भी मान ली। वह फिर वैसे ही गौएँ चराने लगा।

अब भी उपमन्युका मोटापा कम नहीं हुआ था। उन्होंने फिर पूछा—'क्यों बेटा! अब तुम अपना पेट कैसे भरते हो?'

वह बोला—'गुरुजी! दूध पीते हुए बछड़े फेन गिराते रहते हैं। वही पीकर पेट भर लेता हूँ।'

गुरुजी बोले—'राम राम! तुम्हें देखकर बछड़े बहुतसा फेन गिरा देते होंगे। उनका पेट भी पूरा नहीं भरता होगा। उन्हें भूखा रखकर अपना पेट भरना ठीक नहीं है।'

अब खाना-पीना न मिलनेसे उसे भूख लग आई। पर गुरुजीकी बात वह नहीं टाल सकता था। एक दिन भूखके मारे उसने आकके पत्ते चबा लिए। वह अन्धा हो गया। जंगलमें भटकते-भटकते वह कुएँमें जा गिरा।

दिन-छिपे तक भी उपमन्यु लौटकर नहीं आया। गुरुजी जंगलमें पहुँचकर उसका नाम ले-लेकर पुकारने लगे—'उपमन्यु! उपमन्यु! कहाँ हो बेटा?'

कुएँमें पड़े हुए उपमन्युने चिल्लाकर कहा—'मैं यहाँ कुएँमें गिरा पड़ा हूँ गुरुजी!'

उसकी बोली सुनकर गुरुजी कुएँके पास पहुँचे और झाँककर पूछने लगे—'क्यों बेटा! तुम कुएँमें कैसे गिर गए?'

वह बोला—'भूखके मारे मैंने आकके पत्ते चबा लिए थे। इसीसे अन्धा होकर कुएँमें गिर पड़ा।'

गुरुजीने कहा—'अच्छा, तुम हाथ जोड़कर अश्विनीकुमारोंको पुकारो। वे आकर तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।'

उपमन्युने हाथ जोड़कर अश्विनीकुमारोंको पुकारा। वे चट दौड़े चले आए। उसे देखकर वे बोले—'लो, यह पूआ खा लो। तुम्हारी आँखें ठीक हो जायँगी।'

उपमन्यु बोला—'बिना गुरुजीको दिए मैं पूआ नहीं खा सकता।'

यह सुनकर अश्विनीकुमार बोले—'तुम अपने गुरुजीका कहना मानते हो। तुम बड़े अच्छे लड़के हो। अब तुम्हारे दाँत सोनेके हो जायँगे। तुम्हारी आँखें ठीक हो जायँगी। अब तुम्हें कभी किसी बातकी कोई कमी न रहेगी।'

इतना कहते ही उपमन्युकी आँखें खुल गईं। वह कुएँसे बाहर निकलकर झट गुरुजीके पैरोंपर जा गिरा। गुरुजी बोले—'आओ

बेटा! तुम्हारा सदा भला हो। जो कुछ मुझे आता है वह सबका सब तुम्हें आ जाय।'

वर्णन

तद्भवनिष्ठ किन्तु सरल भाषा-शैलीमें केवल बच्चोंकी कहानियाँ ही नहीं वरन् सजीव, मनोहर वर्णन भी लिखे जा सकते हैं। यह दृश्य और इस दृश्यके पात्रोंके सूक्ष्म वर्णनका रस लीजिए—

हमीदा और सलीम

यह लाहौर नगरके शालीमार बाग़की रंगीन फुलवारी है, जिसके बीचोंबीच सङ्गमरमर और लाल पत्थरके बँधे घाटोंमें बहती हुई नन्हीं-सी नहर, फूलोंकी हँसीमें बसी हुई ठंडी बयारकी थपकियोंके सहारे धीमे-धीमे लहराती चली जा रही है। इसके बीच-बीचमें बने हुए चौड़े, अठपहले कुण्डोंमें खिले हुए लाल और नीले कमल, इसकी चमकमें चार चाँद लगा रहे हैं। इस नहरके बहावकी ओर ढलते हुए झरनेकी भीतपर जो सैकड़ों नन्हें-नन्हें गोखोंवाली झिलमिली बनी है, उसमें साँझको तेलके दीवे जगाकर सजा रखिए तो उसपर ढलकर गिरती हुई पानीकी चादरके पीछे अनगिनत लौ नचाती हुई जल-दीवालीकी ऐसी झाँकी खड़ी हो जाय मानो पीछे कोई आगकी परी झूमर नाच रही हो। इस नहरके दोनों ओर मोरपङ्खीके कटे-छँटे झाड़ों और लहरिया कटावमें सजी नीलकंठीकी बाड़ोंके बीच दूबकी समथल हरियालीमें गुलाबके फूलोंसे हँसती हुई क्यारियाँ ऐसी लुभावनी लग रही हैं कि अच्छे-अच्छे पत्थर भी उसकी झाँकी पा लें तो पानी बनकर बह चलें। इसी नहरके दाईं ओर गुलाबकी क्यारियोंके पास ही एक पाँतमें बँधी हरसिंगारकी फूली हुई घनी झाड़ियाँ अपने रसीले, भीनी महकवाले फूलोंके ढेरके-ढेर अपने तले बिछाकर और अपनी हिलती हुई डालियोंमें सजाकर मुसकराती और ललचाती हुई खड़ी झूम रही हैं।

ऐं ! यह कौन नवेली है जो बाएँ हाथमें गुलाबके फूलोंसे भरी बेंतकी पिटारी लटकाए, पंजोंके बल खड़ी होकर, हाथसे हरसिंगारके झाड़ हिला-हिलाकर, ऊपर बरसते हुए फूलोंकी फुलझड़ीमें निराली मस्तीके साथ खिलखिलाती, बल खाती अठखेलियाँ कर रही है। इसके पैरोंमें नागरेकी लाल जूतियाँ, कमरसे उलझा हुआ चमकीला हरा सलवार, गोरी देहसे लिपटा-चिपटा घुटनोंतक लटकता हुआ आबरेवाँका बूटेदार शलूका और उसपर कसी हुई रुपहले सितारों-जड़ी कुर्त्ती किसी भी अनजानकी जान लेनेका कम सामान नहीं है। उसके गलेमें पड़े हुए धानी रंगके पल्लूके दोनों आँचल बयारके साथ दोनों कन्धोंपर झूलते हुए ऐसे लहरा रहे हैं कि उन्हें सँभालनेके लिये झलक उठनेवाली मेंहदीसे रँगी उसकी पतली, गोरी, चिकनी उँगलियोंके साथ उनमें फँसी हुई बहुत-सी अँगूठियाँ भी चमक-चमक उठती हैं। इसी लपक-झपकमें उसके कानोंमें उलझी हुई बहुत-सी बालियोंके तले फँसा हुआ चाँदीका झूमका भी झम-झम झमक उठता है। उसने गलेमें भी कुछ पहन रक्खा है, जिसकी काली रेशमी डोरी और लाल घुंडी, चोटीके तलेसे सरककर पीठपर झूली पड़ रही है।

अपनी चाल-ढाल और पहनावेसे तो यह बाँदी जान पड़ती है पर धरती चूमनेवाली उसकी लम्बी चोटी, कपड़ोंके बीचसे झलक उठने वाला उसका कुन्दन रंग और उसके गलेसे अचानक फूट उठनेवाली सुरीली तान यह बता रही है कि वह देखनेमें भी चटकीली, लुभावनी और मनभावनी होगी। उसके गीतसे ऐसा लगता है कि वह किसी भौंरेकी बाट देख रही है। सुनिए, वह सोहनी गा रही है—

"मैं गुल होती तो भौंरे भी गुन-गुन कर आते ललचाते"

वह देखिए ! अभी गीत चल ही रहा है कि यह दूसरी ओरसे कोई गोरा पट्ठा चला आ रहा है जिसकी चौड़ी छाती, भरे हुए गाल, भीगी हुई मसें, पानकी लालीसे रँगी हुई मीठी मुसकान, प्यारसे झँपी हुई

बड़ी-बड़ी आँखें, पीठके पीछे घूमा हुआ बायाँ हाथ, दाएँ हाथमें अभीकी तोड़ी हुई लाल गुलाबकी छड़ी और चिकनके जामेमें फूटकर झलक उठनेवाला गोरा बदन बता रहा है कि यह कोई राजकुमार है, जो जवानीकी गोदमें रमा हुआ मस्तीसे फूलोंका रस लेता चलता है। यही सलीम है, शाहंशाह अकबर और जोधाबाईका बेटा, जिसे मुकुट पहनकर आगरे और दिल्लीका राज चलाना है।

अपने सुरीले गलेकी तानसे फुलवारीमें जवानी भरनेवाली उस नवेलीने झटकेसे अब इस ओर सिर घुमा लिया है। देखिए तो सही। बिना काजलके कजरारे और कानोंतक खिंचे हुए, उसके रसीले, मदभरे नैन हँसकर खिल उठे हैं। गुलाबकी पंखड़ीको चुनौती देनेवाले उसके लाल पतले ओठ फैलकर खुल गए हैं। उसकी बिजली-भरी मुस्कानमें कुन्दकी कली-जैसे दूधिए दाँतोंकी चमकदार पाँतें इस झमकके साथ दमक उठी हैं मानो किसीको एक साथ पुकारकर बुला रही हों। देखिए! अब वह इधर घूमी है। इस घूमनेमें उसके पैर, कमर, हाथ और सिर जिस लहरेके साथ हिले, चले और थिरके हैं, वे पत्थरको भी मोम बनाकर गला सकते हैं। गोरे भरे हुए गालोंवाले उसके लम्बे मुखड़ेने, ललचाई आँखोंने, रसभरे ओठोंने, गलेके हार और हुमेलको ऊँचा उठा रखनेवाली उसकी गोल गदीली चोलीने उसे इतना प्यारा, लुभावना और चटकीला बना दिया है कि अच्छे-बड़े फ़क़ीर भी अपने जनम-भरकी कमाई उसके पैरोंपर लुटाकर 'हाय' करके लोट जायँ। इसकी माँ ईरान और बाप क़न्दहारके हैं इसलिये इसके मुखड़ेकी बनावटमें ईरान और क़न्दहार दोनोंका बड़ा सच्चा मेल है। देखिए! वह आगे बढ़ रही है। अपने बाएँ पैरपर जब वह ठुमक देकर चलने लगती है तो उसकी पतली कमर एक अनोखी झोंकसे झूल जाती है और यह डर लगने लगता है कि कहीं धरती न काँप उठे, तारोंमें टक्कर न होने लगे! पर, उसके चुलबुलेपनमें इतना छिछोरपन भी भरा है

कि उससे जी तो बहलाया जा सकता है, उसे प्यार नहीं किया जा सकता।

क्या सलीम इस बाँदीकी ही ताक-झाँकमें खड़ा है ? हाँ। बाँदीके साथ राजकुमारीकी यह चुहल देखकर आप चौंकिए मत ! बचपनमें जिन बच्चोंकी ठीक देख-भाल नहीं होती और जिनके चारों ओर रात-दिन लुभावने, सलोने, सुनहरे फन्दे बिछे रहते हैं, उन्हें फँसते देर कितनी लगती है ! सलीम भी लाड़-प्यारमें पला है। सबका मुँहलगा है। उसे बाँदियोंसे छेड़-छाड़ करते देखकर आपको अचम्भा नहीं करना चाहिए। ['अनारकली' नाटकसे]

भावपूर्ण कहानियाँ

इस शैलीमें बच्चोंकी कहानियाँ और वर्णन ही नहीं वरन् ऐसी गंभीर भावपूर्ण कहानियाँ भी लिखी जा सकती हैं जिनमें वर्णन और कथा दोनों साथ-साथ हाथ बाँधकर चलते हैं। केवल अन्तर इतना ही होता है इसी शैलीमें वाक्योंका विन्यास सरलके बदले मिश्र हो जाता है। मिश्र वाक्यका अर्थ यह है कि कई प्रकारके परस्पर संबद्ध वाक्योंका मिश्रण हो। कुछ बड़े पाठकोंके लिये तथा अधिक वर्णनात्मक और कथात्मक विषयोंके लिये इस प्रकारकी भाषा-शैली सदा उपयुक्त होती है। जिन लोगोंकी धारणा है कि साधारण तद्भवनिष्ठ शैलीमें अधिक गंभीर विषयों तथा कथाओंका समावेश नहीं हो सकता उनका भ्रम निम्नांकित कथासे पूर्णतः दूर हो जायगा—

मानव

टीलेकी ऊँची रेतीली चोटीपर चढ़कर जो मैंने चारों ओर आँखें दौड़ाईं तो देखता क्या हूँ कि दूरपर धरती-अकासके मिलनकी

झिलमिलीपर अटपट फैली हुई हरियालीकी झुरमुटमें अपनी लाल खपरैलपर पच्छिमकी गोदमें ढलते हुए सूरजकी पिछली धूप-छाँह भरी किरनें लहराता हुआ, एक सुहावना-सा, लुभावना-सा, नन्हाँ-सा झोंपड़ा उस साँझकी ललाईमें हँसता, मुस्कराता और ललचाता-सा चमक रहा है। मेरे साथ मेरी घरनी चलते-चलते थककर चूर हो चली थी। उसकी साँस फूलने लगी थी और वह रह-रहकर पूछती जा रही थी—'अभी और कितना चलना है?'

अभीतक जो अपनी कोठरीसे आँगन-तकको ही सारी धरती समझे हुए थी, भूलकर भी दस पग एक साँसमें कभी नहीं चली थी, उसे यह कोस भरका पैंड़ा पहाड़ हो चला था। फिर भी मैं उसे फुसलाता, बहलाता, झूठमूठ ढाढ़स बँधाता, चुटकुलों और कहानियोंकी भूल-भुलैयामें उलझाता अभीतक चला आ रहा था। पर अब उसके धीरजका बाँध टूट चुका था। बहलाने-फुसलानेके सब फन्दे ढीले पड़ चुके थे। इसीलिये टीलेपर चढ़कर मैं देख लेना चाहता था कि कहीं आस-पास अँधेरे पाखकी काली रात काटनेको कोई ठौर मिल पावेगी भी या नहीं।

उस झोंपड़ीको देखकर मेरे जीमें जी आया। मैंने उँगली-साधकर उसे दिखाया—'वह देखो! पेड़ोंकी आड़में चमकता हुआ लाल झोंपड़ा! बस, वहींतक तो चलना है। दस डग मारे और पहुँचे!'

छबीली साँझकी झेंप-सी लजाकर, मुँदे और झुके हुए कमल-सी अलसा और झुककर वह वैसे ही मन ही मन भुनभुनाने लगी जैसे दिन-ढले कमलकी गोदमें बँधे हुए भौंरे गुनगुनाया करते हैं। उसके पैर पत्थर हो चुके थे। वह आगे बढ़ना नहीं चाहती थी। पर देखते-देखते अचानक पच्छिमकी ललाईपर गहरा पीलापन छाने लगा और सूरजकी छिपती हुई किरनोंपर धुँधली पीली चादरका ऐसा तनाव तना कि उसे और मुझे दोनोंको यह जान पड़ने लगा कि आँधी आने-वाली है और कौन जाने उसके साथ पानी भी हो!

हम दोनों झटपट उस रेतीले टीलेसे नीचे उतर आए और अपने बँधे हुए पैरोंमें पहिए बाँधकर लम्बे-लम्बे डग बढ़ाते हुए उस झोंपड़ीकी सीधमें लपक चले। पर आँधी सौ-गुने झोंकसे बढ़ी चली आ रही थी। आँधीमें पेड़ और छप्पर दोनों वैरी हो जाते हैं। कौन जाने किस झोंकमें कोई मोटी डाल टूटकर या छानी उड़कर नीचे बैठे लोगोंको पीस डाले। इसी डरसे हम लोग आँधीकी झोंकमें जड़तक काँप उठनेवाले पेड़ोंसे बचते निकलते, डग बढ़ाते चले जा रहे थे। उड़ते हुए रेतके कनकों और तिनकोंके मारे बटिया नहीं सुझाई देती थी। आँधी कहती जा रही थी—'पीछे हटो'। हम डटे हुए थे—'नहीं! आगे बढ़ेंगे।'

पर आँधी इतनेसे माननेवाली न थी! वह अपने साथ काले पनियल बादलोंके झुण्डके झुण्ड घेरे चली आ रही थी। वे अपनी बान-सी बूँदें बरसा-बरसाकर गरजने ही तो लगे। फिर भी हम दोनों डरे नहीं, घबराए नहीं, हारे नहीं, चलते ही रहे। पर जब पानी धुआँधार बरसने लगा, बिजलियाँ कड़ककर पहाड़ोंकी चोटी और धरतीकी छाती फाड़ने लगीं और मेरी घरनी भीगकर, थककर, ठोकर खाकर गिर पड़ी, तब मेरा बोझ बढ़ गया। मैंने उसे उठाकर कन्धेपर लादा। आध घण्टे उस आँधी-पानीसे लड़ता, कंटीले, पथरीले, ऊबड़-खाबड़ ऊँचे-खालेको लाँघता, ज्यों-त्यों करके रामराम करता मैं उस झोंपड़ीतक पहुँच पाया।

वहाँ पहुँचकर मैंने उसे झोंपड़ीकी बाहरी मड़ैयामें लिटा दिया और सोचने लगा कि कोई मिले तो कपड़े बदलनेकी जुगत लगे। पर अभी पानीका तार नहीं टूट रहा था। आँधी भी थमनेका नाम नहीं ले रही थी और चौवाईके मारे चारों ओरसे पिछवाड़ मार रही थी। ज्यों ही मैं कुंडी खटखटानेके लिये आगे बढ़ा त्यों ही मेरे कानमें कुछ लोगोंकी बतकहीकी भनक पड़ी। उस बातचीतमें अपना नाम सुनकर तो मानो मुझे काठ मार गया। जिन लोगोंके चंगुलसे बच-

निकलनेके लिये मैंने यह टेढ़ी बटिया पकड़ी थी, वे यहाँ पहलेसे ही आ धमके हैं !

पर अब दूसरा चारा ही क्या था ? अब तो ओखलीमें सिर दे दिया था। अब मूसलोंका क्या डर था। कुंडी खटखटानेमें यह भी खटका था कि कहीं पकड़ न लिया जाऊँ। मैंने अपनी घरवालीको देखा, उसकी नाड़ी टटोली। वह अपनी सुध-बुध खोकर लकड़ी बनी पड़ी थी। मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ा ही था कि इतनेमें किवाड़ भड़भड़ाए और एक लम्बा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा जवान उसमेंसे निकल ही तो आया।

उसने कड़ककर पूछा—'कौन है ?' मैंने धीरेसे, जहाँतक बन सका, अपनी बोली बदलते हुए कहा—'हम बटोही हैं। आँधी-पानीमें यहाँ आ बैठे हैं। मेरे साथ मेरी घरवाली है। यह भीग गई है। इसे जूड़ी चढ़ आई है है, तन जल रहा है।'

मेरे सिरपर टोप देखकर वह समझा कोई भलेमानुस हैं। उसने झट पासकी कोठरीका कुंडा खोला और कहा—'आप लोग इसमें आ जाइए। बाहर पिछवाड़ मार रही है।'

मैंने अपनी घरवालीको उठाकर उस कोठरीमें जा लिटाया। पर मेरा जी अभीतक धुक-धुक कर रहा था कि कहीं पहचान न लिया जाऊँ। ज्यों ही हम भीतर आए त्यों ही उसने दियासलाई जगाई। उसकी धुँधली पीली लौमें भी उसने मेरा मुँह देखते ही पहचान लिया और झट बढ़कर मेरा गट्टा पकड़ ही तो लिया—'तुम !'

यह वही थानेदार था जो पिछले दो बरससे मुझे ढूँढ़नेके लिये धरती-अकास एक किए हुए था। मुझे ढूँढ़नेवालेको सरकारकी ओरसे भारी थैली मिलनेवाली थी क्योंकि मैं उन लोगोंका मुखिया समझा जाता था जो उन दिनों अँगरेज़ी सरकार उलटनेका बीड़ा उठाए हुए थे।

मैं खड़ा हो गया। उसके दाहिने हाथमें जलती हुई दियासलाईकी लौमें ही मैंने छाती तानकर कहा—'हाँ! मैं हूँ।'

दियासलाई बुझ गई पर उसी अँधेरेमें मैं कहता रहा—'तुम मुझे जहाँ चाहो ले चलो, पर तुमसे एक भीख माँगता हूँ।'

मेरा हाथ पकड़े ही पकड़े वह बोला—'क्या?'

मैं कह रहा था—'मेरे दुख-सुखमें साथ देनेवाली मेरी घरवाली यहाँ अचेत पड़ी है। इसे मेरे घर पहुँचवा देना और जब यह आँख खोले तब इससे धीरेसे कह देना कि दो बरसतक बचता-घूमता हुआ भी तुम्हें बचानेके फेरमें मैं पकड़ा गया। इतना करोगे?'

उसी अँधेरेमें मुझे ऐसा जान पड़ा कि जिन लोहेकी उँगलियोंसे वह मेरा हाथ कसे हुए था, वे ढीली पड़ रही हैं और एक झटकेके साथ मेरा हाथ छूट गया है।

उसके मुँहसे इतनी ही बात सुनाई दी—'तुम इस बिपदामें न होते तो मैं तुम्हें अभी पकड़कर ले जाता और कल ही सरकार मुझे पैसा भी देती और मैं कहीं ऊँचे चढ़ाकर भेज भी देती। पर इस घड़ी मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ। जबतक हम लोग चले न जायँ तबतक इस कोठरीसे बाहर पैर न धरना।'

राम-राम करते तीन घंटेमें आँधी ठंडी पड़ी। वे लोग भी निकलकर न जाने किस ओर चले गए। पासके गाँववालोंको जगाकर मैंने अपनी बिपदा सुनाई। उन्होंने दूध, कपड़े और तापनेके लिये तपनी दी। गाँवकी बहुत-सी बूढ़ी माताएँ आकर मेरी घरनीकी देखभाल करने लगीं।

तीन महीने पीछे जब मेरी घरवाली अच्छी हो गई, मैं अकेला उस थानेदारके घर अचानक रातको पहुँचा। मुझे देखते ही वह अवाक् रह गया—'तुम!'

मैं बोला—'अब मेरी घरवाली अच्छी हो गई है। उस दिन

आपने मुझे छोड़कर जो दया दिखाई थी उसका बोझ मैं सँभाल नहीं पा रहा हूँ। आप मुझे पकड़ लीजिए। आपको पैसा भी मिलेगा और गद्दी भी !'

वह खड़ा हो गया। उसने थोड़ी देरतक मेरी आँखोंमें आँखें डालकर घूरकर देखा और फिर मेरे दोनों कन्धोंपर अपने हाथ रखकर बोला— 'मैं नहीं जानता था कि तुम इतने सच्चे कुन्दन हो। पैसा और ऊँची गद्दी दोनों मुझे नहीं चाहिए। तुम हथेलीपर जान लेकर अपनी माँकी बेड़ी काटनेमें लगे हो। मैं पेटके लिये, पैसेके लिये, ऊँची गद्दीके लिये, अपनी माँका दूध लजा रहा हूँ। पर अभी इतना नहीं गिर पाया हूँ कि माँके सच्चे लालके लहूसे हथेली रँगकर फाग खेलूँ। जाओ, धीरेसे निकल जाओ। अब यहाँ आनेका नाम न लेना।

मैं मन ही मन चुपचाप यह सोचता चला आया कि इन गए-बीते दिनोंमें भी क्या इतना भले लोग बचे रह गए हैं ?

व्यंग्यात्मक कहानी

इसी सरल तद्भवात्मिका भाषाकी सिद्धोक्तिपूर्ण (मुहावरेदार) शैलीमें यह व्यंग्यात्मक कहानी लीजिए—

सैयाँ भए कोतवाल

मातादीन शुक्लजी उन गिने-चुने लोगोंमेंसे अकेले बच रहे हैं जो आज भी लखनऊकी नवाबीको बड़ी सच्ची लगनके साथ जिलाए चले जा रहे हैं। जब वे तोले भरकी सुनहरी कामदार जूतियोंपर रेशमी चूड़ीदार पाजामा, बूटेदार चिकनकी अचकन और पाव तोलेकी नोकदार चुनी हुई दुपलिया डाटकर, हाथमें गंगा-जमनी मूठकी चन्दनकी लहरिया छड़ी लेकर निकल पड़ते हैं तब आप भला कह तो दीजिए कि ये नवाब वाजिदअली शाहके छोटे भाई नहीं हैं। उनका रंग वह गोरा-चिट्टा कि हाथ धो दें तो दूध बन जाय, मुँहकी ढलन वह साँचेदार

कि कहीं परियाँ झलक भर पा लें तो आपसमें जूझ मरें, गज्झिन टेई हुई मूँछें वह सजावदार कि नीबू काटकर रख दीजिए तो टँगे रह जायँ, कजरारी आँखें वह चुम्बक-भरी कि पहाड़की ओर घूम जायँ तो वह पूराका पूरा खिंचा चला आवे, पतली नोकदार नाक इतनी गमकीली कि सौ-सौ महकवाले फूल कपड़ेमें लपेटकर सुँघा दीजिए तो एक-एक फूल नाम गिना दें, छोटे-छोटे पैर इतने छुई-मुई कि चार पग नंगे पैर चलना पड़ जाय तो तलवे लहू उगलने लगें, महीनों पैरकी गदेलियाँ सेंकनी पड़ जाँय, मूलीका छिलका दिखाई पड़ जाय तो नाकके दोनों नथने दुनली बनकर 'आकूछीं' की गोलियाँ दनादन छोड़ने लगें, हुक्केकी घड़घड़ाहट कानमें पड़ जाय तो पखवाड़ों सिर भिन्नाता रहे, मिर्चका नाम सुन लें तो जीभ झन्ना उठे, जाड़ेमें ठंडा पानी दिखाई पड़ जाय तो बिना कस्तूरीकी डली मुँहमें डाले कँपकँपी न जाय, नींद ऐसी फरहट कि मक्खी छींक दे तो हड़बड़ाकर उछल खड़े हों और चाल वह जनवासेकी कि बताशे बिछा दीजिए तो फूटनेका नाम न लें।

उनके लिये बनारसी मगही पान महीनों गुलाब जलमें बसाकर खसकी बिलहरोंमें रक्खे रहते हैं और जब लगाए जाते हैं तो गिन-गिनकर उनकी नसें निकाल दी जाती हैं कि कहीं गलेमें खरोंच न डाल दें। मैनपुरीकी बारीक कतरी हुई छालियाँ महीनों दूधमें भिगोकर इतनी पुलपुली कर दी जाती हैं कि कहीं दाँतोंके बीच पड़कर मसूड़े न छू दें। लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री, सौंफ, केसर और कपूर कूट-पीस और कपड़-छन करके इतने भुरभुरे बनाकर पानमें डाले जाते हैं कि बस उनकी महक-भर मुहमें घुलती रहे। बसन्त-पंचमीसे ही जो वे खसकी रावटीमें घुसकर केवड़े-जलकी फुहारोंके तले बैठते हैं तो तभी निकलते हैं जब सावनकी फुहारें जलती हुई धरतीका जी ठंडा करने लगती हैं।

कई पीढ़ियोंसे नवाबोंके साथ उठते-बैठते रहनेसे उनका भोला मन

इतना मोम बन गया है कि किसीने सपनेमें भी उनका रूठना-बिगड़ना न देखा। कभी किसीपर बहुत खीझे भी तो ओठोंकी मुस्कराहटने बात पलट दी। उनका हाथ इतना खुला है कि कोई जान माँगने आवे तो छाती चीरकर उसके हाथपर रख दें। जहाँ बड़े-बड़े लखपती एक टका गाँठसे निकालनेमें माथेपर सौ-सौ बल देते हैं वहाँ वे अशरफ़ी लुटानेपर भी इस झेंपसे लाल हुए रहते हैं कि कहीं कम तो नहीं दिया गया। बड़े बापके बेटे होनेसे पढ़े-लिखे तो वे तेरह-बाइस ही हैं, पर पारखी एक काँटेके हैं। न जाने कितने गवैये उनके यहाँ महीनों रहकर ठंढाई छानते और ठुमरियाँ अलापते हैं। पर यह नहीं है कि उनमेंसे कोई शुक्लजीके आगे भैरवीका अलापमें चढ़ी रिखभ लगा दे। उनका कान इतना सधा है कि जहाँ किसीने उलटा सुर लगाया कि उनके कान खड़े हुए और उन्होंने झट टोंक दिया। अच्छे-अच्छे गवैये भी बहुत सोच-समझकर उनके आगे गला खोलते है। इन सब बातोंका जो सीधा फल होता है वही हुआ कि धीरे-धीरे शुक्लजीकी जागीरके नामपर एक अमराई और एक कोठी भर बची रह गई।

न जाने क्यों शुक्लजी मुझे बहुत मानते थे। जब कभी उनके यहाँ दो-चार तुक्कड़ या गवैयोंका जमावड़ा होता तो मैं भी वाह-वाहमें सुर मिलानेके लिये बुला लिया जाता। पर इतनेपर भी उनके किसी काममें कोई टाँग नहीं अड़ा सकता था। इसलिये सब कुछ देखते-सुनते हुए भी मेरा यह हियाव न हुआ कि उन्हें समझा-बुझाकर उन चंडूलोंसे छुटकारा दिलाऊँ जो आँखका अन्धा और गाँठका पूरा असामी मिल जानेपर हाँमें हाँ मिलाकर, ठकुरसुहाती कह-कहकर शुक्लजीको दूहते जा रहे थे, अपना उल्लू सीधा करते जा रहे थे।

एक दिन अचानक मैंने जो सुना कि शुक्लजी अपनी कोठी निकालनेके फेरमें हैं और लाखोंका माल कौड़ियोंके मोल जा रहा है

तो मुझसे न रहा गया। मैंने ठान लिया कि चाहे जो भी हो, मैं शुक्लजीकी कोठी नहीं जाने दूँगा। उसी दिन साँझको मैं धड़धड़ाता हुआ जा ही तो पहुँचा शुक्लजीके पास। वे उसी घड़ी ब्यालू करके अपनी नई बारहदरीमें बैठे बयार ले रहे थे। रम-रमी हो चुकनेपर मैंने बड़ी-लम्बी चौड़ी उठानके साथ बात छेड़ दी—

'भगवान्‌की दयासे आपको कमी किस बातकी है। सैकड़ों घर तो आपकी जूठनपर पलते रहते हैं। फिर आपके मनमें यह कोठी निकालनेकी बात आ कैसे गई?'

शुक्लजीका खिला हुआ मुँह अचानक लाल हुआ, पीला पड़ा, मुरझा गया। उन्होंने पास खड़े हुए नौकरको पान मँगवानेके बहाने टाला और कहने लगे—'पण्डितजी! आपसे क्या छिपाना है? इधर दो बरससे यह पासा पलटा है कि लक्ष्मी आती तो दिखाई नहीं देती पर जा ऐसे रही है जैसे बरसाती नदी। पढ़े-लिखे भी ऐसे नहीं है कोई ब्यौपार-धन्धा ही सँभाल लें। आजतक मैं बाप-दादोंकी साख निबाहता आ रहा हूँ। जो यहाँ झाँकने भी चला आया उसकी अंजली भरकर बिदाई की। दूसरोंके आगे हाथ फैलानेसे पहले पत्थर बाँधकर गोमतीमें कूद पड़ना अच्छा समझता हूँ। सोच रहा हूँ कोठी निकाल दूँ तो लाख-डेढ़ लाख मुट्ठीमें आ जायगा। बीस-तीस हज़ार लगाकर अमराईमें नए ढंगका बँगलका खड़ा कर लूँगा। कहनेको भी होगा कि बँगलेमें रहने लगे हैं।'

मैंने टोककर कहा—'कोठी निकालनेकी बात आप मनसे निकाल दीजिए। जहाँ यह बात चार कानोंमें पड़ी कि दस हँसनेवाले आ खड़े होंगे। आँसू पोंछनेवाला एक भी माईका लाल न दिखाई देगा। आपको बुरा न लगे तो मैं कोई ऐसी सरकारी गद्दी दिलानेका जुगाड़ करूँ कि कोठी भी रह जाय, नाँवँ-गाँवँ भी बना रहे और यहाँके दस बड़े लोग आपके पैर भी चूमें, पीछे-पीछे पूँछ भी हिलावें।'

शुक्लजी मान गए। मैं रात-भर इसी उधेड़बुनमें करवटें बदलता रहा पर कोई भी डौल सूझ न पाया। तड़के उठकर फाटककी कुण्डी खोलते ही देखता क्या हूँ कि मेरे लँगोटिया यार बख्तावरलाल सामने खड़े हैं। डूबतेको नाव ही नहीं, जहाज मिल गया।

आकाशके नीले तनावके तले बख्तावरलालको भला कौन नहीं जानता होगा। राष्ट्रपतिसे लेकर राशनपतिके चपरासीतकसे उनकी दाँतकाटी रोटी है। देशका कोई ऐसा नेता नहीं जो उनका लँगोटिया यार न हो, जिसके साथ उन्होंने कबड्डी न खेली हो, चौपड़ न बिछाई हो, ताश न जमाया हो, चर्खा न काता हो और जेल न काटी हो। रोटी बनानेसे लेकर मशीनगन चलाने-तकका काम वे जानते हैं, और पहुँच यहाँ तक है कि कहिए तो दिनमें तारे तोड़ ला रक्खें। पाप और पुन्यको वे डरपोक लोगोंके मनबहलावका टिटिम्भा मानते हैं। कोई उन्हें लाख बुरा-भला कहे, वे बुरा नहीं मानते। लाज-संकोच सब घोलकर पी गए हैं। चोरी और गठकटीको हाथ की लाग मानते हैं और चंट ऐसे कि कहिए तो सुईकी नाक से ऊँट निकाल दें। यों तो उनसे सभी दो हाथ दूर रहना चाहते थे पर किसीमें हियाव इतना नहीं था कि उन्हें कह दे या कहला दे कि आप यहाँ न आया कीजिए। जैसे खोटे ग्रहों को लोग जप और दानसे फुसलाए रहते हैं वैसे ही उन्हें भी लोग इस डरसे मनाए रखते थे कि न जाने कब किसके लिये वे क्या टंटा खड़ा कर दें। वे अपनेको चित्रगुप्तका अवतार बताते हैं कि 'सबके कर्मों-का लेखा तो मैं रखता हूँ, मेरा कोई क्या करेगा ? कहीं मेरे पीछे सरग-नरकके किसी मुन्शीने मेरे खातेमें कुछ उलटा-सीधा चढ़ा भी लिया होगा तो मैं बहीको बत्ती दिखा दूँगा, पन्ने-पन्ने चीरकर बैतरणी में बहा दूँगा।

पर बख्तावरलालमें एक बात बड़ी काँटे की थी। एक बार वे किसीका हाथ पकड़ते तो उसके लिये मर मिटते और जिससे एक

बार ठन जाती उसकी ईंटसे ईंट बजा देते। मेरे लिये तो इस घड़ी वे ध्रुवके विष्णु और भगीरथके ब्रह्मा बनकर आए। मेरे माथेपर खिंची हुई नई सलवटें देखते ही बोले—क्यों भाईजान! क्या बात है? ये माथेपर लकीरें क्यों? यह मुँह लटकाए क्यों दिखाई दे रहे हो? क्या मियाँ-बीबीमें कुछ खटपट हो गई है? अरे मियाँ! जहाँ दो भाँडे होंगे वहाँ तो ठनठन होगी ही। उसके लिये मनमें गाँठें क्यों डाली जायँ? मुँह क्यों फुलाया जाय? यहाँ देखो, दिनरात दूसरोंके बोझ सिरपर लादे, पैरोंमें सनीचर बाँधे, फिरकी बने घूमते रहते हैं पर भला माथेपर एक भी सलवट पड़ तो जाय। बतीसी चमकाए रहते हैं। मन हरा रखते हैं। अच्छे बड़े काइयाँ घाघ भी भाँप नहीं सकते कि चित्रगुप्तकी सारी बहियाँ मेरे कन्धोंपर लदी है और सूरजके चारों ओर फेरी देनेवाली इस धरतीकी सारी झौंझौं मेरे माथेमें फेरी दे रही है। हाँ, तो बता जाओ कि तुम्हारा नारियल-जैसा मुँह छुहारा क्यों बन चला है?

जब मैंने कुछ टाल-मटोल की तो तड़ाकसे बोले—मियाँ! हमसे न उड़ो। दाईके आगे पेट नहीं छिपाया जाता? यहाँ उड़ती चिड़िया पहचानते हैं। चकमा किसी औरको देना। सच-सच बताओ क्या बात है?

मैंने शुक्लजीका नाम तो नहीं बताया पर बातें सब समझा दीं। बख्तावरलाल बोले—बस इतनी-सी बातपर कंडे हुए जा रहे हो। यह तो बाएँ हाथका खेल है। चुटकियोंमें ठीक किए देता हूँ। हाँ, पर यह तो बताओ कि असामी ठस है या ठनठनगोपाल।

मैंने बता दिया कि असामी ठस है। काम पड़नेपर दो-चार सौ खट भी सकता है।

बख्तावरलालके लिये इतना लासा बहुत था। चाय-वाय पीकर उठते हुए बोले—देखो भाई! जजमान हाथसे न निकलने पावे। उसे सँभाले रखना तुम्हारा काम है। फिर अचानक बैठकर पूछने लगे—कहो देखने सुननेमें कैसे हैं?

मैं : लाखोंमें एक हैं ।

वे : अरे लाखमें एक तो काना भी होता है? मैं पूछता हूँ कुछ लम्बे-चौड़े गोरे-चिट्टे भी हैं या काले भुसंड चिकड़ू खाँ है कि देखते ही जी मिचलने लगे ।

मैं : आप जी मिचलनेकी बात कहते हैं? फ़रिश्ते उनके तलवे देख लें तो उनके आगे पानी भरें ।

वे : अच्छा तो चलता हूँ, साँठगाँठ बैठाता हूँ । दिया जले-तक आकर सब डौल समझा जाऊँगा । हाँ, उन्हें समझा देना कि मुट्ठी खुली रक्खें । ऐसा न हो कि सन्-संवत घिसकर पैसा निकालें और काम पड़नेपर खीसें निकालने लगें ।

मैं : नहीं, यह आप मुझपर छोड़िए ।

बख्तावरलाल बाहर जाकर फिर लौट आए और इस ढङ्गसे आँखें चमकाकर बोले मानो कोई नया मंत्र जगा लिया हो—उनके यहाँ ले चल सकते हो?

मैं : चलो ।

मैंने कुर्त्ता गलेमें डाला, टोपी सिरपर जमाई और चल दिया ।

शुक्लजीकी कोठीपर पहुँचे तो देखा दस चंडूल बैठे हाँमें हाँ मिला रहे हैं, बेपरकी उड़ा रहे हैं । हम लोगोंको देखते ही शुक्लजीने अपनी भोली मनहर मुस्कानके साथ अपनी बोलीमें मिश्री घोलते हुए कहा—आइए पण्डितजी! चलिए भीतर चलकर बैठा जाय । उनके साथ बैठे हुए चपरगट्टुओंने समझ लिया कि अब टसकना चाहिए । वे सब रमरमी करके चलते बने । भीतर पहुँचकर पहले तो बख्तावर-लालसे जान-पहचान कराई गई । फिर गहरा जलपान हुआ और इतनी देरमें बख्तावरलालने अपनी लच्छेदार गलचौरसे शुक्लजीपर वह रङ्ग जमाया कि मैं मिट्टीका माधो बना चुपचाप बैठा सुनता रहा? बख्तावरलाल पूछते जाते थे, शुक्लजी बताते जाते थे—

'तो आप सत्याग्रह-वत्याग्रहके झमेलेमें तो कभी पड़े नहीं होंगे।'

'जी नहीं।'

'आपके कोई सगे-सम्बन्धी कभी जेल जा चुके हैं?'

'जी हाँ, मेरे साले छह महीने जेल काट आए हैं।'

'क्या सत्याग्रहमें गए थे?'

'जी नहीं, एक मारपीटके झगड़ेमें फँस गए थे।'

'वह भी सत्याग्रह ही था। मैं जानता हूँ न! तो अब वे हैं कहाँ!'

'अभी कुछ ही दिन हुए चल बसे।'

'क्या जेलमें!'

'नहीं, घर पर ही।'

'क्या हो गया था?'

'कुछ पेटमें गड़बड़ी हो गई थी।'

'जी हाँ, जेलका खाना ही ऐसा पहलवानी होता है कि हाथी जाय तो भेड़ बनकर निकले।'

'पर उन्होंने तो जेलसे लौटनेके बरसों पीछे खाट पकड़ी।'

'आप जानते नहीं हैं। वहाँ ऐसे लोगोंको अमील नाइट्रेट दिया जाता है जो धीरे-धीरे देहमें बिस घोलता रहता है। और फिर अचानक ऐसा धर दबोचता है कि अच्छा हट्टा-कट्टा पट्टा भी घण्टे भरमें टें बोल जाय, पानी-तक न माँगे।'

'हाँ, यह हो सकता है।'

'हो सकता नहीं, यही बात ही है। कहिए तो आपको दो-चार सौ नाम गिना दूँ जो जेलसे तो लौटे पहलवान बनकर पर अचानक जो पेट पकड़ा तो फिर उठ न पाए। हाँ, तो वे रहते आपके साथ ही थे?'

'जी नहीं! वे अपने घर रहते थे सुल्तानपुरमें।'

'पर वे जब जेल गए तब तो आपके ही यहाँ थे न!'

'जी नहीं। पकड़े तो अपने घरसे गए थे पर यहींके जेलमें थे।'

'ठीक है, ठीक है।'

'अँगरेजी तो आप फर्राटेकी बोल ही लेते होंगे!'

'जी नहीं, थोड़ी-बहुत नागरी जानता हूँ।'

'कोई बात नहीं।'

फिर कोठीमें टँगे हुए झाड़-फ़ानूस देखकर बख्तावरलाल बोल उठे—'वाह! आपकी कोठी क्या है इन्दर-सभा है। नवाबोंकी कोठियाँ भी इसके आगे झख मारें।'

मुझे भी कुछ बोलास लगी—'यह तो सब इधरका है। पुरानी बारहदरी देखते तो जी झक्क हो जाता।'

बख्तावरलाल : वह सब क्या हुआ?

मैं : 'कुछ तो निकाल दिया गया, कुछ टूट-फूट गया।'

बख्तावरलाल : चलिए देखा तो जाय।

वहाँ पहुँचे तो एक बड़ी कोठी, बड़े-बड़े झाड़-फानूसोंसे लदी, जिसमें गंगा-जमनी कामके हाथीदाँतके पलँग, चौकियाँ, और न जाने क्या-क्या अटर-सटर टूटा-फूटा एकपर एक लदा हुआ इतना था कि उन्हें चौकमें लाकर रखवा दिया जाय तो बातकी बातमें लाख रुपए खड़े हो जायँ। एक कोनेमें कुछ कागज और कपड़े भी जले पड़े थे। बख्तावरलालने पूछा—'क्यों पण्डितजी! यह आग कब लगी?'

'लाहौरसे एक मौलाना आ ठहरे थे, उन्हींकी चिलमसे लगी थी।'

'आप बड़े भोले हैं। कहीं मौलानाकी चिलमसे आग लगती है। यह सब सरकारी जासूसोंकी करनी है।'

हम लोग लौट पड़े। चलते समय शुक्लजीने एक दुशाला बख्तावरलालके कन्धेपर डाला और १०१) की थैली उनके हाथपर धरी। ब्राह्मण न होते हुए भी बख्तावरलाल ब्राह्मणोंके छह कामोंमेंसे एक काम

बराबर करते रहे और वह यही कि जिस ढङ्गसे, जहाँसे, जो भी मिले उसे लेनेमें 'नहीं' करके दाताका जी नहीं दुखाते थे। बीचमें उन्होंने मुझसे इतना ही कहा—'यह तो पक्के राजनीतिक पीड़ित (पोलिटिकल सफ़रर) हैं। इन्हें तो मैं यों (चुटकी बजाकर) कुर्सीपर बैठा दूँगा।'

अभी संझा फूली भी नहीं थी कि बख्तावरलालने मेरी कुंडी आ खटखटाई और बोले—लो हाथ मिलाओ और मिठाई खिलाओ। वह फन्दा डाला है कि बस पौ बारह। पाँच हजार मेहनताना दिलाना होगा।

मैं : पर सुनूँ भी तो क्या बात है।

'शुक्लजीसे कह दीजिएगा कि अगले मङ्गलको पच्चीस थालियाँ सजवा लें। सब मन्त्रियोंको पकड़े लिए आ रहा हूँ। न्यौता छपवाने और बँटवानेका काम मुझपर छोड़ दें।'

'ठीक है।'

उधर बख्तावरलाल गए इधर मैं भी सिरपर पैर धरे शुक्लजीके यहाँ दौड़ गया और उन्हें सब समाचार सुना आया। बातकी बातमें एक बासेवालेको भोजका, शामियानेवालेको मण्डप बाँधनेका और शहनाईवालोंको नौबतका बयाना दे दिया गया।

मंगलको तड़के ही शुक्लजीके यहाँ वह चहल-पहल दिखाई देने लगी मानो दशरथके घर राम जनमे हों। साँझ होते-होते जहाँ घंटेपर छह चोटें पड़ी कि देखते-देखते बगलोंके पंख-सी उजली टोपियोंमें सब मंत्री लोग सरकारी भोंभों-गाड़ियोंपर आ धमके। बड़ी आवभगत हुई। केवड़ा और गुलाबजल बरसने लगा। फुलेलके फाहे घूमने लगे। लखनवी नन्हीं-नन्हीं कटोरियोंसे भरे हुए चाँदीके थालोंमें जो-जो परोस कर लाया गया उसकी गंधसे ही बहुत सी उजली टोपियोंके तले ठीक नाकसे नीचे दाँतोंसे घिरी हुई गुफाओंमेंसे पानी बह चला और देखते-देखते

उन थालियोंमें बस कटोरियाँ ही बची रह गईं। अब बख्तावरलाल बोलने खड़े हुए—

'पंडित मातादीन शुक्ल हमारे नगरके उन गिनेचुने लोगोंमें हैं जिन्होंने देशके लिये सब कुछ लुटा दिया पर उसके बदलेमें कभी कुछ नहीं चाहा। अँगरेज़ोंने इनका लाखोंका सामान तोड़-फोड़कर मिट्टी कर दिया, इनकी कोठीमें आग लगा दी, इनके सालेको पकड़ ले गए और उन्हें घुला-घुलाकर मार डाला। इन्हें अपनी राष्ट्रभाषासे इतना प्रेम है कि इन्होंने अपनी अँगरेजीकी पोथियाँ बाँट डालीं और यह नेम ले लिया कि न कभी अँगरेजी बोलेंगे न लिखेंगे। आज देश भरमें ढूँढ़नेपर भी इनके जैसा सन्त नहीं मिलेगा जो देश-सेवाके लिये अपना सब कुछ गँवा बैठा हो। जब हमारा सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था तब सैकड़ों जेलवासी नेताओंके परिवार इनके पैसेसे पल रहे थे। 'शंखनाद' पत्र इनके पैसेसे चल रहा था और जब-जब हम लोगोंने इनसे कुछ भी माँगा, इन्होंने अपनी सम्पदा बेचकर भी आन्दोलनके लिये इतना धन दिया कि आज इनके पास यह कोठी और एक अमराई भर बची रह गई है। पर इनका बड़प्पन तो देखिए कि इन्होंने कभी किसीके कान-तक भी यह बात नहीं जाने दी।'

बख्तावरलाल बड़े ढंगसे अपना स्वर उतार चढ़ाकर, आँखोंमें आँसू भरकर बड़े ढंगसे भर्राए हुए गलेसे यह सब कहकर, रूमालसे आँख पोंछकर वैसे ही बैठ गए जैसे वारेन हेस्टिंग्सको पार्ल्यामेंटमें ललकारकर 'बर्क' बैठ गया था। तालियाँ गड़गड़ा उठीं। लोगोंकी आँखें छलछला आईं और जिन्होंने अपना छप्पर फूँककर सरकारसे पचास-पचास हजार रुपए ऐंठ लिए थे वे लाजसे गड़ गए। बख्तावरलालने सबको वह कोठी ले जा दिखलाई जिसमें टूटा-फूटा सामान भरा था। अब तो सबको पक्का भरोसा हो गया कि अँगरेज़ोंने सचमुच शुक्लजीको उजाड़ दिया है।

लगभग पन्द्रह दिन पीछे मैंने बना कि शुक्लजीको जनसम्पर्क-मंत्री बनानेकी बात चल रही है। इतनेमें ही शुक्लजीका नौकर दौड़ा हुआ आया—'चलिए सरकार बुला रहे हैं।' मैं पहुँचा ही था कि बख्तावर-लाल भी आ धमके और ललकारकर कहने लगे—'कहिए, मैंने क्या कहा था? आपको बधाई है। आप जन-सम्पर्क मंत्री हो गए।'

शुक्लजी : ना भाई! यह सब हमसे नहीं हो सकेगा। आप जाकर अभी नाम कटवा आइए। मैं अंगरेज़ीका ए बी सी डी नहीं जानता। यह काम कैसे चलेगा?

बख्तावरलाल : आप जानते नहीं। हमारी सरकार पढ़ाई-लिखाई नहीं देखती। वह तो यह देखती है कि कौन जेल गया है, किसने देशके लिये लात-जूते खाए हैं, अपना घर लुटाया है।

'पर मैंने तो कुछ भी नहीं किया।'

'आपने नहीं, आपके सगोंने किया, पड़ोसीने किया, नगरवालोंने किया, देशवालोंने किया, सब आपके ही तो सगे हैं। आपने अपनी सम्पदा दूसरोंके लिये स्वाहा कर दी और जिन्हें दी वे सब आपके देश-वाले ही थे न! अब बँधा-बँधाया राग न उखाड़िए।

'पर मैं काम कैसे सँभालूँगा? यह जन-सम्पर्क क्या बला है?'

'जन-सम्पर्कका अर्थ है लोगोंसे मेल-जोल। आपके पास तो यों ही सैकड़ों लोग आते-जाते रहते हैं। अब और भी आने लगेंगे। रही कामकी बात, तो श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितने अपनी राम-कहानी-में लिख ही दिया है कि मन्त्रिणी होनेपर मुझे भी यह डर लगने लगा था कि काम कैसे होगा। पर वहाँकी कुर्सीमें कुछ ऐसा कमानियाँ लगी हुई हैं कि घोंघा भी पहुँचे तो बृहस्पति बन जाय। अपने मंत्रियों-में ही देख लीजिए कि पहले क्या थे और अब देखिए तो नालीके ओघड़ावनसे लेकर विद्यालयके ओघड़ावन तकपर घण्टे दो घण्टे बोल जाते हैं।'

'पर लिखने-पढ़नेका काम !'

'वह आपको नहीं करना पड़ेगा । आपके नीचे बहुतसे काम करने-वाले होंगे । वे सब कुछ देख-भालकर कागज-पत्र लावेंगे । आपको बस अपना नाम भर टीपना रह जायगा । आप पाँच बातें सीख लीजिए और बस उलट-पलटकर उन्हीं पाँचमेंसे एक-दो पूछ लिया कीजिएगा । १. नीचेके अधिकारियोंने अपनी क्या रिपोर्ट दी ? २. आपने सब कागज देख लिए हैं ? ३. इन कागजोंपर आपने अपना कोई नोट लिखा है ? ४. इसमें अन्य विभागोंसे तो कुछ पूछ-ताछ नहीं करनी है और ५. अभी रखिए, मैं पढ़कर लौटऊँगा। जिन कागजोंको आप रख लें उन्हें पढ़ना नहीं पड़ेगा । अगले दिन उस अधिकारीको बुलाकर डाटिए कि आपने अधूरे कागज ला रक्खे हैं। इन्हें पूरा कीजिए और हिन्दीमें अपना नोट दीजिए । जो अँगरेजीमें बात करने आवे उसकी बातें बिना सिर हिलाए ऐसे चुप होकर सुनिए मानो आप सब कुछ समझ रहे हों । और जब वह अपनी सब बातें पूरी कर चुके तब उससे कहिए कि आप सब बातें लिखकर मेरे आत्म-सचिवको दे दीजिए । कभी किसीकी बातपर हाँ या ना मत कहिए । यही कहिए बस—'अच्छा सोचूँगा ।' आप बहुत-सी सभाओंमें सभा-पतित्व करनेके लिये या उद्घाटन करनेके लिये बुलाए जायँ तो आप किसीसे भाषण लिखवाइए और पढ़ दीजिए । कभी-कभी यह भी कह दिया कीजिएगा कि मैं सरकारकी ओरसे भी सहायता दिलानेका जतन करूँगा । इससे धाक बँधी रहती है और आगे चुनावके लिये सहारा बना रहता है ।

शुक्लजीकी आँखोंसे ऐसा जान पड़ा जैसे उन्हें अपनेपर भरोसा हो चला हो । उन्होंने पूछा—पर मुझे मन्त्री बनावेगा कौन ?

इतनेमें एक सरकारी चपरासी आकर चिट्ठी दे ही तो गया । शुक्लजी जन संपर्क-मंत्री बन गए ।

शुक्लजीने बख्तावरलालसे कहा—'सब आपकी ही दौड़ धूपसे हुआ है ।'

बख्तावरलाल बोले—आप तो मन्त्रीकी बात कहते हैं । आप कहिए तो किसी देशका राजदूत बनवाकर भिजवा दूँ । अब तो सैंयाँ भए कोतवाल ।

ठेठ भाषाकी विनोदात्मक शैली

तद्भवनिष्ठ सिद्धोक्तिपूर्ण मिश्रवाक्य भाषाशैली तथा विनोदात्मक भावशैलीमें यह कथा लीजिए—

गंगाराम

गंगाराम उन इने-गिने भागवान् लोगोंमेंसे हैं जो अपनी माँके पेटमें बैठे बैठे अपने दादा, चाचा और तीन भाई-बहनोंको एक साँसमें डकार गए, धरतीपर उतरनेके साथ ही बिहारका भूकम्प बनकर सैकड़ों बस्तियाँ उजाड़ते-पजाड़ते लाखों प्रानियोंको निगल गए, दो दिन बीतते न बीतते अपनी माँको हड़प गए और छठीका दिन आते-आते अपने पिताजीको भी चाट गए । सात दिनके नन्हें-मुन्ने गंगारामके इस सूनेपनपर आँखें तो बहुत बरसीं, पर इतनी दया कहींसे न बरस पाई कि जान-बूझकर कोई इस सादेसातीको ले जाकर अपने घर पाल ले । आँसू बहानेवालोंमें ऐसा माईका लाल कोई न निकला जो फूटे मुँह भी कह देता कि गंगारामको मैं ले जा रहा हूँ । हाँ, गंगारामके बापके घर-बारकी देख-भालका बीड़ा उठानेवाले तो बहुत उठ खड़े हुए पर गंगाराम मानो कोई बाघ था कि जो उसे छू ले उसे फाड़ खाय ।

मछलीकी आँखें, कछुएकी पीठ, सूअरका थूथन, बौनेका डील, नरसिंहका मुँह, परशुरामके कन्धे, रामका रङ्ग, कृष्णकी त्रिभङ्गी आन-बान, बुद्धकी उदासी और कल्किकी लाल-लाल आँखोंवाले गंगारामको देखनेसे जान पड़ता था कि श्रीमान्‌जी अपने नन्हेंसे चोलेमें हिन्दुओंके दसों अवतार उलझाए चले आ रहे हैं । उसके मुँहमें तुलसीदासके जैसे दाँत भी नहीं थे । वह मुँहसे राम-राम भी नहीं कह रहा था और न उसका जन्म

ही किसी सत्यानासी घड़ीमें हुआ था, फिर भी न जाने क्यों कोई उस बच्चेका माँ-बाप बननेकी हामी नहीं भर पा रहा था। पूतके पाँव पालनेमें ही दिखाई देते हैं। जिस फूटी ढोलपर उसके धरतीपर आनेका बधावा बजा और जिस बेसुरी गौनिहारिनने आँख-भौं मटकाकर सोहर गाया, वे दोनों ही गंगारामकी माँको बधाई देनेकी हड़बड़ीमें उसका नाम रखनेसे पहले ही सरग सिधार गए। चारों ओरसे अपनी पाली झाड़-बुहारकर जब पचास बरसकी पुरानी, सड़ी बाधवाली और टूटी पटियावाली झिलमिल खटियामें पड़े गंगाराम किर्याँ-किर्याँ करते हुए सारा टोला सिरपर उठाए हुए थे, तब एक उसकी मौसी ही ऐसी निकली जिसका जी पसीज उठा और वह इस सनीचरका उजाड़-पौरा देख-समझकर भी उसे गोदमें उठाकर अपने घर लिए चली गई।

यों तो हम लोगोंमें दसवें दिन ही बच्चोंका नाम रख दिया जाता है, पर उसके माँ-बापने बैकुण्ठ बसानेकी जो हड़बड़ी दिखाई, उससे नामकरन भी महीने भर टाल देना पड़ा। पर बात इतनी ही होती तो बहुत थी। पुरोहितजीसे भी जब नामकरनकी बात छेड़ी गई तो वे कुछ दिनोंतक कन्नी काटते रहे, टाल-मटोल करते रहे। पर जब एक दिन गंगारामकी मौसीने आगे ग्यारह रुपए और चावलोंसे भरा चाँदीका कटोरा ला रक्खा तब पुरोहितजी भी बमक उठे। उन्होंने दो-टूक कह दिया कि 'ऐसे अभागेके नामका पैसा जहाँ पहुँचेगा वहाँ बंटा-ढार हो जायगा, घर उजड़ जायगा, नामलेवा पानीदेवा न बचेगा। आप ग्यारह क्या, ग्यारह करोड़ भी दें तो मैं ठीकरे समझूँगा।' मौसीजीने सुना तो उन्हें मानो काठ मार गया। वे सन्न रह गईं। पर उन्होंने तो ओखलीमें सिर दे ही दिया था, अब मूसलोंसे क्या डर था। उन्होंने सोचा कि 'मेरा घर तो यों ही अँधेरा है। कौन जाने गंगाराम ही इस घरका उजाला बन जाय। मेरा क्या है? मैं तो जमराजका

न्यौता पाए बैठी हूँ। कौन जाने किस दिन डेरा कूच कर दूँ, आँखें मूँद लूँ। यह रहेगा तो दो अंजली पानीका भरोसा तो रहेगा।'

उन्होंने पुरोहितजीसे भी कुछ न पूछा-ताछा और अपने मनसे ही यह समझकर उसका नाम गंगाराम रख दिया कि गंगाके नामसे इसके सारे करम धुल जायँगे और रामके नामसे सारे पाप। वह यह भी सोचती थी कि जैसे सुग्गेको पढ़ाते-पढ़ाते बेसवा तर गई और जैसे अजामील अपने बेटे नारायणका नाम ही पुकारकर तर गया वैसे ही कहीं चलती घड़ी मेरा भी हंसा गङ्गारामको पुकारते-पुकारते उड़ा तो सीधे वैकुण्ठमें ही जाकर पङ्ख समेटेगा। यह नाम रख देनेपर मौसीको इतना ढाढ़स हुआ कि लोग लाख समझा-बुझाकर हार गए कि गङ्गारामको घरसे हटा दो, कहीं किसी अनाथालयमें पहुँचा आओ, पर वह तो जैसे अङ्गदका पैर बनकर डटी रही। टससे मस न हुई। और सचमुच कुछ बात भी ऐसी हुई कि जिस दिनसे उसका नाम गङ्गाराम पड़ा, उससे पहले वह जितनी बलि ले चुका था, उससे आगे उसने मुँह नहीं पसारा।

गङ्गाराम यों चाहे जैसा रहा हो पर अपनी मौसीके लिये तो वह सोनेका तार था। अभी उसके दूधके दाँत भी नहीं निकले थे कि उसकी मौसी इस भरोसेपर उसे धुआँधार मधु चटाने लगीं कि ज्यों-त्यों उसका कण्ठ तो फूटे, वह कुछ तोतली बोलीमें बोलने तो लगे। पर बत्तीसों दाँत निकल आनेपर भी गङ्गारामके मुँहसे बोलीके नाम-पर फूटा शब्द न निकला। मौसीने बहुत झाड़-फूँक कराई, मान-मनौतियाँ मनाई, जन्तर-मन्तर बँधवाए, टोने-टोटके किए, पर वही ढाकके तीन पात। गंगारामकी चाल-ढालमें कोई भेद न पड़ा। मौसीने भी झख मारकर अपना जी समझा लिया कि 'गूँगा ही सही, कहनेको तो अपना है।' अब वे उसे बड़ी टीम-टाम और ठाट-बाटके साथ सजा-बजाकर, बना-ठनाकर रखने लगीं। एक तो यों

ही गंगाराम अटपटे रूप-रंगके थे ! तिसपर जब वह मुँहसे लार बहाते, घुटनोंके बल डगमगाते, गिरते-पड़ते चलते, तब तो उनकी धजा ही निराली बन जाती। पर मौसीकी ममता तो देखिए। उसे सदा यही डर बना रहता कि गंगारामको कहीं किसी कुडीठेकी डीठ न लग जाय। इसीलिये वह तड़के नहा-धोकर राई-नून करती, बलैयाँ लेती, टोना-टोटका करती और उसके काले-कलूटे मुँहपर एक लम्बा-चौड़ा काला डिठौना टीप देती।

आँखोंमें काजल पोतकर जब गंगाराम रोने लगता तब भगवान् भी उसे चुप नहीं करा पा सकते थे। दो-चार घंटे फुक्का फाड़-फाड़कर रो लेनेपर जब वह थक जाता तो अपने आप चुप मारकर बैठ रहता। उसकी आँजनसे भरी हुई आँखोंसे निकले हुए और बँहोलियोंसे पोंछे हुए आँसू उसके मुँहपर ऐसी टिपकारी कर देते मानो कोई चितेरा मेघदूतके यक्षके आगे चित्रकूटपर असाढ़के उठे हुए हुए बादल चीत गया हो। मौसीका मन इतनेसे ही नहीं भर पाता था। वे गंगारामके गलेमें सोनेका तोड़ा पहनाकर, कमरमें घुँघुरूदार तगड़ी बाँधकर और तंजेबके कुर्त्तेपर लाल मखमली टोपी लगाकर पास-पड़ोस ले जाया करतीं और उसकी ऐसी-ऐसी बड़ाई करतीं कि जो सुनती वह अपने आँचलमें मुँह देकर जी भरकर हँसती। भला गंगारामको देखकर कोई सामने हँस तो दे ? मौसीजी उसकी दाढ़ी न नोच लें ! मौसीजी सुन भर लें कि कोई मेरी बातोंपर हँस रहा था या कोई बच्चा ही इधर-उधरसे आकर कह दे कि कोई गंगारामको कुबड़ा या बौना कह रहा है तो समझिए महाभारत छिड़ गया। मौसीजी कच्छा बाँधकर वह चिल्ला-चिल्लाकर, गला फाड़-फाड़कर गिन-गिनकर गालियाँ सुनातीं कि दस पीढ़ी पहले और दस पीढ़ी पीछेका कोई भी पुरखा न तो उनकी गालियोंके बानसे बिना बिंधे रह पाता, न अपनी राम-कहानी सुने बिना रह पाता। इतना ही नहीं, वे अपनी गालियोंके साथ यह

भी ब्यौरा बताती जाती थीं कि मरनेपर वह गाली देनेवाला किस ढंगसे ले जाया जायगा और कैसे उसकी गति होगी। उस घड़ी डाकगाड़ीका अंजन बनकर चलता उनकी जीभ देखकर, सबके घरोंकी राई-रत्ती बातें सुनकर आप मान सकते थे कि सिसरो (वक्ता) हेरोदोतस (इतिहासकार) और चीरो (ज्योतिषी) तीनों पिछले जनममें इन्हींके यहाँ पानी भरते रहे होंगे।

पहले तो लोग उनके मुँह नहीं लगना चाहते थे पर जब मौसीजी आए दिन अपने टोलेको कुरुक्षेत्र बताने पर उतारू हो गईं तो लोगों-को भी रस आने लगा। अब तो कोई भी आते-जाते अचानक किसी कोनेसे धीरेसे कूक देता—'वह जा रही कुबड़ेकी माँ! वह जा रही गूँगेकी मौसी।' और फिर धूप-जाड़ा-बरसातमें, पाँतमें खड़े होकर, पासका पैसा देकर, रोग और धुएँसे भरे अँधेरे चित्रघरोंमें चलती-फिरती मूरतें देखनेपर भी जो आनन्द न मिले उससे कहीं बढ़चढ़कर मनबह-लाव वहाँ बिना पैसेके हो जाता।

जब गंगाराम एक बरसके हुए तो मौसीने सोचा कि अब इसकी जनमगाँठ मनाई जाय। उन्होंने पास-पड़ोसिनोंको न्यौता भेज दिया और बड़ी धूमधामसे बरस-गाँठ मनानेका पूरा डौल बाँध लिया। टोलेके चंडूलोंने सोचा कि अब दाव चूके तो गए। उन्होंने झट एक शहनाईवालेको एक रुपया जा थमाया और कह दिया कि संझाको पाँच बजे मौसीजीके यहाँ बधावा बजेगा। अँगरेज़ी बाजेवालोंको भी बयाना दे दिया गया और हिंजड़ोंको समझा दिया गया कि कि दिया-जले अच्छी धूम-धाम रहे। दो रुपएमें इतना मनबहलाव कुछ महँगा नहीं था। फिर क्या था? पाँच बजते-बजते वहाँ ऐसा जान पड़ने लगा मानो आठ दस बारातें एक साथ आ धमकी हों। ढोल-ढपलीतक तो कुछ नहीं, पर जब हिंजड़े भी आकर उँगली मटका-मटकाकर ढोलपर ताली बजा-बजाकर गाने और नाचने लगे—'दसरथजीके लालबाल

जीएँ जीएँ', तब तो मौसीजीके भी कान खड़े हुए। उन्होंने झाँककर देखा कि बाहर अच्छा बड़ा मेला लगा हुआ है। एक ओर शहनाई-वाले श्यामकल्याणमें सोहरकी तान ले रहे हैं। दूसरी ओर अँगरेजी बाजेवाले किसी फिल्मी गीतकी लहर बजा रहे हैं। तीसरी ओर हिंजड़े उँगली मटका-मटकाकर नाच रहे हैं और सारा टोला वहीं खड़ा आपसमें फुस-फुसा रहा है। मौसीजीने ताड़ लिया कि हो न हो यह सब मुहल्लेवालोंकी मिली भगत है। वे चंडी बनकर निकलीं घरसे और लगीं एक-एकको गिन-गिनकर सुनाने।

शहनाईवालोंने देखा कि अब ठहरनेमें शहनाई और ढप दोनोंके ठप हो जानेकी नौबत आ गई है तो वे भी धीरेसे वहाँसे नौ-दो-ग्यारह हुए। उधर अँगरेजी बाजेवालोंने भी रंग बदरंग देखा तो वे भी बेचारे धीरेसे टसक दिए। पर हिंजड़े भला किसकी सुननेवाले थे। वे मौसीजीकी ओर उँगली मटका-मटकाकर लगे गाने—

'मौसीजीका नन्हाँ-मु-ना जीए जीए, हाँ जीए, जीए।'

और वह-वह टेढ़ी-सीधी फबतियाँ सुनाने लगे कि मौसीजीकी सब गालियाँ मुँहकी मुँहमें ही रह गईं। वे हार झख मारकर किवाड़ देकर भीतर घुस रहीं। जब रातके नौ बजेतक भी हिंजड़े वहाँसे टससे मस न हुए तब तो मौसीजी बड़ी झल्लाईं। उन्होंने खिड़कीसे एक रुपया फेंककर कहा कि 'अब आगे कुछ बोले तो समझ लेना जीना भारी कर दूँगी।' पर वे भी हिंजड़े थे—न पुरुष न स्त्री। उन्हें किसकी लाज थी। वे भी खूँटे बनकर गड़ गए। यार लोग भी इधर-उधरसे बोलियाँ बोलकर उन्हें बढ़ावा देते जा रहे थे—'वाह वाह! जमे रहो! हटना मत!' पर मौसीजी बड़ी जबरजङ्ग थीं। उन्होंने आव देखा न ताव, झट एक बाल्टीमें पानी लेकर ऊपरसे उन हिंजड़ोंपर उँडेल ही तो दिया। अब तो वे सब भी नहा गए और अपना गाना-बजाना बन्द करके ताबड़तोड़ बड़े फूहड़ ढङ्गसे

कोसते और गाली देते वहाँसे पत्ते-तोड़ भागते ही दिखाई दिए।

यों गङ्गारामकी बरसगाँठ, कुशलसे ही कहना चाहिए, पूरी हुई। गङ्गाराम एक बरसके हो गए।

कविता

और इसी तद्भवात्मिका भाषामें सरस कविता भी की जा सकती है—

कोयलसे

कोयल मीठे बोल न बोल।
डाली डाली कूक-कूककर विषकी गाँठ न खोल॥
बोल-बोलमें तोल-तोल-तोलकर तू मत मिश्री घोल।
दुनिया अन्धी, है बहुधन्धी, वह क्या लेगी मोल॥
चुप! सुनता है एक अहेरी, आया राह टटोल।
जाल डालकर फाँस चलेगा, फाँसी होगा बोल॥

कविसम्राट् 'हरिऔध'जीने भी इस ठेठ भाषामें रचना की है। उनकी बोल-चालकी कविता लीजिए—

आँख

पाँवड़े कैसे न पलकोंके बिछें;
जोतके सारे सहारे हो तुम्हीं।
आँखमें बस, आँखमें हो घूमते;
आँखके तारे हमारे हो तुम्हीं॥ १॥

देखनेवाली न आँखें हों मगर;
देखनेका है उन्हें चसका बड़ा।
आप परदा किस लिये हैं कर रहे?
हो भले ही आँखपर परदा पड़ा॥ २॥

जानकर भी जानते जिसको नहीं,
क्यों उसीके जाननेका दम भरें?
आप ही क्यों आँख अपनी लें कुचा,
क्यों किसीकी आँखमें उँगली करें॥ ३॥

नाटक

इसी तद्भवनिष्ठ भाषा-शैलीमें नाटक भी लिखे जा सकते हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' पर करारे व्यंग्यके रूपमें यह नाटिका देखिए—

लग गई आऽऽऽऽऽ

पात्र-परिचय

अनोखेलाल	: राजा	सलोटा	: होरीलालकी घरवाली
बंडासिंह	: मंत्री	नत्थू	: चरकट
होरीलाल	: घुड़सालका रक्षक	भौंरा	: घोड़ा मलनेवाला

स्थान : होरीलालकी बैठक

समय : १० बजे दिन

[लाला होरीलालकी बैठकमें एक चौकीपर गद्दा बिछा हुआ है और मसनद लगी है। चौकीके पास दो पुराने मोढ़े रक्खे हुए हैं और नीचे एक पुरानी दरी बिछी हुई है। बाईं ओर घरमें जानेका और दाईं ओर बाहरसे आनेका द्वार है। होरीलाल तानपूरा लिए हुए आसावरीकी तान अलाप रहे हैं। मोटी, ठिगनी और बेडौल सलोटा देवी हाथमें मोटा-सा बेलन लिए, सिरके बाल खोले, बड़ी-सी नथ नाकमें लटकाए, लाल-लाल आँखें किए आती है।]

सलोटा : (बेलन उठाकर गरजते हुए) यह क्या हो रहा है ?

[तानपूरे पर बेलन चलानेको हाथ उठाती है। होरीलाल हाथकी आड़ कर लेता है।]

होरीलाल : (रोकते हुए) हैं-हैं-हैं-हैं ! देख नहीं रही हो ? मैं आसावरी अलाप रहा हूँ।

सलोटा : (चिल्लाकर) भाड़में जाय तुम्हारी आसावरी ! जब देखो तब यही टुनटुन, यही ताना-रीरी। न रातको नींद न दिनको चैन। अब

या तो इस तानपूरेको चूल्हा दिखाओ नहीं आज मैं इसी बेलनसे इसके अंजर-पंजर ढीले किए देती हूँ। समझे ?

होरीलाल : (बहुत गिड़गिड़ाकर) अरे बाबा ! इसी ताना-रीरीसे तो रोटी चलती है। तानपूरा घरसे निकला तो समझो हमने भी नौकरीसे हाथ धोए, हमें भी नारियल-सुपारी थमाई गई।

सलोटा : (कुढ़कर) यहाँ सरकारी अस्तबल देखनेको रक्खे गए हो या घोड़ोंको गाना सिखानेके लिए ?

होरीलाल : (चापलूसीके साथ) अरे मेरी नन्हीं मुन्नी-सी धर्म-पत्नीजी ! राजाजीके राजमें बिना अलापे मुँह नहीं खोला जा सकता और गाना भी कुछ ऐसा-वैसा नहीं कि झट गला साधा और टीप मार दी। यहाँ तो पग-पगपर सुर साधकर चलना पड़ता है, तानें लेनी पड़ती हैं, अलाप भरने पड़ते हैं, गिटकिरी बाँधनी पड़ती है, तब कहीं कोई बात सुनी जाती है। कहीं उतरे निखादके बदले चढ़ा निखाद लग गया तो खड़े खड़े निकाल दिए जायँ, कोई टकेको न पूछे और यह जो तुम फूलकर हथिनी बनी जा रही हो वह सूखकर बकरी रह जाओ।

सलोटा : (गरजकर) क्या कहा ? मैं हथिनी हूँ ? आज सनीचरके दिन मुझे डीठ लगा रहे हो ? कहो तो फिरसे ?

[बेलन उठाती है।]

होरीलाल : (नरम पड़कर, मनाते हुए) अरे डीठ-वीठ कुछ नहीं ! भला मैं डीठ लगाऊँगा ! तुम तिल भर पटक जाती हो तो यहाँ खाना नहीं पचता, नींद नहीं आती, जी भारी हो जाता है, उठना-बैठना दूभर हो जाता है, मुँहसे बात नहीं निकलती। भला मैं तुम्हें डीठ लगाऊँगा ? राम-राम तुम्हारे भरोसे तो मैं यहाँका राज चला रहा हूँ।

सलोटा : (बेलन हिलाते हुए) तुम दो टूक कह क्यों नहीं देते कि हमें गाना वाना कुछ नहीं आता ?

होरीलाल : (आँखें फाड़कर) ओ हो ! बड़े-बड़े बह गए, गधा

कहे कित्ता पानी। आजतक तो किसीकी माँने इत्ता दूध पिलाया नहीं कि राजासाहबके आगे मुँह खोल सके। मैं भला किस खेतकी मूली हूँ ? मैं क्या यह सब कहकर गलेमें फाँसी डालूँगा ?

सलोटा : (साड़ीका पल्ला लपेटते हुए) अच्छा, तो मैं ही जाकर कहे आती हूँ। यह कहाँ की बात है कि जो कहो वह गाकर कहो, चाहे गलेमें फटा बाँस ही क्यों न बँधा हो ! ऐसी नौकरी जाय भाड़-चूल्हेमें। हमें तो रूखी-सूखी खाकर पड़ रहना अच्छा पर यह गला फाड़-फाड़कर, हिंजड़े बनकर मटक-मटककर अलापना नहीं अच्छा। [गमनोद्यत]

होरीलाल : (पुकारकर) अरे मेरी नानी ! तुझे सौगन्ध दाढ़ी-वाले बकरेकी ! तू मुझे कच्चा ही चबावे जो देहली लाँघकर जाय।

सलोटा : (लौटकर और चिल्लाकर) तो आजसे नाक रगड़ो कि घरमें कभी तान नहीं तोड़ूँगे।

होरीलाल : (अपने कान पकड़कर) ले बाबा ! कान पकड़ता हूँ, नाक रगड़ता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ, मत्था टेकता हूँ, पैरों पड़ता हूँ, डंडौत करता हूँ जो आजसे कभी इस घरमें एक भी सुर छेड़ूँ।

सलोटा : (बेलन घुमाती हुई) और वे जो तुम्हारी घुड़सालके चरकटे और घसियारे यहाँ आ-आकर डकारते हैं, उन्हें भी मैंने यहाँ गला फाड़ते सुना तो उनके भी तबले-तानपूरे तोड़-फोड़कर वह कस-कसकर बेलन लगाऊँगी कि भागते धूल भी न दिखाई पड़े।

होरीलाल : (हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए) अरे रामराम ! कहीं सचमुच ऐसा न कर बैठना, नहीं तो नौकरीसे हाथ धो बैठूँगा और यह जो तुम दो तोलेकी डमलकडकी नथ नाकमें लटकाकर एक साथ उर्वशी, मेनका, रम्भा सबकी नाक काटे ले रही हो……(आगे बढ़कर हाथसे बेलन लेकर अलग रखते हुए) वाह ! तुम कितनी भली लग रही हो ?

सलोटा : (अपनी नथ ऊपर उठाकर देखती है) सच क्या ?

[होरीलाल बढ़कर आरसी उठाता है और सलोटाके हाथमें देकर उसके बिखरे हुए बाल कंघीसे ठीक कर देता है ।]

होरीलाल : (लल्लो-चप्पो करते हुए , वाह-वाह ! तुम्हें देखकर तो आज कविता उतर पड़ी है । कहो तो सुना डालूँ ।

सलोटा : (होरीलालकी ओर घूमकर) सच कहो ? यह नथ अच्छी लगती है ?

होरीलाल : (बढ़ावा देते हुए) ओह ! कितनी अच्छी लग रही हो । कहीं आजकलकी लड़कियाँ देख लें तो इसे पहनकर अपना फोटो खिंचवाकर बँटवा दें और फिर कहाँ-कहाँके लोग आ-आकर उनकी देहली-पर छुरा मार-मारकर जान दे डालें जान ।

सलोटा : (आँखें फाड़कर) हाँ ! तभी तो कहूँ कि मुझे देखते ही लोग घूरने क्यों लगते हैं !

होरीलाल : (बनावटी अकड़के साथ) सच क्या ? बस मैं समझ गया । यह तुम्हारी नथका जादू है और कुछ नहीं । इस बार मुझे बताना कौन घूरता है । उसके दाँत न तोड़ दूँ तो होरीलाल नाम नहीं ।

सलोटा : (मटककर) अजी वे घूरते हैं तो मेरा क्या लेते हैं । एक नहीं सौ बार घूरें न !

होरीलाल : (लंबी साँस लेकर) सच कहती हो सलोटा ! यह पहनकर तुम लगती ही ऐसी सुन्दर हो कि ब्रह्मा-विष्णु भी आवें तो हाथ मारकर रह जायँ । अच्छा, पल भर खड़ी तो रहो ऐसे ही । वह बिहारीवाला दोहा सूझ आया है । कहो तो गा दूँ ?

सलोटा : (प्यारसे) अच्छा गाओ तो ।

[सलोटा अपने कूल्हों-पर दोनों हाथ टेककर खड़ी हो जाती है । होरीलाल अलापने लगता है ।]

होरीलाल : (गाते हुए)

अहे दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।
नीके है छींके छुए, ऐसे ही रहु नारि॥

सलोटा : (मुसकराते हुए घूमकर) अच्छा चलूँ, तुम्हारे लिये पकौड़ियाँ बना लाऊँ।

[चलती है।]

होरीलाल : (घुटने टेककर) आ हा! तुम्हारी ही दयापर तो जी रहा हूँ। बहूजी! यह बेलन तो लेती जाओ।

[बेलन सलोटाको देता है।]

सलोटा : (प्यारसे) और कुछ बना लाऊँ ?

[चलनेको घूमती है।]

होरीलाल : (कुछ डरते हुए) अँ....अँ....अँ....अँ....अँ....अँ कहो तो थोड़ा तानपूरेपर यह आसावरी और माँज लूँ।

सलोटा : (हँसकर) अभी तुमने नाक रगड़ी थी न!

होरीलाल : (बनावटी मुसकानके साथ) इसीलिये तो पूछ रहा हूँ। तुम कहो तो मैं दिनमें तारे तोड़ लाऊँ, यह तो तान-भर अलापना है।

सलोटा : पर देखो, बहुत काँवँ-काँवँ न हो।

[चलनेको उद्यत होती है।]

होरीलाल : जी नहीं, ऐसे धीरे कि कानतक न सुन पावें।

[बाहर खटखट]

सलोटा: (चौंककर) यह कौन आ गया ?

होरीलाल : (कुछ चकपकाकर) कोई नहीं, सब चरवाहे होंगे। अब तुम भीतर चलो।

सलोटा : (आँख चमकाकर) इन्हें भी समझा देना कि धीरे अलापें। सारा घर न सिरपर उठा लें।

होरीलाल : (सिर हिलाकर) हाँ, हाँ, मैं सबको समझा लूँगा ।

[सलोटा भीतर जाती है ।]

होरीलाल : (लंबी साँस लेकर) जान बची लाखों पाए ।

[फिर खटखट]

होरीलाल : (आसावरी रागमें अलापते हुए) भीऽतर आऽओऽ ।

[तानपूरा और तबला लिए हुए नत्थू और भौंरा आते हैं । नत्थू तबला बजाता है और भौंरा तानपूरा लेकर जयजयवन्ती रागमें गाता है ।]

नत्थू : (गाते हुए)

आज उधर नहीं आऽए, आऽऽऽएऽ । आज०
कासे कहूँऽ मैं बतियाँऽऽऽऽऽआँ ।
रैऽन अँधेरीऽ आँऽधीऽ आऽईऽ ।
अपनेऽ सँग चिनगाऽरीऽ लाऽईऽ ॥
आग लगीऽ भसमाऽएऽ आऽएऽऽ ॥ आज०

होरीलाल : (घबराकर) एँ ! कहाँ आग लगी ? कौन भसमाए ?

भौंरा : (गाते हुए)

सरकाऽरीऽ घुड़साऽल भसम भईऽ ।
आग बुझीऽ न बुझाऽएऽ, आऽएऽए । आज०

होरीलाल : (उछलकर) अरे चरकटो ! इतनी आग लग गई, घुड़साल राख हो गई और तुम तानपूरा लेकर चले हो राग अलापने । मैं अभी जाता हूँ और कहता हूँ राजा साहबसे न !

भौंरा : (जयजयवन्तीमें गाते हुए) ।

कहिएऽ मैंऽ भीऽ संऽग सिधाऽरूँऽ ।

होरीलाल : (अपनी पगड़ी उलटे-सुलटे लपेटते हुए) नहीं-नहीं,

होरीलाल : (चलते-चलते सलोटासे) देखो, यह नत्थू और भौंरा भी तुम्हारी नथकी बड़ी बड़ाई कर रहे थे। (नत्थू और भौंराकी ओर देखकर आँख मारते हुए) क्यों ? चलो उठो।

सलोटा : (फूलकर कुप्पा होती हुई) अपने तो पकौड़ियाँ गपक लीं और इन बेचारोंको कुछ नहीं। ठहरो, मैं अभी लिए आती हूँ।

होरीलाल : (दोनोंसे) देखो, देवीजी आवें तो कह देना कि जैसी नथ आपकी है, वैसी यहाँ दूर-दूर तक बड़े बड़े राजाओंके घर भी नहीं है।

भौंरा : (धीरेसे) पर वह तो पीतल-जैसी लगती है।

होरीलाल : (धीरे-धीरे) अरे, धीरे बोलो धीरे ! पीतलकी तो है ही, पर तुम लोग उसे खरे कुन्दनकी बताना, खरे कुन्दनकी। समझे ! नहीं तो पकौड़ियोंके बदले बेलन मिलने लगेंगे।

नत्थू : जी हाँ, हम वह बड़ाईके पुल बाँधेंगे कि आप भी देखिएगा।

[सलोटा दो दोनोंमें नत्थू और भौंरेको पकौड़ियाँ लाकर देती है।]

नत्थू : (लेते हुए) बहूजी ! यह आपने नथ कहाँसे बनवाई ?

सलोटा : (फूल उठती है और नथ घुमा लेती है।) क्यों ?

भौंरा : (पकौड़ी खाते-खाते) बहूजी ! मैंने तो बड़े-बड़े रजवाड़े छान मारे पर ऐसी नथ तो मैंने रानियोंकी नाकमें भी नहीं देखी। यह पीतलकी नहीं है बहूजी ! खरे सोनेकी है।

[सलोटा हँस देती है।]

होरीलाल : (चरकटोंसे) चलो, खाते चलो। देर हो रही है।

[सलोटाको छोड़कर सब जाते हैं। सलोटा दर्पण उठाकर चौकी-पर बैठकर बार-बार अपना मुँह देखती है, अपने बाल कंघीसे झाड़कर नथ ठीक करती है और न जाने क्या बेसुरे गलेसे अलापने लगती है। इतनेमें हाँफते हुए होरीलाल आता है। सलोटा खड़ी हो जाती है।]

सलोटा : (घबराकर) क्या हुआ ? क्या हुआ ?

होरीलाल : (झटपट जूते उतारते हुए) कुछ पूछो मत ! झटपट भीतर चली जाओ और यह हटाओ यहाँसे अपनी आरसी-कंघी ।

सलोटा : क्यों ! क्यों ?

होरीलाल : (भर्राए हुए गलेसे) अजी ! राजा जी आ रहे हैं राजाजी ! तुम झटपट पान लगाकर रख जाओ। मैं तानपूरा मिलाता हूँ ।

[नीचे दरीपर बैठकर तानपूरा मिलाने लगता है । सलोटा पान रखकर जाती है । इतनेमें बाहर खटखट होती है । होरीलाल उठकर जाता है और राजाजीको भीतर ले आता ह। वे बंडासिंहके साथ आकर चौकीपर बैठ जाते हैं । होरीलाल उठकर पान देता है । राजा साहब पान लेते हैं । भौंरा और नत्थू एक ओर हाथ बाँधे खड़े हो जाते हैं ।]

बंडासिंह : (तोड़ी रागिनीमें गाते हुए)

बोऽलोऽ होऽरीऽलाऽल ! यहाँऽ क्याऽ होऽ रहाऽ ।

राजा साहब : (गूजरी तोड़ीमें गाते हुए)

बहुत दिनोंऽसेऽ तुम नहिं आऽएऽ ?

होरीलाल : [तानपूरा मिलाकर बैठ जाता है। नत्थू तबला ले-लेता है, भौंरा मजीरा ले लेता है और बंडासिंह ताली देता है ।]

बहुत दिनोंऽसेऽ तुम नहिं आऽएऽ।

समाऽचाऽर बतलाऽओऽ होऽरीऽ,

समाऽचाऽर बतलाऽओऽ ।

होरीलाल : (आसावरी रागमें गाते हुए)

राऽऽऽजाऽजी

राऽऽऽजाऽजी

राऽऽऽऽऽऽजाजी

घुड़साऽऽऽऽऽलमेंऽ

घुड़साऽऽऽऽऽऽऽलमेंऽ
राऽऽऽजाऽजी
राऽऽऽऽऽऽजाऽजी
लगगई लगगई लगगई घुड़साऽऽऽऽऽऽलमें
लगगई लगगई लगगई राऽजाऽजीऽलगगई
घुड़साऽऽऽऽऽऽलमेंऽ
[अलाप लेते हुए]
राऽऽऽआऽऽऽआऽऽऽआऽऽजा
आऽऽऽआऽऽऽआऽऽऽआऽऽऽ

[लगभग आधी घड़ी तक अलापकर गाते हुए]

राजाजीऽऽऽऽऽघुड़साऽऽऽऽलमें लग गई आऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ
लग गई आऽग राजाऽजी ॥

राजाजी : (उछलकर) हैं ! आग लग गई ! अरे बुझाओ, बुझाओ ! यह क्या गाकर कहनेकी बात थी ?

बंडासिंह : (हाँमें हाँ मिलाते हुए) जी हाँ, ऐसी बातें भी क्या गाकर कही जाती हैं ? (नत्थू और भौंरासे) भागो ! भागो !! बैठे ताक क्या रहे हो ?

होरीलाल : (राजाजीसे) हम लोग तो नौकर ठहरे। जो अन्नदाता कहेंगे वही करेंगे न !

राजाजी : तो आजसे राजका कोई काम गाकर न कहा जाय, बोलकर कहा जाय। चलो झटपट !

[आगे-आगे राजा साहब, पीछे-पीछे बंडासिंह, होरीलाल, भौंरा और नत्थू जाते हैं। सलोटा निकलकर उन लोगोंकी ओर देखकर मुँह बिचका लेती है।]

[पर्दा गिरता है।]

पत्र

इसी ठेठ तद्रूपनिष्ठ रूढोक्तिपूर्ण नागरीकी चलती-उछलती शैलीमें रसीले पत्र भी लिखे जा सकते हैं जिसमें यात्रा, वर्णन, भौगोलिक विवरण तथा सामाजिक चित्रण सबका सुन्दर पुट दिया जा सकता है। यह पत्र लीजिए—

डेनमार्क

एल्सीनोर, डेनमार्क
२६।६।५४

पूजनीय गुरु जी,

सादर प्रणाम।

आपके यहाँसे चलकर मैं ज्यों ही अपने अड्डेपर पहुँचा त्यों ही साथियोंने 'दिल्ली चलो' की वह चिल्ल-पों मचाई कि सारा पास-पड़ोस जाग उठा। ऐसा जान पड़ा मानो सुभाष बाबूकी सेना इम्फालसे कूच करने जा रही हो। घड़ी-भरतक वह धमा-चौकड़ी मची कि आस-पासके लोग लाठियाँ ले-लेकर बाहर निकल पड़े कि कहीं कलवरियासे छूटे हुए पियक्कड़ तो नहीं आ भिड़े हैं। पर हम लोगोंके सिरपर गाँधी-टोपी देखते ही वे पूँछ दबाकर भीगी बिल्ली बने दाएँ-बाएँ खिसक गए और ताड़ गए कि इन लोगोंसे उलझना ठीक नहीं है; आजकल इन्हींकी तूती बोलती है। घंटे भरमें हम लोग गाड़ीमें जा बिराजे और सोमवारका दिन निकलते-निकलते अपनी राजधानी दिल्लीमें जा धमके।

वहाँ पहुँचनेपर ज्योंही कानमें भनक पड़ी कि डेनमार्क उड़कर जाना होगा तो यहाँ होश उड़ गए। मेरे साथियोंके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने

लगीं। सब लोग पहली-पहली बार उड़नखटोलेपर चढ़ रहे थे। हम लोग धरतीके दुपाए भला सुन्न महलमें कैसे पंख मार पावेंगे ? पर चारा ही क्या था ! हम सब लोग उड़नखटोलेके दड़बेमें परकटे कबूतर बनकर गुटरगूँ करते हुए जा घुसे। पहले तो वहाँ बड़ा अच्छा लगा पर जब वह उड़नखटोला घर्ं ऽ ऽ ऽ र्र करके गरजता हुआ धरती छोड़कर ऊपर उड़ चला तब तो यहाँ भी पैरों तलेकी धरती खिसक गई। हाय राम ! अब क्या होगा ! रहा-सहा धीरज भी बिना लौंगका कपूर हो गया। जी धुक-धुक करने लगा और ऐसा जान पड़ने लगा कि पसलियोंके पिंजरेमें धुक-धुक करनेवाला अंजन बस दो-चार बार भक-भुक करके अब फिस्स बोला चाहता है। पर फिर बजरंगबलीका सुमिरन करके मैं जी कड़ा करके आँख मूँदकर चुप बैठ गया। बम्बई, कराँची, केयरो, जिनेवा और पेरिस कबमेंको आए और कबमेंको निकल गए इसकी अपने रामको कुछ सुध नहीं। राम-राम करते जब तीसरे दिन लंदन दिखाई दिया तब कहीं जीमें जी आया। उस उड़नखटोलेसे बाहर पैर धरते ही जी हल्का-सा हो गया और वही हुलास हुआ जो पिंजड़ेसे उड़ निकलनेपर पहाड़ी सुग्गेको होता है। जान बची लाखों पाए। एक रात लंदनमें बसेरा डालकर हम लोग दूसरे दिन तड़के-तड़के वहाँसे चल दिए और कौपेनहेगेन होते हुए रेलगाड़ीसे डेनमार्कमें एल्सीनोरके इंटरनैशनल पीपिल्स कौलेज (अन्ताराष्ट्रिय-लोक-विद्यालय) में जा उतरे।

यहाँकी धरतीकी छटा कुछ निराली ही है। यों तो डेनमार्कके तीनों ओर नीला समुद्र लहरें लेता ही रहता है पर उसके भीतर भी धरती-पानीकी कुछ ऐसी अनोखी आँख-मिचौनी होती रहती है कि कहीं धरतीकी गोदमें पानी चुहलें करता है तो कहीं पानीकी गोदमें धरती डुबकी फिरती है। यहाँकी धरती कुछ कम ऊबड़-खाबड़ नहीं है, पर वाह रे दो पैरके जानवर (मनुष्य) ! उसे भी तोड़-ताड़कर

उसने ऐसा मुट्ठीमें कर लिया है कि उसे चाँदी उगलनेको कहो तो सोना उगलने लगे।

यहाँ धूपकी कमी रह-रहकर खलती है। कहाँ तो हमारा सलोना भारत, जहाँ बारह महीने खुली धूप, और कहाँ डेनमार्क, जहाँ धूप भी नई लजीली दुलहन बनी बादलोंकी ओटमें दिनरात छिपी बैठी रहती है कि कहीं किसीकी कुडीठ न लग जाय। कभी बरस-खाले घड़ी-दो-घड़ीको निकली भी तो बस छुई-मुई-सी झलक-मारकर घूँघट डाल लेती है। पर उतना भी कम न समझिए। उतनेमें ही सारा डेनमार्क अपना काम-धाम छोड़कर बिना पूछे छुट्टी मना बैठता है। यहाँ जब देखिए तब दलके दल बादल अपने धूमरे कन्धोंपर पानीके घड़े उठाए ऊपर खड़े रहते हैं और जब मनमें आता है तभी हरहर गंगे कर डालते हैं। पर यहाँके बादल हैं बड़े समझदार। इसीलिये वे कड़कते-गरजते नहीं, डराते-धमकाते नहीं, मान-मनौती नहीं कराते और मूसलाधार बरसते नहीं। दिनरात रिमझिम-रिमझिम फुहारोंसे छिड़काव करते हुए धरती-पर हरियाली बसाए रखते हैं।

मैं तो समझता था कि यहाँ भी लुएँ चल रही होंगी। काशीसे कुछ उन्नीस-बीसका फेर होगा। पर यहाँ आते ही देखता क्या हूँ कि जिस वसंतको हम लोग अपने यहाँ चैतमें ही नरियल-सुपारी थमा चुके थे वह यहाँ डेनमार्कसे मूछोंपर ताव दिए जमा बैठा है। जिधर आँख उठाकर देखिए उधर ही ढेरके ढेर लाल, पीले और उजले फूल गुच्छोंमें लटकते हुए आँखें बाँधकर बैठ जाते हैं। भला कोई आँखें फेर तो ले! पर यहाँके फूल आजकलके उन साथियों जैसे हैं जिनमें रंगरूप, बनाव-सिंगार, चटक-मटक और तड़क-भड़क तो बहुत है पर गंधके नाम जय सियाराम ही समझिए।

आजकलके दोस्त क्या, गोया कि हैं काग़ज़के फूल।
देखनेको ख़ुशनुमा, बूए-वफ़ा कुछ भी नहीं॥

फिर भी दो-चार फूल तो ऐसे निकल ही आते हैं जो बयारके पंखोंपर अपनी भीनी महक उड़ाकर थोड़ा-बहुत चारों ओर गमक ही जाते हैं। इन फूलोंके साथ जब रंगबिरंगे कपड़ोंमें सजी हुई मदभरी नवेलियाँ और नन्हें-मुन्ने बच्चे अपने फूलों-जैसे प्यारे मुखड़े लेकर हँसते-खेलते, उछलते-कूदते, किलकते-फुदकते, नाचते-थिरकते, हा-हा-ही-ही करते, तितलियोंकी आन-बान लेकर इधरसे उधर उड़ते और फिरकी बने घूमते-फिरते हैं तो धरतीके सुहावनेपनकी रही-सही कमी भी पूरी हो जाती है। बरसानेका फाग आँखोंके आगे बरसने लगता है।

यहाँके लोगोंको फूल-पत्तियोंका इतना चस्का है कि घरमें, छतपर, खिड़कीपर, छज्जेपर, लटकन-जालोंमें, फूलदानमें, जिधर देखिए बस फूल और पत्ते, फूल और पत्ते; यहाँतक कि भीतरकी भीतोंपर मढ़े हुए कागजोंपर भी आपको वही दिखाई देगा — फूल और पत्ते। आप कहीं किसीके यहाँ पहुँच भर जाइए, आपका बैठा हुआ मन झट उछलकर नाचने न लगे तो नाम बदल दीजिए।

यहाँ-वालोंमें काशीवाली मस्ती तो नहीं है फिर भी अपने-अपनेमें सभी मस्त रहते हैं। यहाँ कोई इस उधेड़-बुनमें नहीं रहता कि कल क्या होगा, कैसे बीतेगी? बस खाओ, पीओ, रागरंग मनाओ। कलकी उलझनमें न आप घुलो न औरोंको घुलने दो। बस, अपनी धुनमें सब मगन रहते हैं। हमारे यहाँ तो पचपन बरसके हुए नहीं कि उन्हें नरियल-सुपारी मिली नहीं। पर यहाँ तो सत्तर बरसके पोढ़ भी ऐसे लाल दिखाई पड़ते हैं मानो अभी सगाई किए चले आ रहे हों। हमारे यहाँ तो लोग बुढ़ापेके लिये, लड़के-बच्चोंके लिये, पढ़ाई-लिखाईके लिये, ब्याह-गौनेके लिये और न जाने किन-किन कामोंके लिये कौड़ी-कौड़ी जोड़ते मर जाते हैं, फिर भी लाखमें कोई एक निकलता है जो कहे कि मेरी साध पूरी हुई, मेरे दिन हँसते कटे। पर यहाँ तो सारी झंझट बीमेवालोंके सिर मढ़ दी जाती है। बीमारीका बीमा, बेकारीका बीमा, घरका

बीमा, मोटरका बीमा। बीबीको छोड़कर जिसका चाहे उसका बीमा करा लीजिए और बैठे चैनकी बंसी बजाइए। जहाँ आपका सिर भिन्नाया कि बीमेवाले पहुँचे डाक्टर लेकर। जहाँ काम छूटा कि बीमेवाले पहुँचे काम लेकर या काम न मिलनेतकका पैसा लेकर। आपका घर गिरे, ढहे, जले, आपकी बलासे। बीमेवाले अपने आप उसकी जाँच-पड़ताल करेंगे और जबतक दूसरा बन न जायगा तबतक मुनिस्पिल्टी झख मारकर आपको घर ढूँढ़ कर देगी। जहाँ बच्चा होनेको हुआ कि अस्पताल पहुँचा दीजिए और जच्चा-बच्चाकी सारी देखरेख सरकारके मत्थे डाल दीजिए। बड़े होनेपर भी घरवालोंपर कोई बोझ नहीं। झट 'बूढ़ोंकी टेकरी' (ओल्ड मेन्स होम) में जा धमकिए। सरकार झख मारकर खाना-कपड़ा देगी, दवादारू करेगी और कहीं वहीं आँखें मुँद गईं तो ले जाकर बड़े अच्छे ढंगसे धरतीकी गोदमें लिटा भी आवेगी। हाँ, आप ही चाहें तो अपने बच्चोंकी देखभाल और पढ़ाई-लिखाईका बोझ अपने सिर ले सकते हैं। नहीं तो उन्हें भी ठेलिए सरकारके मत्थे, क्योंकि बच्चोंको पढ़ानेका काम है सरकारका। अपढ़ कोई रह ही नहीं सकता। बताइए, जब अपने सिर कोई झंझट ही नहीं है तो उन्हें क्या काले कुत्तेने काटा है कि बिना बातके अपने माथेपर सलवटोंका जाल फैलावें।

> खुलि खेलौ संसारमें, बाँधि न सक्कै कोय।
> घाट जगाती क्या करै, जौ सिर बोझ न होय॥

यहाँकी धरतीमें न कोयला है न लोहा, पर खेती भी किसी सोनेकी खानसे कम नहीं है। यहाँ खेतीमें कोरा धरतीसे सिरफुड़ौवल करना नहीं है। गाय और सूअर पालना भी यहाँ खेती ही समझी जाती है। यहाँकी गाएँ क्या हैं, पूरी कामधेनु हैं। देखिए तो जी खिल उठे। उन बड़ी-बड़ी, मोटी-तगड़ी, चितकबरी, पटनहियाँ

गौओंके समान बिना डीलवाली और सपाट पीठवाली गौओंको देखकर ऐसा जी करता है कि इनके पैरोंमें लोट जाऊँ और याज्ञवल्क्य बनकर कह दूँ अपने चेलोंसे—'हाँक ले चलो बेटा अपने गाँवको !' उनका बाँक (थनोंका घेरा) देखिए तो जान पड़े मानो दूधका मटका बाँधे घूम रही हों । थन क्या हैं दूधके नल हैं । नीचे बाल्टी रख दीजिए और चुटकी बजाते-बजाते दुह लीजिए पन्द्रह सेर पक्का दूध ।

मेरी बात सुनकर तो आप हँस पड़ेंगे, पर सच मानिए, यहाँके सूअर भी कुछ कम प्यारे नहीं होते । न तो ये हमारे यहाँके सूअरों-जैसे बेढंगे होते, न उतने बेडौल । उनका रंग देखिए तो पका टमाटर, और आगेसे पीछेतक ऐसे गोल जैसे पानी-भरा पखाल। कोई पहलवान भी थूथन थामे तो घुमाए न घूमे । और फिर कितने मुस्टंडे कि दस दिनका छौना भी दस पग उठाकर ले चलना पड़े तो जोड़-जोड़ हिल जायँ । बारह महीनेका पाठा सूअर दूरसे देखिए तो ऐसा लगे जैसे ऐरावतका बच्चा छीरसागरमेंसे नहाए चला आ रहा हो । मैंने यहाँके एक साथीसे पूछा—'क्यों भाई ! ये गाएँ और सूअर किस चक्की-का पिसा खाते हैं ?' वह हँसकर बोला—'इन्हें हम लोग गेहूँ, जौ, मटर, सेब और चुकन्दर खिलाते हैं और सूअरोंको तो भरपेट मक्खन निकाला हुआ दूध पिलाते हैं, तभी तो इनपर इतना माँस चढ़ता है ।' यह सुनकर मेरी ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गई । कहाँ तो हमारे यहाँ आदमी-तकको एक जून भरपेट खानेको नहीं मिल पाता, बच्चोंको देखनेतकको दूध नहीं मिलता और कहाँ यहाँ सूअरतक सेब और चुकन्दर खाते हैं, कुंडाभर दूध सड़प जाते हैं । अब मेरी समझमें आया कि यहाँकी गौएँ इतनी दुधार क्यों हैं और सूअरोंपर इतनी मोटापा क्यों चढ़ी है ।

यों तो खाने-पीनेमें यहाँ बड़ा पैसा निकल जाता है और रहन-सहन भी कुछ कम महँगा नहीं है पर दूध तो समझिए कौड़ियोंके मोल

बिकता है, कुल चार आने सेर; वह भी कैसा कि घड़ी-भर-चूल्हेपर चढ़ा रखिए और पावभर वह मोटी चिकनी मलाई उतार लीजिए जीभपर रखते ही सरककर पेटमें जा समावे।

मक्खन और सूअरका माँस बेच-बेचकर ही यहाँके छोटे-छोटे किसान भी बड़े तावसे बढ़िया-बढ़िया घरोंमें रहते हैं, भड़कीली मोटरों-पर घूमते हैं, ठाठका खाते-पहनते हैं, ठंढी-गरम फुहारोंमें नहाते हैं, बिजलीके चूल्होंपर रसोई बनाते हैं, छुट्टीके समय रेडियो सुनते हैं और टेलिफ़ोनसे अपने संगी-साथियों या कामकाज-वालोंसे मेलजोल बनाए रखते हैं। हमारे यहाँ किसीके पास इतनी माया हो जाय तो धरतीपर पैर न धरें। पर इतना बढ़िया खानपान और रहन-सहन होनेपर भी इन लोगोंमें आलसका नाम नहीं। दिन निकला नहीं कि सब अपनी हँसिया-कुदाली लेकर निकले नहीं खेतोंकी देख-भालको। यहाँके लोग बड़ी-बड़ी बस्तियोंमें जाकर रहनेके बदले अपने खेतोंपर ही घर बनाकर चौबीस घण्टे अपनी खेती-बारी और ढोर-डङ्गरोंकी देख-भाल करते रहते हैं। जुताईका बहुत-सा काम तो छोटे-बड़े या हाथके धरतीफोड़ (ट्रेक्टर) से ले लेते हैं पर काम पड़ा तो घोड़ोंसे भी हल चलानेमें नहीं चूकते। यहाँके घोड़े भी वह जबरजङ्ग कि मुँह उठाकर एक बार हिनहिना दें तो खड़ा आदमी धरती चाटने लगे। खेती-बारीमें इतने जी-जानसे लिपटनेसे ही अकाल इनके पासतक नहीं फटकने पाता, खेत सोना उगलते हैं, गौएँ कामधेनु बनी घूमती हैं और सूअर ऐसे टञ्च बने फिरते हैं कि कहीं धरतीको कोई हिरण्याक्ष लेकर फिर पातालमें पैठ जाय तो थूथन डालकर पूरी धरतीको ऊपर उठाए लिए चले आवें।

यहाँके चालीस लाख लोगोंमेंसे छह लाख तो खेतीका ही धंधा करते हैं। हम लोग कहते तो हैं—'उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान,' पर हमारा भोला किसान भी चाहता यही है कि मेरा बेटा कहीं जाकर नौकर हो जाय। पर यहाँ बस चले तो सभी हल

सँभाल लें। यों देखा जाय तो यहाँ करोड़पति कोई नहीं है पर ऐसे मरभुखे भी नहीं हैं कि घर-घर जाकर हाथ पसारते फिरें। हलवाहे, पल्लेदार और छोटे-मोटे काम करनेवाले कमकर भी और नहीं तो छह-सात सौ रुपया महीना फटकार ही लेते हैं और जब निकलते हैं तो मूँछोंपर ताव देकर (भले ही मूँछें न रखते हों)। नाई या धोबी भी यहाँ कामपर निकलता है तो अपनी मोटरपर चढ़कर ही निकलता है।

यह न समझिए कि ये लोग दिन-रात खटते रहते ही हैं। नहीं। बस जितनी देर काम करना होता है, जमकर किया। फिर घर आए, कपड़े बदले और छैल-छिकनियाँ बनकर अपनी सङ्गिनके हाथमें हाथ डाले किसी फुलवारीमें घूमने निकल गए।

यहाँ ब्याहका चलन वैसा ही है जैसा सारे योरोपमें। पहले देखा-देखी, फिर मेल-जोल, तब घूमना-फिरना और मन मिलनेपर एक दिन धूम-धामसे गिरजाघरमें दोनोंका गठबन्धन। पर ऐसे आपसके जोड़े हुए ब्याह बहुत फलते नहीं दिखाई देते। थोड़े ही दिनोंमें बात-बातपर तुनकना, बिगड़ना, उलझना, झगड़ना होने लगता है और एक दिन जिस घरमें दोनों साथ मिलकर घुसे थे उसी घरसे दोनों अलग हो जाते हैं और नया साथी या नई साथिन ढूँढ़ने लगते हैं। पहले तो ये लोग बाहरी रंग-रूप और टीमटामपर दीयेके फतिंगे बन जाते हैं पर जब रंग उतरने लगता है, दोनों एक दूसरेको समझने-बूझने लगते हैं, रूप ढलने लगता है तो दोनों ही एक दूसरेके लिये दूधकी मक्खी बन जाते हैं। यहाँके लोग भी इस ढंगके गठबन्धनसे ऊब तो चले हैं पर अब वह कहावत हो गई है कि 'बाबाजी तो कम्बल छोड़ना चाहते हैं पर कम्बल ही बाबाजीको नहीं छोड़ रहा है।' अब तो सुना हमारे यहाँ भी यह रोग जड़ पकड़ने लगा है। भगवान् ही बचावें तो बचें। इतना सब देख-सुनकर भी आँखें न खुलें तो कुछ अपने दिन ही बुरे समझिए।

आपकी चिट्ठीके लिये तरसता रहता हूँ। काशीकी कोई नई बात हो तो लिखिएगा।

आपका प्यारा शिष्य—हरिहर

निबन्ध

कहानी, नाटक और पत्रके अतिरिक्त इस ठेठ तद्भवात्मक भाषा-शैलीमें गम्भीर विषयोंपर निबन्ध भी लिखे जा सकते हैं। ज्योतिष-विज्ञान जैसे नीरस और गम्भीर विषय भी इस तद्भवनिष्ठ भाषा-शैलीमें कैसे खरे उतरते हैं इसके उदाहरणके लिये लीजिए ग्रहोंके जन्मकी कथा—

धरती-सूरज-चाँद-सितारे

तड़के-तड़के ज्यों ही हम आँख खोलते हैं तो दिखाई पड़ता है कि पूरबसे लाल-लाल सूरजका गोला ऊपर उठा चला आ रहा है, धूप फैल चली है और गर्मी बढ़ने लगी है। जहाँ साँझ हुई तो देखा कि सूरज तो पच्छिममें ढलकर छिप गया और ऊपर नीले सुन्नमें तारे छिटक गए, चाँद निकल आया। इन्हीं तारोंमें मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि जैसे बहुत बड़े-बड़े तारे भी हैं, पर हैं इतनी दूर कि हमारी कानी उँगलीके छोरसे भी छोटे होकर टिमटिम टिमटिमाते हैं। आप जानते होंगे कि यह चन्द्रमा जो हमारी धरतीके चारों ओर चक्कर लगता है और ये धरती, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि सब सूरजके चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं। इन सबको आप एक थैलीके चट्टे-बट्टे समझिए। पर क्या कभी आपने बैठकर ठंढे जीसे सोचा है कि ये सबके सब आ कहाँ से टपके ?

जो लोग इन तारोंकी बनावट और चालकी छानबीन कर रहे हैं, वे बताते हैं कि सूरजके चारों ओर घूमनेवाले जितने गोले (पिंड या ग्रह)

हैं उन सबमें बृहस्पति सबसे बड़ा है, धरतीसे चौदह-सौ गुना बड़ा, पर तौलिए तो धरतीसे कुल तीन सौ गुना भारी निकलेगा क्योंकि बड़ा वह चाहे जितना हो, पर हल्का बहुत है। वह इतना बड़ा इसलिये दिखाई देता है कि उसपर धुआँ (गैस) बहुत छाया रहता है। इन सबमें सब गोलोंसे सुहावना और लुभावना है शनि, जिसके साढ़े साती चक्करसे हम लोग बड़े डरे रहते हैं। पर आप दूरबीनमें देखिए तो वह बड़ा सुहावना दिखाई देगा। उसके चारों ओर दस चन्द्रमा और तीन चमकदार छल्ले हैं। उसमें इतनी गर्मी है कि उसके चारों ओर धुआँ ही धुआँ फैला हुआ है। यह शनि भी हल्का इतना है कि पानी-पर डाल दो तो ऐसे तैरने लगे जैसे हवा भरी हुई गेंद तैरने लगती है।

ऐसे-ऐसे अनोखे चमकीले गोले सब कहाँसे आ पहुँचे, यह कुछ कम बड़ी उलझन नहीं है। पर जो लोग हाथ धोकर इनकी छान-बीनके पीछे पड़े हैं वे क्या इनकी टोह लगाए बिना माननेवाले हैं। सबसे पहले फ़ान्सके ला प्लेने बताया कि सबसे पहले चारों ओर छाए हुए इस सुन्नमें एक चमकदार गोला (नीहारिका) था जिसे हमारे यहाँ वेदोंमें हिरण्यगर्भ कहा गया है (हिरण्यगर्भः समावर्त्तताग्रे)।

इस चमकीले गोलेमें जब भीतर खिंचाव होने लगा तो यह सिकुड़-कर, घूम-घूम कर, सिमट-सिमटकर धीरे-धीरे गोल बनता गया। यह गोला ज्यों-ज्यों ठंढा होता और सिकुड़ता गया त्यों-त्यों इसका डील-डौल तो कम होता गया पर इसके घूमनेकी चाल बढ़ती गई। घूमनेकी चाल बढ़ जानेसे यह नीहारिका गोलसे चिपटी होने लगी और बढ़ते-बढ़ते इसकी चाल इतनी बढ़ गई कि इसीमेंसे एक चक्कर फटकर अलग हो गया और जो बीचमें बच रहा वह सिकुड़ता गया। धीरे-धीरे उसमेंसे भी ऐसे ही चक्कर बन-बनकर निकलते गए। ये सब चक्कर अलग-अलग निकलकर, घूम-घूमकर, सिमट-सिमटकर गोल बन-बन-कर ग्रह बनते गए। फिर इन ग्रहोंमें भी वही चक्कर बनता गया और

फिर इनमेंसे भी वैसे ही गोले निकल-निकलकर चन्द्रमा जैसे उपग्रह बनकर उन ग्रहोंके चारों ओर चक्कर काटने लगे।

अब गिनती जोड़नेवालोंने लेखा जोड़कर बताया कि सबसे पहलेके जिस चमकीले गोलेमेंसे सूरज, धरती, मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और तारे निकले होंगे, उसकी बनावट साँप जैसी टेढ़ी-मेढ़ी होगी। ला प्लेसने जब सन् १७९६में ये सब बातें बताईं तब दूरबीन तो थी नहीं, इसलिये यह तो ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता था कि ये चमकीले गोले (नीहारिका) होते कैसे हैं पर ला प्लेसके कई बरस पीछे लॉर्ड रौसने आयरलैंडमें दूरबीन बैठाकर और देखकर बताया कि आकाशमें जिन्हें हम बहुतसे चमकीले गोले (नीहारिका) समझते हैं वे नीहारिका नहीं, वरन् अनगिनत तारोंके झुण्ड हैं। पर थोड़े दिनोंमें उन्होंने ही फिर देख-समझकर बताया कि नहीं, ये चमकीले गोले ही हैं और सचमुच साँपके जैसे लहरियादार ही हैं।

जब यह साँपके जैसी लहरियादार नीहारिकाकी बात पक्की हो गई तब लोगोंने कहा कि प्लूटो और नेप्चून नामके जो गोले सूरजसे सबसे दूर पड़ते हैं, वे ही सबसे पहले सूरजसे बाहर छिटके होंगे और बुध, जो सूरजके सबसे पास है, सबसे पीछे अलग हुआ होगा। इसलिये वह इन सबका सबसे छोटा भाई है। इसीके साथ-साथ यह बात भी पक्की हो गई कि ये सब एक ही ओरको चक्कर लगाते होंगे; ऐसा नहीं कि कोई दाएँ जाता हो, कोई बाएँ।

पर अब थोड़े दिनसे लोग यह बात भी नहीं मानने लगे हैं। सन् १८८० में न्यूज़ीलैंडके एक तारोंकी खोज करनेवालेने बताया कि हमारे इस सूरजमें और ऐसे ही किसी बड़े तारेमें अचानक कभी मुठभेड़ हो गई होगी जिससे ये सब धरती, मंगल, बुध, चाँद और तारे छिटककर फैल गए। उसका कहना है कि मुठभेड़ होनेसे जितना कुछ टूटा-फूटा बिखरा होगा वह सबका सब पहले

तो धुँआ बनकर फैल गया होगा और फिर सिकुड़कर अलग-अलग ग्रहों और उपग्रहोंके रूपमें ढल गया होगा। लगभग यही बात सन् १९०९ में अमरीकाके प्रो० चेम्बरलेन और मोल्टनने भी कही थी। उन्होंने कहा कि इस सूरज और दूसरे किसी तारेमें टक्कर तो नहीं हुई, पर दोनों एक दूसरेके पाससे निकल गए होंगे। इससे दोनोंपर बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठी होंगी और इन लहरोंसे जितना कुछ पदार्थ बाहर निकल गया होगा उस के नन्हें-नन्हें टुकड़े फैलकर, मिलकर, अलग-अलग इकट्ठे होकर ग्रहों और उपग्रहोंके रूपमें ढल गए होंगे।

पर यह बात भी बहुत लोगोंको जँची नहीं। कैम्ब्रिजके बड़े ज्योतिषी सर जेम्स बीम्सने एक नई बात सामने रक्खी, जो कुछ-कुछ समझमें भी आती है। उनका कहना है कि जैसे धरतीके पास चन्द्रमाके आ जानेसे समुद्रमें ज्वार उठने लगता है वैसे ही दो तारे एक दूसरेके बहुत पास होकर होकर निकल जायँ तो उनपर भी बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगेंगी। ये दोनों तारे बहुत पास आ जायँ तो दोनों तारोंमेंसे धुएँके लम्बे-लम्बे डोरे खिंचने लग जायँगे इसलिये आजसे अरबों बरस पहले सबसे पुराने सूरजके बहुत पाससे कोई तारा निकल गया जिससे सूरजमेंसे ही धुएँका एक बहुत लम्बा तार खिंचकर अलग हो गया। यह डोरा गुल्ली या सिगारकी बनावटका था जिसका बीचका पेट मोटा और दोनों छोर नोकीले थे। इसलिये बीचमें आनेवाले वृहस्पति और शनि तो सब ग्रहोंमें बड़े हो गए और छोरपर पड़नेवाले ग्रह छोटे होते चले गए। इसी गुल्ली जैसे डोरके छितरा जानेसे ही ये सब ग्रह घूमते-घामते गोल होकर अलग-अलग ग्रह बन गए।

पहलेवाले सूरज और पाससे होकर निकलनेवाले तारेमेंसे जो हल्का और पतला होगा उसीमेंसे यह गुल्ली जैसा तार निकला होगा क्योंकि

उसीमें सबसे बढ़कर उलट-पलट हुआ होगा। इस गुल्ली-जैसे तारमेंसे निकले हुए गोले जब घूमने लगें तब उनके घूमनेकी लीक कुछ टेढ़ी-मेढ़ी थी क्योंकि उनपर उन दोनों तारोंका (सूरज और उसके पाससे होकर निकलनेवाले तारेका) खिंचाव बराबर काम कर रहा था। पर धीरे-धीरे बड़ा और भारी तारा दूर होकर निकल गया इसलिये ये सब ग्रह बस सूरजके ही चारों ओर लीक बनाकर चक्कर काटने लगे। ऐसे ही जब ये सब ग्रह टेढ़ी-मेढ़ी लीकमें सूरजके चारों-ओर चक्कर काट रहे थे तब इन गोलोंमें भी वैसी ही लहरें उठी होंगी और इनमेंसे भी धुएँके डोरे निकल पड़े होंगे जो कुछ ग्रहोंके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं।

इस गुल्लीके बीचवाले गोलों (ग्रहों) के साथ बहुत अधिक चन्द्रमा (उपग्रह) हैं और छोरपर आए हुए ग्रहों पर कम हैं। वृहस्पतिके साथ नौ और शनिके साथ दस चन्द्रमा हैं, युरेनस और नेपचूनके साथ एक-एक पर बहुत बड़े-बड़े चन्द्रमा हैं। यह बात लहरके सिद्धांत (टाइडल थियरी) से समझमें आ जाती है क्योंकि जो ग्रह जितना छोटा रहा
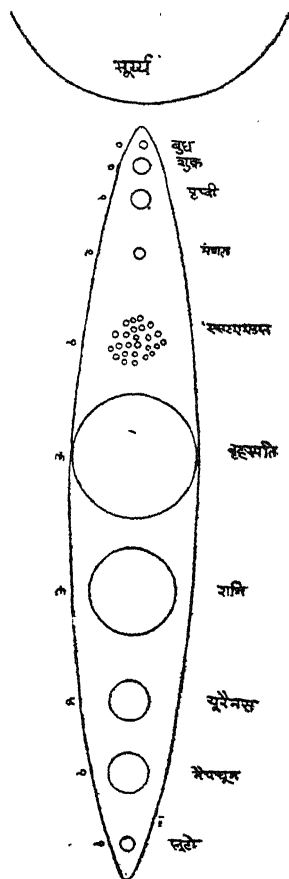
होगा वह उतने ही झटपट पिघला होगा और उतने ही झटपट उसमेंसे लहरें उठी होंगी और डोरा टूटकर अलग हो गया होगा। इससे यह माना जाने लगा कि बुध और शुक्र तो जनम लेते ही या तो पनियल बन गए होंगे या ठोस और हमारी धरती और नेपच्यून कुछ ठोस और कुछ पनियल होगी। मंगल, बृहस्पति, शनि और युरेनस धुआँ (गैस) बनकर ही उपजे होंगे और जबतक उनके उपग्रह अलग नहीं हो गए तबतक वे धुएँ ही बने रहे होंगे।

एस्टाराइड्स नामके जो तारे मंगल और बृहस्पतिके बीचमें दिखलाई पड़ते हैं इन्हें ये लोग किसी ऐसे ग्रहके बिखरे हुए टुकड़े बताते हैं, जो कभी मंगल और बृहस्पतिके पास आ जानेसे छोटे-छोटे टुकड़ोंमें टूटकर बिखर गया होगा। ऐसे ही शनिके चारों ओर जो तीन चमकीले छल्ले दिखलाई पड़ते हैं वे भी शनिके पास पहुँचे हुए किसी उपग्रहके टूटे हुए टुकड़ोंसे ही बने हैं। यह समझिए कि यह हमारा चन्द्रमा भी कभी हमारी धरतीके बहुत पास आ जाय तो यह भी टूट-बिखरकर धरतीके चारों ओर वैसे ही छल्ला बनकर चमकने लगे। पर डरनेकी कोई बात नहीं है। अभी करोड़ों बरसोंतक ऐसा होगा नहीं।

ये सब बातें अभी अटकलपर ही हैं पर ये सब सचमुच कैसे बने यह भगवान् ही जानता है।

इन उपर्यङ्कित उद्धारणोंसे प्रतीत होगा कि सरल तद्भव-देशी-निष्ठ ठेठ नागरीमें सब प्रकार की रचनाएँ अत्यन्त सुन्दरता, सरलता और सफलताके साथ की जा सकती हैं और उनके प्रभावका स्तर भी ऊँचा रक्खा जा सकता है। किन्तु यह अवश्य है कि इस भाषा-शैलीमें लिखनेके लिये ठेठ नागरीकी व्यापक शब्दावलीपर अखण्ड और अपरिमित अधिकार होना चाहिए।

६

तद्भव-तत्समात्मक भाषा-शैली

पिछले अध्यायमें हम नागरीकी जिस ठेठ तद्भव-देशीनिष्ठ भाषा-शैलीका विवरणात्मक परिचय दे आए हैं वह यद्यपि अत्यन्त मधुर, रसमय, प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावशालिनी होती है किन्तु उसका व्यवहार अब प्रायः लुप्त हो चला है। इस ग्रन्थके लेखकको छोड़कर नागरीका एक भी लेखक ऐसा नहीं है जो अत्यन्त शुद्धताके साथ नागरीकी इस ठेठ तद्भव-देशी-निष्ठ शैलीका प्रयोग करता हो। इसके तीन कारण हो गए हैं—१. तद्भवात्मिका शैलीका प्रयोग करनेके लिये भाषा और शब्द-भाण्डारपर जो अतुल अधिकार अपेक्षित है उसकी कमी हो गई है। २. राष्ट्र-भाषा हो जानेके कारण तद्भवनिष्ठ भाषा व्यापक रूपसे उतनी सर्वबोध्य नहीं हो सकती जितनी संस्कृतनिष्ठ, क्योंकि संस्कृतके तत्सम शब्द भारतकी सभी भाषाओंके लिये जितने बोधगम्य हैं उतने तद्भव शब्द नहीं हैं। ३. अधिकांश लेखक प्रायः संस्कृतनिष्ठ या तद्भव-तत्सम-मिश्र भाषा-शैलीका प्रयोग करने लगे हैं। इस संस्कृत-निष्ठताका एक

और भी कुपरिणाम हुआ है कि रूढोक्ति या सिद्धोक्तिपूर्ण (मुहावरेदार) भाषाका भी लोप हो चला है। तद्भव-तत्सम-मिश्र भाषा-शैलीमें यह भी सुविधा मिल गई है कि उसे चाहे जितना संस्कृत-निष्ठ बनाते चलो और चाहे जितना तद्भवनिष्ठ। इस सम्मिलनका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि आजकल भाषा जितनी ही अधिक संस्कृत-निष्ठ तथा लाक्षणिक होती है उतनी ही वह प्रौढ, प्राञ्जल और संसिद्ध (स्टैंडर्ड) समझी जाती है।

तद्भव-तत्समात्मक भाषा-शैलीके भेद

उपर्यङ्कित विवेचनके अनुसार यदि तद्भव-तत्सम-मिश्र भाषा-शैलीका विश्लेषण किया जाय तो उसके निम्नाङ्कित भेद प्राप्त होंगे—

क. सरल वाक्य-शैली।

ख. मिश्र वाक्य-शैली।

ग. लाक्षणिक सरल वाक्य-शैली।

घ. लाक्षणिक मिश्र वाक्य-शैली।

ङ. सिद्धोक्तिपूर्ण सरल वाक्य-शैली।

च. सिद्धोक्तिपूर्ण मिश्र वाक्य-शैली।

आजकल इन शैलियोंमें तद्भव-तत्समात्मक सरल वाक्य-शैली, मिश्र वाक्य-शैली, लाक्षणिक सरल वाक्य-शैली तथा लाक्षणिक मिश्र वाक्य-शैलीमें ही अधिकांश रचनाएँ हो रही हैं। यद्यपि सिद्धोक्तिपूर्ण तद्भव-तत्समात्मिका वाक्य-शैलीका रूप अभी स्पष्ट निर्धारित नहीं हो पाया हो फिर भी उसका प्रचलित प्रयोग यही है कि सिद्धोक्तियाँ

(मुहावरे) तो प्रायः तद्भवात्मिका होती हैं, शेष वाक्यांशकी संज्ञाएँ और विशेषण तत्समात्मक होते हैं और क्रियाएँ भी प्रायः करना और होनेके साथ क्रिया सूचक संज्ञाके साथ मिलकर बनाई जाती हैं। जैसे निम्नांकित ठेठ तद्भवनिष्ठ वाक्य—

अपने बैरीकी बड़ाई सुनकर उसकी छातीपर साँप लोटने लगे।

का तद्भव-तत्समात्मक सिद्धोक्तपूर्ण रूप यह नहीं होगा—

अपने शत्रुका गुण-गान श्रवण करके उसके वक्षःस्थलपर सर्प लुण्ठित होने लगे।

वरन् उसका रूप यह होगा—

अपने शत्रुका गुण-गान श्रवण करके उसकी छातीपर साँप लोटने लगे।

अतः तद्भव-तत्समात्मिका भाषा-शैलीमें सिद्धोक्तियोंका प्रयोग तो अभी तद्भवात्मक ही है, शेष अंश तत्समात्मक होता जा रहा है।

तद्भव-तत्सम मिश्र सरल वाक्य शैली

सरल वाक्य शैलीकी परिभाषा देते हुए पीछे बताया जा चुका है कि सरल वाक्यमें एक क्रिया-पद होता है। तद्भव-तत्समात्मक भाषा-शैलीमें सरल वाक्योंवाला यह वर्णन पढ़िए—

शबरी

शबरीके माता-पिता बचपनमें ही मर गए थे। उसके पिताके एक सम्बन्धीने उसका पालन किया। बड़ी होकर वह अन्य शबर-कन्याओं

के समान पर्वतसे लकड़ी-वकड़ी ले आया करती थी। शबरीके पिता जाति-शबर थे। वे माँस नहीं खाते थे। उन्होंने अनेक तीर्थोंपर सत्सङ्ग किया था। इसी संस्कारसे शबरीको भी मांससे अरुचि थी। उन दिनों अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र रामकी बड़ी धूम थी। उन्होंने शिवका धनुष तोड़ डाला था। उन्होंने ताड़का नामकी राक्षसीको भी मार डाला था। उन्होंने पैरसे पत्थरको छूकर सुन्दर स्त्री बना दिया था। शबरीका धर्म-पिता उसे नित्य ऐसी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनाया करता था। ये कथाएँ सुन-सुनकर शबरीके मनमें रामकी भक्ति जाग गई।

धर्मपिताके देहान्तके पश्चात् शबरी सन्त-सेवामें लग गई। वह रातको आश्रममें लकड़ी लाकर रख जाती थी। कभी-कभी वह प्रातः-काल झाड़ू भी लगा आती थी।

अपने आश्रमके मार्गमें नित्य झाड़ू-बुहारू देखकर मतंग ऋषिको बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन उनके एक शिष्यने शबरीको झाड़ू देते पकड़ कर पीट दिया। इसी पापसे पम्पासरका जल रक्तमय हो गया। यह देखकर मतङ्गने सब तपस्वियोंसे कहा—'अब रामके आनेपर ही यह पम्पासर शुद्ध होगा।' शबरी वहीं रहकर रामका भजन करने लगी।

शबरी युवती थी। कुछ दुष्ट आश्रम-वासी उसपर बुरे-बुरे आक्षेप करने लगे। शबरीको यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसने मतङ्गजीसे सब बातें जा सुनाईं। मतङ्ग ऋषिने शबरीसे कहा—'तुम चिन्ता न करो। एक दिन राम यहाँ आवेंगे। उनके दर्शनसे तुम तर जाओगी।' यह कहकर उन्होंने योगाग्निसे शरीर भस्म कर लिया।

शबरी राम-राम रटती हुई बेर चुन-चुनकर इकट्ठे करने लगी। एक दिन राम आ ही तो गए। वह आनन्दसे नाच उठी। राम आए। ऋषि-मण्डली भी साथ आई। शबरीने रामकी पूजा की। रामके कहनेसे शबरीने पंपासरमें स्नान करके उसे पवित्र किया। रामने उसे

भक्तिका उपदेश दिया। उन्होंने शबरीके हाथके बेर खाए। रामकी आज्ञा लेकर रामके आगे ही शबरीने शरीर छोड़ दिया।

तद्भव-तत्समात्मक भाषाकी मिश्र वाक्य-शैली

तद्भव-तत्समात्मक भाषाकी मिश्र वाक्य-शैलीमें सब वाक्य मिश्र होते हैं अर्थात् दो या दोसे अधिक ऐसे वाक्योंसे मिलकर वाक्य बनते हैं जिनमें संस्कृतके तद्भव और तत्सम तथा देशी सभी शब्द रूपोंका प्रयोग होता है। एक वर्णन लीजिये—

वर्णन

शबर

गोदावरीके उत्तरी भागमें जो महाकान्तार है, उसमें प्राचीन कालसे शबरोंकी बड़ी-बड़ी बस्तियाँ रहती आई हैं और आज भी उड़ीसासे गोदावरीके मुहानेतकके जङ्गलोंमें स्थान-स्थानपर शबरोंकी बस्तियाँ विद्यमान हैं। ये लोग बड़े टोनहे अर्थात् जादू-टोना करनेवाले होते हैं और इनके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि 'शबरके पाँगे और रावतके बाँधे, कोई बच नहीं सकता।' शबरोंके सरदारोंको रावत कहते हैं। शबर लोग अपने घरोंमें भवानी और 'दुल्हा दीदन' देवताकी स्थापना करके पूजा करते हैं, यहाँतक कि कभी-कभी तो एक-एक घरमें कई-कई दुल्हा स्थापित हो जाते हैं, जिससे यह प्रसिद्ध हो गया कि है 'जै चूल्हा, तै दूल्हा।' ये लोग अपने उन शाबरी मन्त्रोंके लिये बड़े प्रसिद्ध हैं जिनके द्वारा वे लोग आग, पानी, बिजली तथा जीवोंको बाँध लेते हैं। जङ्गली जड़ी-बूटियोंका भी इन्हें बड़ा अद्भुत ज्ञान होता है किन्तु यह सब होते हुए भी ये लोग शकुन आदि बातोंमें बड़ा अन्ध-विश्वास करते हैं। ये लोग सानूदानेकी मदिराका बहुत प्रयोग करते हैं जिसे वे 'अरसाल' कहते हैं। इनके यहाँ बच्चोंके नाम सोमारू-मँगरूके समान दिनोंके

नामोंपर 'डल्लो, गाद्लो' आदि रक्खे जाते हैं। शबर स्त्रियाँ कानोंमें 'खिलवान' (एक प्रकारका हड्डियों और कौड़ियोंसे बना झूमका), गलेमें गुञ्जाकी माला या चौलड़ा टीका और हाथोंमें 'खाडू' या कड़ा पहनती हैं। शबर-स्त्रियोंका अधिक श्रृङ्गार गुञ्जासे ही होता है और वे अपने हाथ-पैर और मुँहपर गोदना गोदाए रहती हैं। शबर लोग प्रायः जङ्गली जड़ी-बूटी और लकड़ी काटकर नगरोंमें बेचते हैं और मधुका छत्ता उतारनेमें तो वे इतने कुशल हैं कि छत्तेपर उनका हाथ पड़ते ही क्षण-भरमें सब मक्खियाँ अपने आप उड़ जाती हैं और ये पूरा मधुका छत्ता लिए-दिए उतर आते हैं। ये लोग सारे संसारको अस्पृश्य समझते हैं और अपनी जातिवाले शबरोंको छोड़कर किसीके हाथका बनाया भोजन-पानी नहीं ग्रहण करते। ये लोग बड़े चतुर लक्ष्यवेधी धनुर्धर होते हैं और आज भी बाण और भालेसे ही आखेट करते हैं। प्रति दूसरे वर्ष वसन्तपञ्चमीके लगभग ये लोग अपने पितरोंकी स्मृतिमें कर्ज नामका उत्सव मनाते हैं, जिसमें बारह दिनतक लगातार ये लोग नाचते-गाते रहते हैं और अन्तिम दिन भैंसकी बलि देते हैं। इस उत्सवके लिये ये लोग जलिया (पितरोंका पुतला) स्थापित करते हैं।

शबरोंमें जब कोई मर जाता है तब उसे उसीके खेतमें उसके सब अस्त्र-शस्त्रों और यन्त्रोंके साथ रखकर आमकी लकड़ीसे जला देते हैं और उसकी स्मृतिमें एक पत्थर गाड़ देते हैं। दाह-क्रियाके समय इनसे कोई मृतकका नाम पूछ ले तो ये उसका प्राण लेनेको तैयार हो जाते हैं और यही व्यवहार ये लोग उत्सवमें बाधा देनेवालोंके साथ भी किया करते हैं। यद्यपि इनके यहाँ विवाहमें बड़ा खटराग होता है किन्तु यदि कोई उतना न कर सके तो बलपूर्वक कन्याका हरण कर ले जा सकता है पर जहाँ वैवाहिक विधान होता है वहाँ विवाह स्वीकृत हो जानेपर कन्या पक्षवाले वर-पक्षवालोंको भर-पेट गालियाँ देते और पीटते हैं। इनके यहाँ विवाहके बदले मृत्युके समय ढोल बजाया जाता है।

विवाहके समय एक शबर पुरोहित बन जाता है और वह वर तथा कन्याके पूर्वजोंका नाम ले-लेकर (शाखोच्चार करके) पत्तेके दोनेमें अरसाल (सागूकी मदिरा) डालता जाता है और कन्या जब कह देती है कि 'मैं और यह (पति) दोनों शबर हैं, फिर क्यों न विवाह करें ?' तब विवाहकी क्रिया पूर्ण हुई समझी जाती है।

नाटक

इस तद्भव-तत्समात्मक भाषाकी मिश्र वाक्य शैलीमें ऐसे नाटक भी लिखे जा सकते हैं जिनमें कुछ पात्र सुपठित, सुसंस्कृत और उच्च श्रेणीके होते हैं और कुछ पत्र अपढ़, गँवार, वन्य या साधारण श्रेणीके होते हैं। यह 'शबरी और राम' नाटिका इसका सुन्दर उदाहरण है

शबरी और राम

[नाटिका]

पात्र		परिचय
राम	:	दशरथके पुत्र
लक्ष्मण	:	रामके छोटे भाई
शबरी	:	भीलनी
मालो और वन्या	:	शबरीकी साथिनें
बोधायन	:	ऋषि मतङ्गके शिष्य
मुद्गल	:	मतङ्गके शिष्य

स्थान : ऋषि मतङ्गका आश्रम

समय : तृतीय प्रहर

[फूसकी कुटियाके आगे द्वारसे कुछ हटकर एक पत्थरकी पटिया पड़ी हुई है। कुटियाके पीछे और आस-पास आम और केलेके वृक्षोंसे

छनकर आती हुई तीसरे पहरकी धूप कुटियापर धूप-छाँहकी अनोखी चित्रकारी कर रही है। बाहरसे शबरी आँचलमें बहुतसे बेर लिए गाती हुई आ रही है।]

(भैरवी रागिनी : त्रिताल)

शबरी—निशदिन भज मन राऽऽम नाऽऽम।
एक मन्त्र श्रीराऽऽम नाऽऽम॥

[वह गाती हुई इधर-उधर इस प्रकार देखती है मानो किसीको खोज रही हो। फिर वह एक केलेका पत्ता तोड़ती है और भीतर कुटियामें चली जाती है। इतनेमें वन्या और माली प्रवेश करती हैं। वे दोनों भी अपने पल्लेमें फल और फूल लिए हुए हैं। वे भी शबरीके स्वरके साथ स्वर मिलाकर गाने लगती हैं। माली झाड़ू लगाती है। वन्या पटिया झाड़ती है। शबरी बाहर आती है अपना-अपना काम करती हुई सब समवेत स्वरसे गाती रहती हैं। शबरी तुम्बीमें जल लेकर पटिया धोने लगती है। वन्या अपने लाए हुए फल-फूल कुटियाके पास रक्खी हुई टोकरीमें सजा-सजाकर रखती चलती है। गीत चल रहा है।]

शबरी—
माली— } —(गाती हैं)
वन्या—

माया, ममता छोड़ बावले।
जप ले तू श्रीराऽऽम नाऽऽम॥
मुक्ति राम है, मुक्ति राम है।
भक्ति-शक्ति श्रीराऽऽम नाऽऽम॥

[इसी बीच वन्या टोकरीमें सब फल-फूल सजाए हुए आगे शबरीके पास पहुँचाती है। तबतक गीत समाप्त हो जाता है।]

शबरी—(बारी-बारीसे मालो और वन्याकी ओर देखकर) इतनी देर-तक कहाँ रह गई थी दोनों ?

वन्या—(अपने दोनों हाथ छातीपर रखती हुई) लो ! यह कहना तो भूल ही गई । (अत्यन्त हर्षोल्लाससे गलेमें झटका देकर आँखें चमकाती हुई) अरी, आज मैंने तुम्हारे रामको देखा है ।

शबरी—(अत्यन्त भावाविष्ट होकर) मेरे रामको ! (वन्याके दोनों हाथ पकड़कर उसे बैठाती हुई) कैसे थे वे ? क्या कर रहे थे ? तुमसे कुछ बातचीत हुई थी ? हँस रहे थे ? बड़ी-बड़ी आँखें थी न ?

वन्या—(उत्सुकता जगाती हुई) मालोसे पूछो, वही बतावेगी ।

शबरी—(खड़ी होकर मालोसे) कैसे थे मालो ?

मालो—(अत्यन्त भावमग्न होकर) कुछ न पूछो शबरी ! आँखोंने देखा है पर आँखें बोल नहीं पा रही हैं । मुँह बोलना चाहता है पर इस अभागेने उन्हें देखा नहीं ।

शबरी—(अत्यन्त उत्सुकतावश) तो तुम उन्हें ले क्यों नहीं आई ? यहीं ले आतीं । नहीं तो मुझे ही बता देतीं । (मालोका हाथ पकड़कर) अच्छा चलो, दिखाओ कहाँ हैं ! मैं अभी लिवा लाती हूँ ।

वन्या—(कुछ उदास होकर) पर अब तो वे न जाने कहाँ चले गए होंगे ? वहाँसे तो वे तभी उठकर चले गए थे ।

शबरी—(खिन्न, उदास और व्यग्र होकर) चले गए ? मेरे भगवान् चले गए ? यहाँतक आकर भी चले गए ? (मालो और वन्यासे) तुमने कहा नहीं —'शबरी इतने दिनोंसे पलकें बिछाए आपकी बाट जोह रही है ?' (व्यग्रतापूर्वक वन्यासे) चलो वन्या ! मेरे राम वनमें घूमते रहें और मैं यहाँ कुटियामें बैठी रहूँ । नहीं, यह नहीं हो सकता ।

[मुद्गल प्रवेश करता है ।]

मुद्गल—(हर्षोद्वेगसे) अरी शबरी ! राम आ रहे हैं !

शबरी—(हर्ष-विह्वल होकर) ऐं ! राम आ रहे हैं ! (हर्षोद्विग्न होकर मालोसे) इस तुम्बीमें झटपट जल तो ले आओ ।

मालो—(तुम्बी लेकर जाती हुई) अभी लाई ।

[मालोका प्रस्थान]

शबरी—(इधर-उधर देखकर हड़बड़ीमें) अरे ! आसन कहाँ गए ? (वन्यासे) वन्या ! तू दोने तो बना ले ।

वन्या—अभी लाई ।

[वन्या भीतर कुटियामें जाती है ।]

शबरी—(मुद्गलसे) कितनी दूर हैं ?

मुद्गल—बस आ ही रहे हैं ।

शबरी—(हड़बड़ीमें) ऐं ! आ ही रहे हैं !

मुद्गल—हाँ मैं लिवा लाता हूँ न ।

[मुद्गलका प्रस्थान ।]

शबरी—(पुकारकर) अरी वन्या ! आरती भी बना लाना ।

वन्या—(भीतरसे) अच्छा !

[झटसे शबरी कुटियामें जाती है । वन्या पत्ते लाकर झटपट दोने बनाने लगती है । बोधायनका प्रवेश ।]

बोधायन—(पुकारकर) अरी शबरी ! राम आ रहे हैं !

शबरी—(कुटियासे निकलकर) इधर आ रहे हैं ?

बोधायन—(उल्लाससे सिर झुलाकर) हाँ !

शबरी—(अत्यन्त उत्सुकताके साथ) कहाँ हैं ? कितनी दूर हैं ? (वन्यासे) अरी वन्या ! राम आ रहे हैं । (बोधायनसे) कहाँ हैं ?

बोधायन—मैं लिवाए लाता हूँ न !

[बोधायनका प्रस्थान ।]

शबरी—(हड़बड़ीमें वन्यासे) दोने बन गए ?

वन्या—बस, बने जाते हैं।

शबरी—(इधर-उधर हड़बड़ीमें दौड़ती हुई) मालो नहीं आई अभी! (पुकारकर) अरी मालो!

मालो—(भीतरसे) आई!

[शबरी कुटियामें जाती है और वहाँसे दो-तीन आसन लिए आती है और उन्हें पटियापर कभी इधर कभी उधर हड़बड़ीमें सजानेका उपक्रम करती है। मालो जल लेकर प्रवेश करती है।]

शबरी—(मालोसे) ले आई ? ला, ला।

[मालोके हाथसे तुम्बी ले लेती है। बाहर 'भगवान् रामकी जय' का कोलाहल होता है।]

शबरी—(हड़बड़ाकर मालो और वन्यासे) अरी मालो! वन्या! राम आ गए। वह फलोंकी टोकरी तो उठा ला। अच्छा, मैं ही लाती हूँ। (जाती हुई घूमकर वन्यासे) माला कहाँ रक्खी है?

[शबरी कुटियामें जाती है।]

वन्या—(हड़बड़ीमें) मैं ले आई हूँ।

[टोकरीमेंसे माला निकालती है। मुद्गलका प्रवेश]

मुद्गल—(पुकारकर) अरी शबरी! भगवान् राम आ रहे हैं।

शबरी—(हर्षोत्फुल्ल होकर, टोकरी लिए हुए बाहर निकलकर उत्सुकतापूर्वक) आ रहे हैं ?

[बाहर 'भगवान रामकी जय' का कोलाहल होता है। बोधायनके साथ राम और लक्ष्मणका प्रवेश। शबरी गद्गद् होकर क्षणभर रामको ओर देखती रह जाती है। उसके मुँहसे एक शब्द नहीं निकलता। फिर सहसा वह रामके चरणोंमें गिर पड़ती है और उठकर रामका

हाथ पकड़कर पटियापर बिछे हुए आसनपर ले जाकर बैठा देती है। लक्ष्मणको भी बैठाना चाहती है। पर लक्ष्मण बैठते नहीं। रामका संकेत पाकर लक्ष्मण पटियाके पास धरतीपर बैठना चाहते हैं। तबतक माली ही लक्ष्मणके नीचे आसन बिछा देती है। मालीके हाथमें तुम्बी देकर शबरी पानी डालनेका संकेत करती है। वन्या रामके चरणोंके पास दोना बढ़ा देती है। शबरी रामके पैर धोती है, उनके हाथ धुलाती है, अपने आँचलसे उनके हाथ-पैर पोंछती है और फिर स्वयं चरणामृत लेकर माली और वन्याको देती है। लक्ष्मणके पैर धोनेको ज्यों ही शबरी आगे बढ़ती है त्यों ही वे मालीके हाथसे तुम्बी लेकर एक ओर जाकर हाथ-पैर धो आते हैं। शबरी उठकर फल-फूलवाली डोकरी ले आती है। उसमेंसे पहले एक माला निकालकर रामके गलेमें डालती है। दूसरी लक्ष्मणके गलेमें डालने लगती है पर लक्ष्मण संकेतसे बताते हैं कि रामके ही गलेमें ही डालो। अतः वह माला भी रामके ही गलेमें डाल दी जाती है। फिर अत्यन्त प्रेम-विह्वल होकर वह रामके चरणोंमें सिर झुका देती है। राम उसके सिरपर हाथ रखते हैं।]

शबरी—(टोकरीसे एक-एक बेर निकालकर देते हुए) यह लीजिए भगवन्! यह पहाड़ीवाले झाड़का है। सबसे मीठा है। मैंने एक-एक बेर छाँट-छाँटकर ला रक्खा है।

[राम बेर ले लेते हैं। एक-एक बेर मुँहमें डालते हैं। उसकी गुठलीके लिये शबरी दोना बढ़ा देती है। राम दोनेमें गुठली डालते चलते हैं।]

राम—(शबरीसे) वाह! बड़े मधुर बेर हैं। कहाँसे ले आई हो?

शबरी—(प्रसन्न होकर, दूसरा बेर निकालकर देती हुई) इसी वनके हैं। मीठे-मीठे ही ला-लाकर मैंने इकट्ठे किए हैं। (एक बेर देकर) यह लीजिए, यह सबसे मीठा है। यह पम्पाके पासका है। (लक्ष्मणको भी एक बेर देती हुई) यह लीजिए! बड़ा मीठा है!

लक्ष्मण—(कुछ रूक्षताके साथ) रख दीजिए, मैं ले लूँगा।

[शबरी एक दोनेमें लक्ष्मणके आगे बेर बढ़ा देती है। रामके संकेतसे लक्ष्मण ले लेते हैं किन्तु उनकी दृष्टि बचाकर पीछे फेंकते चलते हैं।]

राम—(शबरीसे) इतने मीठे बेर तो हमारे यहाँ अयोध्यामें भी नहीं होते! (लक्ष्मणसे) क्यों लक्ष्मण?

[लक्ष्मण मौन रह जाते हैं और रामकी ओर देखकर समर्थन-पूर्वक सिर झुका लेते हैं।]

राम—(शबरीसे) इन बेरोंका संग्रह करनेमें तो आपको बड़ा कष्ट हुआ होगा!

शबरी—(भाव-मग्न होकर) इसमें कष्ट क्या भगवन्! मैं वनमें जाती थी। सब झाड़ियोंके बेर चखती चलती थी। जिस झाड़ीके बेर मीठे हुए, पहचान लिए। बस उसीमेंसे बेर तोड़-तोड़कर ला-लाकर रखती चलती थी। सोचती थी एक दिन तो मेरे राम आवेंगे ही! उस दिन अपने हाथसे अपने रामको खिलाऊँगी। मैं रात-दिन यही सपना देखती रहती थी कि राम आए हैं, मैं बेर खिला रही हूँ। पर फिर सपनेका तार टूट जाता। फिर अँधेरा छा जाता। फिर दूसरे दिनको बाट देखने लग जाती। पर आज मेरा सपना सच्चा हो गया। मुझे सब कुछ मिल गया। मेरी सब साधें पूरी हो गईं।

[पैरों पड़ती है।]

बोधायन—(शबरीकी ओर इंगित करते हुए रामसे) भगवान्के दर्शनके लिये इन्होंने बड़ी तपस्या की है।

राम—(बोधायनसे) बड़ा प्रताप है यहाँ भगवान् मतङ्ग ऋषिका!

बोधायन—(सजल-नेत्र होकर) वे अन्त समयतक आपका स्मरण करते रहे ।

राम—(बोधायनसे) मैं आप लोगोंकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

बोधायन—(हाथ जोड़कर) सब देवकी कृपा है ।

मुद्गल—(अत्यन्त दैन्यपूर्ण संकोचके साथ) एक मेरी प्रार्थना है भगवन् !

राम—(मुद्गलसे) कहिए !

मुद्गल—मेरे पापसे पंपासरका जल रक्तमय हो गया है । अपने चरण-कमलसे स्पर्श करके उसे पवित्र कर दीजिए भगवन् !

राम—(शबरीकी ओर देखकर) वह तो देवी शबरीके चरणोंका स्पर्श पाकर ही शुद्ध होगा ।

शबरी—(चकित होकर रामकी ओर देखकर) यह क्या कह रहे हैं देव ! मेरे ही पापसे तो उसका जल बिगड़ा है !

राम—(प्रसन्न मुद्रामें) तो आपके ही पुण्यसे वह अमृत बन जायगा देवि !

बोधायन—(शबरीसे) चलिए देवि !

शबरी—(संकोचपूर्वक रामसे) मेरे देव ! क्यों मुझे........

राम—(आग्रहपूर्वक) मेरा आग्रह है देवि !

शबरी—(बोधायनसे) मेरे देवकी आज्ञा है तो चलो ऋषि ! (मालो और वन्यासे) तुम यहीं रहना, मैं अभी आती हूँ । सब मीठे-मीठे फल खिलाना । (टोकरीमेंसे चुन-चुनकर दिखाती हुई ।) देखो ऐसे-ऐसे !

[मालो और वन्या समर्थनात्मक सिर हिलाती हैं । रामके चरणामृतका दोना हाथमें लेकर शबरी जाती है । उसके साथ मुद्गल और बोधायन जाते हैं । वन्या और मालो बेर छाँट-छाँटकर रामको देती हैं]

[इतनेमें मुद्गलका प्रवेश ।]

मुद्गल—(सहसा आकर) शुद्ध हो गया मालो ! पंपासरका जल शुद्ध हो गया । सब भगवान्की कृपा है !

[रामको प्रणाम करता है ।]

मालो—
वन्या— } (एक साथ आश्चर्य और हर्षसे) { —सच !
—कैसे !

[भीतर 'शबरीकी जय' का कोलाहल ।
शबरी, और बोधायनका प्रवेश ।]

शबरी—(रामसे) मेरे भगवान्के चरणामृतकी एक बूँद पीकर पंपासर-का जल हँसने लगा मालो !

[शबरी झुककर रामका पैर छूती है ।]

शबरी-(आरती लेकर मालो और वन्यसे) गाओ तो वह भगवान्‌का गीत!

शबरी— (आरती करती हुई)
मालो— }
वन्या— (हाथ जोड़कर) } (गाती हैं)—

भीमपलासी रागिनी : त्रिताल)

श्रीऽराऽऽम, श्रीऽराऽऽम, श्रीऽराऽऽम, श्रीऽराऽऽम ।
राम नाम हो मन्त्र हमारा ।
रामराज्य हो तन्त्र हमारा ॥ श्रीराम०
अपना जल हो, अपना थल हो ,
अपना दिव्य गगन निर्मल हो ।
अपने गीतोंमें हम गाएँ ,
जय स्वदेश निज तन्त्र हमारा ॥ श्रीराम०

[क्रमशः आरोहमें सब लोग समवेत स्वरसे 'श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम' गा उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वन-देवियाँ और वन-वृक्ष भी स्वर मिलाकर गा रहे हैं। शबरी आरती करती हुई घुटने टेककर सिर झुका कर बैठ जाती है।]

[यवनिका-पतन]

वृत्तानुगन्धी गद्य

इसी तद्भव-तत्समात्मक भाषाकी मिश्र-वाक्य-शैलीमें वृत्तानुगंधी गद्य भी अत्यन्त सुन्दर, प्रभावशाली और मनोहर होता है—

वह अँधेरी रात

वह महीना माघ का, पछुवाँ पवन, बादल-भरा आकाश, बिजली-की कड़क, घनघोर अँधियारा, अँधेरा पाख, पथरीली, कँटीली झाड़ियों-वाली भयंकर अटपटी-सी गैल, बीहड़ बन, सियारोंका रुदन, चीत्कार, कोलाहल, निरंतर भिनभिनाते कीट, भुनगे और मच्छड़-डाँस, ऐसी विकट वेला, विकट पथपर, चल रहे हम तीन, धुकधुक कर रहे थे हृदय जिनके। झाड़ आगे, झाड़ियाँ दाएँ, उधर बाएँ बड़ा-सा खड्ड, बिजलीकी चमकमें फाड़कर मुँह कह रहा था—बस, उधर रहना, इधर बढ़ना न तुम पग एक। हम बढ़े आगे जिधर था झाड़, पथ भी था विषम। पैरकी सब उँगलियाँ फूटी हमारी, छिल गई सब देह, कपड़े भी हुए सब तार-तार। ढाकका जंगल खड़ा था सामने। साँस रोके, पत्थरोंमें लड़खड़ाते, चोट खाते और जाड़ेके पवनकी मारसे हम थरथराते, काँपते, कुछ दाँत भी थे किटकिटाते। हाथकी उँगलियाँ ऐंठी, लहू भी जम चला था किंतु बढ़ते जा रहे थे वन्य जीवोंकी शरणमें पग हमारे। उस समय मानव बना था व्याघ्र, जिससे भागकर हम फाँदकर दीवार काराकी चले थे। वह नजीबाबादका जंगल बना था हम भगोड़ोंका सहारा और उसके बाघके मुखको समझते थे मनुजकी दुष्ट करुणासे अधिक गम्भीर, प्यारा। जेलका कुर्त्ता, फटा-सा जाँघिया, साथ कबतक दे भयानक शीतमें। इसलिये मुठिया लिए अपनी बगलमें हाथ और सिसकारी भरे बढ़ते चले हम जा रहे थे, ले हथेलीपर विवश पर वीर प्राण।

प्रकृति अकरुण हो चली, गरजा कड़ककर मेघ, चपला चमचमाती

घूमती बन इन्द्रकी दासी चपल चंचल तरल अतिव्यस्त। नरपिशाचोंके लिये वह लूक-सी, चल-दीप-सी थी बन गई पथदर्शिका-सी। किन्तु मेघोंको दया आई, घुमड़-घिरकर बरसने वे लगे जलधार, पत्थर और इतना हो गया सन्तोष—इस अकरुण समयमें आ न पावेंगे पुलिसके श्वान हमको सूँघते ले पाश जिनसे बच निकलकर हम यहाँ तक आ गए थे।

टन् टनन् टन्, टन् टनन् टन्, सुन पड़ी वह दूरसे ही जेलकी पगली, उसीके साथ सूखे हम सभीके प्राण। छूटीं गोलियाँ भी। अब हुई होगी वहाँ पर जाग, गिनती भी हुई होगी, किसीने कह दिया होगा कि कम हैं तीन बन्दी। अब मची होगी वहाँ भगदड़, चले होंगे बहुतसे श्वान लेकर हाथमें बन्दूक।

बँध गए थे पैर, बढ़नेको नहीं था मार्ग, कैसे कब चलें, सब ओर पानी भर गया, ओले बिछे थे, गल गए थे पैर। सनसनाता-सा पवन शीतल चलाता बाण, होता पार छातीके, कँपाकर देह, फिर भी हम बने थे वज्र, कोई कह न पाता आह, कराह भी मुँहसे निकल पाती नहीं थी। कुछ क्षणोंमें रुक गई वर्षा, न पर कम हो सकी बदली, अँधेरी। चल पड़े आगे, दिशा-पथका नहीं था ज्ञान, केवल चरण-संचालन यही था ध्येय, बिजलीकी चमक थी क्षणिक चञ्चल ज्योति। खड्डको यदि पार कर पाते कहीं, मिलता बड़ा सन्तोष। सोचकर ज्योंही बढ़ाए पग अचानक पैर फिसले श्यामके; रपटा, गिरा, उस खड्डके मुखसे ढुलकता ढालपर। पर वाह रे नर वीर! मुखसे सी-तलक उसने निकलने ही नहीं दी। फिर चमक उट्ठी वहाँ बिजली, उसीमें देख पाए हम उसे, वह गिर रहा था पर सँभलकर और पहुँचा तलहटीमें धम्मसे!

क्या हुआ! यह क्या हुआ! चिल्ला उठे हम। क्या भयानक धम्मने कुछ सूचना दी है अमङ्गल। भट्ट बोला—'अब चलो उतरो, बचाना है उसे। कौन जाने हो गया हो श्याम मूर्च्छित।'

मैं चला आगे उतरता, टेक लेकर, फूँककर पग रख रहा था। डर रहा था गिर न जाऊँ मैं कहीं उस ढालपर, और सीधे लुढ़कता, मैं जा पड़ूँ नीचे जहाँ अब बह रही थी वेगसे जल-धार, नाला नद बना उमड़ा चला था जा रहा, हरहराता, घोर रवसे गरजता, करके विकम्पित विपिनकी नीरव स्थली। कुछ रपटते, चोट खाते, सँभलकर, नीचे सरकते, उतरते, बढ़ते, कँटीली झाड़ियोंपर पैर नंगे ही जमाकर हाथ दोनों टेकते, बन्दर बने, नीचे, बहुत नीचे उतरते जा रहे थे। एक बिजली कर रही थी उस समय नेतृत्व। उसके ही सहारे हम सँभलकर जा रहे थे प्रबल बलिके देश, जिसने भक्तिके वरपाशमें बाँधा रमापति विश्वपति जगदीशको भी। और उनको द्वार-रक्षक पद दिया, निश्चिन्तता अमरत्वका ले दान। किन्तु बलिका था कहाँ वह राज्य ? वामन बन गए हम खड्डके तलमें पहुँचकर दीन, हीन, मलीन, कम्पित गात जाड़ेसे ठिठुरकर काँपकर अति त्रस्त होकर हो गए तलमें खड़े जिसमें उठा था लोम-हर्षक रव, महानदकी प्रबल जलधारका।

उस अँधेरेमें चले हम पग बढ़ाते, कभी दाएँ, कभी बाएँ और चिल्लाते उसीका नाम लेकर श्याम। बीतती ही जा रही थीं श्याम घड़ियाँ और बादल भी फटे, कुछ-कुछ उषाने ज्योतिमुखके हाससे तम सोखकर फैला दिया उल्लास, नूतन सुप्रभाका हास। बीचमें थी एक भीषण वारिधारा, और दोनों ओर पथरीले खड़े ऊँचे कगारोंकी नयी कारा।

थक गए हम। सोचने भी लग गए—फाँसी सुखद थी, एक झटका और थोड़ा साँसका अवरोध, बस इतनी क्षणिक-सी यातना फिर सिद्ध था अमरत्व, अपने देशके हितके लिये अर्पित किए हैं प्राण। इसमें सौख्य है, चिरकीर्त्ति है, अवसानमें भी है भरा अमरत्व। अब सुनेंगे लोग, समझेंगे भगोड़े थे, न जाने क्या हुए, भागे निकलकर जब हुई बलिदानकी वेला मनोहर जो निरञ्जन वीर-जनको कर अनुप्राणित यही

संदेश देती—'देख लो, यह है मनोहर पथ जहाँ फाँसी बना करती सदा जयमाल, नन्दनवन-विहारी अप्सराओंके सुभग करसे गुँथी, और फिर सुरराज ऐरावत लिये करता जहाँ स्वागत, लिये करमें मनोहर कल्पतरुके अजर कुसुमोंकी सुगन्धित माल।'

शीत ऊपरसे यहाँ कम था अवश्य। पर फुहारें सैकड़ों सब ओरसे बन बाण बेधित कर रही थीं और बजते दाँत। फिर भी ढूँढते थे है कहाँ प्रिय श्याम! जिसकी उर्वरा मधु-योजनासे हम निकल पाए नजीबाबादकी उस काल-कारासे जहाँ दस-पाँच दिनमें कौन जाने क्या हमारी गति लिखी थी। बहुत खोजा पर कहींपर श्यामके हम चिह्नको भी लख न पाए और फिर नीचे, किए नीचा बदन बैठे शिलापर शून्यसे खोए हुए-से सोचते अब क्या करें? बुद्धि भी निष्प्रभ हुई-सी जा रही थी। एक भी निश्चय वहाँ रुकने-ठहरनेका न लेता नाम। बुद्धि कुंठित हो चली, मानस हुआ धुँधला, उसीके साथ ही आकाश-धरतीमें हुआ अति व्याप्त गहरा धुंध जिसमें हाथकी रेखा न जानी और देखी जा सके। पाँच घड़ियोंकी अवधितक यह रहा घन धुंध फिर फटने लगा, गलने लगा जलका विकट पट और किरणोंने छुआ उस खड्डका तल। फिर वही व्यापार, 'प्यारा श्याम! ढूँढो है कहाँ, किस दुर्दशामें।' चल पड़े फिर पैर वाणी भी खुली कह 'श्याम'। उसके साथ ही उस खड्डके ऊपर हुआ धूँ-धाँय, समझे—अब कुशल अपनी नहीं है, आ गए हैं श्वान लेनेको हमारे प्राण। 'जय स्वदेश' पुकार कर जल-धारमें कूदे, चले जिस ओर ले जाता हमें वह पर्वतीय प्रवाह। और ऊपरसे हुई फिर धाँय-धाँय। भट्की बाई हथेली छिद गई। एक डुबकी साथ लेकर साँस रोके हम तुरत ही छिप गए जलमें, अतल तलमें। अहेरी श्वान समझे डूब कर जलमें गए घायल मृतक। फिर निकाला सिर उधर था खड्डका वह दूसरा ऊँचा खड़ा सा ढाल। इतनी देरमें हम आ चुके दो कोस। आगे खड्डका मुँह हो चला अति

संकुचित जिसपर गरजकर टक्करें लेती मचलती थी महा जलधार। हम भी एक पाकड़की पकड़ टहनी किनारे लग गए और कुछ आश्चर्यसे, कुछ हर्षसे, उद्वेगसे, शङ्का-भरी अति भीतिसे, आतङ्कसे, देखा—पड़ा था श्याम, ठीक मुखके पास, झाड़ी में फँसे थे वस्त्र, दोनों पैर, दोनों हाथ। भट्टकी घायल हथेलीसे निकलकर रक्त करता लाल था उस वारिधाराको, प्रबल पीड़ा दिखाई पड़ रही उसके विकुञ्चित ओठमें, रेखा-भरे मस्तिष्कपर, कुछ लाल आँखोंमें, खड़ी रोमावलीमें भी। किन्तु जैसे ही नयनने कर दिया संकेत—'देखो श्याम है', झट कूदकर शीतल सलिलमें साथ मेरे, भूलकर पीड़ा, पहुँच कर पास बोला—'श्याम!'

बीचमें झाड़ी, उधर जलधार दोनों ओर पूरे वेगसे अति राक्षसी गतिसे बही थी जा रही। हो गई थी शून्य उसकी देह, दोनोंके नयन भीगे बने निर्झर, अचानक मुँह खुला, बस खिल गए दोनों बरसते नैन, लेकर प्राणका संकट, सहारा हाथका देकर चले हम चीरते जलको बड़ी कठिनाइयोंसे। पर कहाँ वह पर्वतीय प्रवाह, उसमें हम कहाँ दो त्रस्त, भूखे, श्रान्त, क्लान्त, अधीर किन्तु अभीत दो चेतन, अचेतन एक मानव। बह चले हम धारमें पर धैर्य अपना साथ देता ही रहा। संकुचित स्थल-गर्भके मुखसे हुए हम पार, नीचे एक गहरा कुण्ड था, उसमें गिरे तीनों परम करुणा-भरे भगवानने देकर सहारा ही बचाया, अन्यथा सिर टूटता या खण्ड होती देह, पर उस कुण्डमें था जल अतुल गम्भीर आगे रुक गया था। बस उसीमें तैरकर हम तीर पहुँचे। श्यामको नीचे लिटाया और हाथोंसे रगड़कर शून्य तनमें उष्णताका कुछ किया संचार। देखा दूरपर थी एक कुटिया और जिसमें एक था परिवार, जिसमें गाय भी थी और धूएँसे यही अति सिद्ध था अनुमान, होगी अग्नि भी उस ठौर। मैं दौड़ा गया। परिवारके कुछ लोग आए। श्यामको वे ले गए उस झोंपड़ीमें। सेंककर उसका बदन जब साँसमें कुछ तीव्रता

बदली । फिर वही जंगल, वही बीहड़ भयानक विषम जंगल, पर न हम थक पा रहे थे । एक क्षणका भी नहीं विश्रामका कुछ काम समझा और स्थिर, संयत चरण क्षितिपर जमाकर चार चलते जा रहे थे वन्य भूपर तीन हम ।

जब क्षितिजके पास पहुँचा रवि उठाकर कर लगा कहने कि मैं अब जा रहा विश्राम करने, तब बढ़ी चिन्ता कि कैसे रात काली और ठंढी कट सकेगी । किन्तु इतनेमें दिखाई दे गया नर एक जो नंगे बदन गहरी जटा बाँधे बढ़ाए हाथ-भर लंबी बड़ी दाढ़ी, विलोचन लाल थे, जिनमें भरा था तेज, दृढता और संयमका मनोहर मेल । आए पास बोले—'कौन हो ? कैसे यहाँ तुम आ सके हो ?' सब कथा हमने उन्हें सच-सच सुना दी और अपना लक्ष्य भी उनको बताया—'जा रहे हम दूर, जिससे पाशसे हम बच सकें कुछ दिन ।'

आँखमें भर नीर उसने सब कथा सुनकर कहा—'मैं भी वही था आज जो तुम हो । अभी तो और भी ऐसे बहुत से लाल देंगे प्राण अपने देशके हितके लिये सोल्लास । पास ही कुटिया हमारी है उसीमें तुम चलो जबतक स्वतन्त्र न देश हो, मुख कृष्ण हो न विदेशियोंका ।' और उनके साथ तबतक हम रहे जबतक न हो पाया हमारे देशके स्वातन्त्र्यका मंगल प्रभात ।

आत्म-विश्लेषण

इस तद्भव तत्समात्मक-भाषाकी मिश्र वाक्य-शैलीमें आत्म-कथा, जीवनचरित, वर्णन, व्याख्या, आलोचना, दिनचर्या, यात्रा, निबन्ध आदि सब प्रकारकी गद्य-रचनाएँ अत्यन्त मनोहर रूपमें प्रस्तुत की जा सकती हैं । आत्म-विश्लेषण (सेल्फ़ एनैलिसिस) की भाव-शैलीमें और प्रतिलोम कथा-कौशल (रिवर्स प्लौट टैकनीक) के साथ भीष्म-प्रतिज्ञा' पढ़िए जिसमें भीष्म स्वयं

अपनी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें अपना विश्लेषण कर रहे हैं। प्रतिलोम कथा-कौशलमें कथा उलटी चलती है। कथाके अंतकी घटनासे उसका आरम्भ होता है और क्रमशः उलटी चलती हुई वह कथाके प्रारंभकी घटनातक पहुँचकर समाप्त हो जाती है। पढ़िए—

भीष्म-प्रतिज्ञा

"आज मुझे यही सन्तोष है कि पिताजी सुखी हैं, प्रसन्न हैं। मेरे लिये क्या यह कम गौरवकी, कम सौभाग्यकी, कम गर्वकी बात है ?

मैंने इसलिये प्रतिज्ञा नहीं की है कि वे राजर्षि हैं, हस्तिनापुरके राजा हैं, इतने विशाल साम्राज्यके स्वामी हैं, उन्हें प्रसन्न करनेसे मुझे राज्य मिल जायगा। मैंने केवल इसलिये प्रतिज्ञा की कि वे मेरे पिता हैं....पिता, जिन्होंने मुझे यह साधन-धाम मनुष्य तन दिया, जिन्होंने पृथ्वीपर जन्म लेनेके क्षणसे आजतक निरन्तर मेरा पालन-पोषण किया, जिन्होंने अनवरत चेष्टा करके मेरे सुख और मेरी सुविधाका ध्यान रखते हुए कभी मेरे मुखपर विषादकी रेखा नहीं आने दी। उनके लिये यदि मैंने यह छोटी-सी प्रतिज्ञा कर भी डाली तो कौन हिमालय सिरपर उठा लिया ? इतनी-सी तुच्छ बातको लोग इतना महत्त्व क्यों दे रहे हैं ? मुझे भीष्म क्यों कह रहे हैं ? अपने उन स्नेहमय पिताजीके लिये क्या मैं इतना भी न करता........!

आज उन्होंने हर्षसे मुझे अपने हृदयसे लगाकर मेरे नत शिर-पर अपना उन्नत भाल स्थिर करके, मेरे पृष्ठपर धनुषकी प्रत्यंचाके चिह्नसे सुशोभित अपना पौरुषपूर्ण हाथ फेरकर मुझे वरदान दिया—'मेरे निष्पाप पुत्र ! तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे तबतक मृत्यु तुम्हारा स्पर्शतक नहीं कर सकेगी। आजसे तुम इच्छामृत्यु हो। आजसे मृत्यु

तुम्हारे भ्रूभंगकी दासी होकर तुम्हारी आज्ञा पालन करेगी,' तब उनका सारा वात्सल्य मुझपर बरसा पड़ रहा था।

पर क्या मैंने वरदानके लोभसे प्रतिज्ञा की थी? नहीं। उनकी कृपा, उनके अपरिमित वात्सल्य और उनके सात्त्विक स्नेहसे मैं विह्वल हो उठा, रोमांचित हो उठा। मैंने इसलिये प्रतिज्ञा ही नहीं की थी कि पिताजी मुझे वरदान दें, मैं इच्छामृत्यु हो जाऊँ और इस नश्वर संसारमें अनन्त कालतक अपना अनश्वर शरीर लेकर इसका निरंतर पोषण करता रहूँ।

ओह! आज जब निषादराजके यहाँसे चलने लगा तो मेरे चारों ओर खड़े हुए क्षत्रिय मेरी ओर संकेत कर-करके कह रहे थे—'यह भीष्म है।' इसमें भीष्म होनेकी क्या बात थी! मैंने केवल पुत्रका धर्म पालन किया है, और वह भी कोई बहुत बड़ा नहीं। एक मेरे अविवाहित रहनेका संसारमें महत्त्व क्या! संसार में न जाने कितने सहस्र लोग आते हैं और अविवाहित ही चले जाते हैं। किंतु उनमेंसे तो किसीके नामके साथ 'भीष्म' शब्द नहीं लगता....।

मैंने आज माता सत्यवतीको देखा। वह रूप, वह लावण्य, वह सुन्दर ढला हुआ शरीर, जिसमेंसे सुगन्धका प्रभञ्जन फूटा पड़ता है.... मानो ब्रह्माने संसारका समस्त सौन्दर्य, समस्त सौकुमार्य, समस्त औदार्य उनके शरीरमें ला भरा है। ऐसी तेजस्विनी माता पाकर किस पुत्रको हर्ष नहीं होगा! पिताजी धन्य हैं जिन्होंने मेरे लिये ऐसी दिव्य माताका वरण किया है। मैं उनका ऋणी हूँ, उनका उपकार मानता हूँ। कितने कोमल चरण हैं माता सत्यवतीके! मानो सहस्रदलकी सम्पूर्ण स्निग्धता और मृदुता उनके चरणोंके रूपमें साकार हो गई हो। उन्हें देखकर यही जी करता है कि नित्य अपना मस्तक उनके चरणोंमें डालकर अनायास मुक्त हो जाऊँ।

और उस निषादराजको तो देखो! उसके मनमें मेरे ही प्रति

सन्देह उठ खड़ा हुआ। उसने मुझे कितना कलुषित, कितना नीच, कितना स्वार्थी, कितना कृतघ्न समझा होगा! पर उसका क्या दोष! संसारके कुटिल इतिहासने क्या ऐसे कम उदाहरण उपस्थित किए हैं जहाँ धनके लिये, राज्यके लिये, पिताने पुत्रको, भाईने भाईको और पत्नीने पतिको यम का द्वार न दिखा दिया हो। और फिर राज्यका लोभ? कितना प्रबल होता है राज्यका लोभ! सब तो रामके भाई भरत नहीं हो सकते, जो सम्मुख हाथ बाँधे खड़ी राज्यलक्ष्मीको ठीकरेकी भाँति ठुकरा दें। राज्य और सम्पत्तिका लोभ किसे विचलित नहीं कर देता! यदि निषादराजने संदेह किया तो उसका कोई दोष नहीं है। उसे भय था कि माता सत्यवतीके गर्भसे जो पुत्र होगा उसका मैं शत्रु हो जाऊँगा। वह समझता था कि संसारमें मैं ही सबसे बड़ा पराक्रमी हूँ और मैं माता सत्यवतीके पुत्रको शांतिसे न रहने दूँगा। कितनी भूल थी उस निषादराजकी! मनुष्यका कितना बड़ा मिथ्या अभिमान है कि वह अपनेको सबसे बड़ा पराक्रमी, सबसे अधिक बुद्धिमान्, सबसे अधिक वीर समझता है? यह उसका भ्रम है, उसकी मूर्खता है, उसकी अज्ञानता है। इतने बड़े बलशाली हाथीको एक छोटी-सी चींटी नाकमें घुसकर मार डालती है। साँसका एक झटका मनुष्यको निस्तेज कर देता है। फिर भी मनुष्य अभिमान करता ही जाता है! और फिर, माता सत्यवतीके गर्भसे जो बालक होता वह क्या मुझसे कम पराक्रमी होता?

पर वह तो निषाद है। उसने सत्संग नहीं किया है। उसके हृदयमें यदि मेरे प्रति संदेह हो भी गया तो कोई आश्चर्य नहीं, कुछ अस्वाभाविक नहीं। और फिर अपनी कन्याके भविष्यके लिये उसका वैसा सोचना ठीक भी था।

निषादराजके यहाँ मेरे साथ कितने क्षत्रिय-कुमार उपस्थित थे। सब मेरा मुँह देखने लगे कि मैं उत्तर क्या देता हूँ। सहसा मेरे मुखसे

निकल पड़ा—"निषादराज ! मैं शपथपूर्वक सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा।' सुनकर सब अवाक् रह गए। क्यों ?

किन्तु इतनेपर भी निषादराजके मुखपर छाई हुई संदेहकी रेखाएँ कम नहीं हुईं। मैं देख रहा था कि उसके ओठ कुछ कहनेके लिये फड़फड़ा रहे थे। उसे मेरी प्रतिज्ञासे संतोष नहीं हुआ। मेरी समझमें नहीं आया कि श्वेत पलकोंके नीचे छिपी हुई उसकी अधमुँदी आँखोंमें अभीतक अविश्वास क्यों झलक रहा है। किन्तु कितना भोला था निषादराज ! कपट तो उसे छू-तक नहीं गया था। इसीलिये उसने भोलेपनके साथ कह दिया—'युवराज ! आपने सत्यवतीके लिये जो प्रतिज्ञा की है उसके संबंधमें मुझे तनिकसा भी संदेह नहीं रहा। आप क्षत्रिय हैं। आपका वचन ध्रुवसे भी अधिक स्थिर और दृढ है। किन्तु यदि आपका पुत्र सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीनने लगे तो ?'

'मेरा पुत्र यदि सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीनने लगे तो ?' ....इस प्रश्नका मेरे पास क्या उत्तर था ? अभी मेरा विवाहतक नहीं हुआ, फिर अपने पुत्रोंकी ओरसे मैं उसे क्या वचन दे सकता था ? कैसे दे सकता था ? भविष्यमें मेरे पुत्र कैसा व्यवहार करेंगे यह मैं कैसे कह सकता था ? क्षण भरके लिये मेरी बुद्धि अवश्य कुंठित हो गई थी। किन्तु तत्काल मैंने देखा माता गंगाजी मानो दिव्य रूपमें मकरपर चढ़ी हुई अपने हाथमें दिव्य कमल लिए हुए मेरे पास आईं, मेरे हृदयका ताप, परिताप, सन्ताप सब अपनी धारामें बहा ले गईं और मेरे कानोंमें न जाने क्या मंत्र देकर चुपकेसे चली गईं। मेरे चारों ओर खड़े हुए क्षत्रिय-कुमार मुँह बाए मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरा उत्तर सुननेके लिये वे निषादराजसे भी अधिक उत्सुक दिखाई दे रहे थे। ठीक इसी कौतूहलकी वेलामें भगवान् प्राचेतसकी वाणीके समान मेरी समस्त सात्विक भावनाएँ प्रतिज्ञा बनकर फूट पड़ीं।

उन क्षत्रियोंके भरे समूहके सम्मुख अपनी दक्षिण भुजा उठाकर मैंने धीर गम्भीर स्वरमें कह दिया—'क्षत्रियो! मैंने अपने पिताके राज्यका परित्याग तो पहले ही कर दिया है किन्तु आज संतानके लिये भी मैंने दृढ निश्चय कर लिया है।

और फिर, जैसे विश्वमें व्याप्त सम्पूर्ण दैवी शक्तियाँ अत्यन्त उल्लाससे मुझे प्रेरित कर रही हों, वैसे ही मैं घूम गया निषादराजकी ओर। मैं बोल उठा—'आजसे मैं अखंड ब्रह्मचर्यका व्रत लेता हूँ। अपने पिताजीके आशीर्वादसे और अपने ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मैं निःसंतान होनेपर भी अक्षय्य लोक प्राप्त करूँगा।'

यह मुझसे किसने कहलवाया था? मेरे हृदयमें किसने ऐसी अद्भुत शक्ति भर दी थी? क्षण भर मैं कुछ ऐसा सुनता रहा मानो वीणाके सम्पूर्ण मधुर स्वरोंका तिरस्कार करनेवाली सैकड़ों-सहस्रों श्रुतियाँ 'धन्य है! धन्य है!!' गा उठी हों। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो नन्दन-काननके मन्दारके सद्यः उतारे हुए सहस्रों सुमन किन्हीं अदृश्य हाथोंने मेरे शरीरपर सहसा बरसा दिए हों और यह तो मैंने अपने कानोंसे सुना कि वहाँ उपस्थित सब क्षत्रियोंने एक स्वरसे कहा—'यह भीष्म है। इसका नाम भीष्म होना चाहिए।'

किन्तु मैं तो निषादराजका उत्तर सुनना चाहता था। उस कोलाहलमें वृद्ध निषादराजका क्षीण स्वर बहुत देरतक खुला नहीं। मैं देख रहा था कि मेरी प्रतिज्ञा सुनकर वह काँपने लगा था। उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया था। उसके नेत्रोंमें हर्षके अश्रुबिन्दु झलक आए थे। उसका कंठ गद्‌गद हो गया था और उसके मुखसे केवल इतना ही निकल पाया—'मैं कन्या देता हूँ।'

ओह! कितनी प्रसन्नता हुई मुझे यह अमृतमय शब्द सुनकर, मानो मैंने विश्वकी समस्त विभूतियाँ, विश्वकी सिद्धियाँ, योगियोंकी भूमा एक साथ प्राप्त कर ली हो। मैं हर्षसे, उल्लाससे, उत्साहसे

नाच उठा। मेरा मन लहराने लगा। कितने प्रसन्न होंगे मेरे पिताजी, जब वे सुनेंगे कि मैं उनके लिये सत्यवतीको ले आया हूँ!

और इसके पश्चात् क्या मैं एक क्षण ठहर सकता था? मैंने झट अपनी नवमाताके चरणोंमें सिर टेक दिया। उन्होंने मेरे सिरपर अपने कोमल वात्सल्यमय हाथ रक्खे। मेरी प्रार्थनापर वे रथपर आरूढ हो गईं और मैं सारथिको उतारकर, अपने सब साथियोंको वहीं छोड़कर, स्वयं उस रथको वेगसे दौड़ाता हुआ हस्तिनापुर चला आया।

बाहर ही रथ स्थापित करके मैं सीधे चला गया अपने पिताजीके कक्षमें। वे बैठे हुए थे शान्त, मौन, उदास, चिन्तित और व्यथित-से। मैंने दौड़कर उनके पैर पकड़ लिए। एक साँसमें कह गया—'देव! मैं माता सत्यवतीको लिवा लाया हूँ!' ओह! कितना हर्ष हुआ उन्हें। वे आश्चर्य और उल्लासके साथ उठ खड़े हुए। रथपर मेरी माता सत्यवतीको देखकर उन्हें कितना आह्लाद हुआ! वे सीढ़ियोंसे उतर आए, माता सत्यवतीका हाथ पकड़कर उन्होंने रथसे उतारा। मुझे उन्होंने अपने वक्षसे चिपकाकर वरदान दे डाला। मेरे पूज्य पिताजी अपने हाथका सहारा देकर माता सत्यवतीजीको प्रासादमें ले गए। मैं स्वप्नमें उलझ गया कि माता सत्यवतीके समान संसारमें मेरी माता बनने-योग्य दूसरी कोई नारी हो भी सकती है या नहीं। अपनी माता गंगाके पश्चात् यदि मैंने उनके सब गुण देखे तो माता सत्यवतीमें ही।

मैंने यह सब क्यों किया? इसका भी तो कारण मैं ही हूँ। इधर कुछ दिनोंसे मेरे पिताजी उदास रहने लगे थे। मैंने सुना तो मेरा हृदय स्वयं मुझे धिक्कारने लगा—'क्यों देवव्रत! तुम गंगाके पुत्र हो न? और तुम्हारे रहते तुम्हारे पिता चिंतित रहें, उदास रहें, दुखी रहें। धिक्कार है तुम्हें! धिक्कार है तुम्हारे जीवनको!' और मेरा हृदय ही

नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि, जड़-चेतन, चर-अचर, तृण-पत्तेतक मुझे धिक्कारने लगे। मेरा चित्त विक्षुब्ध हो उठा। मैंने पिताजीसे जाकर पूछा—'आप क्यों चिंतित हैं पिताजी! कृपया मुझे अपना रोग बताइए। मैं उसका प्रतिकार करूँगा।'

मेरे पिताजीने मुझे गोदमें बैठा लिया। वे मुझे कैसे समझाते कि उन्हें कौन-सा रोग है। मेरे कुतूहलकी निवृत्ति नहीं हो पाई।

मैंने वृद्ध मंत्रीसे जाकर पूछा। वृद्ध मंत्रीने कहा—

'युवराज! वे आपके ही कारण दुखी हैं।'

'मेरे कारण?'

'हाँ, आपके कारण।'

और फिर उस राजभक्त, स्वामिभक्त मंत्रीने इस प्रकार तन्मय होकर मुझे कथा सुनानी प्रारम्भ की मानो इस राष्ट्रिय विपत्तिने उसका हृदय मथ डाला हो........

"एक दिन राजर्षि शान्तनु यमुनातटपर विचरण कर रहे थे। इसी समय उन्हें प्रतीत हुआ मानो विश्वका समस्त सौरभ विधाताने उसी यमुना कूलपर उँडेल दिया हो। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि यह सुगंध आ कहाँसे रही है? उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमाई और देखा कि पास ही एक नौकापर देवाङ्गनाके समान एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या पतवारके सहारे बैठी हुई है। राजर्षि शान्तनुने पास पहुँचकर पूछा—'क्यों कल्याणि! आप किसकी कन्या हैं? कौन हैं? यहाँ निषादोंमें कैसे रहती हैं?'

कन्याने कहा—'मैं निषाद-कन्या हूँ। पिताकी आज्ञासे धर्मार्थ नाव चलाती हूँ। जो साधु, महात्मा, गृहस्थ यमुना-पार जाना चाहते हैं उन्हें बैठाकर पार कर देती हूँ।"

ज्योंही वृद्ध मन्त्रीके मुखसे निकला-'निषादकन्या!', मेरा मन घृणासे भर गया—'पिताजी राजर्षि होकर निषाद-कन्यासे विवाह करेंगे?'

वृद्ध मंत्री अपनी तीव्र दृष्टिसे मेरा मानसिक विक्षोभ ताड़ गए। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

'वह निषाद-कन्या नहीं है। वह अभिशप्त अप्सराकी कन्या है जो मछली बनी जलमें पड़ी थी। इसके शरीरसे मत्स्यकी तीव्र गंध आती थी इसलिये राजा वसुने उसे निषादराजको पालन करनेके लिये सौंप दिया। महर्षि पराशरके प्रतापसे वह योजनगंधा हो गई। तबसे न जाने कितने राजकुमार और ऋषि उसे प्राप्त करनेको उत्सुक हैं।''

मेरा सन्देह दूर हो गया।

वृद्ध मंत्रीजी कहते चले जा रहे थे—''उसके शरीरसे फूटकर चारों ओर गमक उठनेवाली मादक गंधपर, उसके सुन्दर मुखसे फूट पड़नेवाले मधुर वचनोंपर, उसकी भोली-भाली भाव-भंगिमापर और उसके अनिंद्य रूप-दीपपर राजर्षि शान्तनु पतङ्ग बन गए। उन्होंने उसके पिता निषाद-राजके पास जाकर उस कन्याके लिये याचना की। निषादराजने उनसे यह प्रतिज्ञा करानी चाही कि इसके गर्भसे जो पुत्र हो वही आपके पश्चात् राज्यका अधिकारी हो। पर राजर्षि शान्तनु आपके रहते हुए ऐसी प्रतिज्ञा कैसे कर सकते थे? कभी नहीं, वे चले आए और तभीसे....।''

''और तभीसे........?'' मेरे मनने पूछा।

वृद्ध मंत्रीने वाक्य समाप्त किए बिना ही जो लंबी साँस खींची थी वह मुझे अभीतक स्मरण है। कितनी वेदना थी उस साँसमें! और मैंने देखे थे उन वृद्ध मंत्रीके नेत्रोंसे छलकते हुए आँसू, जिनके मुक्ता-करोंमेंसे मैं स्पष्ट पढ़ पाया था—पिताजीमें उनकी एकान्त निष्ठा और मेरे प्रति महाराज शान्तनुका अगाध और निःसीम वात्सल्य! मेरे हृदय-सागरमें ज्वार उठ खड़ा हुआ—'आह! मेरे कारण मेरे पिताजीको कष्ट हो रहा है। वे क्षीण हुए जा रहे हैं और मैं राजसी भोग भोग रहा हूँ!'

और साथ ही उस निषादराजपर भी मुझे क्रोध आया—'उसका यह दुःसाहस! मेरे पिताजी प्रार्थना करें और वह अस्वीकार कर दे!'

बस, वहाँसे उठकर, अपने साथ कई क्षत्रियोंको साथ लेकर मैं निषादराजके यहाँ पहुँच गया। क्या अपने उस करुणामय, कृपामय, वात्सल्यमय पिताके लिये इतना-तक न करता कि एक जीवन ब्रह्मचर्य-पूर्वक बिता सकता। श्रवणकुमारने अपने माता-पिताको प्रसन्न करनेके लिये उन्हें काँवरमें बैठाकर सब तीर्थोंका दर्शन कराया। मुझे तो इतना भी नहीं करना था। मेरा तो उसके सामने बहुत छोटा-सा, नन्हाँ-सा त्याग है। लोग व्यर्थ मुझे इतना महत्त्व दिए डाल रहे हैं। पर हाँ, मुझे यह सन्तोष अवश्य है कि मेरे पिताजी अब प्रसन्न हैं, सुखी हैं। पिता ही स्वर्ग हैं, पिता ही धर्म हैं, पिता ही सबसे बड़े तप हैं। यदि पिता प्रसन्न हो गए तो समझ लूँगा, सब देवता मुझपर प्रसन्न हो गए।

नृत्य-नाट्य

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसे कवियोंकी तत्सम संस्कृत-निष्ठ तथा प्रगतिवादियोंकी सर्वभाषा-मिश्रित खिचड़ी भाषा छोड़कर शेष सभी संसिद्ध कवि तद्भव-तत्समाश्रित मिश्र वाक्य-शैलीमें ही कविता रचते हैं। भगवान् बुद्ध नामक नृत्यनाट्यका यह उदाहरण लीजिए—

महाभिनिष्क्रमण

[नारंगिया रंगकी पटीके आगे]

भावनटी—

(वागीश्वरी रागिनी)

मणिजटित स्वर्ण-पर्यङ्क बिछा, झालर मुक्ताओंकी झूलीं।
सुमनोंके कोमल बिस्तरपर, सुरभित सुमनावलियाँ फूलीं॥
उपधान सुकोमल सेमलका, सिरहाने शोभा देता था।
इन्द्राणीके सुख-वैभवका सौभाग्य छीन वह लेता था॥

(भीमपलासी रागिनी)

उसपर लेटी थी यशोधरा, सुख-तन्द्राका आधार लिए ;
थीं खड़ी दासियाँ सावधान, सेवाके सब संभार लिए ॥
थी एक व्यजन करती धीरे, थी चँवर डुलाती एक वहाँ ।
मृदु गन्ध-घ्राणके पात्र लिए, थी खड़ी चारिका एक वहाँ ॥

(भैरवी रागिनी)

कब आँखोंका आदेश मिले, इस आशामें टक लगा रहीं ।
निद्राको सुमधुर करनेको, मृदु वाद्य तीन थीं बजा रहीं ॥

[उपर्युक्त विवरणके अनुसार दृश्य खुलता है । मृदु वाद्य बज रहा है । यशोधरा सो जाती है, नर्तकियाँ भी सो जाती हैं और गौतम प्रवेश करते हैं ।]

नेपथ्य-गायिका—

(भैरव-राग)

थे केश किसीके अस्त-व्यस्त, कोई थी मुँह खोले सोई ।
थी बहती मुँहसे लार कहीं, खर्राटे भरती थी कोई ॥
कोई वीणापर झुकी हुई, कोई मृदंगपर थी उढ़की ।
कोई निज करमें वंशी ले, थी वहीं अचेतन-सी लुढ़की ॥
थी नहीं चेतना वस्त्रोंकी, था नहीं ज्ञान कुछ भी अपना ।
कोई बर्राती पड़ी-पड़ी, थी देख रही मानो सपना ॥
यह देख वहाँ बीभत्स दृश्य, भर गया घृणासे उनका मन ।

[छन्दकका प्रवेश]

छन्दकको इंगित कर बोले—'ले आओ हय, चलना है वन' ॥

[छन्दक चला जाता है ।]

छन्दकको यह आदेश दिया, फिर घूम गए, देखा ऊपर ।
राहुलको लेकर यशोधरा, थी सोई स्वप्नातुर होकर ॥

ममताने पग आगे ठेले, गौतमका मन हो गया विमन।
है दोष नहीं इनका कोई, क्यों इनको तजकर जाऊँ वन?
राहुलके भोले मुख-शशिपर, लहराती लटमें मन उलझा।
बढ़ गए उठाने हाथोंमें, तत्काल बुद्धिका भ्रम सुलझा॥
अपने पग पीछे लिए खींच, मनको विरागसे लिया बाँध।
संयमके ढीले बन्धनको, अविचल विचारसे लिया नाँध॥

गौतम—

यह यशोधरा, भोला राहुल, हैं मायाके कोमल बन्धन।
साधककी ये हैं बाधाएँ, इनका न उचित है अभिनंदन।

नेपथ्य-गायक—

ममता-विरागके झूलेमें, क्षणभर गौतमका मन झूला।
पर क्षणमें उनका उन्मन मन, आया पथपर पथका भूला॥

गौतम—

(कानड़ा राग : मध्य लय)

सब मिथ्या है, सब माया है, यह सब मनका है कटु विकार।
ये विघ्न तपस्यामें मेरी, इनपर न करूँगा मैं विचार॥

नेपथ्य-गायक—

(मन्द लय)

तत्काल हुए गौतम सुस्थिर, हो गया सिद्ध विश्वास अचल।
सो गई विकलता, अस्थिरता, संकल्प हुआ सुस्थिर, अविकल॥

[छन्दक आता है और घोड़ा तैयार होनेकी सूचना देता है। गौतम एक बार राहुलकी ओर देखकर और दूसरी बार यशोधराको देखकर छन्दकके साथ चल देते हैं। अँधेरा हो जाता है।]

नेपथ्य-गायक-गायिका—

रजनीकी उस अँधियारामें, कंथक-पर चढ़कर चले बुद्ध।
खुल गए नगरके रुद्ध द्वार, हो गया विश्वका व्योम शुद्ध॥

उस एक रात्रिमें गए दूर, योजन-पर योजन किए पार ।
थी नदी अनोमा मिली मध्य, कैसे लाँघें यह था विचार ॥
दी एड़ रगड़कर कंथकको, लेकर छलाँग, वह गया पार ।
गौतमने सोचा यहीं आज, लूँगा प्रव्रज्या जीत मार ॥
[छाया-रूपमें गौतम और छन्दक दिखाई देते हैं ।]
करवाल कोशसे खींच लिया, सब केश उसीसे दिए काट ।
छन्दकको सौंपे आभूषण, नव-संन्यासीका बना ठाट ॥
वस्त्राभूषण करमें लेकर, छन्दक लौटा अतिशय उदास ।
पग डग-मग मगमें पड़ते थे, कम पड़ता जाता था हुलास ॥

[प्रकाश होता है । प्रातःकालके मंगल-वाद्य बजते हैं । यशोधरा उठकर गौतमको ढूँढ़ती है । दासियाँ भी व्याकुल होकर घूमती हैं और संकेतसे बताती हैं कि बुद्ध कहीं चले गए ।]

सुनते ही अकरुण समाचार, हो गई अचेतन यशोधरा ।
विह्वल होकर गिर पड़ी तुरत, फिर लगी सींचने तप्त धरा ॥
[छन्दक आकर सब आभूषण देता है और
इंगितसे सब समाचार समझाता है ।]
तत्क्षण छन्दकने आभूषण, उनके करमें रक्खे लाकर ।
नयनोंमें उलझे अश्रु-बिन्दु, बन चले वारिधर, नद, निर्झर ॥

यशोधरा—

(भीमपलासी रागिनी)

मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें, गीत अपने गा रही हूँ ।
और अपनी कल्पनामें, मैं तुम्हें उलझा रही हूँ ॥
तुम कहाँसे भावनामें, बन गए श्रद्धा चिरन्तन ।
ज्योति बनकर छा गए हो, चिर विभामय नित्य नूतन ॥
मैं तुम्हारे लोचनोंमें, प्यास अपनी पा रही हूँ ।
मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें गीत अपने गा रही हूँ ॥

जा रहे पल-पल विफलसे, कल नहीं मेरे हृदयमें।
तुम जहाँ गति देखते हो, मूर्च्छना है मन्द लयमें ॥
स्वर भरे आसावरीके, किन्तु दीपक गा रही हूँ ।
मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें गीत अपने गा रही हूँ ॥
तुम कहाँको चल दिए, मुझको अचल सन्देश देकर ।
ले लिया पथ कष्टमय, विश्रामका आदेश देकर ॥
पर तुम्हारे नामसे ही, मैं हृदय बहला रही हूँ ।
मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें, गीत अपने गा रही हूँ ॥

[यवनिका-पतन]

जीवन-चरित

इसी तद्भव-तत्समाश्रित भाषाकी मिश्र वाक्य शैलीमें जीवन-चरित भी लिखे जा सकते हैं। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी जीवनीका एक अंश लीजिए—

अध्यापक मालवीयजी

जब मदनमोहनके परिवारकी दरिद्रता उनकी पढ़ाईका द्वार रोककर खड़ी हो गई तो उन्हें अपने और अपने गुरु पण्डित आदित्यरामजीके अनुरोधका बलिदान करके उसका लोहा मानना पड़ा और वे अपने पूज्य पिताजी और माताजीके बुढ़ापेकी लाठी बननेकी चिन्तामें लग गए। मदनमोहनके गुण किसीसे छिपे नहीं थे। छोटे-बड़े उन्हें जानते ही थे। इधर कौलेज छूटा उधर गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें एक अध्यापक की माँग हुई। मदनमोहन बी० ए०, अपने पुराने विद्यालयमें पचास रुपये महीनेपर अध्यापक हो गए। अब इनके परिवारके दिन फिरे। इन्होंने 'मल्लई' नामका संस्कार करके उसे 'मालवीय' बना लिया और मालवीय कहलाने लगे। अब ये पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी० ए० हो गए। इनके मालवीय नामका प्रचार इतना हुआ कि इनके

परिवार और कुटुम्बवालोंने तो इस नामको अपनाया ही, साथ ही अन्य श्रीगौड़ ब्राह्मण भी अपनेको मालवीय लिखने लगे। फिर तो यह रोग ऐसा बढ़ा कि मालवासे तनिक भी सम्बन्ध रखनेवाले सभी लोग अपने नामके पीछे मालवीय लिखने लगे। महापुरुषोंके नाममें भी तो कुछ जादू होता है।

यद्यपि विद्यादान सब दानोंसे बढ़कर समझा जाता है और वास्तवमें अध्यापनके समान कोई दूसरा श्रेष्ठतर काम है भी नहीं, पर अध्यापकमें सच्चरित्रता, मृदुभाषिता और अपने विषयका ज्ञान आदि गुण भी होने ही चाहिएँ। जिस अध्यापकमें ये तीन गुण न हों वह अध्यापक कैसा? अध्यापक स्वयं विद्यालय होता है। उसे देखकर ही यदि विद्यार्थी प्रभावित न हों, उसे अपना आदर्श न मान लें तो फिर वह अध्यापक क्या हुआ? मालवीयजी इन तीनों बातोंके धनी थे। थोड़े ही दिनोंमें विद्यार्थी इनसे हिलमिल गए। जिन्होंने इनके चरणोंमें बैठकर पढ़ा है, उनका कथन है कि ऐसे योग्य अध्यापक साधारणतः देखनेमें नहीं आते।

अध्यापन-कुशलताकी एक घटना हमें स्मरण है। एक बार वे घूमते-घामते काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजमें आए। वहाँ शिक्षक-छात्रोंको पाठ पढ़ाते देखकर अचानक उन्हें प्रयागका गवर्नमेण्ट हाई स्कूल स्मरण हो आया। उनके हृदयके भीतर बैठा हुआ अध्यापक पुरानी स्मृति लेकर जाग उठा। उन्होंने तत्काल वहाँ काम करनेवाले अपढ़ मिस्त्रियों और कारीगरोंको एकत्र किया और कहा कि देखो हम तुम्हें लिखना सिखाते हैं। बस उन्होंने थोड़ी ही देरमें इस कौशलसे उन्हें समझा-समझाकर 'राम' लिखना सिखा दिया कि अक्षरोंका ज्ञान हुए बिना भी, अ आ इ ई क ख ग बिना सीखे भी वे लोग बिना परिश्रमके 'राम' लिखने लगे। उनका यह पढ़ानेका कौशल देखकर टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजके प्राध्यापक भी दङ्ग रह गए।

अपने वेशसे, अपनी वाणीसे और अपने व्यवहारसे वे सबके लिये आदर्श थे। जब कभी वे विद्यार्थियोंको उपदेश देने बैठते या कभी एकादशी-कथा प्रारम्भ करते उस समय उनके कण्ठसे केवल कथा-कार ही नहीं वरन् व्यासके अन्तरात्मामें बैठा हुआ अध्यापक भी संयत भावसे बोलता चलता था।

मालवीयजीको उस विद्यालयमें एक बात सदा खटकती रही कि ईसाई और मुसलमान लड़के तो अपने धर्म, धर्म-गुरु, धर्म-ग्रन्थ तथा धार्मिक आख्यानके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानते थे, पर हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्मका क ख ग भी नहीं जानते थे और न जाननेकी चेष्टा ही करते थे। वे ऐसे अकर्मण्य और निर्जीव थे मानो उनके न हृदय है न आत्मा; धर्मको वे लोग ढोंग मात्र समझते थे और जो धर्मकी बातें करता था वह ढोंगी समझा जाता था। हिन्दू बालकोंकी यह नास्तिकता और उदासीनता मालवीयजीको बहुत अखरती थी। उन्हें यह देखकर भी बड़ा दुःख हुआ करता था कि हिन्दू बालक अपने धर्मपर, अपने देवी-देवताओंपर, अपने आचार-विचार और अपने समाजपर दूसरोंके आक्षेप सुनकर भी अनसुना कर देते थे मानों वे निःसार हों, तत्त्वहीन हों। मालवीयजीके वेशमें पगड़ी, दुपट्टे, और अङ्गेके साथ पूरे पैरके श्वेत मौजे भी बढ़ गए। मालवीयजीके पढ़ानेके ढंग और सबके प्रति इनके मधुर व्यवहारको देखकर दो वर्षमें ही इनका वेतन पचहत्तर रुपए हो गया।

स्कूलमें अध्यापन करते समयकी एक घटना कभी नहीं भूली जा सकती। एक बार लड़कोंकी परीक्षा हो रही थी। एक मुसलमान विद्यार्थी एक दूसरे विद्यार्थीकी पुस्तिकासे देख-देखकर लिख रहा था। मालवीयजीने तत्काल ताड़ लिया और उसे भवनसे बाहर निकाल दिया। वह लड़का भी एक दुष्ट था। कहने लगा कि कभी समझ लेंगे। पर मालवीयजी इस गीदड़-भभकीसे डरनेवाले नहीं थे। सब

लोगोंने बार-बार मालवीयजीको समझाया कि 'इस दुष्टके मुँह न लगिए, न जाने क्या कर बैठे। आप पैदल न जाया करें, इक्केपर जायँ।' मालवीयजीने उत्तर दिया कि 'हमारे क्या हाथ नहीं हैं? हम पैदल ही जायँगे।' वे बराबर पैदल ही जाते रहे। मालवीयजीको छेड़नेका तो उसे साहस न हुआ पर जिस लड़केके उत्तरकी वह प्रति-लिपि कर रहा था उसे उस दुष्टने पकड़ ही लिया और उसे दिनभर बाँधकर बैठाए रक्खा। बड़ी कठिनाइसे कुछ लोगोंकी सहायतासे उसे छुटकारा मिला। पर मालवीयजीके व्यक्तित्वका उस दुष्ट लड़केपर इतना प्रभाव पड़ा कि वह आकर उनके पैरोंपर गिरा और क्षमा माँगी।

वैज्ञानिक विवेचन

इसी तद्भव-तत्समाश्रित भाषाकी मिश्र-वाक्य-शैली में वैज्ञानिक लेख भी अत्यन्त सरलता और सुविधाके साथ लिखे जा सकते हैं। नीचे हम मंगल ग्रह, वाग्रव्य विमान (रौकेट प्लेन) तथा मंगलकी यात्राका वैज्ञानिक विवरण दे रहे हैं जो पत्रके रूपमें लिखा गया है—

गरुड-विमान (रौकेट प्लेन) और मंगलकी यात्रा

प्रियवर चतुर्वेदीजी!

सन् १६४७ के दिसम्बर मासमें जब बम्बईमें आपसे भारतीय ज्यौतिष-पर विचार-विमर्श हो रहा था, उस समय आपने मंगलका परिचय देते हुए कोई श्लोक कहा था जिसका अर्थ यह था कि 'मंगल ग्रह पृथ्वीका पुत्र है, वह ऋण दूर करता है, धन देता है, स्थिर रहता है, बड़े शरीरवाला है, सब कर्मोंको रोकने-वाला है, लाल है, लाल आँखवाला है, सामगान करनेवालोंपर कृपा करता है, सब रोग दूर करनेवाला है, सृष्टि और वृष्टि करनेवाला है तथा सब इच्छाएँ सफल करनेवाला है।'

[मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्त्ता धनप्रदः।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः॥
लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजो कुजो भौमो भूमिजो भूमिनन्दनः॥
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगा हारकः।
सृष्टिकर्त्ता वृष्टिकर्त्ता सर्वकामफलप्रदः॥
एतानि कुजनामानि नित्यं यः प्रयतः पठेत्।
ऋणान्न जायते तस्य धनं यच्छति वाञ्छितम्॥]

यह बात मैंने प्रोफेसर गौडर्डसे भी कही जो मंगलकी यात्राके लिये गरुड-विमान (रौकेट प्लेन) बना रहे हैं। उन्होंने यह विवरण सुनकर बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि 'जान पड़ता है हम लोगोंकी अपेक्षा भारतने मंगलके सम्बन्धमें कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।' यद्यपि उन्होंने आपकी सब बातोंका समर्थन तो नहीं किया किन्तु उन्होंने इतना अवश्य कहा कि 'ये विवरण मेरी मंगल-सम्बन्धी खोजमें सहायक अवश्य सिद्ध होंगे, क्योंकि यह सम्भव है कि मंगल ग्रहपर रहनेवाले लोग अत्यन्त धनी हों, उनकी आँखे लाल हों, उन्हें संगीतमें अत्यन्त रुचि हो और वे जल बरसानेकी कोई विशेष कला भी जानते हों।'

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मंगलके सम्बन्धमें कुछ बातें तो निश्चित रूपसे कही जा सकती हैं और कुछ अटकलसे। प्रोफ़ेसर गौडर्डने मंगलके सम्बन्धमें मुझे जो विवरण दिया है वह मैं आपकी सुविधाके लिये लिख भेज रहा हूँ—

"ग्रहोंमें, पृथ्वीका निकटतम पड़ोसी मंगल ही है। वह जब पृथ्वीके अत्यन्त निकट आता है तब वह हमसे कुल चालीस करोड़ मील दूर रह जाता है। मंगलका व्यास केवल ४२६० मील है। पृथ्वीसे बहुत छोटा होनेके कारण उसका गुरुत्वाकर्षण (भारी वस्तुको अपनी ओर

खींचनेका बल) भी इतना कम है कि पृथ्वीपर जिस मनुष्यका भार ७५ (पचहत्तर) सेर है वह मंगलपर केवल २६॥ (साढ़े छब्बीस) सेर रह जाता है और जितने श्रमसे हम पृथ्वीपर चार हाथ दूर कूद सकते हैं उतने श्रमसे मंगल-निवासी ग्यारह कूद हाथ लेता है । यदि हम वहाँ दस हाथ ऊँचे उछल जायँ त भी इतने धीरे-धीरे ऊपरसे गिरेंगे मानो उड़नछतरी (पैराशूट) के स हारे उतर रहे हों । वहाँ हम एक मनका पत्थर उठाकर बड़ी सरलता से ६० फ़ुट दूर फेंक सकते हैं और तनिकसे परिश्रमसे ४० फ़ीट ऊँची उछाल मार सकते हैं । इस दृष्टिसे हम मंगल-वासियोंसे तिगुने तगड़े सिद्ध होंगे अर्थात् हम तीन-तीन मंगल-वासियों को एक साथ पछाड़ सकेंगे और यदि हमें भागना भी पड़ जाय तो हम उनसे तिगुने वेगसे भाग सकेंगे ।

किन्तु वहाँ कुछ कठिनाइयाँ भी होंगी । वहाँ आपको बैठना पड़ जाय तो कुछ बल लगाकर बैठना पड़ेगा । गिलासमें पानी उड़ेलेंगे तो वह इतने धीरे-धीरे गिरेगा मानो रूई बरस रही हो। वहाँ वायुका दबाव इतना कम है कि आपको भोजन पकाना कठिन हो जायगा क्योंकि तनिक-सी गरमी पाते ही पानीमें उबाल आ जायगा और वह खौलता हुआ-सा लगने लगेगा, इसलिये वहाँ ऐसे ढक्कनवाली पतीलीमें भोजन बनाना पड़ेगा जो कसकर पतीलीका मुँह दबाए रक्खे और जिसमें भाप निकलनेके लिये भी अत्यन्त नन्हाँ-सा छिद्र हो। वायुके इस कम चापके कारण हमें गैसकी टोपी और ऐसा कपड़ा पहनकर वहाँ जाना पड़ेगा जिसमें वहाँका वायु शरीरमें प्रवेश न पा सके, नहीं तो हमारे शरीरकी नसें ही फट पड़ने ल गेंगी । वहाँ शीत भी बहुत पड़ता होगा किन्तु गरम कपड़े और आ के सहारे वहाँका शीत बहुत कुछ सहन किया जा सकता है ।

मंगलपर दो चन्द्रमा चमकते हैं जिनका व्यास ३० मीलसे भी कम है । वे दोनों चन्द्रमा भी मंगलके निकट होकर घूमते रहते हैं। मंगलका

दिन हमारे दिनसे चालीस मिनट बड़ा होता है। दूरवीक्षण-यंत्रसे देखने-पर मंगलपर जो धारियाँ दिखाई पड़ती हैं उन्हें कुछ वैज्ञानिक नहर बताते हैं किन्तु यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि वे हैं क्या किन्तु यह बहुत सम्भव है कि मंगलका जन्म पृथ्वीसे ही हुआ हो।

मंगलके सम्बंधमें कुछ लोगोंने यह अनुमान लगाया है कि वहाँ के मनुष्य पन्द्रह-बीस फ़ीट ऊँचे होंगे, उनकी नाक सूँड़-जैसी होगी, वे कृत्रिम कान लगाते होंगे, उनके पैर अत्यन्त पतले होंगे, उनके मुँह अत्यन्त नन्हें-से अधखुले होंगे, वे इतने सभ्य और उन्नत होंगे कि उनका सब कार्य यन्त्रसे होता होगा। सन् १९२६ की शरद ऋतुमें प्रोफ़ेसर रौबर्ट डेनियलने लिखा था कि 'जाड़ेकी घनघोर रात्रियोंमें मंगल ग्रहके आस-पास आकाशमें सहसा विचित्र नीले रंगका प्रकाश चमक उठता था और यह प्रकाश प्रतिबार चालीस सेकेण्डतक बना रहता था। यह प्रकाश इतना तीव्र था कि उसके आलोकमें कोई भी व्यक्ति अत्यन्त सुविधापूर्वक समाचार-पत्र पढ़ सकता था। मुझे विश्वास है कि मंगल-वाले हमारे पृथ्वीको संकेत करनेका प्रयत्न कर रहे थे।' विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक तथा रेडियोके आविष्कर्त्ता मारकोनीने भी बहुत दिन हुए लिखा था कि 'मेरे रेडियो-यन्त्रपर कई बड़ी-बड़ी ऊर्मिधाराओं (वेवलेन्थों) के संकेतका प्रभाव प्रतीत हुआ था। सम्भवतः यह संकेत मंगल-वासियोंका ही हो किन्तु पृथ्वीकी ओरसे कोई उत्तर न पाकर उन्होंने निराश होकर प्रयत्न छोड़ दिया होगा क्योंकि उन्होंने सोचा होगा कि पृथ्वीवालोंकी सभ्यता इतनी हीन है कि हम लोगोंको अभी इस सम्बन्धमें कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए।''

प्रोफ़ेसर गौडर्डने यह विवरण देनेके साथ-साथ मुझे यह भी आपसे प्रार्थना करनेके लिये लिखा है कि भारतमें मंगलके सम्बन्धमें जितने प्रवाद प्रचलित हैं उन सबका संग्रह करके मेरे पास भेजनेकी व्यवस्था

करें। मुझे विश्वास है कि आप इस सम्बन्धमें भारतके ज्योतिषियोंसे परामर्श करके उचित सामग्री भेज सकेंगे।

मंगल पहुँचनेके लिये जो रौकेट-विमान बनाया गया है वह ढाई सहस्र मील प्रति घंटेकी गतिसे सवायु तथा निर्वायु आकाशमें ध्वनिकी गतिसे भी तिगुने वेगसे उड़ सकता है और पृथ्वीके अट्ठारह गुने गुरुत्वाकर्षणका प्रतिरोध कर सकता है। इसके निर्माणमें आर्मी एयर फोर्सेज़-बेल एयरक्राफ्ट कौर्पोरेशन तथा नेशनल एडवाइज़री कमेटी फ़ौर एयरोनौटिक्सका पूर्ण सहयोग है। इस विमानके पंख अत्यन्त पतले आल्मोनियम-मिश्रित धातुसे ढले हैं जो पीछेकी ओर आध इंच मोटे हैं। इस विमानके अंजनके चारों खंडोंमें जो मदिर-द्रवका तरल औक्सिजन जलता है उससे उसमें डेढ़ सहस्र पौंडकी झोंक आ जाती है। ज्यों-ज्यों इसके अंजनकी गति बढ़ती चलती है त्यों-त्यों शक्ति देनेवाली सामग्री भी बढ़ती चलती है। एक पौंड झोंकका अर्थ है ३७५ मील प्रति घंटेकी गतिसे चलनेवाले एक घोड़ेकी शक्ति। इस विमानका चालक जितने ढबले (सिलिन्डर) दागता जायगा उतनी ही इसकी शक्ति बढ़ती जायगी।

यह गरुड-विमान ३१ फ़ीट लम्बा और १० फ़ीट १० इंच चौड़ा है। इसके पंख २८ फ़ीट लम्बे हैं। रिक्त विमानका भार लगभग ४८९१ पौंड अर्थात् ६१ मन है जिसमें ५२६ पौंड भारी तो वे यंत्र हैं जो इसकी गति, ऊँचाई आदि नापनेके लिये इसमें लगाए गए हैं। जब यह विमान उड़ेगा उस समय इसमें ८१७७ पौंड ईंधन रक्खा जायगा। यह 'एक्स० एस्० १' नामक गरुड्-विमान स्वयं धरतीसे नहीं उड़ेगा। इसे एक दूसरा 'बी० २९' नामक विमान, यात्रा प्रारम्भ करनेकी उँचाईपर ले जाकर छोड़ देगा और वहींसे यह अपने ढबले (सिलिण्डर) दागकर शून्यमें उड़ चलेगा।

प्रोफ़ेसर गौडर्डका विचार है कि इस विमानमें २७ व्यक्ति ले जाए

जायँगे जिनमें चल-चित्रकार, ज्यौतिषी, वैज्ञानिक, जीव-विद्या-विशारद, शिल्पी, बहुभाषाविद् आदि होंगे। प्रोफ़ेसर गौडर्डने यह भी पूछा है कि यदि भारतके कुछ मंत्र, यंत्र, तंत्र जाननेवाले, वैद्य और संगीतज्ञ चलना चाहें तो उन्हें भी इस यात्रामें सम्मिलित किया जा सकता है। इस यात्रामें सुग्गे, मुर्गे, चूहे, खरहे आदि कुछ छोटे जीव भी साथ ले चलनेका विचार है। एक ऐसा शक्तिशाली रेडियो भी बनाया जा रहा है जो पृथ्वी-वासियोंको क्षण-क्षण पर यात्राका पूरा विवरण देता रह सके।

यह यात्रा दस वर्षके भीतर सर्वसुलभ हो जायगी। गरुड-विमान (रौकेट प्लेन) के निर्माताओंने कुछ दिन पूर्व यह सूचना भी निकाली थी कि जिन लोगोंको मंगल ग्रहपर भूमि लेनी हो या इस अन्तर्ग्रही (इन्टर-प्लेनेटरी) यात्रामें चलना हो वे स्थान सुरक्षित करा लें। बहुतसे लोगोंने स्थान सुरक्षित करा भी लिए हैं। देखें, उनका यह स्वप्न कब पूरा होता है! विश्वके इतिहासमें वह दिन ऐतिहासिक होगा जिस दिन धरित्रीके मानव तथा अन्य जीव यात्रियोंको लेकर यह गरुड-विमान अत्यन्त भीषण गतिसे शून्यमें उड़ चलेगा और मंगलपर पहुँचकर, वहाँवालोंसे प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करेगा।

भवदीय—
हचिन्सन

समीक्षात्मक निबन्ध

इतना ही नहीं, इसी तद्भव-तत्समाश्रित भाषाकी मिश्र-वाक्य शैलीमें उच्च स्तरके समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे जा सकते हैं। एक उदाहरण लीजिए—

समीक्षाकी कसौटी

समीक्षा या समीक्षणका अर्थ है—'भली प्रकार दर्शन करना, देखना, जाँचना, छानबीन करना अर्थात् किसी भी व्यक्ति, वस्तु या

विषयके संबंधमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना और दूसरोंका उसका ज्ञान प्राप्त कराना।" अतः "समीक्षा या समीक्षण वह साधु तात्त्विक प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य कुछ दर्शनीय पदार्थ (वस्तु, व्यक्ति या विषय) देखनेको इच्छा करे और देख चुकनेपर उसमें जो द्रष्टव्य हो उसे दूसरेको भी दिखानेकी इच्छा करे और दिखावे।" इस परिभाषाके कारण ही समीक्षक, समीक्ष्यवादी और समीक्षा-शास्त्रीमें अन्तर हो गया है। जो व्यक्ति स्वयं साधु-वृत्तिसे किसी पदार्थका परीक्षण करके भली प्रकार उसका ज्ञान प्राप्त कर ले उसे समीक्षक कहते हैं। किन्तु जो किसी पदार्थका तात्त्विक ज्ञान प्राप्त करके उसकी विशेषताएँ दूसरोंको भी बता दे उसे समीक्ष्यवादी कहते हैं। इनके अतिरिक्त जो लोग स्वयं तो किसी पदार्थका तात्त्विक ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं किन्तु किसी पदार्थका निरीक्षण, परीक्षण और विश्लेषण करके उस पदार्थका आनन्द ले सकनेकी योग्यताके लिये सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं उन्हें समीक्षाशास्त्री कहते हैं।

समीक्षाका व्यापक आधार हमारी रुचि है। हम किसी वस्तुको अच्छी और किसीको बुरी समझते हैं। आगे चलकर इस रुचिके लिये हम यह कारण भी देने लगते हैं कि अमुक वस्तु हमें क्यों अच्छी लगती है। यदि हम इन समीक्षा-कार्यका विश्लेषण करें तो हमें उसके अन्तर्गत तीन तत्त्व मिलेंगे—१. चयनवृत्ति, अर्थात् अपनी रुचिके अनुकूल वस्तु ढूँढ़ निकालनेकी वृत्ति, २. जिज्ञासा-वृत्ति, अर्थात् किसी अज्ञात, नवीन अथवा अद्‌भुत वस्तुके रूप, उपयोग या प्रकृतिका ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा और ३. अहंवृत्ति, जिसके कारण हम अपनी ही रुचिको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, अपने प्रिय पदार्थकी निन्दा नहीं सुन सकते हैं और दूसरोंसे भी आशा करते हैं कि वे भी हमारा समर्थन करें। ये तीन वृत्तियाँ ही समय-समयपर कभी अकेले और कभी समष्टि रूपसे लोगोंको कलाकृतियों अथवा साहित्योंके परीक्षणके लिये प्रेरित करती है।

समीक्षाका दूसरा किन्तु सारपूर्ण आधार सामाजिक रुचि है। आजसे पूर्व हमारे अनेक पूर्वजोंने अनेक पदार्थोंका निरीक्षण और परीक्षण करके, उन पदार्थोंकी प्रकृतिका विश्लेषण करके यह कसौटी निर्धारित कर दी है कि सामाजिक दृष्टिसे अथवा अधिकांश मनुष्योंकी दृष्टिसे किस प्रकारकी वस्तुएँ अधिक आह्लादकारी, सुखकारी और हितकारी होती हैं। इन परीक्षणों और विश्लेषणोंके परिणामस्वरूप बहुत-सी कसौटियाँ हमें परम्परासे प्राप्त हो गई हैं। इस दृष्टिसे समीक्षाके दो आधार हुए—१. व्यक्तिगत रुचि और २. सामाजिक या रूढ रुचि।

किन्तु कभी-कभी युगके साथ अनेक परिस्थितियोंके कारण अथवा नये ज्ञान-विज्ञानकी उन्नतिके कारण उसकी रुचिमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह नवीन परिवर्त्तन कुछ तो रुचि-परिवर्त्तनके कारण, कुछ अन्य जातियों या समाजोंके सम्पर्कके कारण और कुछ युगकी आवश्यकताओंके कारण रूप ढालता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि समीक्षाकी और भी नई-नई व्यापक कसौटियाँ समय-समयपर बनती रहती हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उससे पूर्व जो सामाजिक कसौटियाँ बनाई जा चुकी हैं, वे अव्यवहार्य हो जाती हैं।

समीक्षाका केवल इतना ही प्रयोजन नहीं है कि हम किसी वस्तुपर रीझकर झट उसका गुणगान करने लगें। प्रत्येक रसज्ञ और भावक व्यक्ति सुन्दर पदार्थोंसे सदा भावित होता ही रहता है। यही उसकी रसज्ञताकी पहचान है। किन्तु इसी कारण उसका यह धर्म भी हो जाता है कि वह अन्य लोगोंको भी उनका आनन्द लेनेके लिये प्रेरित करे। अपनी इस समीक्षावृत्ति अथवा भली प्रकार किसी वस्तुका आनंद खोज निकालनेकी वृत्तिके कारण उसमें यह शक्ति आ जाती है कि वह प्रत्येक वस्तुका गुणतत्त्व भी भली

भाँति समझता चले। यह शक्ति आ जानेपर वह कोरा समीक्षक न रहकर पथप्रदर्शक भी हो जाता है। वह लेखकोंका मार्ग-प्रदर्शन करता है और अन्य साहित्य-प्रेमियोंको निर्देश करता है कि साहित्यका आनन्द किस प्रकार लेना चाहिए। इस प्रकार पथ-प्रदर्शन करके वह धीरे-धीरे लोकरुचिका भी परिष्कार कर देता है जिससे एक ओर तो अच्छे साहित्यकी सृष्टि होती है और दूसरी ओर अच्छे साहित्यका रस लेनेकी भावना तथा सुरुचि भी लोगोंमें जाग उठती है। इस प्रकार समीक्षक वास्तवमें लेखकोंका और जनताका मार्गप्रदर्शक ही नहीं, सच्चा सेवक भी है।

किन्तु प्रत्येक व्यक्ति समीक्ष्यवादी नहीं हो सकता। समीक्ष्यवादीमें स्वयं साहित्य पढ़नेकी, साहित्यके भीतर डूबनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होनी चाहिए और वह समर्थता भी परिष्कृत रुचिसे प्रेरित होनी चाहिए। जितना ही अधिक वह अध्ययन करेगा, जितना ही अधिक उसे सामाजिक आचार, इतिहास, लोकरुचि, लोकप्रवृत्ति, ज्ञानविज्ञान आदिका परिचय होगा उतनी ही सूक्ष्मता और स्पष्टताके साथ वह काव्यका समीक्षण भी कर सकेगा। किन्तु यह वृत्ति भी तभी सफल हो सकती है जब उसमें सौंदर्य-भावनाका भी संस्कार हो अर्थात् उसे सौंदर्यकी सर्वमान्य कसौटियोंका प्रत्यक्ष परिचय भी हो और वह स्वयं सुन्दर साहित्यको पाकर उसपर मुग्ध भी हो सके।

समीक्ष्यवादीमें सबसे प्रमुख गुण चाहिए निष्पक्षता। कुछ विद्वानोंका मत है कि 'समीक्ष्यवादीको लेखकसे सहानुभूति रखकर उसकी समीक्षा करनी चाहिए।' किन्तु यह राग और सहानुभूति रचनाके बदले रचनाकारके साथ नहीं हो जानी चाहिए। इसलिये जो लोग किसी विशेष दल, समाज, वर्ग या सम्प्रदायमें दीक्षित होते हैं वे कभी सफल समीक्ष्यवादी नहीं हो सकते। कुछ आचार्योंने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि 'समीक्षाक उद्देश्य है किसी वस्तुका याथातथ्य देखनेमें

समीक्ष्यवादीकी सहायता करना।' अर्थात् समीक्ष्यवादीके मस्तिष्कको निर्विकार और निष्पक्ष होकर स्वतंत्र रूपसे विचार करनेका क्षेत्र मिलना चाहिए। प्रसिद्ध समीक्ष्यवादी मैथ्यू आरनोल्डका मत है—'समीक्षाका काम इतना ही है कि संसारमें जितना कुछ सर्वश्रेष्ठ जाना और विचारा गया है उसे जान ले और फिर उसे दूसरोंको इसलिये बतला दे कि जिससे सच्चे और लुप्त विचारोंकी अखण्ड धारा निरन्तर बहती रहे।'

इन गुणोंके साथ-साथ समीक्ष्यवादीमें अभिव्यक्तिका यह कौशल भी होना चाहिए कि वह समीक्ष्य साहित्यके संबंधमें जो कुछ कहे वह स्पष्ट, युक्तिसंगत, तर्कसंगत, निष्पक्ष और प्रभावशाली हो, पाठकको अपने मतसे सहमत कर सके। यह संस्कार तभी आ सकना है जब समीक्ष्यवादीका अध्ययन पूर्ण हो, भाषापर अबाध अधिकार हो और वह निष्पक्ष रूपसे उस साहित्यके प्रति अपनी सम्पूर्ण सौंदर्य-भावनाको स्पष्टतः विश्लिष्ट करके प्रस्तुत कर सके।

संसार-भरमें समीक्ष्यवादी चार प्रकारके होते हैं—१. काकवृत्ति-वाले, जो सदा दूसरोंकी निन्दा ही करते हैं और दूसरोंमें दोष ही खोजा करते हैं; २. कोकिल वृत्तिवाले जो सदा अपने ही दलकी रीति-नीतिको श्रेष्ठतम मानकर दूसरोंकी बुराई करते रहते है; ३. मधुकर-वृत्ति, जो सभी फूलोंपर बैठ-बैठकर उनका रस लेते हैं और सब रचनाओंमेंसे केवल गुण ही गुण निकालकर उन्हें सबके समक्ष उपस्थित करते रहते हैं। किन्तु वास्तविक समीक्षा ४. हंस-वृत्तिवालोंकी होते हैं, जो निष्पक्ष निर्णायककी भाँति सब प्रकारके पक्षपातोंसे विलग होकर दूधका दूध और पानीका पानी कर देते हैं और प्रत्येक रचनाके गुण-दोषको अत्यन्त विशद तथा स्पष्ट रूपसे व्यक्त करके लोगोंके सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं कि लोग गुण तो ग्रहण कर लें और अवगुणसे सावधान होकर उसका त्याग कर दें। ऐसे मधुकर और

हंस-वृत्तिवाले ही वास्तवमें सच्चे और हितकर समीक्षक होते हैं।

इन गुणों और तत्त्वोंसे युक्त होकर ही समीक्षकको किसी रचनाका समीक्षण करने लिये उतरना चाहिए और उस रचनाका भली प्रकार अध्ययन करके अपनी समीक्षामें इतनी बातोंका उत्तर देना चाहिए—

१. वह रचना जिस युगमें की गई उस समय देश या समाजकी मानसिक वृत्ति क्या थी? कविकी मानसिक वृत्ति क्या थी? किन किन परिस्थितियोंमें किन प्रेरणाओंसे उस रचनाका जन्म हुआ?

२. कविने किस उद्देश्यसे रचना की? उस रचनाकी कथा यदि कहींसे ली गई है तो कविने उसे ज्योंका त्यों रक्खा है या उसमें परिवर्त्तन किया है? किया है तो क्यों? उस परिवर्त्तनमें क्या चमत्कार उत्पन्न हुआ है?

३. प्रस्तुत वस्तु या भावकी व्याख्या या व्यंजना करनेके लिये कविने अप्रस्तुत-विधान अर्थात् कल्पनाका योग करके काव्य-रमणीयतामें क्या योग दिया है? शब्द और अर्थपर कविता कितना अधिकार है? भावके अनुकूल शब्द-योजना करनेकी कविमें कितनी क्षमता है?

४. कविने पात्रों और घटनाओंका संयोजन परिस्थितिके अनुकूल किया है या नहीं? संवाद और व्यापारकी योजना करते हुए कविने पात्रोंकी मर्यादा और घटनाकी स्वाभाविकताका ध्यान रक्खा है या नहीं? कोई वर्णन सीमासे बाहर जाकर बड़ा या बहुत छोटा तो नहीं हो गया है? पात्रोंके वर्णनसे उनका चरित्र स्पष्ट हो पाया है या नहीं?

५. कविने अनावश्यक पात्रों और घटनाओंका सन्निवेश तो नहीं किया है? भावके अनुकूल उचित छन्दो-योजना हुई है या नहीं? छन्दके प्रयोगसे क्या सौन्दर्य अथवा अनुचित छन्दके प्रयोगसे क्या दोष आ गया है?

६. कवि जो रस-प्रभाव डालना चाहता है वह उत्पन्न होता है या नहीं ? उस रसके साधक या बाधक तत्त्व क्या हैं ?

७. मर्मस्पर्शी स्थलोंका उचित निर्वाह कविने किस प्रकार किया है और उसमें वह कहाँतक सफल हुआ है ?

८. कविने अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये 'कान्तासम्मित उपदेश' के अतिरिक्त अन्य उपदेशवाली वृत्ति तो नहीं ग्रहण की ?

९. कविने अपनी भाव-वस्तुको व्यक्त करनेके लिये किस कौशलका प्रयोग किया है ? उसके प्रारंभ और अन्तमें क्या विशेषता है ?

१०. जिस कौशलसे कविने वस्तुविन्यास किया है उससे क्या चमत्कार, सौन्दर्य या आकर्षण उत्पन्न हो गया है ?

११. सौन्दर्य, अद्भुतत्व तथा असाधारणत्व गुणतत्त्वोंके समारोपणके लिये कविने क्या कवि-कर्म किया है और उसमें वह कहाँतक सफल हुआ है ?

तद्भव-तत्समाश्रित लाक्षणिक वाक्य-शैली

तद्भव-तत्समात्मक भाषा-शैलीका वर्गीकरण करते हुए हम बता आए हैं कि उसकी एक लाक्षणिक शैली भी होती है जिसमें मुख्य अर्थका बाध करके अर्थात शब्दोंके प्रचलित अर्थके बदले उनके लाक्षणिक या व्यंग्य अर्थ ही मुख्य होते हैं। तद्भव-तत्समात्मक भाषा-शैलीकी यह लाक्षणिक शैली सरल वाक्योंमें भी होती है और मिश्र-वाक्योंमें भी। नीचे 'सिद्धार्थ' नाटकका एक दृश्य और 'मैं रूस जा रहा हूँ' कहानी दी जाती है जिनमें लाक्षणिक सरल तथा मिश्र वाक्य-शैलियोंका प्रयोग मिलेगा।

नाटक

नाटकमें दोनों प्रकारकी वाक्य-शैलियों (सरल और मिश्र) का प्रयोग स्वाभाविक रूपसे प्राप्त होता है अतः यह लीजिए........

सिद्धार्थ

पात्र-परिचय

गौतम	: बुद्ध	छन्दक	: सारथि
देवदत्त	: गौतमका चचेरा भाई	सुपर्णा	: मालिन
शुद्धोदन	: गौतमके पिता	मधुकरिका	: मालिन
सुपर्वण	: शुद्धोदनके मन्त्री	हेमलता	: मालिन

प्रथम अंक : प्रथम दृश्य

स्थान : कपिलवस्तुका प्रमोदोद्यान

समय : प्रातःकाल

[प्रमोद उद्यानमें सुपर्णा, मधुकरिका और हेमलता तीन ओरसे फूल चुनती हुई प्रवेश करती हैं। उनके कंठसे निकला हुआ संगीत फुलवारीको और भी अधिक मधुमय बना रहा है।]

[भैरवी रागिनी]

सुमन-सुनममें छाई मंजुल, मंजरी, मंजरी, मंजरी।
नव किसलयपर हास बिछाकर
मन—मनमें उल्लास जगाकर
फूल-फूलकर, हँस-हँस खिलकर
वन-उपवनमें छाई मंजुल मंजरी, मंजरी, मंजरी।
गुनन - गुनन - गुन भौंरा गावे
कोकिल मधुतम तान सुनावे
मीड़-मूर्च्छनाके स्वर कोमल
तन-तनमें भर लाई मंजुल, मंजरी, मंजरी, मंजरी।

सुपर्णा : (बाईं ओर देखकर मधुकरिकासे) मधु ! कुमार आ रहे हैं।

मधुकरिका : (घूमकर उधर ही देखते हुए) आज तो अकेले चले आ रहे हैं हेम !

हेमलता : (सावधान होकर) हाँ ! आजकल ये अकेले ही घूमते हैं और न जाने क्या दिन-रात सोचा करते हैं।

मधुकरिका : (सुपर्णासे) वे क्या विचार करते रहते हैं सुपर्णा !

सुपर्णा : (अनभिज्ञताकी मुद्रामें सिर झुलाकर) यही तो समझमें नहीं आता।

हेमलता : (सुपर्णा और मधुकरिकासे) अच्छा मौन होकर खड़ी हो जाओ।

[तीनों आदरके साथ अपनी-अपनी फूलोंकी पिटारी दोनों हाथोंमें ऊपर उठाकर एक ओर खड़ी हो जाती हैं। गौतमका प्रवेश। तीनों सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करती हैं।]

सुपर्णा : (अत्यन्त विनम्रता-भरे स्वरमें फूलकी पिटारी बढ़ाते हुए) उपवनकी लताओंने देवकी सेवाके लिये यह उपहार दिया है।

गौतम : बड़ी कृपा है उन लताओंकी जो अपना सौंदर्य उतारकर हमारा शृंगार करती हैं।

[थोड़े फूल लेकर हृदयसे लगा लेते हैं।]

मधुकरिका : (अपनी पिटारी बढ़ाकर) यह भी सेवामें अर्पित है है देव !

गौतम : मैं इनका भी आदर करता हूँ।

[फूल लेकर आँखोंसे लगा लेते हैं।]

हेमलता : ये सुमन भी स्पर्शके लिये व्याकुल हैं।

[अपनी पिटारी आगे बढ़ा देती है।]

गौतम : मैं इनका ऋणी हूँ। (फूल उठाकर सिरसे लगाते

हुए) कितने उदार हैं ये वृक्ष ! कितनी तपस्विनी हैं ये लतिकाएँ जो शिशिर और हेमन्तकी रात्रिमें भी अपने हृदयका समस्त सौंदर्य मथकर प्रातःकाल संसारकी अर्चनाके लिये बिखेर देती हैं ! यदि मैं भी लता हो पाता ! (लम्बी साँस लेकर तीनोंसे) ये फूल आप देवियोंने चुने हैं ?

तीनों : (विनयपूर्वक) जी हाँ ! कुमार !

गौतम : जब आप लोग फूल उतारने लगती हैं तब मल्लिकाकी शाखा कुछ कहती नहीं ?

[तीनों एक दूसरेका मुँह देखती हैं ।]

गौतम : मैं पूछ रहा था कि जब अपनी कोमल उँगलियोंसे लताओंके वृन्त झुकाकर आप फूल उतारती हैं तब भी क्या वह हँसती रहती है ?

सुपर्णा : (अत्यन्त मधुर स्वरमें) वह तो जड है कुमार !

गौतम : (आश्चर्यसे) जड़ ? इतने सुगन्धित सुन्दर सुमन जिसके हृदयसे जन्म लेते हैं, उसे जड़ कहती हो ! (स्वयं भावमग्न होकर) ओह ! यदि मैं भी जड हो पाता तो इतने सुन्दर सुमन उत्पन्न करके उनकी सुगन्धसे संसारको तृप्त कर डालता ! (लताओंकी ओर देखकर) उपवनकी लताओ ! तुम धन्य हो । तुम्हारी निधि तुम्हींपर न्यौछावर है । (फूलोंसे अञ्जलि भरकर लताओंपर फेंक देते हैं । फिर तीनोंकी पेटिकाओंसे फूलोंकी अञ्जलि भरकर तीनों मालिनोंसे) और देवियो ! इन लताओंकी सुकुमार संगिनी होकर आप नित्य उनका पोषण करती हो, सेवन करती हो, इनकी रक्षा करती हो, आपका जीवन धन्य है। आप वनदेवियाँ हो । मैं आप सबका अभिनन्दन करता हूँ ।

[इतनेमें धनुषकी टंकारके साथ 'वह मारा !!' की ध्वनि पास ही सुनाई पड़ती है, पंखोंकी फड़-फड़ और कें केंकी ध्वनि होती है। सब ऊपर देखते हैं । बाणसे बिंधा हुआ एक हंस सहसा पृथ्वीपर आ गिरता है। गौतम शीघ्रतासे बढ़कर उसके पास पहुँचते हैं ।]

गौतम : (करुण व्यथाके साथ) ओह ! किसीने बाण मार दिया। (हंसको गोदीमें उठाकर पुचकारते हुए) डरो मत !

[बड़ी व्यथासे सीत्कारके साथ उसके शरीरसे बाण निकालते हैं और अपने पीताम्बरसे रक्त बन्द कर देते हैं ।]

सुपर्णा : (बढ़कर) लाइए, कुमार ! मुझे दीजिए। आपके पीताम्बरमें रक्त लग जायगा ।

गौतम : लग जाने दो । पीड़ितकी पीड़ाका स्पर्श पाकर पीताम्बर पवित्र हो जायगा। (हेमलतासे) एक काम करोगी ?

हेमलता : (हाथ जोड़कर) आज्ञा हो ।

गौतम : थोड़ा-जा जल तो ले आओ ।

हेमलता : अभी लाई ।

[पिटारी छोड़कर पानी लेने चली जाती है । हंसको लेकर गौतम घुटने टेककर बैठ जाते हैं । दोनों पंखा झलने लगती हैं । हंसकी चोंच फैलाकर कंधेतक लगा लेते हैं । उसकी चोंचपर अपना गाल रखकर हाथ फेरते हैं। हेमलता कमलके पत्तेके दोनेमें जल लाती हैं । हंसकी चोंच गौतम जलमें डालते हैं ।]

गौतम : (सुपर्णासे) अभीतक भी इसकी पीड़ा कम नहीं हो पाई है ।

मधुकरिका : इसे बाण लगा है कुमार !

[गौतम बाण उठाकर अपने हाथमें चुभोते हैं ।]

तीनों : हैं, हैं ! यह क्या करते हैं कुमार !

[आँखें फाड़कर देखती हैं ।]

गौतम : ओह ! बाण चुभोकर इसकी पीड़ा मापनेका प्रयास कर रहा था। (पुचकारते हुए) आह ! अपनी पीड़ा मुझे देकर तुम उड़ जाओ उस आकाशमें, जहाँ मनुष्य न हों, धनुष न हो, बाण न हो, जहाँ

तुम निर्भय होकर उड़ सको ! (सहलाते हुए) डरो मत ! घबराओ मत ! अब तुम मेरी गोदमें हो । (तीनों मालिनोंसे) आप लोग जाकर मेरे शयन-कक्षमें इसकी भी कोमल शय्या बना दीजिए । स्वस्थ होते ही मैं इसे लेकर आता हूँ ।

तीनों : जो आज्ञा !

[तीनोंका प्रस्थान । देवदत्तका प्रवेश ।]

देवदत्त : यह हंस इधर दीजिए ।

गौतम : (आश्चर्यसे) क्यों ?

देवदत्त : (उद्धत भावसे) क्यों क्या ? मैंने इसे मारा है ।

गौतम : (सरलतासे) कहाँ मारा है ? यह तो साँस ले रहा है देवदत्त !

देवदत्त : इससे क्या ! आखेट तो मैंने किया है ।

गौतम : (अत्यन्त करुण मुद्रामें) स्वच्छन्द पंख फैलाकर उड़ते हुए इस कोमल पक्षीपर धनुष उठाते हुए क्या एक बार भी तुम्हारे हाथ नहीं काँपे ?

देवदत्त : (उद्दण्डताके साथ) इसमें हाथ काँपनेकी क्या बात है ? (अधीर होकर) इधर दीजिए, मुझे बिलम्ब हो रहा है ।

गौतम : (गम्भीरताके साथ) अब इसपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं देवदत्त !

देवदत्त : (अविनयपूर्ण जिज्ञासाके साथ) क्यों ?

गौतम : (सात्विक दृढताके साथ) इसलिये कि तुमने इसके प्राण पीनेके लिये इसपर बाण चलाया था किन्तु बाण इसके प्राण नहीं ले सके ।

देवदत्त : इससे क्या हुआ ? यह मेरे बाणसे आहत होकर तो गिरा है ।

गौतम : (सरल जिज्ञासा भावसे) तुम्हें इसपर बाण चलानेका क्या अधिकार था देवदत्त ?

देवदत्त : (आत्मविश्वासके साथ) अधिकार ? वही अधिकार जो सिंहको मृगपर है, मकरको मछलीपर है, बिडालको मूषकपर है।

गौतम : तो मेरा भी यही अधिकार है कि जैसे गौ अपने वत्सकी रक्षा करती है, वैसे ही मैं भी इसके प्राणोंकी रक्षा करूँ।

देवदत्त : (बौखलाकर) तो आप नहीं देंगे ?

गौतम : (दृढतासे) कैसे दे सकता हूँ देवदत्त !

[हंसको और भी प्रेमसे गलेसे चिपका लेते हैं।]

देवदत्त : देखता हूँ कैसे नहीं दोगे !

[गमनोद्यत]

गौतम : (खड़े होकर) अपने बलका अभिमान न करो देवदत्त ! तुम्हें बल मिला है इसलिये कि तुम पीडितोंकी रक्षा करो, दुखियोंकी सहायता करो, व्याकुलको सान्त्वना दो। इसलिये नहीं कि अपने अकरुण बाणोंको नीरीह जीवोंके प्राण पिलाते रहो। देख रहे हो ! तुम्हारे कराल बाणने उसके हृदयमें भयकी जो धुकधुकी उत्पन्न कर दी है वह अभीतक शान्त नहीं हो पाई है। मैं तुमसे इसके प्राणोंकी भिक्षा माँगता हूँ देवदत्त !

देवदत्त : मैं ऐसा दाता नहीं बनना चाहता।

गौतम : यदि तुम यह भिक्षा नहीं दोगे तो अपने प्राण संकटमें डालकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

देवदत्त : (स्वर चढ़ाकर आवेगसे) मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैंने इसे मारा है, यह मेरा है, मुझे मिलना चाहिए, न्यायसे मुझे मिलना चाहिए।

[महाराज शुद्धोदन और सुपर्वणाका प्रवेश।]

शुद्धोदन : यह क्या हो रहा है देवदत्त ?

देवदत्त : आर्य ! मैंने यह हंस अपने बाणसे मारा है। यह मुझे मिलना चाहिए।

गौतम : (विनयके साथ) यह हंस न्याय चाहता है आर्य !

शुद्धोदन : (आश्चर्यसे) क्या हुआ ?

गौतम : (शील-भरे स्वरमें करुणाका कंपन देकर) बाणसे बिंधा हुआ यह व्याकुल पक्षी, मेरी आँखके आगे धरतीपर आ गिरा। मैंने इसे उठाया, इसके पंख सीधे किए, बाण निकाला और उसके साथ ही स्रोत बनकर इसका रक्त बह चला। यह काँप उठा, कराह उठा। मैंने इसे जल पिलाया, गोदमें उसे आश्रय दिया और बाण अपने हाथमें.... ओह ! कितनी वेदना इसको हुई होगी आर्य ! तबसे मैं इसे गोदमें लिए बैठा हूँ।

शुद्धोदन : किसलिये ?

गौतम : उसके शरीरमें प्राण भरनेके लिये, उसके पंखोंमें आकाश नापनेकी शक्ति भरनेके लिये।

शुद्धोदन : (देवदत्तसे) और तुमने किस लिये उसपर बाण चलाया ?

देवदत्त : आखेटके लिये।

गौतम : यदि यह निष्प्राण हो जाता तो अवश्य इनका था, किन्तु जीवित रहनेपर यह इनका आखेट कैसे हो सकता है ?

शुद्धोदन : (सुपर्वणसे) क्यों अमात्य !

सुपर्वण : हाँ, देव ! न्याय तो कुमार गौतमका ही समर्थन करता है। हंस उसीका है जिसने उसे जीवनदान दिया है।

देवदत्त : (धनुषकी कोर पृथ्वीपर पटककर) तो यही न्याय है ?

शुद्धोदन : (अधिकार मुद्रामें) हाँ देवदत्त ! न्याय यही है। पहले

शील सीखो। जाकर विश्राम करो। इतना छोटी बातपर कलह करना राजपुत्रोंको शोभा नहीं देता।

[देवदत्तका वेगसे प्रस्थान। गौतम उस हंसको लिये धीरे-धीरे दूसरी ओर प्रस्थान करते हैं। शुद्धोदन खड़े रहते हैं।]

शुद्धोदन : (सुपर्वणकी ओर मुँह करके) इसका अर्थ समझ रहे हो अमात्य ?

सुपर्वण : कई दिनोंसे मेरा मस्तिष्क इसीकी मीमांसा कर रहा है देव ! आज सहसा उसका समाधान भी स्वयं हो गया।

शुद्धोदन : क्या ?

सुपर्वण : विरागकी जिस प्रखर धारामें कुमार बहे जा रहे हैं उससे विरत करनेके लिये कुमारका मन रागकी प्रबलतर धारामें डाल देना चाहिए। यह कार्य राज-कन्या कर सकती हैं। यदि तत्काल विवाहकी व्यवस्था न हुई तो चतुर्थ आश्रम ग्रहण करनेमें विलम्ब नहीं है।

शुद्धोदन : (घूमकर) चतुर्थ आश्रम ! संन्यास ? क्या कह रहे हो अमात्य ?

सुपर्वण : मैं ठीक कह रहा हूँ देव ! राजा दण्डपाणिकी कन्याका स्वयंवर होनेवाला है। निमन्त्रण आ चुका है। अवसर चूकना ठीक न होगा।

शुद्धोदन : (सोचकर) क्या कुमार जा सकेंगे ?

[गौतमीका प्रवेश।]

गौतमी : (चिन्तित स्वरमें) अभी क्या कलह हुआ है ?

शुद्धोदन : कुछ तो नहीं।

गौतमी : (उपालम्भके साथ) कैसे नहीं हुआ ! कुमार अपनी गोदमें एक हंस लिए बैठे रो रहे हैं। देवदत्त अलग मुँह फुलाए बैठा है ! यदि कुमारका विवाह न कर दिया गया तो बालक हाथसे निकल

जायगा। फिर मुझे दोष न दीजिएगा। दिन-रात उसका सोचते रहना देखकर मुझे डर लगने लगा है।

शुद्धोदन : क्या कुमारको स्वयंवरमें भेज सकोगी ?

गौतमी : हाँ, हाँ, क्यों नहीं ! मैं अभी जाती हूँ न !

शुद्धोदन : हाँ, जाओ, उन्हें सन्नद्ध करो। (मंत्रीसे) और अमात्य ! आप जाकर यात्राका प्रबंध कीजिए।

सुपर्वण : जैसी आज्ञा देव !

[शुद्धोदन खड़े रहते हैं। एक ओर गौतमी,
दूसरी ओर मन्त्रीका प्रस्थान।]

[छन्दकका प्रवेश।]

छन्दक : (अत्यन्त नम्र भावसे) देव ! कुमार स्वयंवर देखने जाना चाहते हैं।

शुद्धोदन : (घूमकर) कुमार स्वयं जाना चाहते हैं ?

छन्दक : हाँ देव ! आज उन्हें मैं स्वयंवरकी कथा सुना रहा था। मैंने कहा कि राजा दण्डपाणिकी कन्याने प्रतिज्ञा की है कि मैं सबसे बड़े वीरसे विवाह करूँगी। वहाँ सभी राजकुमार अपना रण-कौशल दिखा रहे हैं। जो सर्वश्रेष्ठ समझा जायगा उसीके गलेमें जयमाला पड़ेगी।

शुद्धोदन : (उत्सुकतासे) क्या कुमार भी अस्त्र-शस्त्रके साथ जा रहे हैं ?

छन्दक : यह तो ज्ञात नहीं है देव ! पूछनेपर भी उन्होंने इस संबंधमें कुछ नहीं कहा। किन्तु कुमार देवदत्त तो अस्त्र-शस्त्रके साथ अवश्य जानेवाले हैं।

शुद्धोदन : देखो छन्दक ! सावधानीसे रथ ले जाना ! शस्त्रागारसे सभी अस्त्र-शस्त्र चुपचाप रथमें रख लेना और मार्गभर कुमारको स्वयंवरकी कथा इस प्रकार सुनाते जाना कि वहाँ पहुँचकर वे भी अखवाटमें उतर पड़ें। आज तुम्हारे भी कौशलकी परीक्षा है।

तमिळ है। उसका सिद्धान्त 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। उसके परिवारमें एक पहाड़ी सुग्गा बच रहा था उसे बिल्ली झपट ले गई। उसने एक कुत्ता पाला था उसे किसीने गोली मार दी। एक बन्दर उसने कुछ दिनों बाँधे रक्खा, उसे किसीने मार भगाया और फिर गाँधीजीकी देखादेखी महापुरुष बननेकी धुनमें उसने जो बकरी पाल रक्खी थी उसे भी किसीने देवीको चढ़ा दिया। परिवार जुटानेके इस प्रयत्नमें जब ईश्वरकी ओरसे सहयोगके बदले असहयोग मिलने लगा तब वह नास्तिक हो गया, फक्कड़ हो गया। जहाँ मिल जाता खा लेता, जहाँ पड़ जाता सो रहता, जो भी धन्धा मिल जाता कर लेता। कुछ लोग उसे पागल कहते, कुछ सनकी समझते और कुछ लोग उसे महापुरुष मानकर उसमें श्रद्धा रखते।

मद्रासी होनेके नाते वह रंगमें मुझसे सवाया था और मेरे ही समान उसकी भी धारणा थी कि राम और कृष्ण हमारे ही रंगके रहे होंगे। किन्तु श्रीकृष्णजीसे उसे एक ही बातकी चिढ़ थी कि रंगकी समानता होते हुए भी उन्हें तो सोलह सहस्र रानियाँ मिली और पिल्लेको एक मिट्टीकी रानी भी न मिल पाई।

रंगकी महा घनश्यामता होनेपर भी वह अपनेको कामदेवसे कम नहीं समझता था। यद्यपि सवर्ण होनेके नाते मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं पिल्लेका नख-शिख वर्णन करूँ किन्तु कथाकारके धर्मकी रक्षाके लिये आवश्यक समझकर इतना ही कह देता हूँ कि जब वह अपने काले भुच्च शरीरपर अधबहियाँ कमीज़ पहनकर लुंगी, लगाकर, पेशावरी चप्पल पैरोंमें डालकर और माथेपर लाल टीका देकर निकलता था तब ऐसा लगता था मानो मध्यप्रदेशके जंगलसे पकड़े हुए किसी काले भालूको उजले कपड़े पहनाकर उसके माथेपर लाल पकी हुई झड़बेरी टाँक दी गई हो। किन्तु पिल्ले उस समय अपने मनमें यही समझता था मानो नगरकी सभी कुमारियाँ हाथोंमें वरमाला लेकर अपने-अपने

द्वारपर उत्सुकताके साथ मेरा वरण करनेके लिये खड़ी हों। वह फर्राटेकी हिन्दी बोलता था और यदि उसका रंग और नाम ही उसका भेद न खोल देते तो कोई सपनेमें भी न भाँप पाता कि श्री पिल्लेजी साक्षात् किष्किन्धासे चले आ रहे हैं।

पिल्लेने कांग्रेस, हिन्दू सभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ, समाजवादी दल, कम्यूनिस्ट पार्टी आदि सभी संस्थाओंमें बारी-बारीसे नाम लिखाकर कभी दाढ़ी बढ़ाई, कभी बाल बढ़ाए, कभी मूँछें रक्खीं, कभी नासिका और ओठके मध्यप्रान्तका जंगल पूरा छिलवा डाला, पर उसकी तपस्या सिद्ध न हुई, न हुई, न हुई। विष्णु भगवान् शेष शय्यापर पड़े योगनिद्रामें खर्राटे भरते रहे, शिवजी विजया छानकर कैलासपर झूमते रहे और ब्रह्माजी नाभि कमलपर जमे हुए समाधि लगाए बैठे रहे। किसीका आसन न डोला, किसीकी समाधि न भंग हुई। अंतमें उसने बाल बढ़ाए, दाढ़ी-मूँछ भगवान्को अर्पित की, लुंगीका स्थान पाजामेको दिया, माथेका टीका धो बहाया और पेशावरी चप्पलोंके बदले सादी चप्पलें पैरोंमें डाल लीं, अधबढ़ियाँ कमीज़के बदले कुर्ता डाटा और उसपर जमाई जवाहर सदरी। मैं निरपेक्ष होकर पिल्लेके इन परिवर्तनोंको देखता रहा, टोकता भी रहा, चुटकियाँ भी लेता रहा, पर पिल्लेने मुझे अपना ध्येय स्पष्ट बता दिया था—'मैं पत्नी चाहता हूँ।'

पिल्लेको विश्वास था कि यदि बिल्लीके भागसे छींका टूट सकता तो पिल्लेके भागसे पत्नी क्यों नहीं मिल सकती। उसे जाति, धर्म, समाज, वर्ण, देश किसी प्रकारका बन्धन तो मान्य था नहीं। वह केवल पत्नी चाहता था, चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, पढ़ी हो या अनपढ़, हिन्दू हो या मुसलमान, देशी हो या विदेशी। फिर भी स्थितप्रज्ञ, विश्वबन्धु, अनीश्वरवादी पिल्लेको एक, केवल एक पत्नी नहीं मिल रही थी; यहाँतक कि अनाथालयवाले भी उस अज्ञात-कुलशील, अर्थहीन पिल्लेसे किसी अनाथ कन्याका भी विवाह करनेको सहमत न थे।

किन्तु पिल्लेके विरागमय जीवनका यह कोमल गुप्त पक्ष मैं ही जानता था और वह भी इसलिये कि पिल्ले मेरा अभिन्न मित्र था, नहाने भी जाता था तो मुझसे पूछकर और छींकता भी तो मुझे बता देता। अपने ऊपर इतना गहरा विश्वास करनेवाले मित्रका रहस्य खोलकर मैं विश्वासघात और मित्र-द्रोहका दोषी नहीं बन रहा हूँ क्योंकि मुझे भी कुम्भीपाकका भय है और इसलिये मैंने रहस्योद्‌घाटनके लिये पिल्लेकी आज्ञा प्राप्त कर ली है।

निरीह पिल्ले! मेरी तुम्हारे साथ बड़ी सहानुभूति है। जिस देशमें दहेजका द्रव्य घरमें न होनेके कारण लाखों कन्याएँ कुमारी रहकर बुढ़ापा-तक काट लेती हैं, जहाँ अपने विवाहकी चिंतामें घुलते हुए माता-पिताकी मनोव्यथा सहन न कर सकनेवाली सैकड़ों कन्याएँ यमको वरण करनेके लिये विवश हो जाती हैं, उसी देशमें ऐसा एक भी पिता नहीं निकला जो अपनी कन्या तुम्हें लाकर दे डाले, ऐसी एक भी कन्या नहीं जो यमके बदले तुम्हारे गलेमें वरमाला डाल दे! काला रंग ही बाधक हो ऐसी भी बात नहीं है; क्योंकि पिल्लेके रंगसे भी अधिक गहरे रंगवाले, पिल्लेसे भी कहीं अधिक विकृत रूपवाले और पिल्लेसे भी कहीं अधिक उजड्ड, मूर्ख और देहाती दस-दस बच्चोंके बाप बन बैठे हैं। उन्हें भी तो कहींसे पत्नी मिली होगी न! पर न जाने पिल्लेने ही ब्रह्माकी दाढ़ीका ऐसा कौन-सा बाल नोच लिया था कि उसीके माथेसे पत्नी मिलनेवाली रेखा उस चौमुँहेने रगड़कर धो मिटाई।

थोड़े दिनोंसे वह मुझसे मिला नहीं था। मैंने समझ लिया था कि या तो उसकी साँठ-गाँठ बैठ गई होगी या वह कहीं बाहर चल दिया होगा। रमते जोगीका ठिकाना ही क्या! दो-चार दिन तो मैंने पूछ-ताछ भी की। फिर मैं अपने काममें लिपट गया। मैंने पिल्लेको भूलना आरम्भ कर दिया।

संयोगवश मुझे बम्बई चला आना पड़ा, इसलिये पिल्ले और उसकी स्मृति दोनों मुझसे दूर चली गई।

पिछली दीवालीके दिन मैं अपने एक मित्रसे मिलने सान्ताक्रूज़ चला गया था। वहीं बात-बातमें उसने पिल्लेकी चर्चा छेड़ते हुए बताया कि आजकल वह बम्बईमें एक हिन्दुस्तानी परिवारके साथ रहता है। बम्बईमें गुजराती, मराठी, गोवानी, मद्रासी, सिन्धी, मारवाड़ी, पारसी, सिक्ख, बोहरा, खोजा, मुसलमान आदि अनेक भेदोंमें हिन्दुस्तानी भी एक भेद है, जिसका अर्थ है उत्तर-प्रदेशका रहनेवाला। मुझे बड़ी उत्सुकता हुई और वहाँसे छुट्टी पाकर मैं बिजलीगाड़ीमें बैठकर सीधा महालक्ष्मी आकर उतरा। लगभग सात सौ पग चलनेपर वह नर्मदा-भवन मिला जिसके दूसरे खंडपर बीस संख्यक प्रकोष्ठमें पिल्लेको होना चाहिए था।

मैंने द्वार खटखटाया। द्वार-छिद्रमेंसे किसी आँखने झाँका और सिटकिनीके एक खटकेके साथ द्वार खुल गया। एक महिला, जिन्होंने पिछले जन्ममें ऐरावतकी सहधर्मिणी होनेका सौभाग्य प्राप्त किया होगा, भीतर प्रविष्ट होनेका कुल मार्ग अपने शरीरके विस्तारसे रोके खड़ी थीं। उन्होंने शंका और जिज्ञासाकी दृष्टिसे मेरी ओर घूरकर देखा और फिर अपने शब्दोंमें मेरठी स्वराघातका टंकार देते हुए उन्होंने पूछा—

'किसे पुच्छो हो ?'

स्त्रीको सामने देखकर पुरुष जितना कोमलतम बन सकता है, उससे भी अधिक कोमलता और सौम्यताका रूपक साधकर मैंने अत्यन्त शुद्ध उच्चारणके साथ उपचारका आश्रय लेकर अपनी पुरुष-सुलभ कर्कश वाणीको यथासम्भव मधुर और मृदुल बनाते हुए ; अपना सिर दाईं ओर तनिक-सा झुकाकर, शील और दैन्यकी सभी मुद्राएँ मुखपर संचित करके दबी हुई वाणीसे कहा—

'जी, मैं पिल्लेसे मिलने आया था।'

'भित्तर आ जाओ' उन्होंने कह तो दिया, किन्तु अपने स्थानसे तिलभर डिगीं नहीं। वे द्वार भी बन्द करना चाहती थीं किन्तु उनके शरीरकी गुरुता इस द्विविध संकल्पकी पूर्तिमें बाधक बनी खड़ी थी। मैंने भी अत्यन्त नम्रतासे कहा—

'मैं बन्द किए देता हूँ।'

'मैंने द्वार बन्द करके सिटकिनी चढ़ा दी। उस द्वारसे भीतरके प्रकोष्ठतक दो हाथ चौड़ा गलियारा था। वे घूमीं, मानो पृथ्वीका गोला दो समानान्तर भीतोंके बीच अपनी धुरीपर घूम गया हो। आगे वे थीं, पीछे-पीछे मैं। मुझे अपनी लम्बाई-चौड़ाईपर जो अभिमान था वह आज इन देवीके आगे गलकर पानी हो गया। मुझे केवल यही आश्चर्य हो रहा था कि यहाँकी सीढ़ियाँ अबतक खड़ी कैसे रह गईं? छत अबतक ऊपर ही क्यों है?

वे पलँगमें जा समाईं और हाँफने लगीं। मैं एक मोढ़ेपर जा बैठा और एक समाचारपत्र उठाकर पढ़ने लगा। श्वासकी गति ठीक हो चुकनेपर उन्होंने मुझसे पूछा—

'तुम इसै पिल्ले कू कैसे जान्नो हो?'

मैंने सब कथा संक्षेपमें कह सुनाई। उनके चौड़े, गोल, गदकारे विक्टोरियाई मुखपर प्रसन्नताकी एक मन्द धुँधली रेखा देखकर मुझे भी उनसे बात करनेकी प्रेरणा मिली। उन्होंने मेरे अति संक्षिप्त प्रश्नों-का जो विस्तृत उत्तर दिया उसका सारांश यह है कि वे जातिकी वैश्य हैं, मेरठमें उनका पीहर है, रुड़कीमें ब्याही हैं, उनके पति पिछले हिन्दू-मुस्लिम दंगेमें काम आए, उनके पिता साधु हो गए, एक सयानी कन्या है जो बी० ए० पास करके कुछ काम करती है, क्या करती है, वे ठीक-ठीक नहीं बता सकीं। पर इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि उस कामको सीखनेके लिये ही वह यहाँ आई है और इसीलिये उन्हें भी विवश होकर यहाँ आना पड़ा है। यहींपर पिल्लेसे भी जान-पहचान हो

गई है और वह पुत्रके समान इसी घरमें रहता है। उसके कारण बड़ी सुविधा हो गई है, घर-गृहस्थीमें। यद्यपि उनकी कन्याके विषयमें मुझे कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो सका किन्तु देवीजीके विषयमें इतना अधिक जान गया कि केवल उन्हींपर प्रबन्ध लिखकर मैं साहित्यमहोपाध्यायकी उपाधि पा सकता था।

वे स्त्री थीं यह सत्य है, किन्तु सहस्रों पुरुष उनके आगे तुच्छ, नगण्य, शून्य दिखाई पड़ते थे, यह उससे भी अधिक सत्य है। पुरुष बनाते-बनाते ब्रह्माने उन्हें स्त्री बनाकर जो भूल की थी उसका पश्चात्ताप और क्षोभ ब्रह्मासे अधिक उन्हें था। जब-जब अपने अभ्यस्त शीलके कारण मैं उनके लिये नारी-वाची सम्बोधन प्रयुक्त करता था, उनके नारीत्वका किसी भी प्रकार स्मरण दिलाता था तब-तब वे खीझ-खीझकर बौखला उठती थीं। अन्तमें मैं भी इस निष्कर्षपर पहुँचा कि उन्हें स्त्री, नारी या अबला कहना केवल उनका ही नहीं, वरन् मानवताके कोमलतर पक्ष, नारी-वर्गका ही अपमान करना था। उन्नीसवीं शताब्दिकी होती हुई भी वे इक्कीसवीं शताब्दिमें होनेवालोंके कान काटती थीं। भारतके हिन्दू संस्कार और परिवारमें पाली-पोसी होनेपर भी उनके विचार अमरीकाकी अति प्रबुद्ध और अति स्वतन्त्र नारियोंसे भी दस हाथ आगे थे। कुशल यही समझिए कि उन्होंने अपने विचारोंकी महागतिशीलता-को मूर्त्त स्वरूप देनेके लिये ऊँची एड़ीवाले जूतोंपर फ्रौक नहीं पहना, झबरे बाल नहीं कटाए, अन्यथा किसी आधुनिक कविको उपमानके अभावमें झख मारकर गोस्वामीजीके शब्दोंमें कहना पड़ता—'सब उपमा कवि रहे जुठारी।' कमसे कम मैं तो इतना अवश्य कह देता 'का बरनौं छबि आपकी।'

विपरीत लक्षणा तथा आर्थी व्यंजनाके द्वारा इसके जितने भी लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ निकल सकते हैं वे रोचक भले ही न हों किन्तु रमणीयार्थ-प्रतिपादक अवश्य होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं पुरुष

होकर भी इतना आगे नहीं बढ़ पाया था जितना वह स्त्री होकर बढ़ चुकी थीं। जब माँकी यह दशा थी तब बेटी कहाँतक बढ़ चुकी होगी। इस कुतूहलने मुझे उनकी पुत्रीके दर्शन करनेकी उत्कंठा और भी अधिक भड़का दी।

बिलम्ब तो हो रहा था पर भारतीय परिवारका यह नया अनुभव प्राप्त करनेका प्रलोभनकी कम बलवान नहीं था। उनसे छुट्टी लेना भी सम्भव नहीं था क्योंकि उनकी वाग्धारा इस वेगसे बह रही थी कि हिमालय भी उसमें पड़ता तो बह जाता, फिर मैं किस गिनतीमें था। भारतीय समाजका सम्भवतः कोई भी अंग ऐसा नहीं था जो उनकी आलोचनाका आखेट न बना हो, यहाँतक कि मेरे माथेका चन्दन, सिर-परकी टोपी और बारहमासी सदरी भी उनके सूक्ष्मवेधी नयनों और मर्मभेदी वचनोंसे न बच पाई। पर मैं भी स्थितप्रज्ञ बना बैठा था। एक कानसे सुनकर तत्काल उसे दूसरे कानसे निकालता जा रहा था। मैं जानता हूँ कि मेरी इस उदासीनतासे उन्होंने मुझे परम मूर्ख, बुद्धू और जड़ समझा होगा किन्तु इसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं है। दूसरे लोग मुझे क्या और क्यों समझते हैं इसकी मैंने कभी चिन्ता नहीं की और तब भी नहीं कर रहा था।

किसी भी अतिथिको जलपान कराना, पान-इलायची देना भारतका प्रसिद्ध शिष्टाचार है। सिन्धी लोग पापड़-पानीसे सत्कार करते हैं, पंजाबमें दहीकी लहस्सी चलती है, उत्तर प्रदेशमें पान या मिठाई—नमकीनसे स्वागत किया जाता है, बिहारमें चिउड़ा-दही परोसा जाता है, बंगालमें रसगुल्ला देनेका शिष्टाचार है, गुजरातमें चायकी प्रथा चल निकली है, महाराष्ट्रमें नमकीन सींगदाना और चिउड़ा दिया जाता है, मेरठकी ओर गाँवोंमें लोग सिखरन पिलाते हैं, एक भेली गुड़ देकर पानीका लोटा बढ़ा देते हैं, और कुछ नहीं तो कमसे कम पानी तो सभी पिलाते ही हैं। हमारे यहाँ पुरानी सूक्ति भी है—

'आसन पानी मीठी बात। सज्जनके घर सदा सुहात॥'

आसन तो मुझे मिल ही गया था और जैसी-तैसी बातें भी सुननेको मिल ही रही थीं, और यह भी कैसे कहूँ कि वे मीठी नहीं थी, पर पानीके अभी दर्शन नहीं हुए थे और जब देखा कि वे महादेवीजी बैठी-बैठी लेट भी गईं तब तो उसकी रही-सही आशा भी जाती रही। पर प्यास सचमुच लगी थी। लोगोंके ओठ बोलते-बोलते सूखते हैं, यहाँ सुनते-सुनते ओठ ही नहीं, शरीर भी सूखा जा रहा था। मैं शीलके भारसे दबा हुआ पानी माँगनेमें संकोच कर रहा था, वे शरीरके भारसे हिलने-डुलनेमें संकोच कर रही थीं। इतनेमें ही द्वारपर खट-खट हुई। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—

'अजी खोल दीयो तो।'

द्वार खोला। पिल्ले था सामने। अचरजसे एक बार मेरी ओर देखकर वह गलेसे लिपट गया। उसके पीछे जो देवी थीं, उनकी आकृतिसे ही मैं समझ गया कि ये ही महादेवीजीकी सुपुत्री होंगी। मेरे इस मानसिक निश्चयका तत्काल समर्थन करते हुए पिल्लेने कहा— 'ये हैं बहन शारदा, कुछ समाज-सेवाका काम सीख रही हैं।'

और तत्काल 'मेरे अभिन्न मित्र' विशेषण मेरे साथ जोड़कर उसने बहन शारदासे मेरा परिचय भी कराया। उन्होंने प्रथम परिचयके अवसरपर अभिनीत की जानेवाली मिथ्या मुस्कानके साथ अपना मुँह खोला—'बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर।' वे हाथ बढ़ाना चाहती थीं मिलानेके लिये, किन्तु उससे पूर्व ही मैं बद्धाञ्जलि हो चुका था। हम लोग फिर उसी प्रकोष्ठमें जा पहुँचे जिसमें अभी थोड़ी देर पहले मैंने डेढ़ घण्टेतक महादेवीका प्रवचन सुना था। वे अभीतक शय्यामें फैली हुई थीं। हम लोग अलग-अलग पीठासनोंपर जा विराजे।

मेरी और पिल्लेकी बातचीत होने लगी। शारदाजी भी बीच-बीचमें अपनी सम्मति, समर्थन, सूचना या सूक्तिके द्वारा बातचीतकी

दुरङ्गी डोरीको तिरङ्गा बनाती जा रही थी और महादेवीजी भी जब बीच-बीचमें टोकतीं तो छोटा-मोटा भाषण ही दे डालतीं। आध घण्टेकी बातचीतमें कमसे कम अस्सी बार पिल्लेने बहन शारदाकी प्रशंसा की होगी, कमसे कम साठ बार शारदाजीने पिल्लेकी बड़ाई की होगी और कमसे कम पचास बार महादेवीजीने पिल्ले और शारदाका सम्मिलित गुणगान किया होगा। इस परस्पर प्रशंसाके मर्मका जो स्पष्ट अर्थ हो सकता था, उसी अर्थकी सांकेतिक व्यंजना पानेके लिये मैंने जिज्ञासा-भरी कनखियोंसे पिल्लेकी ओर देखा। उसने आँख झपकाकर जो नकारात्मक संकेत किया उससे मैं समझ गया कि पिल्लेके ग्रह अभी सीधे नहीं हो रहे हैं।

पिल्लेसे मिलनेपर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि जब मैं लौटकर घर आया तब कहीं मुझे सुध आई—'अरे पानी तो मैंने पिया ही नहीं।'

उस दिनसे पिल्ले भी मेरे पास आने-जाने लगा और शारदाजी भी। कभी वे दोनों अकेले-अकेले आते और कभी इकट्ठे। उनका यह क्रम लगभग तीन महीने चलता रहा।

'प्रसाद' जीने आजकलके महिला-आन्दोलनोंसे डरकर और 'ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी' लिखनेवाले सर्ववन्द्य कविता-कामिनी-कान्त गोस्वामी तुलसीदासजीके विरुद्ध महिलाओंका खुला विद्रोह देखकर उन्हें बहलानेके लिये झूठे ही लिख दिया है—

> "नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
> विश्वास-रजत-नग-पद-तलमें।"

—और स्त्रियाँ भी इसे पढ़कर फूली नहीं समातीं, पर वे यह नहीं जानतीं कि 'प्रसाद'जीने भी इसमें पुरुषोंको बड़ा सिद्ध करते हुए नारियोंसे कहा है कि—'तुम विश्वासरूपी पुरुष हिमालयके पैरों-

तले क्षुद्र तुच्छ पीयूष-स्रोत सी बहा करो।' इसलिये मैंने इन पंक्तियोंको 'स्वान्तः सुखाय' इस प्रकार बदल दिया है—

नारी तुम केवल ईर्ष्या हो!

आपने स्त्रियोंके मुखसे कभी यह वेदवाक्य अवश्य सुना होगा—'सौत तो चूनकी भी बुरी होती है।' प्रत्येक विवाहिता स्त्री, अपने पतिके पास आने-जानेवाली बालिकासे वृद्धावस्था-तक स्त्री-वर्गमें गिनी जानेवाली प्रत्येक मानव-मूर्त्तिको, अपनी सौत ही समझती है और यदि उनमेंसे कोई उनके पतिसे हँस-हँसकर बातें करने लगे तब तो समझो कि सपत्नीत्वपर मुद्रा लग गई। मेरा घर भी इस सार्वभौम शंकाका अपवाद नहीं था। मेरी पत्नीको भी शारदाका आना-जाना अच्छा नहीं लगता था। पर कुशल यही था कि बम्बईकी चाल-ढाल देखकर वह धीरे-धीरे समझती जा रही थी कि यहाँ अच्छे-अच्छोंके परदे उतर गए तो शारदाकी क्या गिनती है। फिर भी अपने देशके संस्कार जाते थोड़े ही हैं। एक दिन शारदा आई और मेरा चित्र उठा ले गई। मेरी पत्नीको यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने अत्यन्त खीझके साथ कहा—'हमें ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।'

यदि उत्तर प्रदेशमें यह घटना हुई होती और मेरी पत्नीको उसपर इस प्रकारकी टिप्पणी करनी होतीं तो वे अवश्य कहतीं—

"कह दो इस कलमुँहींसे यहाँ न आया करें, इसे देखकर मेरा आधपाव खून जल जाता है। अबकी बार आई तो चुड़ैलकी चुटिया उपाड़ लूँगी। कितनी निलज्जाईसे ही ही हो ही करती है और तुम भी उसके साथ क्या हा हा ही ही करते हो? मुझे सब कुलच्छन फूटी आँख नहीं भाते।"

अपनी शान्त गृहस्थीमें सहसा कलहबीज आ जानेसे मैं सावधान हो गया और मैंने स्पष्ट रूपसे पिल्लेसे कह दिया—'भाई! मेरे घर आ

कर संयमसे काम लिया करो।' वह समझ गया और उस दिनसे दोनोंने मेरे घर आना ही बन्द कर दिया।

जिसे मिलना होता है उसके लिये क्या घर ही एक स्थान है। और फिर बम्बई-जैसे नगरमें स्थानोंकी क्या कमी। चौपाटी, लटकन-बाग, हवाबन्दर, जोगेश्वरी, कन्हेरी, जुहू, रानीबाग, महालक्ष्मी, घुड़-दौड़, चित्र - मन्दिर और सैकड़ों होटल जहाँ चाहो, जिससे चाहो, घण्टी टनटनाओ, समय और स्थान पक्का कर लो, जाकर मिल लो। पर गृहस्थके लिये मैं यह व्यापार अनुचित और निन्द्य समझता था, इसलिये मैं जब कभी बाहर जाता, अपनी पत्नीको साथ ले जाता। उसे धोखा देकर मैं अपने आत्माको धोखा नहीं देना चाहता था। मैंने भी पिल्लेके या यों कहिए कि शारदाके घर जाना छोड़ दिया। पर वे दोनों या अकेले किसी चौराहेपर या रेल-मोटरके अड्डे-पर चिल्ला-चिल्लाकर जनयुग बेचते दिखाई पड़ जाते और वहीं नमस्कार-प्रणाम भी हो जाता और कुशल-मंगल भी।

लगभग चार महीने बीत चले। मैं समझता था कि इस बीच या तो शारदाने ही कह दिया होगा—'तुम सम पुरुष न मो सम नारी।' या पिल्लेने ही कह दिया होगा—'अर्पित है मेरा यौवन-तन।'

शारदाजीके प्रथम दर्शनके दिन ही मैं समझ गया था कि विधाताने इनके भालपर भी पिल्लेकी भाग्य-रेखावाला छापा ही ठोक मारा है। उन्हें सुंदरी कहकर सुंदरताका, कोमलांगी कहकर कोमलताका, शीलवती कहकर शीलका, विलासिनी कहकर शृंगार-चेष्टाओंका मैं एक साथ गला नहीं रेतना चाहता था। एक तो स्त्री (न चाहते हुए भी उन्हें स्त्री ही कहनेको विवश हो रहा हूँ), दूसरे वर्गवादिनी। एक तो तितलौकी फिर नीम-चढ़ी। उनके पति होनेका सौभाग्य वही प्राप्त कर सकता था जिसने पिछले दस जन्मोंमें शीतला-वाहन, पन्द्रह जन्मोंमें यमवाहन, इक्कीस जन्मोंमें भैरव-वाहन और पच्चीस जन्मोंमें

लक्ष्मी-वाहन बननेकी अप्रतिम तपस्या की होगी। मुझे विश्वास होने लगा कि पिल्लेने इतनी घोर तपस्या नहीं की होगी अन्यथा पार्वतीजी-को महादेवजीके साथ विवाह करनेकी प्रेरणा देनेवाले नारदजी अपनी महती वीणा बजाते हुए किसी दिन तो शारदा बहनके आगे आकर खड़े ही होजाते और कहते—'देवि! तुम पिल्लेको ही वरण करो। संसारमें यही एकमात्र प्राणी है जो तुम्हारी फावड़े-जैसी भौंहोंके उठने-गिरनेपर सीधा घूम, बाएँ घूम, आगे बढ़, पीछे हट, सब सैनिक व्यायाम कर सकता है; जूता पोंछनेसे लेकर भोजन बनानेतकका सब काम कर सकता है, मटकनेसे लेकर नाचने-गानेतक मनोरञ्जन कर सकता है, लोटे-भंटेके मेलेसे लेकर सोनपुर-तकका मेला दिखा सकता है, कांग्रेससे लेकर कम्यूनिज़्म-तकके सब क्षेत्रोंमें आ-जा सकता है और गुप्तचरसे लेकर अध्यापकतकके सब काम कुशलतासे कर सकता है। हे देवि! तुम इसीका वरण करो, तुम्हारा कल्याण होगा।'

किन्तु नारद अवकाश न पा सके और पिल्ले भी कुछ वेदान्ती हो चला। मैं भी समझने लगा कि पिल्ले सचमुच महापुरुष है। या तो मारीच (मरीचि ऋषिके पुत्र) ऐसे थे जो सांसारिक प्रलोभनोंके बीच तपस्या करते थे या फिर पिल्ले ही है? क्यों न हो? वह मेरा मित्र जो है।

अचानक मेरी यह धारणा और भी श्रद्धायुक्त हो चली जब उस दिन रूसके भाग्य-विधाता मार्शल स्तालिनके आत्मसचिवका तार लिए हुए पिल्ले रातको दस बजे मेरे पास पहुँचा और कहने लगा—

'मैं रूस जा रहा हूँ। यह देखो।'

मैंने तार हाथमें लिया। उस संक्षिप्त शब्दावलीको पढ़कर मैंने पिल्लेकी ओर देखा तो ऐसा जान पड़ा मानो वह बढ़ता चला जा रहा है, सुभाष, स्तालिन, गाँधी, सब क्रमशः उसके आगे छोटे होते जा रहे है, बढ़ते-बढ़ते त्रिविक्रम विष्णुके समान वह सर्वत्र व्याप्त हो गया है।

मैं खड़ा हो गया। मैंने उससे हाथ मिलाया, उसे बधाई दी और मुझे अपनेपर भी गर्व होने लगा—'मैं इतने बड़े महापुरुषका मित्र हूँ जिसे स्वयं स्तालिनने निमंत्रण दिया है।'

'रविवारको दिल्ली जा रहा हूँ। वहाँसे विशेष विमान लेकर मौस्को उड़ जाऊँगा।'

मेरी श्रद्धा और भी गहरी हो गई। मैंने श्रद्धा-विह्वल होकर कहा—

'भूल न जाना हमें।'

अपनी पत्नीको भी मैंने समाचार सुनाया। जिसे फूटे मुँह भी पिल्ले नहीं भाता था, वही पिल्लेको इस महत्तासे प्रभावित होकर उसके लिए चार लड्डू ले आई—'मुँह मीठा कर लो।'

जिस दिन वह दिल्लीके लिये चला उस दिन मैं भी फूल-माला लेकर उसे विदा देने बोरीबन्दरतक गया था और मेरी पत्नी भी हठ करके साथ गई थी।

वर्गवादी दलके अनेक युवकों और युवतियोंका समूह वहाँ पहुँचा हुआ था। द्वितीय श्रेणीके डब्बेमें तीन स्थान घिरे हुए थे, एकपर महादेवीजी, दूसरेपर शारदाजी, तीसरेपर स्वयं पिल्ले। शारदा और उनकी माताजी दोनों उसे दिल्लीतक पहुँचाने जा रही थीं। उनका घर 'मेरठ' भी उधर ही था। बड़े धूमधामसे विदाई दी गई। सबने फूल-मालाएँ पहनाईं और 'कहा सुना छिमा करना' का परिचित सूत्र पढ़कर मेरी पत्नीने पिल्ले और शारदासे घुल-घुलकर बातें कीं और अन्तमें जब पिल्लेने कसकर मुझे छातीसे लगा लिया तब तो मैं फूला न समाया, मानो स्तालिनने ही मुझे गले लगा लिया हो। सबकी दृष्टियोंमें मैं ऊँचा उठ गया। पिल्लेने कहा—'सबसे पहले मैं तुम्हें लिखूँगा।' मैं अपने सौभाग्यपर चौगुना फूल उठा और देखा कि सबकी ईर्ष्यालु दृष्टियाँ मेरी महत्तासे आक्रान्त हैं।

गाड़ीने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। हम लोग अपनी महत्तापर

गर्व करते हुए लौट आए और सबसे अधिक रस तो मुझे तब आया जब मेरी पत्नीने कहा—'बड़े अच्छे थे बेचारे।' इसीको वाल्मीकिजीने कालकी प्रतिकूलता और अनुकूलता कहा है।

उस दिनसे मैं नित्य समाचार-पत्र उलटता रहता और नित्य सोचता रहता कि आज पिल्ले उड़ा होगा, आज मौस्को पहुँचा होगा, आज उसने पत्र लिखा होगा, आज उसका पत्र बम्बई आया होगा, आज मुझे मिलेगा। और इस कल्पनामें तन्मय होकर मैं भी शेखचिल्लीके समान मनमोदक खाने लगा कि पत्र मिलनेपर मैं भी अपने मित्रोंको दिखा दूँगा कि मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं। मैं स्तालिन-द्वारा निमन्त्रित कौमरेड पिल्लेका वह अन्तरंग और अभिन्न मित्र हूँ जिसे उसने रूसमें जाकर सबसे पहला पत्र लिखा है।

वह दिन सहसा आ भी गया जब पिल्लेके हस्ताक्षरसे नाम-ठिकाना लिखा हुआ पत्र मेरी उँगलियोंमें आ पहुँचा। मैं हर्षोद्रेकसे ऐसा विह्वल हो गया कि न तो मैंने उसपरकी मुद्रा देखी, न टिकट देखा, न हवाई डाककी चिप्पी, बस पिल्लेके अक्षरोंसे ही मैंने परिणाम निकाल लिया कि हो न हो यह पत्र रूससे ही आया होगा।

पत्र खोला, पढ़ा और भौचक्का रह गया। वह छपा हुआ पत्र था—

॥ श्री मंगलमूर्त्तये नमः ॥

शुभ मंगल-दातार, ऋद्धि-सिद्धि-पति जग-विदित।
होहु कृपालु अपार, राम-शारदापर मुदित॥

महोदय!

आनन्दकन्द सच्चिदानन्दकी कृपासे मेरी आयुष्मती पुत्री स्वस्तिमती शारदा देवीका शुभ विवाह आगामी वसन्त-पञ्चमी सं० २००४ 'तद-नुसार ता० १५ फ़रवरी सन् १९४८', रविवारको गोधूलि-वेलामें

प्रसिद्ध लोकसेवक श्री रामचन्द्रके साथ होगा। प्रार्थना है कि वरवधूको आशीर्वाद देकर मुझे कृतार्थ करें।

कम्बो गेट, मेरठ। } विनीता
रामकटोरी देवी गुप्ता

इस पत्रको पढ़कर एक बात तो यह नई ज्ञात हुई कि महादेवीजीके जितने नाम मैंने कल्पित किए थे—विकटकपोला, कराल-घोषा, प्रचंड-वन्दना, कटाह-शरीरा, महिषमानमर्दिनी, देव-हस्तिनी आदि ये सभी निरर्थक हो गए और उनका नामकरण करनेवाले पुरोहितपर बड़ा रोष आया कि यदि उस मूढ़को केवल पात्रवाची ही नाम रखना था तो रामकड़ाही, रामहंडिका, राममटकी, रामकुठला क्यों नहीं रक्खा? यह 'रामकटोरी' क्या दरिद्र नाम उसे सूझा।

पत्र पढ़कर पीछे उलटा तो पिल्लेने उसपर लिखा था—

"मैंने और शारदाजीने कम्युनिस्ट पार्टीसे त्यागपत्र दे दिया है। विवाहमें अवश्य आना।"

और उसीके नीचे महिलाई अक्षरोंमें शारदाजीने लिखा था —

'भाभीजीको भी अवश्य लाइएगा।'

पत्र पढ़कर मैं कितना झुँझलाया हूँगा यह तो आप इसी बातसे समझ सकते होंगे कि उस पत्रको मुरेड़-तुरेड़कर मैंने तत्काल रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया। मैंने अपने महत्त्वका जो काल्पनिक प्रासाद उठाया था वह इस पत्रने क्षण-भरमें ध्वस्त कर दिया। जो पिल्ले अपने अभिन्न मित्रसे इतना कपट करके इतनी सब बातें छिपा सकता है, वह न तो पागल हो सकता है, न सनकी। और महापुरुष? छिः। वह महापुरुषकी पगधूलि भी नहीं हो सकता और मैं पिल्लेके उस दिनवाले प्रवंचनापूर्ण रूपपर गम्भीरतासे विचार करने लगा जब उसने मुझपर अपनी महत्ताका आतंक जमाते हुए असत्य कहा था—'मैं रूस जा रहा हूँ'

तद्भव-तत्समात्मक सिद्धोक्तिपूर्ण वाक्य-शैली

इस तद्भव तत्समात्मक भाषामें सिद्धोक्तिपूर्ण, सरल और मिश्र वाक्य-शैलीमें भी रचना की जा सकती है। नीचे हम व्यंग्यकी भाव-शैलीमें एक कहानी दे रहे हैं जिसमें सिद्धोक्तिपूर्ण सरल वाक्य और मिश्र-वाक्य दोनोंका समान प्रयोग मिलेगा—

प्यादासे फरजी भयौ

बच्चालालजीका नामभर बच्चालाल था पर वे बच्चे नहीं थे। अभी तीन दिन पहले अपनी इकसठवीं जन्मगाँठके पुण्य पर्वपर, अपनी पहली पत्नीके वृद्ध और अशक्त होनेके कारण उन्हें गृहकार्यसे अवकाश देनेकी उदात्त भावनासे, अपने नाती-पोतोंसे भरे शतमुख परिवारपर नियन्त्रण रखनेके लिये योग्य अधिकारी नियुक्त करनेकी कर्तव्य-भावनासे, पुरुषार्थी मन्त्रियोंकी तेजस्वितापूर्ण परम्पराका निर्वाह करनेकी राष्ट्रीय भावनासे और हरिजनोद्धारके लोक-कल्याणकारी कार्यको प्रोत्साहन देनेकी उदार मानवीय भावनासे उन्होंने एक हरिजन-कन्याका पाणिग्रहण करनेका नैतिक साहस प्रदर्शित किया, जिसकी अवस्था उनकी अवस्थाके अंक उलटनेसे ठीक बैठ जाती थी। उस दिन उनके मनमें सावनके अन्धेका उल्लास, तनमें पावसके दर्दुरका विलास और कज्जल पर्वतको परास्त कर देनेवाले घुटे हुए आँजनकी पिंडीके समान चमकते हुए मुख पर वृद्ध-नवल वरका लज्जाशील हास बिजलीके प्रकाशमें लकालक झलक उठा था।

वे लाल भी नहीं थे। पानकी निरन्तर जमनेवाली लालिमाने उनके बड़े-बड़े वाराह-दन्त काले कर दिए थे। बनारसी सुरतीने अपनी तीक्ष्णताकी छाप छोड़नेके लिये उनके ओठ पपड़िया दिए थे। श्वेत बालोंने उनकी वृद्धताका डिंडिम घोष करनेके लिये उनके सिरपर चाँदनी छिटका दी थी किन्तु मन्त्री-पदने उनके शरीरमें मांस और

मज्जा भरकर उनके कपोलोंपर वह गोलाई चढ़ा दी जिसके सम्बन्धमें स्वर्गीय नाथूराम शंकर शर्माने कहा था :—

गोल गदकारे कपोलोंकी कड़ी उपमा न दी।
पुलपुली मोमन-पड़ी फूली कचौड़ी जान ली।

सिर और धड़के बीच 'गला' नामक जो डमरूमध्य प्रायः सब मनुष्य-शरीरोंमें जोड़ देनेकी उदारता ब्रह्माने दिखलाई उसका पूर्ण संकोच बच्चालालजीके शरीरमें था, इसलिये खादीके दुग्ध-धवल कुर्तेपर उनका तमाल-नील मुख-मण्डल ऐसा लगता था मानो स्फटिककी अनगढ़ चट्टानपर किसीने संगमूसाके बड़ेसे शालिग्रामका गोल पिंड लाकर धर दिया हो।

खाद्य-संकटके नियमका आदर करते हुए यह अफ्रीकी हाथीको लजानेवाली गोल देह उनकी थी जब वे तौलकर केवल चार छटाँक अन्न खाते थे और वह भी कभी-कभी। वे इतने राज-भक्त थे कि वन-महोत्सवके राष्ट्रीय पर्वपर मूलीके पत्ते, सींगरे और कन्दे खाकर ही रह जाते और सरकारकी प्रेरणाका नेतृत्व करनेके लिये यथा-संभव दोनों जून केवल तेलमें तली हुई जल-तरोईपर काम चला लेते।

राज्यपालके महिम्नतम पदसे लेकर अध्यापकके निम्नतम पदतक जितने वर्गोंके लोग इस युगमें सम्भव हो सकते हैं, सबने उनके इस नैतिक अनुष्ठानपर बधाई देते हुए उन्हें इतनी फूल-मालाएँ पहनाईं कि उस दिन दिल्लीके देवता और चाँदनी चौकके छैले सभीके गले सूने रह गए। वहाँकी वासन्ती फुलवारियोंपर हेमन्त छाया रह गया। ऊपरी मनसे स्तुति गानेवाले इन अनेक प्रकारके मन्त्रिभक्त (क्योंकि अब राजभक्त और देशभक्त होनेका कोई अर्थ ही नहीं है) लोगोंकी अपार भीड़में मैं भी एक राजकीय विद्यालयका अस्तित्वहीन अध्यापक ज्यों-त्यों करके जा पहुँचा था। जैसे शिवजीने अपने विवाहके समय आए हुए देवताओंमेंसे ब्रह्माकी ओर सिर हिलाकर, विष्णुजीसे कुशल-मंगल

पूछकर, इन्द्रकी ओर मुसकाकर और शेष देवताओंकी ओर केवल दृष्टिपात करके ही उनके पदके अनुसार स्वागत किया था, वैसे ही बच्चालालजीने राज्यपाल महोदयसे हाथ मिलाकर, मन्त्रियोंको हाथ जोड़कर, व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंको सिर झुकाकर, नगरके सेठों और मिल-मालिकोंसे गले मिलकर, पार्ल्यामेंटरी सेक्रेटरियोंको केवल एक हाथ उठाकर, अपने विभागके सदस्योंकी ओर मुस्कराकर और अनेक विद्यालयोंके आचार्यों और अध्यापकोंकी ओर पीठ फेरकर सबका अभिनन्दन किया। इसलिये जैसे शिवरात्रिके दिन काशीमें विश्वनाथजीके मन्दिरमें भीतरतक न पहुँच सकनेवाले लोग दूरसे ही उनपर माला फेंक चढ़ाते हैं वैसे ही हम लोगोंने भी उनपर दूरसे ही माला चढ़ाकर अपना जीवन सफल किया। पहले हम लोगोंका ध्यान था कि केवल शिक्षा-विभागके अधिकारी ही अध्यापकोंका ऐसा सम्मान करते हैं किन्तु उस दिन ज्ञात हो गया कि अध्यापकोंके सम्मान करनेका यह विधान अखिल भारतीय है, राष्ट्रीय है, राजकीय है।

ये बच्चालालजी मेरे पुराने सहपाठी हैं। उर्दू-मिडिलका प्रथम महासागर उन्होंने मेरे कन्धोंपर चढ़कर पार किया। से, सीन, स्वादके तीन-तीन सकार; ते, तोय के दो-दो तकार; ज़ाल, ज़े और ज़्वादके तीन-तीन ज़कार; हे और दोचश्मी हे के दो-दो हकार लेकर उर्दू-लिपि यों ही अपना आतंक जमाए बैठी थी, उसपर चार पुरुष, तीन स्त्रियाँ, दो लड़के एक कामको दस दिनमें करते हैं तो बारह पुरुष, ग्यारह स्त्रियाँ और आठ लड़के कितने दिनोंमें काम पूरा करेंगे आदि ऐसी विचित्र समस्याएँ गणितमें खड़ी हो जाती थीं कि बच्चालालजीको यही चिन्ता होने लगती कि इन बारह पुरुषों, ग्यारह स्त्रियों और आठ लड़कोंमें कोई आलसी, कामचोर और दुर्बल निकल आए तो काम पूरा कैसे होगा। इसमें उनका कोई दोष नहीं था। बच्चालालजीको संसारमें आनेकी इतनी उतावली थी कि प्रत्येक मनुष्यकी खोपड़ीके

नीचे जो सोचने-समझनेका भूरा-भूरा लुचलुचा पदार्थ ब्रह्मा भरकर भेजा करता है, वह हड़बड़ीमें उनके मस्तिष्कमें रखना भूल गया। इसलिये उस पदार्थसे काम लेनेका उनका जितना व्यापार था वह सब मुझे ही सँभालना पड़ता था।

किन्तु उस दिन अपने बाल-सखाके हाथों अपना यह कटु अपमान, यह उपेक्षापूर्ण व्यवहार और यह प्राचीन सम्बन्धका क्रूर उपहास देखकर मेरे माथेकी नसें वैसे ही तन गईं जैसे किसी अनाड़ीने सितारका पहला तार मध्यमके बदले धैवतमें मिलानेके लिये खींच दिया हो। मेरे माथेमें न जाने क्यों बारी-बारीसे दुर्वासा, परशुराम और विश्वामित्र चक्कर मारने लगे—'यदि मैं शाप देकर भस्म कर सकता! यदि मैं कुठार लेकर इसका सिर धड़से अलग कर सकता!! यदि मैं चंड-कौशिकका प्रचंड तेज लेकर इसे अपने क्रोधका आखेट बना सकता!!! किंतु दरिद्रके मनोरथके समान उठे हुए ये बवण्डर धीरे-धीरे आँधी बने, वायु बने और फिर बयार होकर इतने मन्द पड़ गए कि चलदल कहलानेवाला पीपलका पत्ता भी उसकी झोंकमें अचल बनकर लटका रह गया, मानो मच्छरकी फूँक हो—निस्तेज, निर्वीर्य, निरर्थक। गाँधीजीकी तपस्याके फलसे इन्द्रासन भोगनेवाले इन नहुषोंपर मुझ-जैसे दुर्बल सत्त्वशोषित अध्यापकका शाप लग भी कैसे सकता था। पर अपने सहपाठीके हाथसे पाया हुआ यह अपमानका विष पचाना तो दूर, मैं कंठसे नीचे भी न उतार सका।

इसी बीच एक बारातमें जानेके लिये रेलसे यात्रा करनी पड़ी। वहाँ ओ० टी० आर० की खोटी रेलगाड़ीकी चाल-ढालपर जो बातचीत चली तो मन्त्री भी उस लपेटमें आ गए और एक बनारसी गवँइहाँ सहचरने अपने दाँत और ओंठके बीच एक चुटकी सुरती जमाकर मुँह उचकाकर एक ऐसा मन्त्र बता दिया कि यदि उस समय मेरे पास तीनों लोकोंका राज्य होता तो उसे देकर जीवन भर उसके पैर दाबता।

उसने बनारसी सरलता और मस्ती-भरी निश्चिन्ततासे कहा—'गुरू! इन मन्त्रिनसे मिलैकऽहम अइसन अउवल उपाव बताईं कि ओम्माँ तनिकौ फेर न परै। अपने हिआँ नाबदान कऽ ओघड़ावन (उद्घाटन) करावऽ, कउनौ पुस्तकालै खोलवावऽ त ऊ दउरल अइहैं दउरल। एकरे बदे ओनके बखत मिल जाला। पर लोगन कऽ दुख-सुख सुनै बदे ओनके कहाँ बखत हौ?'

मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके मस्तिष्कमें जैसे मन्त्रोंका स्फुरण हुआ, प्रकाश हुआ, दर्शन हुआ, वैसे ही मेरे मनमें भी स्फुरण हुआ, प्रकाश हुआ दर्शन हुआ। विवाहके बाजे, डालडामें छनी हुई चौचक कचौड़ियाँ, मोतीचूरके लड्डू, कोंहड़े और कटहलकी नमक-हीन तरकारी, छुहारेकी मीठी चटनी, इस समय सब अपनी सरसता खो चुके थे। जैसे सब सांसारिक भोगोंमें रहकर भी जनकजी निर्विकल्प समाधिमें अनुभूयमाण परात्पर ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये विदेहत्व साधते थे, वैसे ही मैं भी बच्चालालजीको अपने निकट प्राप्त करनेके लिये इतना योगस्थ हो चला कि मुझे यही स्मरण नहीं रहा कि बारात कब पहुँची, कहाँ जनवासा हुआ, कब द्वारपूजा हुई, कब आयस आया, कब विवाह हुआ, कब जेवनार हुई, कब खिचड़ी-भात हुआ, कब मँड़वा हिला, कब मिलनी हुई, कब अक्षत दिया गया, कब बारात लौटी, किस अप्सराका नृत्य हुआ, किस भाँड़ने अपनी अश्लील भँड़ैतीसे कुरुचि-पूर्ण व्यक्तियोंकी आदिम प्रवृत्तियोंको तृप्त और पुष्ट करनेमें सहायता दी।

× × ×

हमारे गाँवके सीवानपर एक मढ़ी है, कुआँ है, फुलवारी है और देवीजीका मंदिर है। उसके पुजारीजी आस-पासके गाँवोंमें अच्छे पढ़े-लिखे माने जाते हैं और कजली, आल्हा, चमोला, चैती जैसी वे गाते

हैं, वैसी दस-पाँच दियारमें सुननेको नहीं मिलती। मैंने सुना था कि उनके पास बहुतसी पोथियाँ हैं। क्यों न एक पुस्तकालय खोल दिया जाय और बच्चालालजीसे 'ओधड़ावन' करा दिया जाय। पुजारीने जो मेरी बात सुनी तो उसकी बतीसी खिल गई और बड़ी करुणासे वे इस प्रकार बोले मानो जीवनकी सर्वोत्कृष्ट कामना पूर्ण करनेके लिये वर माँग रहे हों—'भैया ! जौ ई होय जात त हमार जनम सुफल होय् जात। अउर बनोबस्त हम सब कै लेब, तू बुलाय भर दऽ। अउर जौन दस-पाँच लगी ओहूसे हम बाहर नाहीं हई।'

अपनी टीस मिटानेके लिये मैं पुजारीजीको साधन बनाकर उचित और न्याय-कार्य तो नहीं कर रहा था, किन्तु मैं यह भी जानता था कि बच्चालालजीके आ जानेपर भविष्यमें आसपासके दस-बीस गाँवके लोगोंपर पुजारीजी जो धौंस जमावेंगे और उस आतंकसे उनकी जो आत्मतुष्टि होगी वह भी इसके लिये कम पुरस्कार नहीं है।

अपने कुटिल मनको इस प्रकार मिथ्या नैतिकतासे थपथपाकर मैं योजना बनाने लगा। वसन्त-पंचमीका दिन निश्चित हुआ। मन्दिर-की कोठरीमें पुस्तकालय रखनेका कार्य-क्रम बनाया गया। दो दिन पहले पुजारीजी अपने घरसे टाटके बेठनमें बँधी पोथियाँ लेकर आवेंगे। कार्य-क्रम बनाना और निमन्त्रण देना मेरा काम था। मैंने बड़े रूपकके साथ निमन्त्रण लिखा कि 'एक लाख जनता आपके स्वागतके लिये तड़प रही है, आप उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ कीजिए।' इत्यादि। नव-नीत लगाकर मनुष्यको मोम बनानेवाले जितने भी शब्द और वाक्य मिल सके, सब खोज-खोजकर मैंने लिख डाले और बड़े ठाठसे 'प्रधान-मन्त्री, अखिल भारतीय सत्साहित्य महापुस्तकालय, हरिपुरा' की ओरसे मन्त्रीजीकी सेवामें वह पत्र भेज दिया। पाँचवें दिन ही उसका अँगरेज़ीमें इस आशयका उत्तर मिला—

'श्री माननीय वस्त्र-मन्त्रीजी आपके निमन्त्रणके लिये धन्यवाद

देते हैं। अनेक राजकीय कार्योंमें व्यस्त रहनेपर भी उन्हें आपका निमंत्रण स्वीकार है।'

यह उत्तर पाते ही मुझे वैसा ही सुख हुआ जैसा गणितके अध्यापकके अस्वस्थ होनेका समाचार सुनकर छात्रोंको होता है। पुजारीजी तो ऐसे प्रसन्न थे मानो चौदहों भुवनोंका अखंड ऐश्वर्य, कुबेरकी नवों निधियाँ और इन्द्रका सम्पूर्ण वैभव एक साथ उन्हें मिल गया हो।

इस बीच मैंने मन्त्री महोदयके हरिजन-विवाहकी चर्चा इस रूपकके साथ छेड़नी प्रारम्भ की कि सुननेवाला मुझे प्रशंसक समझे और स्वयं झल्लाकर बिगड़ खड़ा हो। हरिहरपुरके लाला बनवारीलाल कुलीन श्रीवास्तव कायस्थ हैं और आसपासके कायस्थ उनकी बातको वेद-वाक्य समझते हैं। एक दिन मैं उनके पास भी निमन्त्रण देने पहुँच गया। मैंने राग छेड़ा—

'माननीय बच्चालालजी आ रहे हैं। कायस्थोंमें इतना नाम और पैसा किसीने नहीं कमाया। वे एक पैसा घूस नहीं लेते फिर भी जिसे देखिए वही उनकी खिड़कीपर, मेज़की दराजमें, बीमोंके लिफाफोंमें, फलकी डालीमें, उनकी फाइलोंमें और कोटकी जेबमें थैलियाँ रख जाते हैं थैलियाँ, और बच्चालालजी सज्जन इतने हैं कि किसीका जी दुखानेके लिये न उसे लौटाते, न यही पूछते कि किसने रक्खा है।

लाला बनवारीलाल सुनते ही उबल पड़े—'मैं होता तो सबकी पाई-पाई लौटा देता। यह भी तो घूस ही है। नाक यों न पकड़ी यों पकड़ ली। इन मन्त्रियोंकी बात कुछ न पूछो। सुना किसीके लड़केका जनेऊ था, उसमें दो लाख रुपये भीखमें आ गए। एक मन्त्रीने अपने किसी यारको किताब छपानेके कामपर जोत दिया है। उन्हें देखिए तो महल खड़ा किए बैठे हैं।'

मैंने उत्तर दिया : 'अब कोई बलपूर्वक बिना नाम बताए कुछ दे

जाय तो क्या किया जाय ! घर आई लक्ष्मीको कौन लात मारे ? फिर बच्चालालजी इतने नैतिक विचारके हैं कि वे दूसरोंका धन ठीकरा समझते हैं ठीकरा। सड़कमें पड़ा तो, घरमें आया तो। और फिर उन्होंने वह कर दिखाया जो गाँधीजीसे न हो सका। जीवनभर हरिजनोद्धारका आन्दोलन चलानेपर भी उनसे यह न हो पाया कि अपने किसी बेटे-पोतेका ब्याह किसी हरिजन-कन्यासे कर देते, बच्चा-लालजीने केवल आदर्शकी रक्षाके लिये, संसारके समक्ष महत्ताका उदाहरण उपस्थित करनेके लिये सोलह वर्षकी हरिजन कन्यासे विवाह किया। है कोई कायस्थ जिसमें इतना नैतिक साहस हो !'

बनवारीलालजी समाचारपत्र तो पढ़ते ही नहीं थे। उन्होंने जो यह सुना तो जैसे वे आकाशसे गिरे पड़े हों—'क्या चमारिनसे ब्याह किया है ?'

मैंने उस घावको अधिक कुरेदते हुए कहा : 'चमारिन-भंगिन क्या ! सब हरिजन हैं। स्वतंत्र देशमें ऊँच-नीच क्या ?'

झट बनवारीलाल चमक पड़े—'आप क्यों नहीं कर लेते ?'

मैं बोला : 'समरथके नहीं दोष गुसाईं'। मैं भी मन्त्री हो जाता तो कौन जाने मैं भी कर बैठता और सब मेरी पूजा करते। अभी बच्चालालजी आवेंगे तो आपही फूलमाला पहनावेंगे, तोसक बिछावेंगे और पंखा झलेंगे।'

बनवारीलालजी भभके—'मैं? मैं उसपर थूकने नहीं जाऊँगा।'

इसी प्रकारके सम्वादसे मैंने आसपासके लोगोंको उकसाकर चौकन्ना कर दिया और अब आशा यही हो चली कि ओवड़ावन-सभामें तीन ही व्यक्ति रह जायँगे—पुजारीजी यजमान, मैं पुरोहित और बच्चालाल जी ब्रह्मा।

जैसे साँपके विषकी लहर फैलती है, संक्रामक रोगके कीटाणु फैलते हैं और रेडियोसे समाचार प्रसारित होते हैं, उससे भी अधिक वेगसे

बच्चालालजीके यशकी कथा दूर-दूर फैल गई। गाँव-गाँवकी चौपालमें जिसके मुँह सुनो वही रस लेकर बच्चालालके विवाहकी कथा कह रहा है। बूढ़े मुँह बिचकाकर और जवान रस लेकर उस घटनाकी मीमांसा कर रहे हैं। विद्यालयोंके छात्रोंने भी कुछ योजना बनाई थी पर वे सब खुल नहीं रहे थे।

वसन्त-पंचमी भी आ पहुँची। पंडितजीने सब ठीक-ठाक कर रक्खा था। एक शामियाना आ गया और चौकी, कालीन, मसनद, झंडी, केलेके खम्भे और दीपकके साथ जलपूर्ण घट। मधुपर्कको छोड़कर भारतीय शिष्टाचारकी शेष सब सामग्री विराजमान थी। पुस्तकालयकी कोठरी भी लीप-पोत कर स्वच्छ कर ली गई थी। और उसीके एक कोनेमें उन्होंने अपना संग्रह ला रक्खा था। संयोगसे मैं गया देखने तो उस अलभ्य संग्रहमें बारह ग्रन्थ थे—आल्हा, चौबोला, सावनकी बहार (कजरी), क़िस्सा तोता-मैना, क़िस्सा साढ़े तीन यार, गुलबकावली, फुलझड़ी (कजरी), बिदेसिया (नाटक), शब्द-रूपावली, पहाड़ा और रामायण (तुलसीकृत)।

जब गाँवमें उत्सव होता है तो लोग तड़केसे ही जुटने लगते हैं। तीन बजे सन्ध्याको उत्सव था पर सात बजे सबेरेसे ही लोग ठट्ठके ठट्ठ आने लगे। पुजारीजीने कड़ाह चढ़ा दिया और ऐसे प्रबन्ध करने लगे मानो बारातका जेवनार करा रहे हों। बारह बजते ही उन्होंने दरी-चाँदनी बिछवा दी और फिर न जाने किस युगसे परम्परागत सात-आठ-पीढ़ियोंसे काममें लाया हुआ एक रेशमी दुपट्टा, एक पगड़ी और एक अंगा निकाला जिसके दाहिनी ओर तनीकी झिरीमेंसे उनका एक स्तन और यज्ञोपवीत स्पष्ट झाँक रहा था।

लगभग ढाई बजे पुलिसके दलके साथ बच्चालालजी सपत्नीक आ पधारे। पंडितजीने ठाकुरजीवाली आरती सँभाली, उसमें कपूर रक्खा और बस आरती जगानेवाले ही थे कि सहसा सारी जनतामें

उफान आ गया। छात्रोंने काला झंडा निकालकर 'लौट जाओ—'लौट जाओ' की पुकार मचाई। कायस्थोंने हल्ला मचाया, 'निकालो यहाँसे, इसका मुँह काला करो।' और लोग भी इन्हीं नारोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर कोलाहल करके मोटरकी ओर बढ़ने लगे।

मैं बच्चालालजीका संकट तो ताड़ ही गया था पर अपना भविष्य भी समझ चुका था, इसलिये हाथकी ओट देकर झट मैं पुजारीजीको लेकर मोटरके पास पहुँचा और चट उन्हें मन्दिरमें ले जाकर मैंने भीतरसे कुंडी लगा दी, नहीं तो उस दिन बिना आरतीके उनकी पूजा हो जाती। उस दिन निश्चय ही वस्त्र-मन्त्रीजी समझ गए कि राज्यपाल, मन्त्री, सरकारी कर्मचारी, पुलिस और कांग्रेस-मंडलका समर्थन ही सब कुछ नहीं है, जनता भी कुछ है, जिसकी सम्मिलित फूँकमें हिमालय-तक उड़ा देनेकी क्षमता है।

काँपते, हाँफते, पसिनियाते बड़ी दैन्य मुद्रामें उन्होंने मुझसे धीरेसे कहा—'क्या किया जाय मित्र?'

मैंने अपनी शक्तिका आतंक जमाते हुए कहा—'चिन्ता न कजिए, सब ठीक हो जायगा।'

और मैं सोचने लगा कि यदि इस भावकी शतांश आत्मीयता भी उस दिन इन्होंने दिखा दी होती तो यह दिन इन्हें देखना क्यों पड़ता। उसी दिन मैंने भर-आँखों उनकी उस नव हरिजन धर्मपत्नीके दर्शन किए जिन्होंने गौरीसे अवश्य यह वरदान माँगा होगा कि मैं रंगमें और दाँतोंकी दीर्घतामें अपने पतिसे पीछे न रहूँ और गौरीजीने भी प्रसन्न होकर उन्हें तथास्तु दिया होगा। अपनी बनारसी साड़ीमें वे ठीक ऐसी लग रही थीं मानो किसीने काली बिल्लीको कारचोबीका जामा पहना दिया हो। इस श्याम युगलकी छबिपर यमका भैंसा, भैरवका श्वान, ट्रांस-साइबेरियन रेलवेके अंजन सब एक साथ न्योछावर

थे। लैला-मजनूँकी कथा कभी पढ़ी अवश्य थी पर साक्षात्कार आज ही हुआ।

पुलिसवालोंने अपने बाहुबल और पराक्रमसे सारा झगड़ा ठंढा कर दिया था। भीड़ तितर-बितर हो चुकी थी। बच्चालालजी मन्दिरसे निकले तो ऐसी मुद्रा बनाकर मानो किसीने जाड़ेके दिनोंमें हिमानी पानीसे नहला दिया हो, मदिरा पिला-पिलाकर पीटा हो या माघकी ठण्ढमें कपड़े उतारकर घरसे निकाल दिया हो।

पुस्तकालयका 'ओघड़ावन' न हो पाया। पुस्तकालयके वे बारह महाग्रंथ मन्त्रीजीके कोमल कर-स्पर्शसे वंचित होकर ज्योंके त्यों धरे रह गए। किन्तु पुजारीजीका काम निकल ही गया। उन्हें स्वागत करने, राम-भण्डारकी मिठाई खिलाने और बात करनेका पूरा अवसर मिल ही गया। उस दिन यदि बच्चालालजीके बदले कोई अँगरेज़ होता तो पुजारीजीको इस सत्कारके बदले जागीर दे देता और मुझे शिक्षा-सञ्चालक बना देता, पर हमारे मन्त्री—भगवान् इनका भला करें। आत्म-कल्याणसे ही उन बेचारोंको कहाँ अवकाश मिल पाता है। प्यादेसे फरजी जो हुए हैं।'

पुलिसकी देखरेखमें बच्चालालजी सकुशल सपत्नीक लौट गए तो लोग फिर आ जुटे! उन्होंने पुजारीजीको आड़े हाथों लिया—'उस....को मंदिरमें क्यों घुसने दिया ?....!' यह सब देख-सुनकर पुजारीजीके देवता कूच कर गए, गलेका द्वार रुँध गया, मुँह फक पड़ गया। उन्होंने बड़ी करुण मुद्रामें वैसे ही मेरी ओर देखा जैसे गजराजने ग्राहसे ग्रसे जानेपर भगवान् विष्णुकी ओर देखा था। भगवान् विष्णुको तो वहाँतक पहुँचनेमें कुछ विलम्ब भी हुआ होगा पर पुजारीजीका विष्णु तो मैं वहाँ खड़ा ही हुआ था। मैंने स्वर साधकर, हाथ उठाकर कहना प्रारम्भ किया—'आप लोग पुजारीजीको समझ क्या बैठे हैं? पुजारीजीको धन्यवाद दो, धन्यवाद। बच्चालालजी तो सपत्नीक जूता पहने मन्दिरमें घुसे

चले जा रहे थे, पर पुजारीजी ही थे जिन्होंने द्वार रोककर कहा : ऐसे आप मन्दिरमें नहीं जाने पावेंगे। जाना हो तो मेरे शरीरपर होकर जाइए। बस मन्त्रीजी खड़े रह गए। पुजारीजीने तुम्हारी लाज रख ली, लाज। और आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कंठसे मैं पुजारीजीके चरणोंमें गिर गया और बोला : 'आप धन्य हैं। आपने हमारे दियार की और मन्दिरकी लाज रख ली।' हमारे देशकी सीधी-सादी, भोली-भाली जनता, मेरे वचन सुनकर चुपचाप पिघल गई मानो पुजारीजीने वह कार्य किया हो जो राणा प्रताप और शिवाजी भी न कर सके हों और पुजारीजीके प्रति अखंड श्रद्धा लेकर भीड़ अपने-अपने घर चली गई।

× × ×

कल माननीय बच्चालालजी का पत्र आया है—

प्रियवर!

तुम आते नहीं हो। कभी-कभी चले आया करो। यह न समझना कि मैं पराया हो गया हूँ। वही अपना पुराना मित्र समझना।

तुम्हारा

बच्चालाल।

मैं लेटा-लेटा यह शब्दलघुल किन्तु अर्थबहुल पत्र पढ़ता जा रहा था और कुटिल मुस्कराहटके साथ उसके भीतर भरी हुई गहरी झेंप, पश्चात्ताप और क्षमाका रस लेता जा रहा था। उसी झोंकमें नींद जो आई तो क्या देखता हूँ कि बच्चालालजी कह रहे हैं—'भाई! सवाल नहीं आ रहा है, समझाओ तो। और मैं समझा रहा था प्रश्न भी, उसका प्रसार भी और उसका उत्तर भी, क्योंकि फरजी फिर प्यादा हो गया था।'

७

तत्समाश्रित संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली

संस्कृतनिष्ठ या तत्समाश्रित भाषा शैलीमें उपसर्ग प्रत्यय सहित संज्ञा (व्यक्तिवाचक संज्ञाओंको छोड़कर), विशेषण और क्रिया तो शुद्ध तत्सम संस्कृतके शब्द होते हैं, शेष सर्वनाम, सहायक क्रिया, प्रचलित अव्यय (समुच्चयबोधक, विस्मयादि-बोधक तथा संबंधवाचक) तद्भवात्मक या देशी होते हैं। इस शैलीमें आजकल शास्त्रीय ग्रन्थ लिखनेवाले ही करते हैं। छायावादी कहलानेवाले कवियोंने भी प्रायः इसी शैलीका आश्रय लिया था। इस संस्कृतनिष्ठ शैलीके निम्नांकित रूप होते हैं—

१. संस्कृतनिष्ठ सरल या मिश्र वाक्यवाली वाच्यार्थ-शैली।

२. संस्कृतनिष्ठ सरल या मिश्र वाक्यवाली लाक्षणिक शैली।

संस्कृतनिष्ठ सरल तथा मिश्र वाच्यार्थ-शैली

संस्कृतनिष्ठ सरल वाच्यार्थ-शैलीमें एक ही क्रियावाले वाक्य होते हैं और उनमें वाच्यार्थ ही प्रधान होता है। मिश्र वाच्यार्थ शैलीमें कई मुख्य क्रियाओंवाले मिश्र वाक्य होते हैं।

इस संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित शैलीमें चंडीप्रसाद हृदयेश तथा प्रसादजीने ही अधिकांश कहानियाँ लिखीं किन्तु कहानियोंके लिये यह शैली अत्यन्त अनुपयुक्त है। प्रायः कहानी पढ़नेवालोंका शब्दार्थज्ञान बहुत परिमित होता है अतः उन्हें केवल ऐसी भाषा-शैलीमें कहानी लिखकर देनी चाहिए जिसे वे सरलतासे समझ सकें। केवल उन्हीं विषयोंके लिये इस शैलीका प्रयोग करना चाहिए जो विद्वानोंके लिये लिखे गए हों। इस संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित भाषा-शैलीके वाच्यार्थ-प्रधान सरल तथा मिश्र वाक्योंमें यह कहानी लीजिए—

कहानी

मानव

वप्रके समुन्नत बालुकामय शिखरपर आरूढ होकर जो मैंने दृष्टि-निक्षेप किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि सुदूर धरणी-आकाशके सम्मिलन-तीर्थपर अनियमित रूपसे विकीर्ण हरीतिमाकी छायामें अपने रक्तिम खपरैलोंपर पश्चिम दिशाके क्रोड़में अंकस्थ होते हुए भास्करकी अंतिम अलोक-छाया पूर्ण किरण-माला अंकित करता हुआ एक सुशोभन, मनोहर, अत्यन्त लघु कुटीर उस सांध्य लालिमाने मंद स्मितिसे हँसता और निमंत्रण देता-सा उद्भासित हो रहा है। मेरे संग मेरी धर्मपत्नी उस सुदूर यात्रासे अत्यन्त श्रान्त हो चली थी। उसका प्रश्वास-वेग बढ़ चला था और क्षण-क्षणपर वे आतुर जिज्ञासा कर रही थीं—"कहिए! अभी कितना मार्ग शेष है?"

अभीतक जो अपने वास-प्रकोष्ठसे प्रांगण-तकको ही सम्पूर्ण धरित्री समझे हुए थी, जिसने कभी भी भ्रम-वश भी अपने आवाससे बाहर पद-प्रक्षेप नहीं किया था, उसके लिये यह क्रोश-यात्रा दुर्गम

पर्वतके समान विषम बन गई। अभी-तक मैं उसे येन केन प्रकारेण आश्वासन देता, मिथ्या सान्त्वना प्रदान करता, अनेक प्रकारकी उक्तियों और कथानकोंकी वात्यामें उलझाता चला आ रहा था किन्तु अब उसके धैर्यका प्राचीर टूट चुका था, आश्वासन और सान्त्वनाके सम्पूर्ण बन्धन शिथिल पड़ चुके थे, इसीलिये मैं इस वप्रपर आरोहण करके यह जान लेना चाहता था कि कहीं समीप कृष्णपक्षकी अन्धरात्रि व्यतीत करनेके लिये कोई आश्रय प्राप्त हो पावेगा या नहीं।

उस कुटीरको देखकर मुझे धैर्य प्राप्त हुआ। मैंने अपना दक्षिण हस्त प्रसारित कर तर्जनीके सङ्केतसे उसे इङ्गित किया—'वह देखो! सघन वृक्षोंकी छायामें उद्भासित लाल कुटीर! बस, वही तो गन्तव्य स्थान है। दस पग चलकर लक्ष्यपर पहुँच जायँगे।'

सुन्दरी सन्ध्याकी व्रीडाके समान लाल, सान्ध्य कमलके समान मुद्रित, विनत, तन्द्रिल और क्लान्त होकर वह उसी प्रकार मनही मन आक्रोश प्रकट करने लगी जैसे सायंकालकी वेलामें पंकजके क्रोड़में वन्दी षट्पद मन्द ध्वनि करते हुए गूँजते हैं। उसके चरण पाषाण हो चुके थे। वह किञ्चित् भी आगे चलनेके लिये प्रस्तुत नहीं थी। किन्तु सहसा पश्चिमकी लालिमापर गम्भीर पीतिमा आवृत होने लगी और क्षण-भरमें सूर्यकी अस्तंगत किरणोंपर धूसर आवरणका ऐसा वितान तना कि उसे और मुझे दोनोंको यह ज्ञात हो गया कि प्रभञ्जनका आगमन हो रहा है और सम्भव है भयंकर जल-वृष्टि भी उसका अनुगमन कर रही हो।

हम दोनों तत्काल उस बालुकामय वप्रसे उतरकर अपने श्रान्त चरणोंमें चक्र बाँधकर अत्यन्त वेगसे उस कुटीरकी दिशामें अग्रसर हो चले। किन्तु प्रभञ्जन हम लोगोंकी अपेक्षा शतगुणित वेगसे चला आ रहा था। निमिष मात्रमें वह आकाशमें शिरपर आ चढ़ा। प्रभञ्जनमें वृक्ष सबसे बड़ा शत्रु होता है। न जाने किस आवेगमें वह अपनी पीन

शाखा विभक्त करके अपने आश्रयमें शरण लेनेवाले दीनोंको आक्रान्त करके विचूर्ण कर डाले। इसी भयसे हम लोग प्रभञ्जनके वेगसे आमूल विकम्पित हो उठनेवाले वृक्षोंसे सँभलते हुए अग्रसर होते जा रहे थे। प्रभञ्जनके वेगसे उड्डीयमान बालुका-कणों और तृणोंके कारण मार्ग अस्पष्ट हो चला था। प्रभञ्जन तर्जन कर रहा था—'पीछे हटो।' हम भी दृढ-प्रतिज्ञ थे—'नहीं! पश्चात्पद नहीं होंगे।'

किन्तु वह महाप्रभञ्जन इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह अपने साथ जिन श्यामल, जल-पूर्ण वारिद समूहोंको घेरे चला आ रहा था, वे अपनी बाण-सदृश जल-बिन्दुओंकी वृष्टि करके भयंकर गर्जन भी करने लगे। तथापि हम दोनों भयभीत नहीं हुए, विचलित नहीं हुए, पराजित नहीं हुए और गतिशील ही रहे। किन्तु जब धाराधरोंने अखण्ड धारामय वृष्टि प्रारम्भ कर दी, सौदामिनी भी पर्वत-शिखर और धरणीके वक्षःस्थलको विदीर्ण करती हुई गम्भीर निनाद करने लगी और मेरी सहधर्मिणी भी जलार्द्र होकर, श्रान्त होकर, ठोकर खाकर गिर पड़ी तब मेरा भार सम्वर्द्धित हो गया। मैं उसे पृष्ठपर लाद कर, आध घण्टे उस वर्षा-प्रभञ्जनसे युद्ध करता, कण्टक-प्रस्तराकीर्ण अति विषम जलमय पन्थका लंघन करता हुआ येन-केन-प्रकारेण उस कुटीरतक जा पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर मैंने अपनी संगिनीको उस कुटीरकी बहिर्गत छायामें लिटा दिया और यह चिन्तन करने लगा कि यदि कोई सज्जन प्राप्त हो जायँ तो वस्त्र-परिवर्त्तन करनेकी सुविधा मिले। अभी जल वृष्टि अखण्ड रूपसे होती जा रही थी, प्रभञ्जनका वेग भी किसी प्रकार मन्द नहीं पड़ रहा था और चतुर्दिक् प्रवहमान पवनके कारण चारों ओरसे पवनके साथ-साथ जल-सीकरका वेग भी व्याप्त था। जैसे ही मैं द्वारकी शृंखला खटखटानेके लिये आगे बढ़ा वैसे ही मेरे कर्ण-कुहरोंमें कुछ वार्त्तालापकी-सी ध्वनि गोचर हुई। उस वार्त्तालापमें अपना नाम

सुनकर मैं स्तब्ध रह गया, हतप्रभ हो गया क्योंकि जिन लोगोंके कूट-जालसे त्राण प्राप्त करनेके लिये मैंने यह विपन्थ ग्रहण किया था, वे मेरे आगमनसे पूर्व ही वहाँ उपस्थित हो चुके थे। किन्तु अब कोई दूसरा मार्ग भी नहीं था। इस प्रभञ्जन और प्रवर्षणकी कुवेलामें पलायन भी सम्भव नहीं था और शृंखला-वादनमें यह भय था कि कहीं बन्दी न हो जाऊँ। मैंने अपनी गृहिणीकी ओर देखा। वह मूर्च्छित होकर काष्ठवत् पड़ गई थी। यह एक विपत्तिमें दूसरी महाविपत्ति कहाँसे आ उपस्थित हुई! मैं किंकर्त्तव्यविमूढ होकर मनन कर ही रहा था कि इतनेमें कपाट ध्वनित हुए और एक दीर्घ-काय हृष्ट-पुष्ट युवक उस द्वारसे बहिर्गत हुआ। सौदामिनीके प्रकाशमें उसका अभिज्ञान करनेमें मुझे तनिक भी विलम्ब नहीं हुआ। यह वही राज-पुरुष था जो विगत दो वर्षोंसे मेरा अन्वेषण कर रहा था, इसीलिये कि मुझे बन्दी करनेवालेको राज्यकी ओरसे गम्भीर पुरस्कार घोषित था क्योंकि मैं ऐसे वर्गका अग्रणी समझा जाता था जो उन दिनों अँगरेजी राज्य नष्ट कर देनेके लिये बद्ध-परिकर थे।

उसने अत्यन्त कठोर स्वरमें पूछा—'कौन है?' मैंने यथासंभव अपनी ध्वनि परिवर्तित करके अत्यन्त मन्द स्वरमें कहा—'हम यात्री हैं। वर्षा-प्रभञ्जनके कारण हमने इस कुटीरकी शरण ली है। मेरे साथ यह मेरी गृहिणी है जो जलार्द्र हो गई है। इसे शीतज्वर हो आया है और इसका शरीर अत्यन्त उष्ण हो गया है।'

मेरे सिरपर टोप देखकर उसे ज्ञात हुआ कि हम कोई सज्जन हैं। उसने तत्काल समीपवर्ती प्रकोष्ठका द्वार खोला और कहा—'आप लोग भीतर विश्राम कीजिए क्योंकि बाहर प्रभञ्जनके वेगसे सब जलमय हो गया है।' मैंने अपनी पत्नीको उठाकर उस प्रकोष्ठमें ले जाकर लिटा तो दिया किन्तु मेरा हृदय अब भी शङ्कित था कि मैं कहीं प्रज्ञप्त हो गया तो! किन्तु अब तो ओखलीमें सिर दे दिया था, मूसलसे

क्या भय ! ज्यों ही हम लोग भीतर आए त्यों ही उसने दीप-शलाका निकालकर प्रज्वलित की, जिसके धूमिल पीत प्रकाशमें भी उसने मेरा मुख देख लिया। वह तत्क्षण पहचान गया और उसने बढ़कर मेरा मणिबन्ध बलपूर्वक ग्रहण कर ही तो लिया—'तुम !'

मैं खड़ा हो गया। उसके दक्षिण हस्तमें प्रज्वलित दीप-शलाकाके प्रकाशके सम्मुख वक्षःस्थल उन्नत करके मैंने कहा—'हाँ, मैं हूँ।'

दीप-शलाका शान्त हो गई और उसी अंधकारमें मैं कहता रहा—'तुम मुझे चाहे जहाँ ले चलो, किन्तु मैं एक विनम्र याचना करता हूँ।'

मेरा हाथ उसी प्रकार ग्रहण किए हुए वह बोला—'क्या ?'

मैं कह रहा था—'मेरे साथ मेरे सुख-दुःखमें सदा सहायता देनेवाली मेरी गृहिणी इस रुग्णावस्थामें अचेत पड़ी है। इसे इसके पिताके आवासपर पहुँचवाकर कहला दीजिएगा कि तुम्हारा पति दो वर्षोंतक किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर अन्तमें तुम्हारी रक्षा करनेके प्रयासमें ही वन्दी हो गया। क्या इतना कीजिएगा ?'

उसी अन्धकारमें मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पृथुल लौह-यष्टिकासे भी कठोर जिस वज्र-करसे वह मेरा हाथ पकड़े हुए था, वह शिथिल पड़ रहा है और सहसा एक मृदुल वेगके साथ मेरा हाथ उस लौह-पाशसे मुक्त हो गया है।

उसके मुखसे केवल इतना ही ध्वनित हुआ—'यदि तुम विपद्-ग्रस्त न होते तो मैं तुम्हें अभी वन्दी कर ले जाता और कल ही शासन-की ओरसे मुझे पुरस्कार भी प्राप्त होता और मैं उच्च पदपर भी अधिष्ठित कर दिया जाता। किन्तु इस समय मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। जबतक हम लोग इस स्थानका परित्याग न कर दें तबतक तुम इस प्रकोष्ठसे बाहर न आना।'

अनुमानतः तीन घण्टेमें प्रभञ्जनका वेग शान्त हुआ, आकाश

निरभ्र हुआ और वे लोग भी पार्श्ववर्ती प्रकोष्ठ छोड़कर किसी अज्ञात दिशाकी ओर चल दिए। उनके प्रस्थान कर चुकनेपर ग्रामवासियोंको जगाकर मैंने अपनी विपत्ति सुनाई। उन्होंने उष्ण दुग्ध दिया, अग्निस्थमें अग्नि प्रज्वलित कर दी और ग्रामकी अनेक वृद्धा माताएँ आकर मेरी गृहिणीका उपचार करने लगीं।

तीन मास पश्चात् जब मेरी गृहिणी पूर्णतः स्वस्थ हो गई तब मैं सहसा रात्रिके समय एकाकी उस राज-पुरुषके आवासपर पहुँचा। मुझे सम्मुख देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गया—'तुम! यहाँ?'

मैंने उसकी जिज्ञासा शान्त की—'अब मेरी गृहिणी स्वस्थ हो गई है। उस दिन आपने मुझे मुक्ति-प्रदान करके जो मुझपर कृपा प्रदर्शित की थी उस कृतज्ञताका भार मेरे लिये असम्भव हो रहा है। आप मुझे बन्दी कर लीजिए। आपको पुरस्कार भी प्राप्त होगा और उच्च पद भी।'

सहसा वह खड़ा हो गया। उसने कुछ क्षण मेरी ओर गम्भीर निर्निमेष दृष्टि-निक्षेप करते हुए मेरे दोनों स्कन्धोंपर अपने प्रलम्ब बाहु प्रसारित कर प्रत्युत्तर दिया—'मुझे नहीं विश्वास था कि तुम इतने वीर हो। धन और उच्च पद दोनोंकी मुझे लालसा नहीं है। जाओ तत्काल निर्वाक् होकर निकल जाओ।'

मैं मन ही मन उसके महत्त्वके सम्मुख विनत-भाल हो गया और मौनावलम्बी होकर यह चिन्तन करता हुआ लौट चला कि इस युगमें भी क्या मानव इतना महान् और इतना उदार हो सकता है?

साहित्य-समीक्षा

इसी संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित भाषा-शैलीके वाच्यार्थ-प्रधान सरल तथा मिश्र वाक्योंमें समीक्षा-सम्बन्धी निबन्ध लीजिए जिससे प्रतीत होगा कि इस शैलीमें गम्भीर लेख अत्यन्त सुन्दर, उचित, प्रौढ़ तथा प्रभाववाली बन पड़ते हैं—

क्या भय ! ज्यों ही हम लोग भीतर आए त्यों ही उसने दीप-शलाका निकालकर प्रज्वलित की, जिसके धूमिल पीत प्रकाशमें भी उसने मेरा मुख देख लिया। वह तत्क्षण पहचान गया और उसने बढ़कर मेरा मणिबन्ध बलपूर्वक ग्रहण कर ही तो लिया—'तुम !'

मैं खड़ा हो गया। उसके दक्षिण हस्तमें प्रज्वलित दीप-शलाकाके प्रकाशके सम्मुख वक्षःस्थल उन्नत करके मैंने कहा—'हाँ, मैं हूँ।'

दीप-शलाका शान्त हो गई और उसी अंधकारमें मैं कहता रहा—'तुम मुझे चाहे जहाँ ले चलो, किन्तु मैं एक विनम्र याचना करता हूँ।'

मेरा हाथ उसी प्रकार ग्रहण किए हुए वह बोला—'क्या ?'

मैं कह रहा था—'मेरे साथ मेरे सुख-दुःखमें सदा सहायता देनेवाली मेरी गृहिणी इस रुग्णावस्थामें अचेत पड़ी है। इसे इसके पिताके आवासपर पहुँचवाकर कहला दीजिएगा कि तुम्हारा पति दो वर्षोंतक किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर अन्तमें तुम्हारी रक्षा करनेके प्रयासमें ही वन्दी हो गया। क्या इतना कीजिएगा ?'

उसी अन्धकारमें मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पृथुल लौह-यष्टिकासे भी कठोर जिस वज्र-करसे वह मेरा हाथ पकड़े हुए था, वह शिथिल पड़ रहा है और सहसा एक मृदुल वेगके साथ मेरा हाथ उस लौह-पाशसे मुक्त हो गया है।

उसके मुखसे केवल इतना ही ध्वनित हुआ—'यदि तुम विपद्-ग्रस्त न होते तो मैं तुम्हें अभी वन्दी कर ले जाता और कल ही शासन-की ओरसे मुझे पुरस्कार भी प्राप्त होता और मैं उच्च पदपर भी अधिष्ठित कर दिया जाता। किन्तु इस समय मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। जबतक हम लोग इस स्थानका परित्याग न कर दें तबतक तुम इस प्रकोष्ठसे बाहर न आना।'

अनुमानतः तीन घण्टेमें प्रभञ्जनका वेग शान्त हुआ, आकाश

निरभ्र हुआ और वे लोग भी पार्श्ववर्ती प्रकोष्ठ छोड़कर किसी अज्ञात दिशाकी ओर चल दिए। उनके प्रस्थान कर चुकनेपर ग्रामवासियोंको जगाकर मैंने अपनी विपत्ति सुनाई। उन्होंने उष्ण दुग्ध दिया, अग्निस्थमें अग्नि प्रज्वलित कर दी और ग्रामकी अनेक वृद्धा माताएँ आकर मेरी गृहिणीका उपचार करने लगीं।

तीन मास पश्चात् जब मेरी गृहिणी पूर्णतः स्वस्थ हो गई तब मैं सहसा रात्रिके समय एकाकी उस राज-पुरुषके आवासपर पहुँचा। मुझे सम्मुख देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गया—'तुम! यहाँ?'

मैंने उसकी जिज्ञासा शान्त की—'अब मेरी गृहिणी स्वस्थ हो गई है। उस दिन आपने मुझे मुक्ति-प्रदान करके जो मुझपर कृपा प्रदर्शित की थी उस कृतज्ञताका भार मेरे लिये असम्भव हो रहा है। आप मुझे वन्दी कर लीजिए। आपको पुरस्कार भी प्राप्त होगा और उच्च पद भी।'

सहसा वह खड़ा हो गया। उसने कुछ क्षण मेरी ओर गम्भीर निर्निमेष दृष्टि-निक्षेप करते हुए मेरे दोनों स्कन्धोंपर अपने प्रलम्ब बाहु प्रसारित कर प्रत्युत्तर दिया—'मुझे नहीं विश्वास था कि तुम इतने वीर हो। धन और उच्च पद दोनोंकी मुझे लालसा नहीं है। जाओ तत्काल निर्वाक् होकर निकल जाओ।'

मैं मन ही मन उसके महत्त्वके सम्मुख विनत-भाल हो गया और मौनावलम्बी होकर यह चिन्तन करता हुआ लौट चला कि इस युगमें भी क्या मानव इतना महान् और इतना उदार हो सकता है?

साहित्य-समीक्षा

इसी संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित भाषा-शैलीके वाच्यार्थ-प्रधान सरल तथा मिश्र वाक्योंमें समीक्षा-सम्बन्धी निबन्ध लीजिए जिससे प्रतीत होगा कि इस शैलीमें गम्भीर लेख अत्यन्त सुन्दर, उचित, प्रौढ़ तथा प्रभाववाली बन पड़ते हैं—

समीक्षवादोंकी वृत्तियाँ

मनुष्यमें तीन विशेष वृत्तियाँ होती हैं जिनके आधारपर वह किसी वस्तुको श्रेष्ठ समझकर उसकी उत्कृष्टताका विवेचन करता है—चयन, जिज्ञासा और अहं-वृत्तियाँ इन तीनों वृत्तियोंके कारण वह अपनी रुचि और योग्यताके आधारपर संसारकी सब वस्तुओंमेंसे अपने अनुकूल प्रिय पदार्थ-का चयन कर लेता है। उसके मनमें विद्यमान कुतूहलकी भावना उसके सम्बन्धमें जिज्ञासा उत्पन्न करती है और इस जिज्ञासाका परिणाम भी वह अपनी योग्यता और रुचिके अनुसार निकाल लेता है। उसकी अहं-वृत्ति उसे निरन्तर प्रेरित करती रहती है कि वह अपनी चयन की हुई वस्तुके गुण दूसरोंसे कहे, उसका प्रचार करे, उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करे, दूसरोंको स्वीकार करनेके लिये विवश करे और आवश्यकता पड़नेपर उसके लिये छल-कपटका भी आश्रय ले। इस अहवृत्तिके कारण कभी-कभी मनुष्य अपने दोषका भी समर्थन करने लगता है। इस अहंकी तृप्तिके लिये ही वह द्रव्यादिका प्रलोभन देकर दूसरोंसे भी उस दोषका समर्थन कराने लगता है और कभी-कभी तो तुच्छ, हीन शृगालकी भाँति पूँछ कट जानेपर दूसरोंको भी प्रेरित करता है कि आप भी अपने लांगूलका बलिदान करें। अतः जहाँ समाजने श्रेयस्‌के ज्वलन्त रूप, उदाहरण और आदर्श एकत्र कर रक्खे हैं, वहीं उनकी उपेक्षा करके कुछ व्यक्ति अपनी चयन, जिज्ञासा और अहंवृत्तिकी तृप्ति, तुष्टि और पूर्तिके लिये, अपनी योग्यता और समर्थताके आधारपर किसी रचना या कलाकृतिका कुछ विशिष्ट समीक्षण और परीक्षण करते हैं। इस दृष्टिसे हम समीक्षवादियोंको चार श्रेणियोंमें रख सकते हैं—

१. काकवृत्तिवाले : जो सदा कटु बोलते हैं, मल तथा दोषपर ही जिनकी दृष्टि जाती है। ये काकवृत्तिवाले छिद्रान्वेषी या अधम समीक्ष-वादी कहलाते हैं।

एक विशेष दुर्बलता होती है कि जिधर जानेसे उसे रोका जाय उधर वह केवल यही देखनेके लिये कुतूहल-वश अवश्य प्रवृत्त होता है कि उसमें है क्या। इसीलिये यदि कोई कृति या रचना अमंगल, कुत्सित या अभव्य होनेके कारण अद्रष्टव्य है तो वह समीक्षाके योग्य भी नहीं हैं। अतः जो उसकी समीक्षा करते अर्थात् उसका दोष-प्रदर्शन और छिद्रान्वेषण करते हैं, वे अप्रत्यक्ष रूपसे दूसरोंको उस रचनाका अध्ययन करनेके लिये प्रेरित करते हैं। यदि कोई रचना श्रेष्ठ हो और केवल व्यक्तिगत विद्वेष, वैर, प्रलोभन या भयसे कोई उसकी निन्दा करता हो तो वह अत्यन्त क्षुद्र जीव है। ऐसे निम्न कोटिके व्यक्तिको समाजमें स्थान ही नहीं देना चाहिए। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो सदा पीडित, दलित, निराश और असंतुष्ट रहते हैं। उन्हें चारों ओर दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। उन्हें कोई व्यक्ति या वस्तु अच्छी ही नहीं लगती। ऐसे लोग उन्मत्तोंकी श्रेणीमें आते हैं। उनके मतका कोई मूल्य नहीं समझना चाहिए। ये काक वृत्ति-वाले व्यक्ति समीक्षाके लिये पाप, शाप और ताप हैं।

कोकिला-वृत्ति

कोकिला-वृत्तिवाले लोग यद्यपि काक-वृत्तिवालोंके समान निकृष्ट तो नहीं होते हैं किन्तु इनकी भी वृत्ति एकाङ्गी होती है। ये अपने वर्गके अतिरिक्त संसारके किसी वर्गसे सम्बद्ध वस्तु, व्यक्ति या विषयमें कोई गुण देखनेका प्रयत्न ही नहीं करते। अतः जो स्वयं संकुचित वृत्तिवाली तुला लेकर परीक्षण करने चलता है वह तो प्रत्यक्षतः समीक्षाके क्षेत्रसे निष्कासनीय ही है।

मधुकर-वृत्ति

मधुकर-वृत्ति निश्चय ही साधु वृत्ति है जिसमें समीक्षक स्वयं सौंदर्यका रस लेकर दूसरोंको उसका आस्वादन कराना चाहता है।

समीक्षाकी यही वृत्ति वास्तवमें अनुकरणीय है। जबतक मनुष्यमें यह मधुकर-वृत्ति न आ जाय अर्थात् भली प्रकार गुणोंकी परीक्षा तथा उन्हें ग्रहण करके दूसरोंको आस्वादन कराना न आ जाय तबतक वह उस निष्पक्ष हंस वृत्तिको नहीं ग्रहण कर सकता जो समीक्ष्यवादीकी परम श्लाघनीय वृत्ति है क्योंकि जब भली-भाँति गुण ग्रहण करनेमें कुशल व्यक्ति गुणोंका विवेचन करने लगता है तब उसके विवेचनके अतिरिक्त बची हुई शेष सामग्री स्वयं असमीक्ष्य हो जाती है। अतः मधुकर वृतिको हंस वृत्तिका ही पूर्वरूप समझना चाहिए।

हंस-वृत्ति

चौथी हंसवृत्ति ही वास्तवमें समीक्ष्यवादीकी वास्तविक वृत्ति है जिसके आधारपर वह रेखा खींचकर गुण और दोषको अलग कर देता है और निर्णायककी भाँति निर्णय देनेके साथ ग्राह्य और त्याज्यका विशद विवेचन भी कर देता है।

चार प्रकारके समीक्ष्यवादी

अतः चार प्रकारके ही समीक्ष्यवादी होते हैं—

१. छिन्द्रान्वेषक या निन्दक।

२. पक्ष-भावित।

३. अभिप्रशंसक।

४. निर्णायक।

सहृदयता और भावकता भी आवश्यक

समीक्ष्यवादीमें भाविकता अर्थात् अत्यन्त शीघ्र प्रभावित तथा उत्तेजित होनेकी वृत्ति अत्यन्त घातक होती है। किन्तु उसमें भावकता अर्थात् काव्य-रुचि और सहृदयताका होना अत्यन्त आवश्यक है। सुन्दरको सुन्दर समझकर उससे भावित होनेकी वृत्ति या रसास्वादनकी शक्ति उसमें होनी ही चाहिए। भावक न होने अर्थात् काव्यमें रुचि न

होनेसे उसकी समीक्षामें प्राण नहीं रहेगा क्योंकि जिसमें रुचि ही नहीं है उसका अध्ययन और समीक्षण करनेका कार्य स्वभाविक और स्वान्तः प्रेरित न होनेके कारण अस्वाभाविक होगा। अतः वह सारहीन, यन्त्रवत् तथा असत्य होगा। कोई समीक्षा निष्पक्ष भले ही हो, किन्तु सहृद-यताके अभावमें उचित नहीं ही होगी क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं किसी रचनाका रस लेनेकी क्षमता नहीं रखता वह दूसरोंको भी उसका रस नहीं दे सकता और यह दूसरोंको रस देनेकी वृत्ति ही समीक्षाकी वास्तविक भित्ति है। जो रसिक नहीं है वह काव्यको क्या समझ पावेगा और जब समझ नहीं पावेगा तो उसकी समीक्षा क्या करेगा।

भावक-समीक्षक

इसीलिये संस्कृतमें समीक्षक शब्दका अधिक सटीक रूप 'भावक' ही है। भावक शब्दकी व्युत्पत्ति (भावयतीति भावकः) की व्याख्या ही है—'जो कविके उद्दिष्ट अर्थसे भावित हो जाय, उसे आत्मसात् कर ले और उसका ठीक विवेचन करे।' इसी कारण काव्य-मीमांसामें कहा गया है—

> सत्काव्ये विक्रियाः काश्चिद्भावकस्योल्लसन्ति ताः।
> सर्वाभिनय-निर्णीतौ दृष्टा नाट्यसृजा न याः।

[सब प्रकारके अभिनयके निर्णयके सम्बन्धमें जो दोष स्वयं ब्रह्मा भी नहीं जान सके, वे सब विकार भावकके हृदयमें स्वयं कौंध जाते हैं।]

अतः वास्तविक समीक्षावादी यही भावक होता है क्योंकि वही अपन भावकताके सहारे किसी कविकी उत्कृष्टताओंको लोकतक पहुँचाता है। उसकी सहायताके बिना कविकर्म ही व्यर्थ हो जाता है—

> काव्येन किं कवेस्तस्य तन्मनोमात्रवृत्तिना।
> नीयन्ते भावकैर्यस्य न निबन्धा दिशो दश॥

[किसी कविकी उस काव्य-रचनासे क्या लाभ जो उसके मनमें ही पड़ी सड़ती रहे और जिसे भावक लोग दशों दिशाओंमें न पहुँचा दें।—राजशेखरकी काव्य-मीमांसासे]। इसलिये कि—

सन्ति पुस्तक-विन्यस्ताः वाक्याबन्धाः गृहे गृहे।
द्वित्रास्तु भावकमनः शिलापट्ट-निकुट्टिताः॥

[पोथियोंमें लिखे हुए न जाने कितने काव्य घर-घर पड़े सड़ रहे हैं पर सच्चा काव्य वह है जो भावककी मनरूपी पटियापर खुद जाय।—काव्य-मीमांसासे]

यही कारण है कि हमारे यहाँ भावकको कविका सच्चा हितैषी बताते हुए काव्यमीमांसामें कहा गया है—

स्वामी मित्रं च मन्त्री-च शिष्याश्चाचार्य एव च।
कवेर्भवति इह चित्रं किं हि तन्नत्र भावकः॥

[भावक तो कविका स्वामी, मित्र, मन्त्री, शिष्य, आचार्य क्या नहीं है, सभी कुछ है।]

स्वयं-समीक्ष्यवादी

किंतु काव्यका सबसे बड़ा समीक्ष्यवादी स्वयं कवि होता है किन्तु वह अधिकांशतः अभिप्रशंसक ही होता है और अपने काव्यमें केवल गुण ही गुण ढूँढ़ता और अपने मित्रों तथा श्रोताओंको उन गुणोंका विवरण देता रहता है। दूसरोंको अपने काव्यका गुण बतानेवाले कवियोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जो तन्मय होकर अपनी रचनाका रस लेते हैं, अपनी उक्तियोंके सौन्दर्यपर स्वतः मुग्ध होते हैं और इस बातकी चिन्ता नहीं करते कि कोई इसे पढ़कर या सुनकर आनन्द लेता है या नहीं। यही स्वान्तःसुखाय रचना-वृत्ति है। यों तो अपना दधि कौन अम्ल बताता है किंतु रससिद्ध कवि प्रायः स्वान्तः सुखाय रचना करते हैं और क्योंकि वे रचनाएँ स्वयं रससिद्ध कवियोंके

अन्त:करणको सुख देता है अतः उपर्यंङ्कित चार प्रकारके समीचय-वादियोंके साथ यह पाँचवाँ समीचयवादी भी जोड़ लेना चाहिए।

संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित लाक्षणिक भाषा-शैली

संस्कृतनिष्ठ सरल लाक्षणिक भाषा-शैली में वाक्य एक क्रिया-वाले होते हैं और भाषा लाक्षणिक होती है जिसमें लक्षणा या व्यञ्जनासे अर्थ निकाले जाते हैं। मिश्र वाक्य-शैलीमें कई मुख्य क्रियावाले वाक्योंका मेल होता है। सिद्धार्थ नाटकका यह दृश्य लीजिए, जिसमें संस्कृतनिष्ठ तत्समाश्रित लाक्षणिक भाषा-शैलीका सरल और मिश्र वाक्योंमें प्रयोग किया गया है—

प्रथम अंक : द्वितीय दृश्य

स्थान : राजभवनका अन्त:पुर

समय : सन्ध्या

[अगणित दीपोंके प्रकाशमें नृत्योत्सव हो रहा है। उच्च पल्यंक पर नववधू यशोधरा बैठी है। फूल-मालाओंसे उसका शृंगार हुआ है। चामर डुलाया जा रहा है। दोनों ओर अगरका धूम सुगन्ध प्रसारित कर रहा है। नृत्य समाप्त हो चुकनेपर गौतम प्रवेश करते हैं। यशोधरा आदरार्थ खड़ी हो जाती है। सब दासियाँ प्रणाम करके चली जाती हैं। गौतम आगे बढ़कर एक माला कंठसे उतारकर यशोधराके कंठमें डाल देते हैं। यशोधरा संकोचके साथ लज्जित हो जाती है।]

यशोधरा : (अत्यन्त नम्रताके साथ) इस कृपाको अपना परम सौभाग्य मानती हूँ।

गौतम : यह कृपा नहीं है देवि! मेरे स्नेहका अत्यन्त तुच्छ उपहार है।

यशोधरा : मेरे सौभाग्यका यही अमूल्यतम पुरस्कार है।

गौतम : पुरस्कार नहीं देवि ! यह खिले हुए सुमनोंकी माला आर्याके कण्ठका स्पर्श पानेके लिये व्याकुल थी। और देख रही हो ? इस मालाका एक-एक सुमन आर्याका कोमल स्पर्श पाकर रोमाञ्चित हो उठा है।

यशोधरा : (सिर उठाकर) यह नहीं जानती थी कि आर्यपुत्र कविता भी करते हैं !

गौतम : (प्रसन्न मुद्रामें) कविता तो मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है आर्ये ! आलम्बन पाते ही वह सहस्रधारा बनकर फूट पड़ती है और यदि उसे ऐसा मधुमय आलम्बन (यशोधराकी ठोड़ीमें हाथ देते हैं, दोनोंकी आँखें मिलती हैं, यशोधरा झेंप जाती है) मिल जाय तब तो वह भागीरथीका पुण्य-प्रवाह बनकर जड़को भी देवता बना देती है।

यशोधरा : कितना विशाल है आपका हृदय आर्यपुत्र !

गौतम : (यशोधराका हाथ अपने दोनों हाथोंमें लेकर) कितना भव्य है तुम्हारा सौंदर्य, जितना उदार है तुम्हारा हृदय !

[भीतर गीत सुनाई पड़ता है। गौतम बैठकर तन्मय होकर सुनते हैं। यशोधरा उनका मुख देखती है।]

(भीमपलासी राग)

मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें गीत अपने गा रही हूँ।
और अपनी कल्पनामें मैं तुम्हें उलझा रही हूँ ॥

तुम कहाँसे भावनामें बन गए श्रद्धा चिरन्तन।
ज्योति बनकर छा गए हो, चिर विभामय नित्य नूतन ॥
मैं तुम्हारे लोचनोंमें प्यास अपनी पा रही हूँ।
मैं तुम्हारे०...........

जा रहे पल-पल विफलसे कल नहीं मेरे हृदयमें।
तुम जहाँ गति देखते हो मूर्च्छना है मंद लयमें॥
स्वर भरे आसावरीके किन्तु दीपक गा रही हूँ।
मैं तुम्हारे०...........

तुम कहाँको चल दिए मुझको अचल सन्देश देकर।
ले लिया पथ कष्टमय विश्रामका आदेश देकर॥
पर तुम्हारे नामसे ही मैं हृदय बहला रही हूँ।
मैं तुम्हारे०........

गौतम : (गीत पूर्ण हो चुकनेपर) यह किसकी कण्ठ-लहरी है?

यशोधरा : मधुकरिका अभ्यास कर रही है।

गौतम : (कुछ अनमनेसे) स्वर तो मधुर है किन्तु शब्दोंमें अविश्वास भरा है।

यशोधरा : क्या आर्यपुत्रको मेरी निष्ठामें शंका हो रही है?

गौतम : (यशोधराके दोनों कन्धे पकड़कर) आर्ये! क्या मैं इस स्नेहमूर्तिके सुकुमार स्नेहमें शंका करनेकी ढिठाई कर सकता हूँ? (हाथ हटाकर, ऊपर मुँह करके) पर मुझे स्वयं अपने हृदयपर अविश्वास होने लगा है।

यशोधरा : (कुछ शंकित होकर, गौतमकी ओर एकटक देखती हुई) कैसा अविश्वास आर्यपुत्र?

गौतम : यही कि कहीं इस सौन्दर्य-प्रतिमाके साथ यह विश्वास-घात न कर बैठे।

यशोधरा : (गौतमका हाथ पकड़कर) यह आप क्या कह रहे हैं आर्यपुत्र!

[गौतम शय्यापर बैठे-बैठे हथेलीपर गाल
रखकर सोचने लगते हैं।]

यशोधरा : (सहसा) आर्यपुत्र क्या सोच रहे हैं?

गौतम : यही कि पुरुषको अपने हृदयपर इतना कम अधिकार होता है कि वह नारीके कोमल हृदयकी महत्ता देख नहीं पाता है। कहीं यह कठोरता, यह निर्ममता मेरे हृदयमें भी न आ जाय।

यशोधरा : (व्याकुलतासे) ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं आर्यपुत्र !

गौतम : (यशोधराका मुँह उठाकर) प्रफुल्लित पद्मिनी जैसा तुम्हारा मुख मुरझा क्यों गया ! मैं जो कुछ कह रहा था वह मिथ्या कल्पना थी। (दोनों हाथ पकड़कर) उठो ! मैं, मेरा हृदय, मेरा आत्मा, सब कुछ तुम्हारा है। उठो ! छेड़ो संगीत ! तुम्हारे कण्ठकी स्वर-लहरीके सीकरसे मेरी चिन्ताएँ स्वयं शीतल हो जायँगी। गाओ मेरे मानसकी स्वामिनी ! ऐसी रागिनी गाओ कि सारा विश्व उसके साथ झूमने लगे।

यशोधरा : (वीणापर गाती है)।

[भैरवी रागिनी, तीन ताल]

प्राणोंमें अमृत घोल, रे बोल, रे बोल।
मन्द मन्द मलयानिल डोले,
विमल कमलके बना हिंडोले।
सुधा उँडेले जा वसुधापर,
तू प्रियतम अनमोल, रे बोल। रे बोल, प्राणोंमें०
मैं चातक तू स्वातीका घन,
अर्पण है मेरा जीवन धन।
अपनी करुणाके सागरमें,
मेरी करुणा घोल, रे बोल, रे बोल, प्राणोंमें०
मानसकी लहरोंमें पाला,
हंस बीनता मुक्ता माला।
व्याध फाँस ले चला जालमें,
अपने हाथों खोल, रे बोल रे, बोल। प्राणोंमें०

गौतम : अन्तिम पदकी आवृत्ति तो करो ।

यशोधरा : (गाती है)

मानसकी लहरोंमें पाला ।
हंस बीनता मुक्ता माला
व्याध फाँस ले चला जालमें
अपने हाथों खोल ॥ रे बोल........

गौतम : रुको मत, यही गाती रहो ।

[यशोधरा गाती रहती है । मधुकरिकाका प्रवेश । संगीत रुक जाता है । यशोधरा खड़ी हो जाती है ।]

मधुकरिका : (गौतमसे) देव ! आर्य छन्दक दर्शन करना चाहते हैं ।

गौतम : (मधुकरिकासे) आपका सुनाम क्या है देवि !

मधुकरिका : (विनयपूर्वक) दासीको मधुकरिका कहते हैं ।

गौतम : आपके कण्ठमें बड़ी सरसता है । यह कण्ठहार पहनकर उसका शृंगार करो ।

[गलेसे कण्ठहार उतार कर देते हैं ।]

मधुकरिका : (लेकर) देवकी कृपा है । आर्य छन्दकके लिये क्या आज्ञा होती है देव !

गौतम : बुला लाओ ।

[मधुकरिका जाती है और छन्दकको ले आती है । यशोधरा और उसके पीछे-पीछे मधुकरिका दूसरी ओर जाती हैं ।]

छन्दक : (प्रवेश करके) देवकी जय हो !

गौतम : (छन्दकसे) क्या समाचार लाए हो आर्य छन्दक ?

छन्दक : (गौतमसे) देव ! उत्सुक प्रजा देवके दर्शनोंसे अपने नेत्र सफल करना चाहती है । क्या देव उन्हें कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे !

गौतम : (कुछ गम्भीरतासे) मेरे दर्शन ! मुझमें ऐसी क्या विशेषता है ?

छन्दक : (नम्रतापूर्वक) स्वयंवरमें देवने जो कौशल दिखाया, उसकी गाथासे कपिलवस्तुका घर-घर गूँज रहा है। स्वयंवरके पश्चात् सबका विश्वास था कि आप राजपथसे होकर नगरमें प्रवेश करेंगे। न जाने कितने उत्सुक नयन उस दिन वातायनोंमें कमल बनकर आपकी अभ्यर्थनाके लिये दिन भर टँगे रह गए। किन्तु देवको यह प्रदर्शन अच्छा न लगा इसलिये मैं देवको रात्रिकी निस्तब्धतामें ही यहाँ ले आया था। यदि देव दर्शन न देंगे तो उन्हें बड़ी निराशा होगी।

गौतम : ठीक है! यदि इतनेसे उन्हें सुख मिले तो मैं अवश्य चलूँगा।

छन्दक : (प्रणाम करके) देवकी बड़ी कृपा है। प्रातःकाल प्रथम प्रहरमें ही मैं रथ लेकर सेवामें उपस्थित रहूँगा।

गौतम : कितनी रात्रि जा चुकी है?

छन्दक : चार दण्ड देव!

गौतम : ठीक! कल प्रातःकाल सूर्योदयके पश्चात्।

छन्दक : जैसी आज्ञा।

[प्रस्थान]

[मन्द गीत होता है। गौतम सो जाते हैं। यशोधरा एक बार आती है। गौतमका मुँह कुछ देर देखती रहती है। फिर उनके पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम करती है और चली जाती है। अन्धकार होता है। सहसा कुछ ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

गीत

(समवेत स्वर तथा तीव्र लयमें सोहनी रागिनीमें)

मानवताकी मर्यादाएँ टूटीं, छूटीं कड़ियाँ मनकी।
नरने शोणितसे हाथ रँगे, कुछ व्यथा नहीं मानव-तनकी॥
जो तन-मन बनकर साथ रहे, वे तन-तनकर हो रहे अलग।
माताएँ बिछुड़ीं पुत्रोंसे, हो गए बन्धुसे बन्धु विलग॥

ममता, करुणा, सौहार्द, स्नेह, बन गए स्वप्न, हो गए विलय।
जगको तर्जन करता आता, निर्मम पैशाचिक महाप्रलय॥

(अत्यन्त मन्द लयमें कम्पनयुक्त पुरुष-स्वरमें)

हे शान्ति-दयाके देवदूत! आओ करुणाके दिव्य धाम!!
आओ जगमंगल महामूर्ति! तुमको अर्पित शत शत प्रणाम!!

(समवेत कम्पन-स्वरमें क्रमशः आरोहके साथ)

शत शत प्रणाम! शत शत प्रणाम!! शत शत प्रणाम!!!

[गौतम चौंककर उठते हैं। प्रकाश होता है।]

गौतम : आर्ये!

[यशोधराका प्रवेश]

यशोधरा : (चौंककर, प्रवेश करके पास पहुँचकर) हाँ आर्यपुत्र!

गौतम : (अत्यन्त भावावेगमें, यशोधराके कन्धेपर हाथ रखकर) कुछ सुना?

यशोधरा : (गौतमकी ओर देखकर) क्या देव?

गौतम : (उत्तेजित स्वरमें आकाशकी ओर देखकर) सैकड़ों, सहस्रों ध्वनियाँ एक साथ मुझे पुकार रही थीं। सब कण्ठ पीड़ासे काँप रहे थे, कराह रहे थे।

यशोधरा : (त्रस्त होकर) आर्यपुत्र!

गौतम : (उसी उदास स्वरमें स्तब्ध दृष्टिसे) हाँ, आर्ये!

यशोधरा : (शंकापूर्ण उत्सुकतासे गौतमका हाथ पकड़कर नीचे बैठाते हुए) कैसी ध्वनियाँ थीं आर्यपुत्र?

गौतम : (आँखें फाड़कर आकाशकी ओर देखते हुए) मानो सबको किसीने यन्त्रमें कस रक्खा हो! मानो सब पीड़ासे कराह रहे हों! मानो सब भूखसे, प्याससे, रोगसे, यातनासे, पापसे घुटे जा रहे हों। उनकी खुली, सूखी, भयावनी आँखें मुझसे दयाकी भिक्षा माँग रही थीं। एक-एक प्राणी मेरी स्मृतिमें घूम रहा है। वे कंकाल, वे

सूखे ओठ, वह कंपित वाणी ! मानो एक साथ साहसके साथ उठकर वे फिर गिर गए हों।

यशोधरा : (भयभीत होकर) मैंने नहीं सुना आर्यपुत्र ! यह सब स्वप्न होगा।

गौतम : (यशोधराकी देखकर) स्वप्न होगा ? पर बड़ा करुणा-जनक स्वप्न था।

[दोनों एक दूसरेकी ओर एकटक देखते रह जाते हैं।]

[यवनिका-पतन]

तत्समात्मिका परुषा वृत्ति

तत्समात्मिका परुषा या दीप्ता वृत्तिमें र, श, ष, स, ट वर्ग तथा रेफसे युक्त ट वर्ग आदि संयुक्त कठोर श्रुतिकटु वर्णोंका प्रयोग होता है और युद्ध, उपप्लव आदि घटनाओं, रौद्र, बीभत्स, भयानक तथा वीरतापूर्ण वर्णनों और प्रचंड पराक्रमी महापुरुषों-का जीवनचरित लिखनेमें अधिक उपयुक्त होता है। यह भगवान् परशुरामका वर्णन परिचय-कौशल (इन्ट्रोडक्शन टेकनीक) में लीजिए जिसमें किसीका वर्णन इस प्रकार किया जाता है मानो वे आपके साथ हों और आप किसी व्यक्ति या समाजको उनका परिचय दे रहे हों—

भगवान् परशुराम

अखंड ब्रह्मांडका प्रकांड पाखंड अपने प्रचंड दोर्दंडसे डगमगा देनेवाले, अपने भास्वर भव्य भालपर भगवान् भूतभावनकी भूतिमय विभूतिका भासमान त्रिपुंड अंकित करके भूर्भुवस्स्वर्लोकको भास्वरताका दुर्दान्त दम्भ विदीर्ण करनेवाले, अपने विकट भ्रूभंगकी गर्जनोर्मियोंमें

विच्छुरित वह्निनेत्रोंके जाज्वल्यमान स्फुलिंगोंसे समग्र सृष्टिके दुर्दमनीय दुष्कांडोंको भस्म कर डालनेवाले, मदान्ध अत्याचारी नृपतियोंके अकाण्ड तांडवसे वित्रस्त प्राणिमात्रको निर्भयत्वका शान्तिपूर्ण समाश्रय प्रदान करनेवाले, गन्धमादनके भीषण कान्तारमें कुंडलिनी सिद्ध करके मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाके षट्चक्र भेदन करके वैखरीके द्वार रोककर क्रमशः मध्यमा, पश्यन्ती और परा वाणीका गुरु गंभीर अनाहत नाद सुनकर त्रिकुटीमें अधिष्ठित ब्रह्मस्वरूप त्र्यम्बकेश्वरके ध्यानमें तल्लीन होकर आत्म-साक्षात्कार करनेवाले तथा अपने प्रचण्ड परशुकी प्रखर धारसे मदान्ध राजन्य वर्गका गर्व खर्व करनेवाले सुख्यातनामा भगवान् परशुराम आप ही हैं।

आपने वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीयाकी मध्याह्न वेलामें राजा प्रसेनजित्की तेजस्विनी कन्या रेणुकाके क्षत्रगर्भसे जन्म लेकर अपने तपोनिष्ठ तथा ब्रह्मनिष्ठ पिता महर्षि जमदग्निके अर्जित पुण्य और ज्वलन्त तेजका समग्र उदग्र सम्भार लेकर अपने सम्मिलित ब्राह्म और क्षात्र पराक्रमका परिचय देते हुए कहा था—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

[मेरे मुखमें चारों वेदोंका ज्ञान उद्दीप्त है, पृष्ठपर प्रचण्ड बाणोंके साथ कालगर्जन टंकारवाला महाकोदंड टँगा हुआ है। मैं अपनी ब्राह्म शक्तिसे शाप देकर भी भस्म कर सकता हूँ और अपनी क्षात्र शक्तिके बलपर अपने बाणसे बेधकर भी शत्रुको नष्ट कर सकता हूँ।]

आप बाल्यकालसे ही अत्यन्त तेजस्वी, पराक्रमी, बलिष्ठ और दिग्विजयी रहे हैं। आपके तपःपूर्ण ब्राह्म और क्षात्र तेजके सम्मुख किसका साहस है कि वह क्षण मात्र भी स्थिर रह सके। अपनी उदात्त-कुल-संभवा जननीकी शिक्षाका सशक्त सम्बल पाकर, अपने ऊर्जस्वित् पिता जमदग्निसे प्राप्त ब्राह्मतेजकी सत्प्रेरणा लेकर, कैलासके

विश्वप्रसिद्ध गन्धमादन पर्वतपर विलोचन त्रिलोचनका व्रत लेकर आपने अपनी उग्र तपस्यासे खंडपरशुको प्रसन्न करके उनका देदीप्यमान त्र्यम्बक नामका कोदंड प्राप्त किया। आपके संसिद्ध बलिष्ठ हाथोंमें अपना त्र्यम्बक धनुष देते हुए भगवान् त्र्यम्बकेश्वरने निर्देश किया था—'जाओ ! प्रमादहीन होकर इस कोदंडसे प्रजापीडक आततायियोंको विध्वस्त करके सद्राज्य स्थापित करना और जब यह त्र्यम्बक नामक वैष्णव कोदंड खंडित हो जाय तो समझ लेना कि धर्म-संस्थापनका भार लेकर दूसरी शक्तिने जन्म ले लिया है।'

शस्त्र-विद्यामें पारंगत होनेकी उत्कट अभिलाषा पूर्णतः तुष्ट और पुष्ट करनेके लिये आपने गणाध्यक्ष हेरम्बसे कुठार-संचालनकी शस्त्र-विद्या सीखकर परशु-संचालनमें उग्र सिद्धि प्राप्त की जिसके कारण आपका राम नाम परशुसे सम्बद्ध होकर परशुराम हो गया।

'खंडपरशुकी अमोघ कृपासे आप परशुराम बनकर प्रचंड परशुधर औरचंड-मूर्ति बन गए। एक दिन आपकी माता रेणुका किसी स्रोतस्विनीमें स्नान करते समय चित्ररथ गन्धर्वको अपनी संगिनीके साथ जलक्रीडामें मग्न देखकर ऐसी उद्विग्न अवस्थामें घर लौटीं कि उनकी इस अमर्यादित विक्षुब्धतापर महर्षि जमदग्निने परम संक्रुद्ध होकर क्रमशः अपने पुत्र रुमण्वान्, सुषेण, वसु, बृहद्भानु) तथा विश्वावसु (बृहत्कण्व) को आज्ञा दी कि 'अपनी माता रेणुकाका शिरच्छेद कर डालो।' किन्तु मातृ-वत्सल पुत्रोंने अपने पिताकी इस कठोर आज्ञाका उल्लंघन करके अपनी मातापर शस्त्र-प्रहार करना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने तत्काल अपने चारों पुत्रोंको शाप देकर हतप्रभ और हतचेतन करके काष्ठवत् कर डाला। अन्तमें पिताने आपकी ओर दृष्टि-निक्षेप किया तो आपने तत्काल अपने पिताकी निर्मम आज्ञाका पालन करते हुए अपने अकरुण कुठारसे माताका सिर धड़से काट

डाला। इसपर महर्षि जमदग्निने कहा—'वर माँगो। मैं तुम्हारी इस आज्ञाकारितापर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ।'

आप समझते होंगे कि इन्होंने सम्पूर्ण वसुन्धराका साम्राज्य माँग लिया होगा या स्वर्ग-मोक्षकी याचना की होगी। नहीं। इन्होंने कहा—'यदि यथार्थमें मुझे अपने जन्मदाता जनककी करुण कृपा प्राप्त है तो मेरी जननी उज्जीवित हो उठें, मेरे भ्रातृगण प्रकृतिस्थ हो जायँ, मैं परमायु प्राप्त करूँ और युद्धमें कोई मेरा प्रतिद्वन्द्वी न रह सके।'

जमदग्निने 'तथास्तु' कह दिया।

क्षणमात्रमें आपकी माताजी इस प्रकार आश्चर्यसे आँखें फाड़ती हुई उठ बैठीं मानो घोर तन्द्रा छोड़कर अकस्मात् उद्‌बुद्ध हो उठी हों। चारों ज्येष्ठ भ्राता भी उसी प्रकार मृत अवस्थासे मुक्त होकर सम्बुद्ध हो उठे।

उन दिनों आपके पूज्य पिताका भगिनीपति तथा माहिष्मतीका प्रतापी शासक कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन अपने प्रबल पराक्रम तथा राजमदमें प्रमत्त होकर समग्र सृष्टिको संत्रस्त किए हुए था। एक दिन वह दुर्धर्ष राजा ससैन्य-बलवाहन आश्रममें आ पहुँचा। देवी रेणुकाने अपना संबंधी तथा प्रदेशका नृपति समझकर उसकी अर्चना की तथा कामधेनुकी कृपासे बहुविध व्यञ्जन बनाकर उसका आतिथ्य-सत्कार किया। मदमत्त कार्त्तवीर्यने कामधेनुका इतना प्रताप देखकर प्रलुब्ध होकर कहा—'यह कामधेनु मुझे प्रदान कीजिए।' जमदग्निने उत्तर दिया कि 'यह देवसुरभि भगवान् आखंडल (इन्द्र) की दी हुई है। अतः इसका दान मेरे सामर्थ्यसे बाहर है।'

यह सुनते ही अपनी भ्रुकुटि विकुंचित करके मदमें उसने आपका आश्रम नष्ट-भ्रष्ट करके, वहाँके लता, वीरुध, गुल्म और वृक्षोंका प्रजारण तथा उत्पाटन करके उस आश्रम-स्थलीको मरुस्थली बनाकर रेणुकाकी क्रन्दनपूर्ण अभ्यर्थना करते रहनेपर भी उनकी सवत्सा कामधेनु

खोल ली। वह वित्रस्ता कामधेनु उत्कट स्वरसे चीत्कार भी करती रही किन्तु क्रूर सहस्त्राबाहु अडिग रहा।

जिस समय यह सब कुकांड हो रहा था उस समय आप वहाँ नहीं उपस्थित थे। ज्योंही आपको कार्त्तवीर्य सहस्त्रार्जुनका यह दुष्कांड ज्ञात हुआ त्योंही ये तत्काल अपना भयंकर कुठार उठाकर कार्त्तवीर्यके पीछे दौड़े और अपने प्रचंड परशुसे उसकी सहस्त्रों भुजाएँ खंड-खंड कर डालीं, उसके नौ सौ पुत्रोंका संहार कर डाला और वह गौ लाकर पिताको समर्पित कर दी। सहस्त्रार्जुनके शेष सौ पुत्र इस घोर विनाशसे इतने विक्षुब्ध हुए कि एक दिन आपकी अनुपस्थितिमें उन्होंने श्रीजमदग्नि-पर भयंकर आक्रमण करके उन्हें निष्प्राण कर दिया और कामधेनुको पुनः ले भागे। जब लौटकर आपने वह लोमहर्षण कांड देखा और सुना कि इस दुष्कांडपर मेरी माताने इक्कीस बार छाती पीटी है तो आपके रोंगटे खड़े हो गए। आपने तत्काल प्रतिज्ञा की कि 'जबतक सम्पूर्ण पृथ्वीको इक्कीस बार राजन्यहीन नहीं कर लूँगा तबतक शान्ति नहीं ग्रहण करूँगा।' आपने तत्काल अपना विश्वविश्रुत परशु उठाया और उसी आवेगमें सहस्त्रार्जुनके समग्र कुल और परिवारके पुत्र-पौत्रादिका नृशंस वध करके उनके संबंधी संपूर्ण राजन्य-वर्गको निर्वंश कर डाला।

आपके उस क्रूर कुकांडपर ब्राह्मण-मंडलीको बड़ी ग्लानि हुई। वे आपसे घृणा करने लगे। इस व्यवहारसे आपको स्वयं इतनी आत्मग्लानि हुई कि आप आश्रम छोडकर अरण्यसेवी हो गए। इसी प्रसंगमें एक दिन राजर्षि विश्वामित्रके पौत्र परावसुने इनसे उपालम्भके साथ कहा—

'राजा ययातिके देवलोकसे पतनके कारण जो अभी यज्ञ हुआ है उसमें कई सहस्त्र प्रतापी राजा विद्यमान थे। आप मिथ्याभिमान करते हैं कि आपने सम्पूर्ण धरित्री राजन्य-विहीन कर दी है। यह आपकी कदर्यता है कि आप पराक्रमी राजाओंके आतंकसे पराभूत होकर इस पर्वतकी कन्दरामें आ छिपे हैं।'

परावसुके उन ज्वलन्त वचनोंने आपकी क्रोधाग्निमें घृताहुतिका कार्य किया। अपनी उग्र तपस्याको तिलांजलि देकर आप तत्काल पुनः अपने क्रोधकी ज्वालाग्निमें राजाओंको हविष्य बनाकर प्रज्वलित करने लगे। आपको इतनेसे ही तृप्ति नहीं हुई। आपने सद्यःप्रसूत राज-शिशुओंको भी अपने कुटिल कुठारकी प्रखर धारामें डुबोना प्रारम्भ कर दिया।

अपने क्रोधकी ज्वाला सन्तुष्ट करनेके लिये आपने इस धरित्रीको इक्कीस बार राजन्यहीन करके समन्तपंचक (कुरुक्षेत्र) के पांच ह्रद रुधिरसे भर दिए। उन्हीं ह्रदोंमें भरे हुए उष्ण राजन्य-रक्तसे जिस समय ये पितरोंका तर्पण कर रहे थे उसी समय इनके पितामह महर्षि ऋचीकने इन्हें दर्शन देकर आदेश दिया कि 'अब राजन्य-वधका व्रत समाप्त करो।' इसपर परशुरामने अश्वमेध यज्ञके द्वारा आखंडल सहस्राक्ष इन्द्रको परितृप्त करके सम्पूर्ण पृथ्वी महर्षि कश्यपको दान दे दी। महर्षि कश्यपकी आज्ञासे ब्राह्मणोंने उसे परस्पर बाँट लिया और इसीलिये वे ब्राह्मण खांडवायन कहलाने लगे।

कश्यपने शेष राजकुलके रक्षार्थ परशुरामसे कहा—'अब इस पृथ्वीका स्वामी मैं हूँ। इसलिये आप इस धरित्रीका तत्काल त्याग करके यहाँसे प्रस्थान कीजिए और दक्षिणमें जाकर अपना आवसथ्य बनाइए।'

इस प्रकार दुर्दान्त तथा दुर्धर्ष दुष्टोंका दमन करके आप दक्षिण समुद्रके तटपर शूर्पारकमें तप करने चले गए।

त्रेतायुगमें जब भगवान रामचन्द्रने शूलपाणि भगवान् शंकरका कोदंड खंड-खंड कर दिया और आपको ज्ञात हुआ कि मेरे गुरुका प्रचंड धनुष विखंडित हो गया है तो आप तत्काल वहाँ पहुँचे और आपने मार्गमें रामको घेरकर कहा—'आपने मृडाणी-पति सर्वेश शंकरका कोदंड खंड-खंड कर दिया है। यह श्रवण करके मैं यह वैष्णव धनुष लाया हूँ, जिसे भगवान विष्णुने मेरे पितामह महर्षि ऋचीकको दिया था और

जिसे मैंने अपने पितासे ऋक्थमें प्राप्त किया है। यदि आप इसपर बाण चढ़ा देंगे तो मैं आपके साथ युद्ध नहीं करूँगा।' रामने वह वैष्णव धनुष हाथमें लेते ही उसपर बाण चढ़ाकर कहा—'हे जमदग्निपुत्र ! इस बाणसे मैं आपकी गतिका अवरोध करूँ या आपने अपने तपसे जो अनेक लोक अर्जित किए हैं उनका हरण करूँ।' सुनते ही आपने अत्यन्त तेजस्विताके साथ कहा—'मैंने यह सारी पृथ्वी भगवान् कश्यपको दानमें दे दी है। इसलिये मैं रातको पृथ्वीपर विश्राम नहीं करता। अतः मेरी गतिका अवरोध करनेके बदले तपसे अर्जित मेरे लोक ही हरण कर लीजिए।' इतना कहते ही रामने जो शर-संधान किया तो आपके तपोबलार्जित सम्पूर्ण लोक क्षण भरमें नष्ट हो गए और आप जामदग्न्य राम, तप करने महेन्द्र पर्वतपर चले गए।

आपने समुद्रसे कोंकणका उद्धार करके वहाँ ब्राह्मणोंकी विराट् बस्ती स्थापित की थी। आपने ही अहिच्छत्रासे ब्राह्मण-मंडली बुलाकर केरलमें स्थापित की और वहाँका समस्त जनपद ब्राह्मणोंको अर्पित कर दिया।

आप धनुर्विद्या, युद्ध-विद्या और अस्त्र-शस्त्र-विद्यामें इतने प्रवीण हैं कि भीष्म, द्रोण और कर्ण आदि अनेक वीर आपके चरणोंमें बैठकर विद्याभ्यास कर चुके हैं। आप अजर और अमर हैं, इसलिये कहा जाता है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाँश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

[अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनूमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुरामजी ये चिरजीवी हैं।] जब तक सृष्टि है तब-तक आप भी अक्षुण्ण बने रहेंगे। यह हमारे लिये गर्व और गौरवकी बात है कि ऐसे प्रतापी, तेजस्वी, शूर और तपोनिष्ठ महापुरुष आज भी हमारे बीच विराजमान हैं और अपने उत्कृष्ट चरितसे हमें निरन्तर प्रेरणा दे रहे हैं।

तत्समात्मिका उपनागरिक वृत्ति

तत्समात्मिका उपनागरिक वृत्तिमें टवर्गको छोड़कर प्रत्येक वर्गके पंचम वर्गके साथ उसी वर्णके अन्य वर्णोंका तथा कानोंको मधुर लगनेवाले अनुनासिक तथा श्रुतिमधुर वर्णोंका संयोजन होता है। इसका प्रयोग शृङ्गार, सौन्दर्य आदि ललित विषयोंके वर्णनमें किया जाता है। भगवान्‌के कच्छपावतारका यह वर्णन लीजिए—

कच्छपावतार

नन्दनवनका मन्द गन्धवाह मन्दारके मरन्दकी अमन्द गन्ध अपने नन्दित कन्धोंपर लिए हुए आनन्दसे मन्द-मन्द सञ्चरण कर रहा था। नन्दन-काननकी ललित लताओंके अमल पल्लवोंमें ललित लास्य करनेवाली उत्फुल्ल मञ्जरियोंसे कम्पित मन्दारकी कुसुममाला लेकर विद्याधर-वन्धुओंने सन्तानक-वनमें विचरण करनेवाले दुर्वासा मुनिको आदरपूर्वक समर्पित कर दी। दुर्वासाजीने उसी पन्थमें ऐरावतपर भासमान पाकशासनको देखकर मन्दारकी मालासे उनके कर-कमल समलंकृत कर दिए। भगवान् इन्द्रने वह माला अपने कमनीय कंठमें न पहनकर अपने महागजके मनोहर मस्तकको उस मालासे नन्दित कर दिया। मधुमय मन्दारकी मन्दिर गन्धसे अन्ध होकर मदमत्त ऐरावतने वह माला महीपर डालकर मसल डाली। महर्षि इसे दुर्वासाने अपनी सुमंगला मालाका अमंगल अपमान मानकर महामानके साथ नाक-नायकसे कहा—'आजसे आपके नन्दन-काननकी कान्तिका अन्त हो जायगा और आपकी अनन्त लक्ष्मी भी अनल्पकालमें लुप्त हो जायगी।'

देखते-देखते दैत्योंने देवताओंका ऐसा दमन किया कि देवताओंको नन्दन-काननसे पलायन करके काननों और कान्तारोंमें जा दुबकना

पड़ा। दैत्योंसे विदलित वृन्दारक-वृन्द, चतुराननको साथ लेकर शेष-शायी भगवान् करुणा-वरुणालयके लीलाधाममें पहुँचे। असुर-निकन्दन, अखिल-लोकनन्दन भगवान्‌ने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा कि अम्बुधि-मन्थनसे सम्प्राप्त सुधाके सेवनसे ही संताप-हरण हो सकता है इसलिये जबतक पयोधिका मन्थन करके अमृत न मिले तबतक आप लोग असुरोंसे स्नेह-बन्धन बनाए रहिए, उनकी हाँमें हाँ मिलाते रहिए।'

समुद्र-मन्थनके लिये देवता और दैत्य दोनों मन्दराचल लेकर चले तो बहुतसे देवता और दैत्य उसके नीचे दबकर पिस गए। तब जन-मन-रञ्जन, दैत्य-दल-गञ्जन भगवान् नारायण उन सबको जीवनदान देकर मन्दराचल उठाकर अपने अहिकुल-दलन वाहनपर धारण करके उसे रत्नाकर-तक ले आए। उन्होंने नागकुलनायक वासुकको सुधापानका प्रलोभन देकर समुद्र-मन्थनके लिये रज्जु बननेको सहमत कर लिया। जब समुद्र-मन्थन होने लगा तो मन्थनकी मथाईसे चंचल मन्दराचल धरतीमें नीचे धँसने लगा। जब किसीका किया-धरा कुछ न हो सका तब कमल-नयनके अमल नयनोंका उन्नयन होने लगा। तत्काल भगवान् नारायणने विशाल कच्छप बनकर समुद्रमें अपनी अकोमल पीठके मञ्चपर मन्दराचल जमा लिया और समुद्र-मन्थन होने लगा। यही जनमनरञ्जन भवभयभंजन भगवान् नारायणका कूर्मा-वतार माना जाता है।

कविता

तत्समात्मिका शैली कविताके लिये तनिक भी अनुकूल नहीं है क्योंकि भाषाकी क्लिष्टता इस शैलीकी कविताका भाव समझनेमें बाधक होती है। एक कविता लीजिए—

विराट्-कवि

अतिशय मृदुतामें रुद्र तत्त्व, वे जान न पाए हैं मेरा ॥

मेरी ऋतम्भरा ऋजुताको, भ्रमसे कहकर निर्वीर्य ढाल।
कुछ कुटिल बद्ध करते मुझको, ले अनृत पाशके जटिल जाल।

वामनमें रूप त्रिविक्रमका पहचान न पाए हैं मेरा ॥
अतिशय मृदुतामें रुद्र तत्त्व, वे जान न पाए हैं मेरा ॥

मेरा कर छूकर शून्य ब्रह्म, धर अमित रूप हो गया मुखर।
मेरी वाणीका रस पीकर, निष्प्राण कथाएँ हुईं अमर ॥
मेरा पदरज भव-सिन्धु-पोत, है मोक्ष नामका प्रति अक्षर।
मेरे दर्शनसे सचराचर, बनते रहते हैं विधि-हरि-हर,

संयत लघिमामें अति गुरुत्व, वे जान न पाए हैं मेरा ॥
अतिशय मृदुतामें रुद्र तत्त्व, वे जान न पाए हैं मेरा ॥

जिसके पदपर पंचाग्नि-ताप नत आत्मसमर्पण हैं करते,
उसको दिखलाकर दीपशिखा, वे खल सन्तर्जन हैं करते ॥

नयनोंका त्राटक संकर्षण, वे जान न पाए हैं मेरा ॥
अतिशय ऋजुतामें रुद्र तत्त्व न पहचान पाए हैं मेरा ॥

इस प्रकार गंभीर शास्त्रीय विषयों तथा विशिष्ट विद्वत्समाजके लिये लिखे हुए गंभीर लेख, वर्णन, नाटक या काव्य ही इस तत्समात्मिका सरल या लाक्षणिक शैलीमें उपयुक्त हो सकते हैं।

८

मिश्र भाषा शैली

तद्भव, तत्सम और तद्भव-तत्समाश्रित भाषा-शैलीके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी शैलियाँ प्राप्त हैं जिनमें तत्सम और तद्भवका अथवा विदेशी शब्दोंका विचित्र मेल होता है। उर्दू शैली तो उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ही किन्तु अलंकार-शास्त्रियोंने भी भाषा-समकके लिये यह शैली ग्रहण कर ली है। ऐसी शैली उस समाजके लिये ही प्रयुक्त की जाती है जिसके सदस्य उन सभी भाषाओंके शब्दोंका अर्थ जानते हों जिनका रचनामें प्रयोग किया जाता है। इनमेंसे वह शैली तो पूर्णतः त्याज्य है जिसमें जानबूझकर या किसी भी भाषापर अधिकार न रखनेवाले व्यक्ति मनमाने ढंगसे जहाँ जो आया वहाँ वह लिख देते हैं, किन्तु उन स्थलोंपर, विशेषतः नाटकों-में, यह शैली ग्राह्य हो सकती है जहाँ किसी विशेष प्रदेश, काल, जाति या योग्यतावाले पात्रोंका संवाद कहलाना अभीष्ट हो। नीचे इन सब मिश्र-शैलियोंके उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

तत्सम-तद्भव विलग-प्रयोग शैली

यद्यपि ऐसी शैलीका प्रयोग किसीने नहीं किया है जिसके आधेमें तत्समात्मक शैली हो और आधेमें तद्भवात्मक हो किन्तु

इसका प्रयोग उन कथानकों तथा नाटकोंके लिये अवश्य सफलता-पूर्वक किया जा सकता है जहाँ एक अंशमें सुपठित उच्च समाजको चित्रण तथा संवाद हो और दूसरे अंशमें निम्न सामाजिक वर्गका।

कहानी

इस शैलीमें पहले मुञ्ज और भोजकी यह कहानी लीजिए जिसके पूर्वार्द्धमें तत्समाश्रित शैली और उत्तरार्द्धमें तद्भावाश्रित शैलीका प्रयोग किया गया है—

मायाका मोह

धारा केवल परमार भूपतियोंकी राजधानी ही नहीं रही, वह संस्कृत भाषा साहित्य और विद्याओंकी भी खान रही है। परमार राजाओंने जहाँ एक ओर धारा नगरीको प्रशस्त राजमार्गों, भव्य गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, सुरम्य वाटिकाओं, सच्छाय शीतल वापियों तथा रमणीय सरोवरोंसे समलंकृत किया वहीं उन्होंने शकारि विक्रमादित्यकी अनुकरणीय परम्पराका निर्वाह करते हुए अपनी राजसभाको नवरत्नोंसे भी सम्पन्न किया। इन प्रतापी परमार राजाओंमें मुंज और भोज अत्यन्त यशस्वी हो गए हैं।

भोजके पिता जब स्वर्ग-गमन करने लगे तब उन्होंने अपने राज्य और अपने बालक पुत्र भोजको अपने कनिष्ठ भ्राता मुंजके हाथ सौंपते हुए अंतिम श्वास छोड़ दी। मुंजने प्रारम्भमें तो अपने पितृतुल्य अग्रजके राज्यको न्यास समझकर उसका संरक्षण किया किन्तु धीरे-धीरे राजमद और राज्य-लोभने उनकी बुद्धि और उनका विवेक कुंठित कर दिया। वे अपने ज्येष्ठ भ्राताके राज्यको अपना समझने लगे, न्यासको अपनी सम्पत्ति मानने लगे।

यद्यपि बालक भोज अभी बालक ही था तथापि प्राक्तन जन्मके

सुसंस्कारके कारण उसकी बुद्धि, मेधा और स्मृति इतनी प्रखर थी कि ज्ञानकी जटिलतम ग्रन्थि सुलझानेमें उसे विलम्ब नहीं लगता था। सम्पूर्ण विद्याएँ उसके पास इस प्रकार सिमटी चली आती थीं जैसे समुद्रके पास सरिताएँ स्वयं दौड़ी चली आती हैं।

जब-जब भोजकी इस विलक्षण कुशाग्र बुद्धि और ज्ञान-गरिमाका समाचार मुंजको मिलता तब-तब उसे ऐसा प्रतीत होता मानो कोई विषाक्त शास्त्रसे उसके हृदयपर आघात कर रहा हो। बढ़ते-बढ़ते वह संताप इस सीमातक बढ़ गया कि मुंजने मनमें संकल्प कर लिया कि जैसे भी हो इस कंटकसे निष्कंटक होनेमें ही कल्याण है। यह जबतक जीवित रहेगा तबतक मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

× × ×

इसी उधेड़बुनमें कई रातें उसने करवटें बदल-बदलकर काट दीं फिर भी कोई दावँ हाथ लगता न दिखाई दिया। जब-जब कोई भोजकी बड़ाई करता, वह जल भुनकर राख हो जाता, उसकी छातीपर साँप लोटने लगते। अचानक एक दिन उसने यही सोचा कि इसे गुप-चुप ठिकाने लगवा दिया जाय। उसने गुपचुप कुछ बटमारोंको साधा और उन्हें चाँदी पिलाकर समझा दिया कि भोजको कहीं दूर घने जंगलमें लेजाकर तलवारके घाट उतार दो।

आँखोंपर चाँदीकी पट्टी चढ़ाए हुए बटमार, सोते हुए भोजको उठाकर रातोंरात रथपर लिटाकर ऐसे घने जंगलमें ले गए जहाँ दिनमें भी सूरजकी किरणें धरती छूनेमें डरती थीं। जब तड़के-तड़के भोजने आँखें खोलीं तो देखता क्या है कि चारों ओर घना जंगल ही जंगल है, मैं रथपर बैठा हूँ और सामने बड़ी-बड़ी डरावनी आँखोंवाले दो दढ़ियल कलूटे चमचमाते खाँड़े हाथमें लिए खड़े हैं। पहले तो भोज झिझका, पर बाघका बच्चा भी होता तो बाघ ही है। उसने

कड़ककर बटमारोंसे पूछा—तुम लोग कौन हो? मुझे यहाँ क्यों लाए हो?

उनमेंसे एक बटमारने अपने कलूटे मुँहपर उठी हुई गज्झी काली मूछें बाएँ हाथसे टेते हुए समझाया—

'हम लोग बटमार हैं। आपके चाचा मुंज महाराजके कहनेसे हम आपका सिर उतारनेके लिये आपको यहाँ ले आए हैं। इसलिये आप रथसे नीचे उतर आइए।'

बालक होनेपर भी भोज समझता सब कुछ था। वह बहुत दिनोंसे ताड़ रहा था कि जब-जब कोई चाचाजीसे मेरी बड़ाई करता है तब-तब उनका मुँह उतर जाता है और वे बात-बातमें ऐसे झुँझला उठते हैं जैसे कोई भीतर ही भीतर उनका जी मसले डाल रहा हो। उसे समझते देर न लगी कि हो न हो चाचाजीने ही अब इस ढंगसे मुझे अपने बाटका रोड़ा समझकर हटानेकी ठानी है। उसने धीरज बाँधकर उस बटमारसे कहा—'ठीक है। चाचाजीने यही चाहा है तो यही सही। पर मैं एक चिट्ठी लिखकर देता हूँ, वह चाचाजीको ले जाकर दे देना।'

भोज छाँगा था। उसके बाएँ हाथके अँगूठेके पास एक और भी छोटी सी उँगली निकली हुई थी। उसने झट अपनी वह अकारथ उँगली काट डाली और कटी हुई उँगली अपने लहूमें डुबोकर उसने बाँसके सुपुलेपर लिखा—

रामकृष्ण जैसे नरपति भी निज प्रतापसे अस्त हुए।
अन्य सहस्रों नरपतियोंके राज्य-देश सब ध्वस्त हुए॥
अटल किसीके साथ धरित्री जा न सकी है अभी तलक।
किन्तु आपके साथ जायगी धरा त्वराके साथ ललक॥

बटमारने हाथ बढ़ाकर चिट्ठी ले ली। बाँचते-बाँचते उसकी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गई। रुँधा गला खखारकर ठीक करते हुए

उसने रुआँसी बोलीमें कहा—चलिए कुमार ! आपका बाल भी बाँका नहीं हो सकता। हम आपको ऐसी खोहमें छिपाकर रक्खेंगे जहाँ राजाको आपकी गन्ध भी न लग पावेगी। हमारे साथ रहते आपपर कोई आँच नहीं आ सकती। जहाँ आपका पसीना गिरेगा वहाँ हमारा लहू गिरेगा। भोजको रथमें बैठाकर वे अपनी खोहमें छिपा आए और उनकी कटी हुई उंगली लेकर मुंजके पास जा पहुँचे। पूछनेपर उन्होंने कहा—'हमने भोजको ठिकाने लगा दिया। यहाँ उँगली पहचानके लिये ले आए हैं, मुंजने पूछा—'कहो उसने कुछ कहा।'

बिना मुँह खोले बटमारने चिट्ठी आगे बढ़ा दी। मुंजने ज्योंही खोलकर कहा कि उसकी आँखें बरस पड़ी, गला रुँध आया, हिचकियाँ बँध गईं। वह भीतर अपने पलँग पर औंधा जा पड़ा और इतना रोया—इतना रोया कि तकिया भीग गया, आँखें सूज आईं।

ज्यों-त्यों करके करवटें बदलते उसने जैसे-तैसे रात काट दी। तड़के अँधेरे-मुँह उसने अपने मन्त्रीको बुला भेजा और सारी कहानी उसे सुनाकर कहा कि अब यह धरती और राज मुझे काट खानेको दौड़ता है। इसे आप लोग सँभालिए और मुझे छुट्टी दीजिए। मेरा मन भीतर ही भीतर मुझे करोंचे डाल रहा है। जबतक यहाँ रहूँगा तिल-तिल जलता रहूँगा।'

मन्त्रीने कुछ देर माथा लड़ाया। फिर चिट्ठी बाँचकर बोला—'आप साँझ-तक धीरज धरिए। मैं सब कुछ समझकर आपके पास आऊँगा।'

मन्त्रीने बटमारोंको ऐसी पट्टी पढ़ाई कि उन्होंने सब उगल दिया और वे भोजको लिए-दिए मुंजके पास जा पहुँचे। भोजको देखते ही मुंजने दौड़कर उसे गले लगा लिया और वह घंटों रोता रहा। फिर सारा राज-पाट उसे सौंपकर चाकर बनकर काम देखने लगा।

इसमें प्रथम अनुच्छेद तत्समात्मक है। द्वितीय, तृतीय और

चतुर्थ अनुच्छेद तद्भव-तत्समात्मक हैं और शेष अंश शुद्ध तद्भवात्मक हैं।

उर्दू शैली

फ़ारसी-अरबी संज्ञा-विशेषणोंसे लदी नागरी शैलीको ही उर्दू शैली कहते हैं जो मुसलमानी राज्य में जनमी, पनपी और फैली। अनारकली नाटक का एक दृश्य लीजिए जिसके संवाद उर्दू में है, रंगनिर्देश तद्भवात्मक नागरी में तथा अभिनय-निर्देश तत्सम-तद्भवाश्रित मिश्र शैलीमें हैं—

अनारकली

पात्र-परिचय

नादिरा	: अनारकली	हमीदा	: सलीमकी मुँह-चढ़ी दासी
अमीना	: अनारकलीकी धर्ममाता		
सलीम	: राजकुमार (जहाँगीर)	अबुलफ़ज़ल	: अकबरके मन्त्री

स्थान : अन्तःपुरके उद्यानका लता-कुञ्ज।

समय : दोपहर

[जूही की घनी हरियाली कुंजमें पत्थरकी पटियापर नादिरा लेटी है। पर लेटी भी क्या है! वह बार-बार उठती है और डरी हुई हिरनी बनी उठकर इधर-उधर झाँक लेती है। उसकी आँखोंमें घबराहट है, बेचैनी है और ऐसा जान पड़ता है कि वह किसीके आनेकी बाट देख रही है। इस बार बेकल होकर नादिरा लेट गई है और बाएँ हाथके सहारे सिर रखकर कुछ गुनगुना रही है। कपड़ा सीनेका बहाना बनानेके लिये वह सूई, डोरा और कपड़ा भी साथ लिए हुए है। पर वह कपड़ा सीए या मनकी उलझनोंका ताना-बाना ठीक करे ?]

नादिरा : (गुनगुनाते हुए, किन्तु स्पष्ट स्वरमें)

रुसवा हुए, ज़लील हुए जिनके लिये हम ।
उनको हमारी आहकी मुतलक़ ख़बर नहीं ॥

[लीजिए अमीना आ गई । नादिराने उसे आते देख लिया । वह उठ बैठी, खड़ी हो गई, कुंजके द्वारतक दौड़कर पहुँचते-पहुँचते अमीनाके गलेसे लिपट गई ।]

अमीना : (प्यारसे नादिराके सिरपर हाथ फेरते हुए) शाहज़ादा अभीतक नहीं आए नादिरा ?

नादिरा : (अमीनाकी गोदमें सिर रक्खे-रक्खे सिर हिलाकर) ऊँ हूँः ।

अमीना : क्यों ?

नादिरा : (सिर उठाकर) क्या बताऊँ ? उन्होंने वायदा तो जल्द आनेका किया था मगर आज न जाने क्या बात है! क्यूँ देर कर दी है ?

[अमीना नादिराको सँभाले हुए पत्थरकी पटियापर बैठ जाती है । अमीनाकी गोदमें सिर डालकर नादिरा लेट जाती है ।]

अमीना : (नादिराके सिरपर हाथ फेरते हुए) नादिरा ! बेटी नादिरा ! अब भी मौक़ा है । अब भी पीछे हट चल ! बादशाह-ज़ादोंकी दोस्तीका कोई ऐतबार नहीं हुआ करता, न जाने कब आँखें पलट लें, कब तोताचश्म हो जायँ ।

नादिरा : (अपना सिर ऊपर उठाती है और एक क्षण अमीनाकी ओर देखकर अपने दोनों हाथ अमीनाके गलेमें डालकर अत्यन्त उद्विग्न तथा भावाविष्ट होकर भराए हुए गलेसे बोल उठती है) नहीं अम्मी ! अब यह सब न कहो । अब मैं इतना आगे बढ़ चुकी हूँ कि चाहनेपर भी पीछे क़दम नहीं हटा सकती । मुझे हिम्मत दो अम्मी ! मेरा दिल न तोड़ो ! हिम्मत न तोड़ो ।

[सहसा वह दूसरी ओर देखती है और प्रसन्न होकर झट खड़ी हो जाती है। उसके साथ-साथ अमीना भी खड़ी हो जाती है।]

नादिरा : (अमीनासे) देखो-देखो, वे आ गए! ज़रा ख़याल रखना!

अमीना : भाई ग़फ़ूर ज़ियारतके लिये अजमेर-शरीफ़ जा रहा है। उससे मिलकर अभी आई जाती हूँ, ख़ुदा हाफ़िज़!

[अमीनाका प्रस्थान]

[आँखों और होठोंमें मुस्कराहट लिए किन्तु अपने चौड़े गोरे माथेपर चिन्ताकी गम्भीर रेखाओंकी छाप लिए सलीमका प्रवेश।]

नादिरा : (अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें उल्लासके साथ झुककर) आदाब बजा लाती हूँ हुज़ूर!

सलीम : (नादिराको उठाकर छातीसे लगाते हुए) मैंने तुमसे कितनी दफ़े कहा कि तुम मुझे हुज़ूर न कहा करो। तुम मेरे दिलकी मलका हो। मुझे महज़ सलीम कहो। कहोगी?

नादिरा : (एक बार सलीमकी ओर देखकर कृतज्ञता और लज्जासे सलीमकी छातीपर सिर झुका लेती है।) कितनी देरसे ये आँखें दीदारके लिये तरस रही थीं!

सलीम : (नादिराका एक हाथ पकड़कर अपनी छातीपर रखते हुए) प्यारी अनारकली! इस देरके लिये ज़रूर ख़तावार हूँ। मगर क्या करूँ? अब्बाजानने अचानक बुलवा भेजा, इसीलिये नावक़्त हो गया। (नादिराके गालोंपर हाथ फेरकर) ये गुलाब क्यों मुरझा गए नादिरा! (नादिराके नयनोंकी कोरपर अश्रु-कण झलक आए। सलीमने झट रूमाल निकालकर आँसू पोंछ दिए।) इन शर्बती प्यालोंसे ये मोती क्यों बिखर पड़े नादिरा!

नादिरा : (सलीमकी छातीपर सिर टेके हुए) हुज़ूरकी इतनी ही मेहरबानी क्या कम है? मगर क्या करूँ? मुँहसे वह शराब लग गई है जिसकी तलब छूटे नहीं छूटती। हुज़ूरके दीदारके लिये इतनी

तड़पन होती है कि एक-एक लहमा भी पहाड़ बन बन जाता है, एक-एक घड़ी काटे नहीं कटती। मेरी वजहसे हुज़ूरको कितनी तकलीफ़ हो रही है !

[सलीमकी छातीपर ऊपरसे नीचे धीरे-धीरे हाथ फेरती है।]

सलीम : (कुछ भारी गलेसे) जानेमन ! मैं चाहता हूँ कि तुम्हें साथ लेकर, इस सल्तनतको लात मारकर, कहीं ऐसे बियाबानको निकल जाऊँ जहाँ फ़क़त तुम रहो और मैं रहूँ। तुम अपने नाज़ुक हाथों और शीरीं लबोंसे छूकर मुझे मैका प्याला भर-भरकर दिए जाओ और मैं तुम्हारे गुलाबी गाल और मदभरी चितवनके सायेके तले मस्तीसे ज़िन्दगी बिताए चलूँ। मुझे सल्तनतसे नफ़रत हो चली है अनार-कली !

नादिरा : (ऊपर सिर उठाकर सलीमकी आँखोंमें आँखें डालती हुई) नहीं हुज़ूर ! यह सब न सोचिए। मैं तो हुज़ूरकी बाँदी हूँ। एक दीन, एक ईमान और एक दिलसे हुज़ूरकी हो चुकी हूँ। मैं नहीं चाहती कि मेरी वजहसे हुज़ूरको सल्तनत छोड़नी पड़े या बियाबानमें भटकना पड़े।

मैं चाहती यही हूँ कि प्यारे बने रहो।
सबके बने हुए भी हमारे बने रहो ॥

सलीम : (नादिराके सिरपर हाथ फेरते हुए) यह भी ठीक कहती हो नादिरा ! मैंने तुम्हें मलका बनानेका वायदा किया है। उसे झूठा नहीं होने दूँगा। तुम्हें मुग़लोंके तख़्तपर मलका बनाकर बिठाऊँगा।

[बाहर किसीकी हँसी भरी हुई खाँसीका स्वर सुनाई पड़ता है।]

सलीम : (विचलित होकर) यह क्या ! (पुकारकर) कौन है ?

नादिरा : (सलीमके मुँहपर हाथ रखकर) क्या कर रहे हैं हुज़ूर ! कोई आ गया तो जानकी ख़ैर नहीं। वज़ीरे-आज़मकी आँखें दिन-रात सायेके मानिन्द मेरे आस-पास घूमती रहती हैं।

सलीम : तुम फ़िक्र न करो नादिरा ! कोई तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी और मेरी मुहब्बतके दरमियान जो उँगली उठावेगा उसका सर क़लम करा दूँगा।

[दूरपर कुछ पैरोंकी आहट सुनाई पड़ती है।]

नादिरा : कोई आ रहा है हुज़ूर ! आप फ़ौरन् इधरसे तशरीफ़ ले जायँ।

[सलीम चुपकेसे एक ओर निकल जाता है। नादिरा सूई-डोरा लेकर कपड़ा सीने बैठ जाती है।]

अन्तराल भाव-व्याख्या

[नादिरा ठीक समझ रही थी। अबुलफ़ज़लकी आँखें सचमुच छाया बनकर नादिराका पीछा कर रही हैं और आज वे आँखें दे दी गई हैं हमीदाको। नादिराके मदभरे गुलाबी गालोंने, उसके मदभरे नयनोंने सलीमपर जादू डालकर हमीदाकी चाहोंकी हरी-भरी क्यारी उजाड़ डाली है। वह बदला लेनेपर तुल गई है। सौतिया-डाहने उसका जी चलनी कर दिया है। उसने समझ लिया है कि जबतक नादिरा मेरी राहका रोड़ा बनी हुई है तबतक जीकी जलन न मिट पायगी। इसलिये वह जी-जानसे नादिराको ठिकाने लगानेपर उतारू हो गई है। वाह रे नारी ! तुम्हें यह देखकर हुलास क्यों नहीं होता कि जिसे तुम चाहती हो उसे और लोग भी चाहते हैं। तुम यह क्यों नहीं कह देतीं—

क्यों हो हसद किसीसे ! ख़ुशक़िस्मती है मेरी।
मैं जिसको चाहती हूँ, सब उसको चाहते हैं।

इस भूरी धरतीके सिरपर छाई हुई, चाँद और तारोंसे सजी हुई नीली छतके बराबर अपना मन फैलाकर देखो तो समझमें आ जायगा कि चाँदके साथ-साथ न जाने कबसे रहते चले आए हुए ये तारे, कभी आपसमें लड़ते नहीं, झगड़ते नहीं। अपनी-अपनी चमककी चादरमें लिपटे हुए, टिमटिमाते और मस्ती लेते घूमते रहते हैं। किसीको

मिटना भी होता है तो वह चुप-चाप इस नीले तनावमें अपनेको चूर-चूर करके बिखेर देता है। कभी कहता भी नहीं है कि ऐ चाँद! उस एक तारेको ही तू अपने साथ क्यों लिए चलता है। उनमेंसे एक-एक कहता है—

मेरा दिलवर सबका दिलवर हो, यही ख़्वाहिश मेरी।
एक शबे-महताबका आशिक़ ज़माना है सुबूत॥

दूर हो या पास, पर अपने प्यारे चाँदसे लौ लगाए हुए वह सदा यही गाता रहता है—

है तलब दीदारकी, तू प्यार मुझसे कर न कर।
दे मुहब्बत तू किसीको, बस मुझे दे एक नज़र॥

नारी! तुम्हारा भी इतना बड़ा मन होता तो तुम एक झटकेमें देवताओंका स्वर्ग यहीं ला उतारतीं। पर इस जलनको सुलगा-सुलगा कर तुमने नरक जगाया है। तो इसी नरककी राक्षसी बनकर जगाती चली जाओ नरकको! और जला डालो इस हरे-भरे संसारको दानवी!]

[दूसरी ओरसे अबुलफ़ज़लके साथ हमीदाका प्रवेश। नादिरा डरी हुई हिरनी-सी खड़ी हो जाती है।]

अबुलफ़ज़ल : (कुछ क्रोधसे) कौन? नादिरा!

नादिरा : (झुककर) आदाब बजा लाती हूँ हुज़ूर!

अबुलफ़ज़ल : कम्बख़्त लड़की! अभी तेरे साथ यहाँ कौन था?

हमीदा : (व्यंग्यसे) और कौन होंगे हुज़ूर? ख़ुद शाहज़ादा साहब....।

अबुलफ़ज़ल : (नादिराको झिड़ककर) बोल लड़की! तेरे पास अभी कौन था?

नादिरा : (घबराकर) एक....मेहमान....थे हुज़ूर!

अबुलफ़ज़ल : कौन मेहमान थे?

नादिरा : (घबराहटके साथ) वह....वह.... ।

[अमीना सहसा प्रवेश करती है ।]

अमीना : (सहसा सलाम करके) मेरा भाई था हुज़ूर ! ख़्वाजा मुइउद्दीन चिश्तीकी ज़ियारतके लिये अजमेर शरीफ़ जा रहा था। अभी उसे पहुँचाकर आ रही हूँ ।

[अबुलफ़ज़ल तो हमीदाकी ओर क्रोधसे प्रश्नकी मुद्रामें देखता है, नादिरा भी अमीनाकी ओर कृतज्ञता तथा उल्लास-पूर्ण आश्चर्यसे देखती है और हमीदा झेंप, ग्लानि, आश्चर्य, भय और अपराधी-भावसे अबुलफ़ज़लकी ओर देखकर सिर झुका लेती है। अमीना चुपचाप निर्विकार भावसे हाथ बाँधकर खड़ी हो जाती है मानो वह सचमुच सत्य बोल रही हो ।]

[यवनिका-पतन]

सर्वमिश्रित शैली

सर्वमिश्रित शैलीका प्रयोग वहाँ होता है जहाँ कई संस्कृति-वाले व्यक्ति एकत्र हों। इसमें हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अँगरेज़ी, आदि कई भाषाओंके शब्दोंका रलगड्डुम होता है। सर्वमिश्रित शैलीका रूप देखनेके लिये 'विश्वास' नाटकका यह दृश्य लीजिए—

समय : दिनके दस बजे

स्थान : बैरिस्टर चन्द्रदेवकी बैठक ।

[दिन चढ़ आया है इसलिये बैठकमें अच्छा उजाला है। यथा-स्थान पीठासन (सोफ़ा), पढ़नेकी ऊँची मंचिका (मेज़), तिथिपत्र (कैलेंडर), घड़ी, दर्पण, कपड़ोंकी खूँटी, गिरा-ग्राह (रेडियो), फूलदान आदि सब रक्खे हैं। पढ़नेकी मंचिकाके पास बैठकर चन्द्रदेव अपनी दाढ़ी बना रहा है। मंचिकापर बिजलीका लैंप और पुस्तकाधार (बुक-शेल्फ़) रक्खा है।

[कहीं जानेकी तैयारी करके चन्द्रदेव पीछे मेज़के पास बैठा
लिख रहा है। इतनेमें द्वार ३ से ज्योतिशङ्कर
प्रवेश करता है।]

ज्योतिशङ्कर : चन्द्रदेवजी !

चन्द्रदेव : (देखकर) आप हैं ? बैठिए। कहिए, क्या आज्ञा है ?

ज्योतिशङ्कर : हम आप दोनों एक ही व्यवसायके व्यक्ति हैं। मैं भी वकील हूँ आप भी। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण आपको कष्ट हो। मैं अन्तिम बार आपको समझाने आया हूँ, कि आप मेरी बात मान लीजिए नहीं तो मुझे विवश होकर अपना धर्म निबाहना पड़ेगा।

चन्द्रदेव : (खड़े होकर) इस मौखिक सहानुभूतिके लिये अनेक धन्यवाद ! ये ढोंगकी बातें मुझसे न कीजिए ज्योतिशंकरजी ! संसारमें आपसे भी अधिक चतुर लोग हैं समझे ! जैसा धर्म आप निबाह रहे हैं वैसा मैं भली-भाँति समझता हूँ।

ज्योतिशङ्कर : क्या समझते हैं ?

चन्द्रदेव : यह कि आपने मेरे विरुद्ध गुप्त पत्र लिखकर भेजे हैं।

ज्योतिशङ्कर : मैंने ?

चन्द्रदेव : हाँ, आपने।

ज्योतिशङ्कर : कौन कहता है ?

चन्द्रदेव : यही तार उसका प्रमाण है। (उठकर तार लाता है) आपने मेरा सर्वनाश करनेका निश्चय किया है। आपने लिखा है कि मैं ऋणी हूँ। किन्तु ज्योतिशंकरजी ! सत्यकी विजय होती है और होगी।

ज्योतिशङ्कर : ठीक है, आप जो समझिए। (चलते हुए लौटकर) हाँ, मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि आपके पिताजीने जो रुपये लिए थे उसके लिये हैण्डनोट भी लिखा था। वह भी मिल गया है और उसकी अवधि भी आजतक ही है।

चन्द्रदेव : लिखा हो या न लिखा हो। मुझे जब देना ही है तो मैं दूँगा ही।

ज्योतिशङ्कर : (छड़ी तोलते हुए) ठीक है। मैने अपना कर्त्तव्य पूराकर दिया। आप जानें आपका काम।

[प्रस्थान]

चन्द्रदेव : (मन ही मन) पिशाच कहींका ! (बावनको पुकारकर बावन !)

बावन : (आकर) जी !

चन्द्रदेव : जाओ, ख़ैरुद्दीनको तो बुला लाओ।

बावन : भैरोदीन कौन ?

चन्द्रदेव : (ऊँचे स्वरसे) भैरोदीन नहीं ख़ैरुद्दीन, ख़ैरुद्दीन। वह जो नीलामका काम करता है।

बावन : जी, जी, अभी लाता हूँ।

[प्रस्थान]

चन्द्रदेव : पुकारकर अरे ब्रह्मेश्वर !

ब्रह्मेश्वर : (भीतरसे) जी, आया। (द्वार १ से प्रवेश करके) जी

चन्द्रदेव : मैं अभी थोड़ी देरमें आता हूँ। वह नीलामवाला शेख़ आवेगा, उसे बैठा लेना।

ब्रह्मेश्वर : जी, अच्छा।

[द्वार ३ से चन्द्रदेव भी बाहर जाता है। द्वार १ से ब्रह्मेश्वर भीतर जाकर झट आता है, खीसेसे दर्पण निकालकर मूँछें ऐंठता है, अपने अँगोछेसे जूता पोंछता है, उसीसे मूँछें पोंछता है, रेडियोके पास जाकर खूँटी घुमा देता है, रेडियो बजने लगता है, उसके गीतोंके अनुसार बड़ी-बड़ी मुद्राएँ करता है। द्वार ३ से बावनका प्रवेश। बावनको बुलाकर ब्रह्मेश्वर रेडियो दिखाता है। वह कुछ नहीं सुनता है।]

ब्रह्मेश्वर : जानते हो ? यह गाता है, बात करता है ।

बावन : (कानपर हाथ रखकर) इसमें क्या होता है ?

ब्रह्मेश्वर : (इंगितसे) इसमें एक मेम बैठी रहती है और एक साहब । बस वे दोनों दिनरात गाते और बोलते रहते हैं ।

बावन : अच्छा किया धोबी धोबिनको बन्द कर दिया । बड़ी लड़ाई किया करते थे ।

ब्रह्मेश्वर : (चिल्लाकर) धोबी-धोबिन नहीं, साहब और मेम, मेम ।

बावन : साहब और मेम ! और भी अच्छा हुआ । बड़ा सताया है इन लोगोंने ।

ब्रह्मेश्वर : (अपना ज्ञान छाँटनेके लिये) देखो इसमें बिजली जलती है । यह बिजली बरसातमें जहाँ-जहाँ गिरती है वहाँ बड़े-बड़े कण्डालोंमें इकट्ठी कर ली जाती है और ऐसे-ऐसे डिब्बोंमें थोड़ी-थोड़ी भरके भेज दी जाती है । बस जहाँ बिजलीने साहबको छुआ कि साहब गाने और बोलने लगता है और जहाँ मेमको छुआ कि मेम गाने लगती है ।

बावन : (आश्चर्यसे) अच्छा ! मेरी समझमें तो आता नहीं था कि यह सब कैसे होता है ।

[द्वार ३ से ख़ैरुद्दीनका प्रवेश]

ख़ैरुद्दीन : कहाँ हैं बैरिस्टर साहब ?

ब्रह्मेश्वर : आते हो होंगे । आप बैठिए ।

[बावन और ब्रह्मेश्वर द्वार १ से भीतर जाते हैं । चन्द्रदेव द्वार ३ से प्रवेश करके रेडियो बन्द करता है ।]

ख़ैरुद्दीन : (खड़े होकर झुककर) आदाब अर्ज़ है । ख़ाकसारको कैसे याद फ़र्माया था ?

चन्द्रदेव : बैठिए । [दोनों बैठते हैं ।] मैं अपना सब सामान नीलाम करना चाहता हूँ ।

ख़ैरुद्दीन : क्यों, दूसरा ख़रीदिएगा ? ठीक भी है । एक सालसे

ज़्यादा फ़र्नीचर रखना भी नहीं चाहिए। यूरपमें जो ख़ान्दानी रईस हैं, पुराना बेचा और नया ख़रीदा। मैं नया भी आपके लिये ला दूँगा और सस्ता इतना कि पानीके भाव।

चन्द्रदेव : बताओ कितना मिल सकेगा?

ख़ैरुद्दीन : क्या-क्या सामान है?

चन्द्रदेव : सभी कुछ है।

ख़ैरुद्दीन : ठीक है, सभी कुछ बदलना चाहिए। और अब तो सुना है हिन्दू कोड बिल आ रहा है। बीवियाँ शौहर बदलेंगी और शौहर बीवियाँ बदलेंगे।

चन्द्रदेव : अच्छा, जिस कामके लिये बुलया है वह तो पहले ठीक करो।

ख़ैरुद्दीन : वह तो हो ही जायगा। हाँ तो क़ालीन, दरी, पर्दे, सोफ़ा आलमारी, रेडियो, हारमोनियम, मेज़ें, भीतरके पलंग, और⋯किताबें तो नहीं?

चन्द्रदेव : किताबें भी?

ख़ैरुद्दीन : किताबें भी? ठीक है, किताबें भी नई-नई पढ़नी चाहिएँ। जैसे पुराने फ़र्नीचरसे मकान पुराना बना रहता है वैसे ही पुरानी किताबें पढ़नेसे दिमाग़ पुराना बना रहता है। सुना है आजकल ऐसी-ऐसी नई बातें चलने लगी हैं कि आदमियोंके पेड़ होने लगे हैं। अपने बग़ीचेमें दो पेड़ लगा दीजिए, बस रोज़ सौ दो-सौ बच्चे उतार लीजिए। सुना है ऐटमसे यही सब होगा कि यहाँ बैठे हैं, बटन दबाया लन्दनमें पहुँच गए और फिर बटन दबाया तो अमरीकामें। क्या जादू भर दिया है नई किताबेंमें। वाह!

चन्द्रदेव : तो यह सामान कितनेमें उठ जायगा?

ख़ैरुद्दीन : बाजार तो बड़ा मन्दा जा रहा है फिर भी आपके लिये

खैरुद्दीन : जी हाँ ठीक है। रुपए तो सभीको चाहिएँ। सच बात तो यह है साहब कि दुनियामें सच्चा दोस्त तो रुपया ही है। रुपया न हो तो कोई एक टकेको न पूछे। रुपया हो तो दुनिया आपकी गुलाम। जेब खनखना भर दीजिए, फिर देखिए बड़े-बड़े लोग आपके सामने मुजरा करने लगें मुजरा। नोटोंके बण्डली झलक भर दिखा दीजिए फिर देखिए फ़रिश्ते आपके घरमें फेरी देने लगें।

चन्द्रदेव : मुझे आज ही सात हज़ार रुपए चाहिएँ, सात हज़ार।

खैरुद्दीन : हाँ, आप बड़े आदमी हैं। आप लोग रोज़ लाखोंका वारा-न्यारा करते होंगे। सात हज़ारकी क्या बिसात है?

चन्द्रदेव : तो यह सब सामान उठवा ले जाओ और सात हज़ार मुझे दे दो।

खैरुद्दीन : आपके लिये जान हाज़िर है, सात हज़ारकी क्या बात है? तो मकान भी इसीमें शामिल है न? (इधर-उधर देखकर) ठीक भी है, मकान पुराना हो चला है। आप नई कोठी बनवा लीजिए—एअर कंडिशंड, लाइट कंडिशंड, वेदर कंडिशंड, वाटर कंडिशंड, जिसमें किसी भी मौसममें कोई तकलीफ़ न हो। मैं उसके भी नक़्शे ला सकता हूँ।

चन्द्रदेव : सामानपर सात हज़ार नहीं मिल सकते हैं?

खैरुद्दीन : सात हज़ार तो आपकी बातपर मिल सकते हैं, बातपर। मगर यह सामान पुराना हो गया है। मकान भी शामिल कर दीजिए तो सात हज़ारका गाहक मैं चुटकी बजाते खड़ा कर सकता हूँ।

चन्द्रदेव : (सोचकर) मकान भी? (सहसा) ठीक है, मुझे तुम तत्काल सात हज़ार रुपये लाकर दो।

[द्वार ३ से गोरखनाथका प्रवेश]

गोरखनाथ : (आगे बढ़कर) कोई आवश्यकता नहीं है इसकी।

चन्द्रदेव : किसकी?

गोरखनाथ : इसीकी, जिसकी बातें हो रही हैं। मैंने निश्चय कर

लिया है कि मैं नहीं खड़ा हो रहा हूँ। मैंने अपना नाम लौटा लेनेके लिये आवेदनपत्र भी भेज दिया है।

चन्द्रदेव : (खड़े होकर उत्तेजनाके साथ) आवेदन-पत्र भेज दिया है ? मुझसे बिना पूछे ? क्यों ?

गोरखनाथ : इसलिये कि मैं देवताके मन्दिरमें पिशाचोंका ताण्डव नहीं सहन कर सकता।

चन्द्रदेव : (आवेशसे) तुमको मुझसे पूछकर कोई काम करना चाहिए था। तुम्हें मैंने खड़ा किया था।

गोरखनाथ : मैं जानता था कि पूछनेका फल क्या होगा। मैं दो बार उसका प्रयत्न कर चुका हूँ। मैं जानता था कि आपके सामने जानेपर मेरी जीभ बँध जाती है। मुझे क्षमा कीजिए। [जानेको उद्यत]

चन्द्रदेव : ठहरो गोरख ! तुम मेरी अवज्ञा नहीं कर सकते, मुझे विश्वास है। मेरी बड़ी भारी धर्म-परीक्षा हो रही है और मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे सँभाले रहो। मैं देखना चाहता कि सत्यकी जय होती है या असत्यकी। यदि नहीं होगी तो मैं नास्तिक हो जाऊँगा और समझ लूँगा कि ईश्वर नहीं है, धर्म भी नहीं है, सत्य भी नहीं है। किन्तु न जाने क्यों मुझे एक दैवी प्रकाश क्षण-क्षणपर उत्साहित कर रहा है। (आगे बढ़कर गोरखनाथके दोनों कंधोंपर अपने दोनों हाथ टेककर) तुम मुझे सहारा दो गोरख। (घूमकर ख़ैरुद्दीनसे) आप सब सामानकी फेहरिस्त बनाइए। (ब्रह्मेश्वरको पुकारकर) ब्रह्मेश्वर !

[द्वार १ से ब्रह्मेश्वरका प्रवेश]

ब्रह्मेश्वर : जी !

चन्द्रदेव : देखो ये यहाँ सामानकी सूची बनावेंगे। मैं अभी आता हूँ। (ख़ैरुद्दीनसे) आप रुपएका प्रबन्ध कर रखिएगा। (गोरखनाथसे) चलो गोरख ! आवेदनपत्र लौटा लेना होगा।

गोरखनाथ : सुनिए तो !

चन्द्रदेव : (गोरखनाथका हाथ पकड़कर) मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। चलो !

[दोनोंका वेगसे द्वार ३ से प्रस्थान]

ख़ैरुद्दीन : (ब्रह्मेश्वरसे) तुम कौन हो ?

ब्रह्मेश्वर : जी, सभी मुझसे यही पूछते हैं ।

ख़ैरुद्दीन : तो आख़िर तुम हो कौन ?

ब्रह्मेश्वर : मैं ब्रह्मेश्वर हूँ।

ख़ैरुद्दीन : यह कैसी चीज़ होती है ?

ब्रह्मेश्वर : यह ऐसी चीज़ होती है [लँगड़ाकर चलता है ।]

ख़ैरुद्दीन : वाह, क्या कहने ! मगर तुम्हें तकलीफ़ नहीं होती ।

ब्रह्मेश्वर : तकलीफ़ होती होगी आप लोगोंको । खूँटेकी तरह एक पैर ऐसे रक्खा एक वैसे । हम चलते हैं ओ० टी० आर० के अंजनकी तरह—खटर-पटर, खटर-पटर ।

[चलकर दिखलाता है ।]

ख़ैरुद्दीन : यहाँ क्या काम करते हो ?

ब्रह्मेश्वर : बुलबुली झाड़ता हूँ, दर्पणमें मुँह देखता हूँ, खाना खाता हूँ, सोता हूँ और जब बाबूजी आते हैं तो बिस्तर खोलता हूँ, बिछाता हूँ। यही सब छोटे-मोटे काम कर लेता हूँ ।

ख़ैरुद्दीन : तो तुम यहाँ नौकर हो ?

ब्रह्मेश्वर : जी नहीं, यहाँ नहीं हूँ । लखनऊमें हूँ।

ख़ैरुद्दीन : तो यहाँका नौकर कौन है ?

ब्रह्मेश्वर : वह है बावन ।

[द्वार १ से बावनका प्रवेश]

बावन : क्या है ?

ख़ैरुद्दीन : (बावनसे) एक काग़ज़-पेन्सिल तो ले आओ ।

[द्वार १ से बावन जाता है और सिल उठा जाता है ।]

बावन : लीजिए, कौन-सा मसाला पीसना है ?

ख़ैरुद्दीन : अरे सिल नहीं, काग़ज़ पेन्सिल।

ब्रह्मेश्वर : (ख़ैरुद्दीनसे) यह (बावनको संकेत करके) ऊँचा सुनता है। (बावनके कानमें) काग़ज़-पेन्सिल, काग़ज़-पेन्सिल।

बावन : तो चिल्लाते क्या हो ? वह तो मैंने सुन ही लिया था।

ब्रह्मेश्वर : (इंगितसे) तो यह सिल क्यों उठा लाए थे ?

बावन : मसाला पीसनेके लिये बाहर ले जा रहा था।

[द्वार १ से बावन सिल उठा ले जाता है।]

ब्रह्मेश्वर : अच्छा ले जाओ। (ख़ैरुद्दीनसे) मैं लाता हूँ काग़ज़-पेन्सिल।

[मेज़परसे काग़ज़-पेन्सिल लाकर ख़ैरुद्दीनको देता है।]

ख़ैरुद्दीन : यहाँका सामान तो बोलते चलो।

ब्रह्मेश्वर : सब सामान ?

ख़ैरुद्दीन : हाँ, सब सामान।

ब्रह्मेश्वर : लिखिए। सिल-बट्टा, हल्दीकी पुड़िया....

ख़ैरुद्दीन : यह सब नहीं। मोटा सामान बताओ, बड़ा-बड़ा।

ब्रह्मेश्वर : जी अच्छा, लिखिए। पत्थरकी ओखली, मूसल, चक्की।

ख़ैरुद्दीन : अरे यह सब नहीं, इस कमरेका सामान।

ब्रह्मेश्वर : जी, तो पहले मेरा और अपना नाम लिख लीजिए।

ख़ैरुद्दीन : आदमीका नहीं सामानका, सामानका।

ब्रह्मेश्वर : तो आप ही बता दीजिए।

ख़ैरुद्दीन : जैसे दरी है, क़ालीन है।

ब्रह्मेश्वर : ठीक है। दरी, क़ालीन, गद्दा, तकिया। बस मोटा तो और कुछ नहीं है।

ख़ैरुद्दीन : मोटा-पतला सभी लिखवा दो।

ब्रह्मेश्वर : आप अपने आप लिखते रहिए। मैं बीच-बीचमें आपको पानी पिलाता रहूँगा।

[द्वार ३ से कमलाकरका प्रवेश]

कमलाकर : यह क्या हो रहा है ख़ैरुद्दीन साहब ? [बैठता है।]

ख़ैरुद्दीन : (खड़े हो कर) आदाब अर्ज़। आइए, तशरीफ़ लाइए। यों ही एक काम सुपुर्द किया है बैरिस्टर साहबने, इसीलिये आया था। हम लोग तो ख़िद्मतगार हैं, जिसका हुक्म मिला दौड़ पड़े।

[बैठता है।]

कमलाकर : क्या काम मिला है ?

ख़ैरुद्दीन : यही कि इस मकान और सामानका रुपया खड़ा किया जाय, बदलेमें दूसरा बँगला और फ़र्नीचर मोल ले लिया जाय।

कमलाकर : अच्छाऽऽ ! तो आप नीलामके लिये सामान लेने आए हैं ?

ख़ैरुद्दीन : जी, मैंने तो अर्ज़ किया न, कि बन्दा तो ग़ुलाम है सबका। जिसका हुक्म मिले उसके लिये दस्तबस्ता हाज़िर।

कमलाकर : यह सामान कहीं नहीं जायगा ख़ैरुद्दीन साहब ! समझे ! (ब्रह्मेश्वरसे) कहाँ हैं बैरिस्टर साहब ?

ब्रह्मेश्वर : बाहर गए हैं।

कमलाकर : कबतक लौटेंगे ?

ख़ैरुद्दीन : आते ही होंगे। मुझे बैठा गए हैं।

कमलाकर : (ख़ैरुद्दीनसे) तो यह सामान यहीं रहेगा ज्योंका त्यों।

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, वह तो रहेगा ही। ख़ान्दानी सामान है। वह क्या कहीं बाहर जा सकता है ? रईस लोग तो अपने जूते तलक बाहर नहीं फेंकते, फिर यह तो महफ़िली समान है।

[ब्रह्मेश्वर मुँह बनाता हुआ द्वार १ से भीतर जाता है।]

कमलाकर : आप तो समान ले जानेके लिये आए थे न ?

ख़ैरुद्दीन : लाहौलविलाकूवत ! भला यह भी कभी मुमकिन हो सकता था ? तौबा तौबा ! मैं और सामानको हाथ लगाऊँ। मुझे तो लिस्ट बनानेको कह गए थे। रईसोंके यहाँ तो आप जानते ही हैं कि रजिस्टर होते हैं रजिस्टर।

[द्वार ३ से गणेशप्रसादका प्रवेश]

गणेशप्रसाद : चन्द्रदेवजी हैं !

[कमलाकर मुँह फेरकर बैठता है।]

ख़ैरुद्दीन : (आधा खड़ा होकर) आइए सेठजी ! तशरीफ़ रखिए। कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं। आइए बैठिए।

गणेशप्रसाद : (बैठकर) हाँ, ठीक है। कहा गए हैं बैरिस्टर साहब ?

ख़ैरुद्दीन : बाहर गए हैं, आते ही होंगे।

गणेशप्रसाद : (कमलाकरसे) सम्पादकजी नमस्कार !

कमलाकर : मैं आपसे बात नहीं करना चाहता।

गणेशप्रसाद : क्यों-क्यों, इतने रुष्ट क्यों हैं ? हमसे क्या ग़लती हो गई ?

कमलाकर : ग़लती ! आप लोग ग़लती नहीं करते हैं, पाप करते हैं पाप। पर यह न समझिएगा कि पाप करके आप बचे रह जायँगे। वह दुर्गति होगी कि माँगे पानी नहीं मिलेगा पानी। समझे !

ख़ैरुद्दीन : अरे साहब गुनाह करके क्या कोई कहीं बच पाया है ?

गणेशप्रसाद : मेरा क्या दोष है ! मुझसे लोगोंने कहा—आप खड़े हो जाइए, मैं खड़ा हो गया।

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ साहब ! लोगोंका कहना कोई कहाँतक टाले। वह तो मानना ही पड़ता है।

कमलाकर : (गणेसप्रसादसे) तो मैं आपसे कहता हूँ—आप नाम वापस ले लीजिए। आप लेंगे ? मैं कहता हूँ—आप अपने रुपए आज मत माँगिए बैरिस्टर साहबसे। आप मानेंगे ? आप लोग जोंक हैं जोंक। ख़ून चूसते हैं ख़ून !

गणेशप्रसाद : देखिए कमलाकर जी ! हम व्यवसायी हैं। हम लोग किसीको भी रुष्ट नहीं करना चाहते। राम आवें तो उनकी भी पूजा करें, रावण आवे तो उसे भी माला पहना दें। हमारे लिये सब बराबर हैं। जो कहिए करें।

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, यह तो है ही। आप लोग रईस हैं। सबको मानना ही पड़ता है।

कमलाकर : बताइए आप सात हज़ार रुपया छोड़ सकते हैं ?

गणेशप्रसाद : हमें क्या ? आज न दें दस दिन बाद दें, न भी दें। पर अब जब मैं खड़ा हो गया हूँ, थोड़ी सी सहायता भर कर दें। बस मैं इतना ही तो चाहता हूँ।

ख़ैरुद्दीन : हाँ साहब ! इसमें बुरा ही क्या है ? वक़्त पड़नेपर तो मदद करनी ही चाहिए।

कमलाकर : देखिए ! मैं दान नहीं चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप थोड़े दिन रुपया न लें। क्या आप तैयार हैं ? और मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि चन्द्रदेवजी आपकी सहायता नहीं करेंगे।

ख़ैरुद्दीन : हाँ साहब ! उसूलकी बात जहाँ होती है वहाँ बड़ी मुश्किल होती है।

गणेशप्रसाद : तब कैसे हो सकता है ?

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, कैसे हो सकता है ?

कमलाकर : तो आप जाइए और जो चाहे सो कीजिए। और मैं आपको सावधान किए देता हूँ। मेरे पास आपकी वह कुञ्जी है कि सौ ज्योतिशंकर और दो सौ अब्बास भी आपको नहीं बचा सकते।

ख़ैरुद्दीन : अरे साहब ! कोई क्या किसीको बचावेगा।

गणेशप्रसाद : (घबराकर) क्या ? क्या ?

कमलाकर : वही छोआ जो आपने मोल लिया था।

गणेशप्रसाद : (घबराकर) तो मैं आपसे बाहर थोड़े ही हूँ। मुझे क्या

लेना-देना चुनावसे। मैंने तो कही दिया था कि जब चाहें रुपए दें। रुपएकी क्या बात है ?

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ रुपएकी क्या बात है ? वह तो हाथ का मैल है। इधर आया उधर गया।

कमलाकर : तो मैं विश्वास करूँ ?

गणेशप्रसाद : अवश्य ! तो मुझे आज्ञा हो। जै रामजीकी।

[द्वार ३ से प्रस्थान]

कमलाकर : (ख़ैरुद्दीनसे) देखा ?

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ साहब ! सारी दुनिया बिगड़ गई है। वह तो कहिए आप जैसे थोड़ेसे लोग बचे रह गए हैं जिनपर दुनिया टिकी हुई है, नहीं तो अबतक टूट-फूटकर एक किनारे हुई होती।

[द्वार ३ से रघुनायकका प्रवेश]

रघुनायक : (पुकारकर) ब्रह्मेश्वर ! [द्वार २ से ब्रह्मेश्वरका प्रवेश]

ब्रह्मेश्वर : उल्लाससे आ गए सरकार।

रघुनायक : नीचेसे सामान उठा लाओ।

[द्वार ३से ब्रह्मेश्वर जाता है।]

रघुनायक : (कमलाकरसे) कहाँ हैं चन्द्रदेवजी !

कमलाकर : (खड़े होकर) बाहर गए हैं।

[ख़ैरुद्दीन खड़ा होकर सलाम करता है।]

रघुनायक : (कमलाकरसे) आप ?

कमलाकर : मैं हूँ कमलाकर, 'बढ़े चलो' पत्रका सम्पादक। कभी-कभी सोने-चाँदीकी दलाली भी कर लेता हूँ। और आप ?

रघुनायक : मैं ठेकेदारी करता हूँ लखनऊमें। मेरा नाम रघुनायक है।

कमलाकर : अच्छाऽऽ, आप ही हैं ! बैरिस्टर साहब आपकी बड़ी चर्चा किया करते हैं। (हाथ जोड़कर) नमस्कार !

रघुनायक : नमस्कार ! (ख़ैरुद्दीनसे) आप ?

ख़ैरुद्दीन : ख़ाकसारको ख़ैरुद्दीन कहते हैं।

कमलाकर : (परिचय देते हुए) आप यहाँ नीलामका काम करते हैं।

रघुनायक : यहाँ कैसे ?

कमलाकर : चन्द्रदेवजीने बुलाया था। वे सामान नीलाम करना चाहते थे।

रघुनायक : किसका ?

कमलाकर : अपना।

रघुनायक : क्यों ?

कमलाकर : एक महाजनको उन्हें सात हज़ार रुपए देने थे।

रघुनायक : पर उनके पास तो दस हज़ार रुपए थे।

कमलाकर : (आश्चर्यसे) दस हज़ार ?

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, रईस आदमी हैं, दस हज़ार क्या, दस लाख होंगे। इसमें ताज्जुबकी क्या बात है ?

रघुनायक : तो वे गए कहाँ ?

कमलाकर : उसी चिन्तामें गए होंगे।

रघुनायक : रुपए किसे देने हैं ?

कमलाकर : सेठ गणेशप्रसादको।

रघुनायक : कहाँ है उनकी कोठी ?

कमलाकर : सराफ़ेमें गणेशप्रसाद-महेशप्रसाद।

[ब्रह्मेश्वर सामान लेकर आता है।]

ब्रह्मेश्वर : (सामान रखकर) मोटरवालेको कितना देना है सरकार !

रघुनायक : ठहरो। मैं आता हूँ। [वेगसे प्रस्थान]

[कमलाकर और ख़ैरुद्दीन बैठ जाते हैं। ब्रह्मेश्वर सामान उठाकर भीतर रखता है ख़ैरुद्दीन सब सामान देख-देखकर सूची बनाता है।]

ख़ैरुद्दीन : रेडियो एक नग, हारमोनियम एक नग, पलंग चार नग।

कमलाकर : यह क्या करते हो!

ख़ैरुद्दीन : यह लिस्ट तो पूरी कर लूँ।

कमलाकर : ज़रूरत क्या है? यह लिस्ट नहीं बनेगी।

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, ज़रूरत क्या है? देखकर भी अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

कमलाकर : देखो ख़ैरुद्दीन! यहाँका एक तिनका भी बाहर नहीं जा सकता।

ख़ैरुद्दीन : जी नहीं, मैं इसलिये नहीं कह रहा था। मैं तो अन्दाज़ा लगा रहा था कि क्या ख़ूबसूरत चीज़ें हैं, एकसे एक आला। ये पर्दे देखिये। नवाब वाजिदअली शाहको भी नसीब न हुए होंगे। मैन्चेस्टरके हैं। बस यह समझ लीजिए कि या तो बरतानियाँके बादशाहके महलमें है या यहाँ है।

[चन्द्रदेवका प्रवेश। आकर धम्मसे कुर्सीपर बैठ जाता है।]

चन्द्रदेव : (पुकारकर) बावन! [द्वार १ से बावनका प्रवेश]

बावन : (आकर) जी!

चन्द्रदेव : (इंगित करके) एक गिलास पानी पिलाओ।

बावन : अभी लाया। [द्वार १ से भीतर जाता है।]

कमलाकर : (चन्द्रदेवसे) कहाँ गए थे!

चन्द्रदेव : गोरखनाथने मूर्खताकी थी। वह अपना नाम वापस लेनेका आवेदनपत्र दे आया था। उसको लौटा लाया हूँ।

कमलाकर : वह है कहाँ?

चन्द्रदेव : उसे भेज आया हूँ प्रचार करने।

[द्वार १ से बावन पानी लाकर देता है। चन्द्रदेव पीता है।
द्वार १ से ही बावन गिलास ले जाता है।]

चन्द्रदेव : (ख़ैरुद्दीनसे) कहिए लिस्ट बनी।

ख़ैरुद्दीन : जी, बनी ही समझिए ।

कमलाकर : लिस्ट नहीं बनेगी ।

चन्द्रदेव : क्यों ?

कमलाकर : इसलिये कि यह सामान नीलामपर नहीं चढ़ेगा । (ख़ैरुद्दीनसे) ख़ैरुद्दीन साहब ! आप चाहें तो तशरीफ़ ले जा सकते हैं ।

ख़ैरुद्दीन : जी हाँ, मैं तो जा ही रहा था, आदाब अर्ज़ ।

[द्वार ३ से प्रस्थान]

चन्द्रदेव : तो सात हज़ार तुम दोगे ?

कमलाकर : मेरे पास क्या रुपयोंके पेड़ लगे हैं ?

चन्द्रदेव : तो कहाँसे दिए जाएँगे ?

कमलाकर : वे जो दस हज़ार रुपए जोड़कर रक्खे हैं उन्हें निकालो न ।

चन्द्रदेव : (चकित होकर) किसने कहा दस हज़ार रुपए हैं ?

कमलाकर : रघुनायकजीने ।

चन्द्रदेव : वह कहाँ मिले ?

कमलाकर : अभी आए थे । कहीं गए हैं मोटरसे । आते ही होंगे । निकालिए रुपए ! मैं जाकर गणेशप्रसादको दे आता हूँ ।

चन्द्रदेव : वे रुपए मेरे नहीं हैं ।

कमलाकर : तो किसके हैं ?

चन्द्रदेव : रघुनायकके ।

कमलाकर : तो उसीमेंसे सात हज़ार आप दे दीजिए । रघुनायकजीको आप देते रहिएगा ।

चन्द्रदेव : (गंभीरताके साथ) यही तो इस जीवनमें मैंने नहीं किया है कमलाकर ! और करूँगा भी नहीं । मेरा विश्वास करके जो अपनी धरोहर मेरे पास छोड़ गया है उसे अपनी रक्षाके लिये देकर विश्वास नहीं खोऊँगा ।

कमलाकर : मैं उनसे कह लूँगा।

चन्द्रदेव : यह सब व्यर्थ है, कमलाकर ! तुम मुझे जानते नहीं हो।

कमलाकर : मैं आपको जानता हूँ। आप राक्षसोंकी लंकामें राम-राज्य बसाने चले हैं। यह असम्भव है। अयोध्यामें ही राम-राज्य हो सकता है, लंकामें नहीं, समझे !

चन्द्रदेव : मैं लङ्कामें ही रामराज्यकी प्रतिष्ठा करूँगा।

कमलाकर : तब लङ्का तो रह जायगी पर न राम रहेंगे और न रामराज्य।

[द्वार ३ से ज्योतिशंकर और अब्बासका प्रवेश।]

कमलाकर : कहिए आप लोग कैसे आए ?

ज्योतिशंकर : (चन्द्रदेवसे) आशा है आपने रुपएका प्रबन्ध कर लिया होगा।

अब्बास : कर ही लिया होगा। आप बड़े आदमी हैं, यह बात।

कमलाकर : जी नहीं, रुपए नहीं दिए जायँगे।

ज्योतिशंकर : तब दावा होगा।

अब्बास : जी हाँ, दावा होगा, यह बात।

कमलाकर : इनके पिताजीने कोई रुपए नहीं लिए थे।

चन्द्रदेव : रुपए क्यों नहीं लिए थे ? अवश्य लिए थे। मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ।

अब्बास : जी हाँ, ज़रूर लिए थे। यह बात।

कमलाकर : क्या प्रमाण है ?

चन्द्रदेव : मैं जानता हूँ।

अब्बास : मैं भी जानता हूँ, यह बात।

कमलाकर : (ज्योतिशंकरसे) कोई लिखा-पढ़ी है ?

ज्योतिशंकर : (काग़ज़ दिखाकर) यह है उनके हाथका हैंडनोट।

[कमलाकर झपटकर छीन लेता है।]

ज्योतिशंकर : इधर दीजिए।

कमलाकर : ठहरिए, पढ़ लेने दीजिए। (देखकर) यह उनके हाथका हैंडनोट है ही नहीं। यह अभी सात दिनके भीतर लिखा गया है। मैं जेल भेजूँगा आप सबको।

ज्योतिशंकर : (अकड़कर) दीजिए इधर हैंडनोट !

अब्बास : (अधिकार-भावसे) दीजिए साहब, यह बात।

कमलाकर : यह रौब किसी औरपर झाड़िएगा। यह हैंडनोट पुलिसको दिया जायगा, समझे।

ज्योतिशंकर : चन्द्रदेवजी ! हैंडनोट दिलवाइए।

चन्द्रदेव : (कमलाकरसे) देखो कमलाकर ! जब मैं स्वयं ऋण स्वीकार कर रहा हूँ तब हैंडनोटका कोई महत्त्व नहीं है।

कमलाकर : ऋण स्वीकार कर लेनेपर भी हैंडनोटका महत्त्व है। यह जाली है और इसी जालमें फँसाकर इन्हें बड़े घरके पिंजड़ेमें बन्द कराऊँगा।

अब्बास : यह आपकी ज़्यादती है, यह बात।

कमलाकर : (व्यंग्यसे) आप यहाँसे नौ-दो-ग्यारह हो जाइए यह बात; चलते-फिरते दिखाई दीजिए यह बात; घर की राह लीजिए यह बात; लम्बे बनिए यह बात; और नहीं तो आप भी फाँसे जायँगे यह बात।

अब्बास : मैं आपको समझ लूँगा, यह बात।

[वेगसे द्वार ३ से प्रस्थान]

ज्योतिशंकर : तो आप हैंडनोट देते हैं या मैं जाकर पुलिस बुलाऊँ ?

[द्वार ३ से गणेशप्रसादका घबराए हुए प्रवेश]

गणेशप्रसाद : मैंने अपना नाम लौटा लिया है। यह लीजिए भरपाई की रसीद। मुझे क्षमा कीजिए चन्द्रदेवजी !

ज्योतिशंकर : (भरपाईकी रसीद हाथसे छीनकर) यह आप क्या करते हैं ?

गणेशप्रसाद : (ज्योतिशंकरसे) अब मुझसे कुछ न कहिए। मेरा लड़का उसी दिनसे बीमार है जिस दिन वह हैंडनोट लिखा गया था। और आज वह सन्निपातमें बक रहा है कि हैंडनोट दे दो, फाड़ दो। (चन्द्रदेवसे) मुझे हैंडनोट दे दो मैं जला दूँगा, फाड़ दूँगा। दो मुझे।

कमलाकर : हैंडनोट मेरे पास है।

गणेशप्रसाद : तो उसे फाड़ दीजिए, टुकड़े-टुकड़े कर दीजिए। मेरा एक पैसा भी नहीं चाहिए इनपर।

ज्योतिशंकर : यह क्या कह रहे हो सेठ गणेशप्रसाद !

गणेशप्रसाद : बस मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। आपके कहनेसे मैंने ईश्वरको धोखा दिया, अपने आत्माको, धर्मको और सत्यको धोखा दिया। दण्ड मिलनेसे पहले मैं प्रायश्चित्त कर लेना चाहता हूँ। क्षमा करो भाई चन्द्रदेव !

[घुटने टेक देता है।]

चन्द्रदेव : (आते हुए) उठिए गणेशप्रसादजी। मैं आपका ऋण मानता हूँ। चाहे हैंडनोट रहे या न रहे पर मैं ईश्वरके दण्डसे डरता हूँ। किन्तु मैं कुछ समय चाहता हूँ। आपका एक-एक पैसा दे दूँगा।

[द्वार ३ से रघुनायकका प्रवेश]

रघुनायक : मैं दे आया हूँ।

[सब आश्चर्यसे देखते हैं।]

चन्द्रदेव : क्या !

रघुनायक : सात हज़ार रुपए इनकी कोठीपर जमाकर आया हूँ। यह है इनके मुनीमकी पक्की रसीद।

चन्द्रदेव : यह तुमने क्या किया।

रघुनायक : वही जो मुझे करना था। मैं दस हज़ार रुपए छोड़

गया था इसलिये कि तुम उनका उपयोग करोगे। वह मैंने चित्रका मूल्य दिया था। मैं जानता था कि तुम उसी हरिश्चन्द्रकी परम्परामें हो जिसने स्वप्नमें दिए हुए दानके लिये अपना सारा राज्य दे डाला था।

चन्द्रदेव : तुमने रुपया दिया क्यों ?

रघुनायक : तुम्हारा वह पत्र मैंने पढ़ लिया था।

चन्द्रदेव : कौन-सा ?

रघुनायक : [जेबसे वह पत्र निकालकर दिखलाता है जो चन्द्रदेवने फाड़कर फेंका था और ब्रह्मेश्वरने लाकर दिया था।] यह !

चन्द्रदेव : (चिन्तातुर होकर) यह कहाँ मिला तुम्हें ?

रघुनायक : मेरी तपस्यासे मुझे मिला। यदि न मिलता तो मैं तुम्हारे हृदयमें हरिश्चन्द्रके दर्शन कैसे करता ?

ज्योतिशकर : (गणेशप्रसादसे) तुमने मुझे अच्छे फेरमें डाल दिया। मैं सबको एक-एक करके समझूँगा।

कमलाकर : पहले तुम मुझे समझ लो। (ब्रह्मेश्वरसे) ब्रह्मेश्वर ! इसे पकड़ो तो।

[ब्रह्मेश्वर पकड़ लेता है। कमलाकर उसका हाथ पकड़कर डण्डा उठाता है।]

चन्द्रदेव : (कमलाकरका हाथ रोकते हुए) यह क्या करते हो ?

कमलाकर : पूजा कर रहा हूँ। छोड़ो।

चन्द्रदेव : (कमलाकरका हाथ पकड़कर) छोड़ो, छोड़ो।

रघुनायक : (आगे बढ़कर रोकते हुए) हैं हैं ! क्या करते हो ?

[कमलाकरके उठे हुए हाथको चन्द्रदेव पकड़े हुए है। ज्योतिशंकर आँखें तरेरकर कमलाकरकी ओर देखता है। ब्रह्मेश्वर उसके दोनों हाथ पीछेसे पकड़े हुए हैं। गणेशप्रसाद डरके मारे नीचे बैठ जाता है और अपनी रक्षाके लिये हाथ ऊपर उठा लेता है। रघुनायक आगे बढ़कर कमलाकर और ज्योतिशंकरके बीच खड़ा होकर कमलाकरको रोकता है।]

[यवनिका-पतन]

भाषोपभाषा मिश्र-शैली

कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है कि नागरीके साथ उसकी उपभाषाओंका भी प्रयोग करना पड़ता है। यह शास्त्रीजी नामक कहानी लीजिए जिसमें नागरीके साथ व्रज, मेरठकी जट्ट और पंजाबी तीन-तीन उपभाषाओंका एक साथ रस मिलेगा।

शास्त्रीजी

चटसालसे लगाकर विश्वविद्यालय-तकके अपने सहपाठियोंको स्मरण रखनेका अर्थ यह है कि मैं जितने विद्यालयोंकी जितनी कक्षाओंमें पढ़ चुका हूँ सबका नाम-खाता मँगाकर एक पोथी लिखूँ और फिर उस साथी-सहस्रनामका नित्य पूजापाठके समय भक्तियोगसे पारायण किया करूँ। किन्तु यह न तो सम्भव ही है और न आवश्यक ही। इसलिये कभी मैंने यह प्रयत्न ही नहीं किया कि पुराने साथियोंकी स्मृति बनाए रखनेके लिये बौद्धिक डण्डबैठक किया करूँ। इस उदासीनताका निश्चित परिणाम यह हुआ कि बहुतसे ऐसे साथी भी स्मृतिसे उतर गए जिनके साथ धौल-धप्पा, खेल-कूद, रूठन-मनावन, सैर-सपाटा, खाना-पीना, उठना-बैठना, सब कुछ होता था, या यों कहिए कि जिनके साथ दाँत-काटी रोटी थी, जो लँगोटियाँ यार थे, जिनके साथ दुराव-छिपाव कुछ नहीं था। उन्हींमें शास्त्रीजी भी थे।

१९४७ की छठी अक्तूबरको मुझे दिल्लीसे तार मिला 'तत्काल चले आओ'। महावीर दलके अध्यक्ष राय बहादुर सूरजभान झालानीका तार था। मैं चल पड़ा। जब गाड़ी मथुरा पहुँची तो ज्ञात हुआ कि मथुरा और दिल्लीके बीच मारकाट मची है, गाड़ी आगे नहीं सरकेगी। सहस्रों यात्रियोंके साथ मैं भी उतरनेको विवश हुआ। यह ज्ञात होता तो मैं बम्बईसे ही न चलता। अब किया क्या जाय? लौटना ठीक

नहीं था, आगे बढ़नेका मार्ग ही बंद था। मैं इसी उधेड़बुनमें रेलके चौतरे पर घूम ही रहा था कि इतनेमें ध्यान आया—छोटी लैनकी गाड़ी जाने ही वाली है। कुलीके सिरपर बिस्तर-पेटी लदवाकर पैर बढ़ाए जा पहुँचा हाथरसवाली गाड़ीपर, जो अपने अभियानका प्रथम कूजन कर चुकी थी, केवल ध्वज-चालनके संकेतकी व्यग्र प्रतीक्षा कर रही थी। जितनी देरमें मैंने अपना बिस्तर लादा और स्वयं चढ़ा, उतनी देरमें गाड़ीने अन्तिम कूजन किया, भकभकाई, झटटा दिया, खड़खड़ा कर सरकी और चल दी।

गाड़ीमें चारों ओर पञ्जाबके नरमेधकी चर्चा थी। लोग नेताओंकी बुद्धिपर तरस खाते हुए यहाँतक अपनी उदार त्याग-भावना व्यक्त कर रहे थे कि 'यदि मुझे प्रधान मन्त्री बना दिया जाय तो एक दिनमें सब ठीक कर दूँ।' मथुरा और दिल्लीके बीच गाड़ी रोक-रोककर मनुष्यने अपनी क्रूर प्रतिहिंसा तृप्त की थी। परिणामतः सहस्रों शव, श्वापदों और पक्षियोंकी उदर समाधिमें चिर विश्राम कर रहे थे। इसी बीच किसीने यह भी सुर्रा छोड़ा—'इंघै बी यूह हो रा। कल दनकौरके आगै निरी लासी-लास बिछी पड़ी थी। दो दिनसै गाड्डी बी नी जाह्री।' [इधर भी यही हो रहा है। कल दनकौरसे आगे लाशें ही लाशें बिछी पड़ी थीं। दो दिनोंसे कोई गाड़ी भी नहीं जा रही है।]

ये सज्जन मेरठ जनपदान्तर्गत मुवाने के निवासी जाट थे। वे अन्तिम वाक्यके क्रियापदतक भी नहीं पहुँचे थे कि मैंडू (हाथरस) के एक सज्जनने आँखों-देखा प्रमाण देकर उसकी पुष्टि करते हुए कहा—'वा गाड़ीमैं मैं ऊ रहौ। बस जे देखलओ के गाड़ी जौ दनकौरके सिङ्गल ते आगे बढ़ी कै गाड़ीमें जित्ते सिक्ख हे वे सबेरे किरपान काढ़-काढ़िकै लगे भोंकिबे। बस जे समझ लओ के गाड़ीमें लहूकी नद्दी बहिबे लागी और मैं तो भैया, चादरमैं मूड़ बाँधिकै चुप्प हैके बैठ रह्यो, कहूँ मेरोऊ

कचूमर न निकाल दें। पैजामा-वारनकी तौ वो-वो गत भई कै पूछौ मती।'

मैं जैसे-जैसे सुन रहा था वैसे-वैसे मुझे पसीना छूट रहा था। हाथरस पहुँच कर भी यदि दिल्ली न जा सका तो इससे अच्छा मथुरामें ही पड़ा रहता, कमसे कम वहाँ इष्ट-मित्र तो थे। किसी प्रकार राम-राम करते हाथरस आया और छोटी लैनके दुखण्डे स्टेशनसे नीचे उतरकर जब मैं बड़ी लैनके चौतरेतक पहुँचा तो ज्ञात हुआ कि सचमुच गाड़ियाँ नहीं आ-जा रही थीं। बिना मुहूर्त्त विचारे दिशाशूलमें यात्रा करनेपर जितने भी उपद्रव सम्भव हो सकते थे सभीकी रूप-रेखा चल-चित्र बनकर व्यक्त होने लगी।

मैं बुद्धू और बौचट बना हुआ वहीं द्वितीय श्रेणीके विश्रामालयमें बिस्तर डालकर मुँह लटकाए हाथपर हाथ धरे 'मुख मलीन तन छीन' दशामें कुछ देर बैठा रहा और फिर उठकर पैरोंसे चौतरा नापने लगा। खाने-पीनेकी सुध किसे थी? चिन्ता थी इस समय दिल्ली पहुँचनेकी।

मैं घण्टे भर इसी सोच-विचारमें टहलता रहा। अचानक मैंने देखा कि एक सज्जन श्वेत पतलून पहने मेरी ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उनका वेश इस बातका सटीक प्रमाण था कि वे स्टेशन मास्टरसे लेकर टिकट-जचैयातकके बीचके कोई अवश्य हैं जो मेरी दीन मुद्रा तथा नियमित टहरान देखकर समझ बैठे हैं कि इस नित्य परिचित मुद्राके बिना टिकट चलनेवाले यात्रियोंमें मैं भी हूँ। मैं भी कुछ सिटपटा गया क्योंकि मेरे पास दिल्लीका टिकट तो था पर हाथरस होकर नहीं। मैंने रेलके उस नियमकी आड़ लेना चाही थी जिसके अनुसार लघुतम, अल्पतम समयका मार्ग ग्रहण करनेकी छूट थी, कौन जाने किचकिच हो जाय! फिर जिस क्रमसे यात्रा फलवती हो रही थी उसके विचारने मेरी आशंका और भी पुष्ट कर दी और मैं कुछ घबरा भी गया। मैं स्वयं अनुभव करने लगा कि मेरे मुख-मण्डलपर हवाइयाँ उड़ने लगी हैं किन्तु संसारमें

बिना टिकट अनियमित यात्रा करनेके जो अनेक हथकण्डे प्रसिद्ध हो चुके हैं उनमें सीधे तनकर चलना, मुखपर कृत्रिम मुस्कान फैला देना, टिकट जचैंयासे घुलमिल कर बातें कर लेना, उसे पान भेंट करना, बातोंमें लगा देना, दूसरे डिब्बेके मित्रके पास किकट होनेकी धुप्पल देना आदि कौशलोंका आवश्यक प्रयोग करनेका मैंने संकल्प कर लिया और जबतक वह मेरे पास आवे-आवे, उतनी देरमें तो मैंने निश्चय भी कर लिया कि मैं अपनेको पण्डित जवाहर लाल नेहरूका भवन-सचिव बताकर उसे अपनी महत्ताके आतंकसे इतना त्रस्त कर दूँगा कि वह मुझसे टिकटका नामतक न लेगा। मैंने झट नेताओं-के समान अपने दोनों हाथ पीछे किए और अत्यन्त गम्भीरताकी मुद्रा साधकर इस भावसे खड़ा हो गया मानों मैं असन्तुष्ट होकर कोई ऐसा प्रश्न करनेवाला हूँ जिसके उचित या अनुचित उत्तरपर उत्तरदाताका भविष्य निर्भर हो किन्तु आप सच मानिए, उसने जैसे ही मेरे पास आकर टिकट माँगनेके बदले 'पण्डित जी प्रणाम' कहकर मेरे पैर छुए कि मेरी सारी तैयारी भूकम्पके केन्द्रपर खड़े हुए भवनकी भाँति धड़-धड़ा कर ढह पड़ी और मैं अपनी स्मृतिके सभी कोनोंमें वेगसे उसके संसर्ग-की गम्भीर छानबीन करनेपर यह भी न समझ सका कि यह व्यक्ति अपने प्रमाण द्वारा मुझे किस क्षेत्रसे श्रद्धाका पात्र बनानेका प्रामण दे रहा है।

मेरी उलझन वह भाँप गया और मुझे अधिक वेलतक 'कोऽयं' की अनिश्चयतामें पड़ा न रहने देनेकी भावमयी श्रद्धाके साथ कह उठा—'मैं आपका शिष्य हूँ, देवकीनन्दन शर्मा।' अपने अध्यापक-जीवनके सोलह वर्षोंमें जिन चार-पाँच सहस्र छात्रोंके महारण्यसे मेरा संपर्क रह चुका है उनमेंसे इस शर्माकी ठीक-ठीक पहचान ढूँढ निकालना उस समय क्या, कभी सम्भव नहीं है। पर वह चतुर था। उसने स्वयं मुझे कह सुनाया कि 'मैं ट्रेनिंग कौलेजमें सन् १९३६ में आपका शिष्य रहा,

आप मेरे हिन्दीके निरीक्षक थे आदि, आदि।' इतना संकेत पा लेनेपर मैंने अपने अज्ञानकी झेंप मिटानेके लिये असत्यका आश्रय लेते हुए कहना प्रारम्भ किया—हाँ, हाँ, मैं तुम्हें भलीभाँति पहचानता हूँ। तुम रामबहोरी शुक्लके साथ थे आदि, आदि।'

कुशल-मंगल हो चुकनेपर मैंने अपनी सब गाथा इस प्रकार कह सुनाई मानो भारतमें इस समय मैं ही एक ऐसा साहसी पुरुष हूँ जिसने इतनी मारकाट होते हुए भी अपने प्राण हथेलीपर रखकर इतनी लम्बी यात्रा करनेका दुस्साहस किया है। अपने इस वक्तव्यसे मैंने उसकी श्रद्धाका पारा और भी ऊपर चढ़ा दिया। वह मुझे अपने कोटर (क्वार्टर) में ले गया और जिन विभिन्न उपादानोंसे स्टेशन मास्टर लोग बिना पैसेके ही अपने अतिथियोंका गहरा सत्कार करते हैं उसमें उसने कुछ उठा न रक्खा। जो पदार्थ उस दिन मेरी थालीमें लाकर रक्खे गए उनमेंसे यदि दो-चारके नामोंके पहले अक्षर भी मैं कह उठूँ तो आप लोगोंके मुँह सहस्रधारा बन चलें इसलिये इस बादके समय भूलकर भी ऐसी भूल न करूँगा। इसी समय उसने कथा सुनाई कि मैं हेडमास्टरसे स्टेशन-मास्टर कैसे बना दिया गया। मैंने उसे उत्साहित करते हुए कहा कि 'पहले स्कूल चलाते थे जिसमें तीन सौ छात्र थे, अब रेलगाड़ियाँ चलाते हो जिसमें लाखों नरनारी दिन-रात चलते हैं। पर मास्टरीने पिण्ड नहीं छोड़ा, वहाँ भी मास्टर रहे यहाँ भी मास्टर हो।'

जिस मूर्ख वैद्यने भोजनके पश्चात् 'शत पदं गच्छेत्' की व्यवस्था दी है वह अवश्य कभी किसी सेनामें काम करता रहा होगा। यदि कभी उसने चौबोंको भोजन करते देखा होता तो वह कभी ऐसी भद्दी भूल न करता और अवश्य लिख देता—'भोजनान्ते लभेन्निद्राम्।' इतना कसकर मैंने भोजन किया था कि बरफी, लड्डू, बालूशाही, इमर्ती, पेड़ा और कलाकन्दकी सम्मिलित गन्ध, पाचक डकारके साथ

व्यक्त होकर पूर्ण तृप्तिका अनवरत निर्घोष कर रही थी। मैं जो गद्देदार बिछौने पर लेटा तो बिछुड़ी हुई नींद बिना बुलाए आकर पलकोंके किवाड़ देकर भीतर समा गई। दिल्लीका विचार तो छूट ही गया था क्योंकि देवकीनन्दनने स्वयं इस बातकी पुष्टि कर दी थी कि दो तीन दिनसे उधर गाड़ियाँ न जा रही हैं न अभी सात-आठ दिन जा पावेंगी। इस निश्चित और प्रामाणिक वक्तव्यने मेरी निश्चिन्तता इतनी सबल कर दी कि उसने निद्राके आनेपर कोई रोक टोक नहीं की।

अचानक रातके दो बजे मुझे देवकीनन्दनने जगाया और कहा कि अभी-अभी आध घन्टेमें तूफान मेल आ रहा है जो दिल्ली अवश्य जायगा क्योंकि गाँधीजी उससे जा रहे हैं। मैं उछल पड़ा और दस मिनटमें कुर्त्ता-सदरी डाटकर सन्नद्ध हो गया। बिस्तर खुला ही नहीं था। चटपट रेलके चौतरेपर जा पहुँचा।

लगभग तीन बजे गाड़ी आई जिसमें हाथरससे बैठनेवाला मैं ही अकेला था और वह भी तिकड़मसे बैठाया गया था। गाड़ी चली और दिन चढ़ेतक शहादरा पहुँची। गाँधीजीका स्वागत करने सरदार पटेल और राजकुमारी अमृत कौर पहले आ पहुँची थीं। 'गाँधीजीकी जय' के कोलाहलके बीच गाँधीजी उतरे और सरदार पटेल तथा राजकुमारी अमृतकौरके कंधेका सहारा लेकर गाँधीजी मोटर-गाड़ीतक पहुँचे और चल दिए। बस यही गाँधीजीके अन्तिम दर्शन थे। उनके चले जानेपर हमारी गाड़ी भी दिल्लीकी ओर भकभकाती बढ़ चली। यमुनाका पुल पार करके ज्यों ही गाड़ी रुकी त्यों ही मैं देखता क्या हूँ कि दिल्लीका विराट्, भव्य स्टेशन उजड़ा पड़ा है। न कुली हैं, न टिकट-जिवैया हैं, न पान मिठाईवाले हैं न समाचार-पत्रवाले। दिल्लीका वह विशाल प्रशस्त रेलका अड्डा वधस्थल बना हुआ था। चारों ओर रक्तके प्रवाह और शव बिखरे पड़े थे। रेलकी पटरियोंपर कई लाख पाकिस्तानी कार्ड और लिफाफ़े छितराए पड़े थे। विनाश और विप्लवके जितने चिह्न

सम्भव हो सकते थे सभी दृष्टिगोचर हो रहे थे। जितने यात्री उतरे सभी शंकित, त्रस्त और सभीत दिखाई पड़ रहे थे। उन्हींमें एक मैं भी था। इतनेमें हल्ला हुआ—'वह मार डाला'। भगदड़ मच गई। पर मेरे साथ दो पोटलियाँ थीं, पेटी थी, बिस्तरका गट्ठर था, भोजनका डब्बा था। मैं खड़ा रहा। भीड़ छँट जानेपर मैं देखता क्या हूँ कि उसी भीड़मेंसे किसीने एक यात्रीको छुरा मार दिया है और वह तड़प रहा है। पास ही एक सैनिक प्रहरी खड़ा था। मैंने व्यग्रतापूर्वक उससे कहा—'इसे उठाकर अस्पताल क्यों नहीं पहुँचाते।' किन्तु उसने वैरागीकी उदासीनता के साथ अत्यन्त शान्त और निरपेक्ष भावसे कहा—'यह मेरा काम नहीं है। उठानेवाले अपने उठा आप ले जायँगे। मनुष्यके प्राण इतने सस्ते होते हैं और उसका मूल्य सड़कके कुत्ते जितना भी नहीं होता यह मुझे उसी दिन ज्ञात हुआ।

मैंने अपना टंट-घंट कन्धे किया और स्वयंसेवक बनकर द्वारसे बाहर निकल आया। जिस सड़कपर गाड़ी,मोटर, ताँगों और रिक्शोंका ताँता लगा रहता था, जहाँ भीड़में कन्धेसे कन्धे छिले जाते थे वही दिल्लीके चाँदनी चौककी चलती सड़क ऐसी सुनसान लग रही थी मानो किसी मुहम्मद तुग़लकने सारी दिल्ली किसी दौलताबादमें ले जा पहुँचाई हो। नगरमें करफ्यू लगा था इक्कीस घण्टेका। संयोगसे उस समय तीन घण्टेके लिये खुला भी था फिर भी कोई आ-जा नहीं रहा था। गाड़ीसे जो चार-पाँच सौ यात्री उतरे थे उनका स्वागत करनेके लिये कुल गिने-गिनाए सात ताँगे खड़े हुए थे और सभी पञ्जाबियोंके थे।

मैं न जाने कितनी बार दिल्ली जा चुका हूँ पर इतने पञ्जाबी ताँगेवाले मुझे कभी नहीं दिखाई दिए। सदा ताँगेवाले आकर पूछा करते थे—'कहिए किधर चलिएगा।' या दूरसे ही चिल्लाते थे—फ़ौव्वारेको एक सवारी, चले आओ चाँदनी चौकको, सब्ज़ी मण्डीको भाई सब्ज़ी मण्डीको।' और उनके ताँगेपर बैठकर जब मैं चलता तो

वे अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि ऐश्वर्यशाली मुग़ल सम्राटोंका रक्त अपनी नसोंमें दिखाते हुए मार्गके प्रत्येक ऐतिहासिक भवनका महत्त्व बताते हुए अन्तमें लम्बी साँस खींच कर कह देते थे—'अब वह बात कहाँ रही साहब, किसी तरह दिन गुज़र रहे हैं।' उनकी ठण्डी आहमें ऐसी वेदना व्यक्त होती थी मानो बहादुर शाहके पश्चात् दिल्लीकी गद्दी इन्हींकी थी।

किन्तु इस बार रंग दूसरा ही था। हम लोग उर्दूके कृत्रिम शिष्टाचारका बड़ा गुन गाया करते हैं, किन्तु पञ्जाबी शिष्टाचारकी सरलता, सरसता और स्वाभाविकताके आगे वह धूर है। एक पञ्जाबी ताँगेवाला मेरे माथेका चन्दन देखकर और मेरी कुछ नेताओंवाली वेश-भूषा देखकर ताँगेपरसे ही बोला—'कित्थे जाणा ऐ पण्डजी!'

'बेला रोड।'

'आओजी, असी बी उत्थैनूँ चलणा ऐ। रेलवे पुलदे नाल दो स्वारी उतारके चला चलूँगा।'

'क्या लोगे?'

'जो दिलमें आवे जी!'

'फिर भी।'

'तीण रुपए।'

यद्यपि बेला रोडके लिये तीन रुपए बहुत अधिक माँगे गए थे किन्तु उस समय मैं समझता था कि बड़े सस्ते निपटे। मेरा टंट-घंट लद गया और मैं आगे ताँगेवालेके पास जा बैठा। मैं चाहता भी यही था। न जाने लोग ताँगेपर पीछेकी गद्दीपर बैठनेके लिये क्यों मार करते हैं। मुझे तो पीछे बैठकर ऐसा लगता है जैसे हाथीकी नङ्गी पीठपर बैठ गया हूँ, जिसपरसे अब सरका, अब फिसला, अब गिरा; पर दिल्लीकी सड़क तो ऐसी है कि सग्गड़पर भी चलो तो विमानकी सवारीका आनन्द मिले। इसलिये हम लोग सकुशल रेलके पुलतक पहुँच गए।

वहाँसे दो सवारियाँ उतर गईं। मैं ही रह गया। घोड़ेकी गति बढ़ गई। यदि जन-संकुला दिल्ली होती तो हमारे पञ्जाबी सारथिको भी गुलेरीजीकी प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' के ताँगेवालेके शब्दोंमें 'हटो बाछा, बचो माई' आदि वाक्योंकी अनवरत उद्धरणी करनी पड़ती, किन्तु मार्ग जनशून्य था। उसपर घोड़ा अपनी टापोंसे सड़कको ठोंकता हुआ अपने एकाधिपत्यका उद्‌घोष करता बढ़ा चला जा रहा था।

सारथिने पहले तो एक पञ्जाबी गीत छेड़ा—

पीलू पकियाँ होऽ, पकियाँ होऽ, आ चुनिये रलमिल यार।
हत्था-पैरानूँ लाके मेंहदी। यारदी ख़ातिर चिक्क-विच्च वेंहदी॥
आ मिलिए दिलवर यार। रोवन अँक्खियाँ हो, अँक्खियाँ हो।
आ चुनिए रलमिल यार॥

गीत समाप्त करते-करते बेला रोड आ गई। सामने यमुनाजी दिखाई पड़ीं। मैंने श्रद्धासे प्रणाम किया और उसने जो लय प्रारम्भकी तो मैं भौचक्का होकर उसे देखने लगा। वह अलाप रहा था तन्मय होकर शिखरिणी छन्दमें संस्कृत भाषामें—

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम्।
वियज्ज्वालामुक्तां श्रियमपि सुखाप्तेः प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम्॥

यमुनाजीका यह मधुर स्तोत्र सुनकर मैं लज्जासे गड़ा जा रहा था कि ब्राह्मण, 'पण्डितजी' उपाधिधारी और संस्कृतका प्राध्यापक होकर भी मुझे यमुनाजीकी स्तुतिका वह श्लोक भी कंठाग्र नहीं था। आजकल अँगरेज़ी विद्यालयोंमें संस्कृतकी कुछ शिक्षा ही ऐसी होती है कि हम अँगरेज़ीमें तो संस्कृत साहित्यपर बहुत कुछ कह-सुन सकते हैं किन्तु संस्कृतके नाम ठन-ठन गोपाल। वह स्तुति समाप्त कर चुका तो उसके वास्तविक परिचयके लिये व्याकुल हो उठनेवाली मेरी उत्कण्ठा

मुखरित हो उठी उसने अत्यन्त संक्षेपमें पञ्जाबी हिन्दीमें अपनी कथा सुना डाली—

'मेरा जनम जी सरगोधा पञ्जाब दे विच्च हुन्दा, पर साड्डे पिताजी लहौरदी पाठशालादे विच्च पाशा (भाषा) दे पण्डित थे। उन्हीं दे नाल (साथ) रहके सानूँ पञ्जाबदी शास्त्री कीत्ती, सकूलमें मैट्रिकुलेशन पास कित्ता होर मालवीजी महाराजकी किरपासे बनारस युनिवर्सिटीसे बी० ए० पास कीत्ता। पिच्छे लहौरदे सनातनधरम सकूलमें मास्टर होके ह्लाई नौकरी करता दी। अगस्तमें जो रौला (हल्ला) मचा, खून-खच्चर हुन्दा, साड्डे पिताजी मारे गए, माताजी आगदे विच्च जल मरीं। बी मुहल्लेदे नाल सोट्टा लेके बहार निकला। चार दिनतक तो असी जमके लड़े पर जी पाकिस्तानी मिलटरी दी मदतसे मुस्लमान शेर हो गए जी। मेरी पतनीने कोट्टेसे गिरकर जान दे दी होर मैं सबदे नाल अपने दो बच्चे लेके ह्लासे चला आया। कुछ दिन शरणार्थी कैम्पमें रहा। अब ताँगा चलाता हूँ।' और यह कहते-कहते उसकी पलकें भीग आईं। कुर्तेकी बाँहसे आँसू पोंछकर वह चुप हो गया। उसकी व्यथाका पूरा और विस्तृत इतिहास मैं उसकी आँखोंमें पढ़ रहा था।

ताँगा रायबहादुर झालानीके फाटकपर पहुँच चुका था। किन्तु वह मेरे विश्वविद्यालयका स्नातक था। मेरा गुरुकुलका बन्धुत्व उमड़ पड़ा। मैंने पूछा—'किस सन्‌में बी० ए० किया था।'

उदासीनतासे उसने कहा—'सन् अट्ठाइसमें।'

मैं बड़बड़ाया—सन् अट्ठाइसमें ?'

और मैं इस सारथिके व्यथित, क्लांत और वृद्ध अवस्थावाले मुखमें अपने अध्ययन-युगके सभी साथियोंके रूपकी स्मृति उससे मिला-मिला कर उसे पहचाननेका प्रयास करने लगा। सहसा मैं बोल उठा—रोशन लाल शास्त्री ?'

उसने मेरी ओर एक बार देखा और फिर आश्चर्यचकित होकर बड़े

उच्च-स्वरसे मेरा नाम लेकर मेरे गलेसे चिपट गया। मेरी आँखें बरस चलीं। ऊपर छज्जेपर खड़े रायबहादुर झालानी और ठाकुर साहब आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। वे क्या जानते थे कि आज बीस वर्षके मौन युगके पश्चात् मैं अपने पुराने सहपाठी शास्त्रीजीसे भेंट कर पाया हूँ जो हमारी स्वतन्त्रताकी वेदीपर अपने माता, पिता और पत्नीकी बलि देकर, घरबार छोड़कर और अपने बच्चोंको लेकर भाग खड़े होनेको विवश हुए हैं, जो शरणार्थी होकर लोगोंकी कृपा पर रूखे-सूखे कैम्पके भोजनपर सन्तुष्ट होनेको विवश हुए हैं और जो आज भिक्षा-वृत्ति और पराश्रयताको तुच्छ समझकर स्वावलम्बी और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करनेके लिये बी० ए० और शास्त्री होनेपर भी अध्यापकका काम न पाकर आज ताँगा चलाकर अपना और अपने बच्चोंका पेट पालनेके लिए बाध्य हो रहे हैं।

सहभाषा मिश्र शैली

कभी-कभी ऐसा भी प्रकरण आता है कि नागरीके साथ उसकी सहयोगिनी भाषाओंका भी प्रकृत प्रयोग कर देना पड़ता है। इसके उदाहरण-स्वरूप यह लीजिए एक नागरीकी कहानी जिसका शीर्षक ही मराठीमें है—माझा नवरा मुलगा आहे। (मेरा पति अभी बच्चा है।)

माझा नवरा मुलगा आहे

पञ्जाबके लिये शिमलेका, उत्तर-प्रदेशके लिये मसूरी और नैनी-तालका, बिहारके लिये राँचीका, बङ्गालके लिये दार्जिलिङ्गका, मध्यप्रान्त-के लिये पचमढ़ीका, मद्रासके लिये ऊटीका और सम्पूर्ण भारतके लिये कश्मीरका जो महत्त्व है, वही बम्बईवालोंके लिये महाबलेश्वरका है। इसीलिये बम्बई पहुँचकर महाबलेश्वर न जाना वैसा ही बौंध्य है जैसे

देहरादून पहुँचकर मसूरी न देखना, काठगोदाम-तक जाकर नैनीताल जानेमें अलसाना, नन्दनवनमें पहुँचकर आकाश गङ्गामें न तैरना, कल्पवृक्ष पाकर उसकी डालपर न झूलना या कामधेनुके दुग्धामृतसे भरा कमण्डलु हाथमें आ जानेपर भी अपचके डरसे मसे स्वर्गंगामें बहा देना।

अत: घोंघेपनका दोष परिहार करनेकी सद्वृत्तिसे प्रेरित होकर हम लोग ठीक अर्धरात्रिकी निशाचरी वेलामें पूना पैसेञ्जरके उस हीनयानपर आरूढ़ हुए जिसके प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें बैठकर आप दौड़ती हुई साँड़नी और पथरीले ऊबड़-खाबड़ मार्गपर हरियानेके बैलोंसे जुती दौड़ती हुई बहलीकी सम्मिलित सवारीका स्वस्थ आनन्द ले सकते हैं। प्रत्येक आवश्यक-अनावश्यक, इच्छित-अनिच्छित और निर्दिष्ट-अनिर्दिष्ट स्थानपर यथेप्सित विश्राम करती हुई वह गाड़ी इस मंथर गतिसेसे चल रही थी मानो अञ्जनके स्थानपर उसमें चन्द्रमाके रथसे खोलकर वे मृग ला जोते गए हों जो मार्गमें मिलनेवाली प्रत्येक विरहिणीके वीणा-वादनसे मुग्ध होते, ठहरते चले जा रहे हों।

रात्रिकी गाड़ी चुनी थी निद्रा सिद्ध करनेके लिये किन्तु भारतीय दर्शनसे प्रभावित रेलके अधिकारियोंने हमें संयमी बनानेके लिये रातको जागते रहनेकी सुव्यवस्था कर दी थी। रातको चलनेवाली सभी गाड़ियोंके डिब्बोंमें कुछ ऐसी कमानी अवश्य लगा देनी चाहिए कि रातको नींद आनेका नाम ही ले। इससे चोरी भी न होगी और जो लोग नींदके झोंकेमें हठयोगकी अनेक मुद्राओंका निःशुल्क प्रदर्शन करनेकी उदारता दिखाते हैं उनका श्रम भी बच जायगा। मैं तो इस प्रकारके यानोंपर बहुत बार व्यायाम करके सिद्ध हो चुका था किन्तु हमारे सामनेकी पटरी पर लेटा हुआ युवक रह-रहकर बड़े फूहड़ शब्दों-में उसे कोस रहा था।

राम राम करते हम लोग पूना या पुणें पहुँचे। अप्रैलके दिन केवल

उत्तर भारतमें ही नहीं, दक्षिण भारतमें भी कम कष्टकर नहीं होते, फिर भी पुर्णेमें प्रातःकाल कुछ अधिक कष्टकर नहीं था।

रेलके अड्डेसेसे चलकर हम लोग पहुँचे भूयान (मोटर) के अड्डे पर। वहाँ नामपट्टपर अङ्कित था—'पञ्चगनी मोटर सर्विस।' बड़ी श्रद्धा हुई। पर जब उन भूयानोंका रूप देखा तो श्रद्धा मनुके साथ भाग खड़ी हुई और मैं मानव अपनी इडाको कोसता मुँह बाए खड़ा रह गया। किन्तु जब देखा कि मोहमयी अलका (बम्बई) के न न जाने कितने कुबेर अपनी-अपनी सुभ्रू यक्षिणियोंके साथ उसी संकुचित, असुन्दर, निम्नशीर्ष भूयानके द्वार-विवरके भीतर लय होते चले जा रहे हैं तब मैं भी अपने मित्र शर्माजीके साथ सिर झुकाकर बिना प्रलय आए ही उसी खण्ड ब्रह्ममें लीन होनेको विवश हो गया।

वहाँके व्यवस्थापकोंने सूचना दी थी कि 'बरोबर साढ़ा छे बजे हमारी गाड़ीको छूटनेका टैम है।' पर गाड़ीके भीतर बैठे हुए सभी यात्रियोंकी घड़ियोंमें सात बज चुकनेपर भी चालककी सूई रहित, त्रिगुणातीत, निर्लेप घड़ी अभी साढ़े छह बजानेकी लोकलिप्सता दिखानेको उद्यत नहीं थी, किन्तु सहसा भूयानका अञ्जन भड़भड़ाया, गरजा और गाड़ीके अङ्ग-अङ्ग तथा यात्री-यात्रीको विकम्पित और प्रकम्पित करने लगा।

गाड़ी या सग्गड़िका वहाँसे चली तो सही पर थोड़ी ही दूरपर 'वेस्टर्न इंडिया थिएटर' के पास तेलकी टंकीपर उपचारालाप प्रारम्भ हो गया—

'ओ मास्तर! दस गेलन भरनेका है। फुर्ती करो।'

'तुम्हारा कूपन किदिर है।'

अत्यन्त गम्भीरता और निश्चिन्तताके साथ कूपन निकाल दिए गए, रबड़की नली उठाई गई, हत्था लगाया गया, तेल भरा-सूँता गया, पैसे लिए-दिए गए, चालक महोदयकी सिगरेट-बत्ती हुई और इस

निश्चिन्तताकी आध घण्टेकी अवधिमें भीतरकी संकुचित अन्तर्वेदिकामें बैठी हुई कई मोमकी पुतलियाँ गल गईं और कई मोमके गुड्डे ढह गए।

फिर वही भड़भड़—खड़खड़—गड़गड़ और गाड़ी अपने पथपर चलने लगी। अस्सी मीलकी यात्रा सामने थी, गाड़ी यह थी। दोनों ओर सूखे पहाड़, कभी-कभी कहीं-कहीं एक आध छोटा-मोटा वृक्ष एकान्त साधकके समान दृष्टि बाँध लेता था। तिरछे-बाँके, ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, उठते-गिरते, डोलते-घूमते, सुरंगें पार करते हम लोग वाय पहुँचे और गाड़ी रुक गई। हम लोग भी उस गर्भवेदिकासे क्षणिक मुक्ति पानेके लिये उतर पड़े। हम लोगोंकी आवभगतके लिये अनेकों बच्चे और युवा अपने वेश और शरीरमें भारतीय दरिद्रताके सम्पूर्ण अङ्ग व्यक्त करते हुए शन्तरे, मुसम्मी और अंजीर लिए खड़े थे। और सस्ते कितने ? दो पैसेका एक शन्तरा, दो पैसेकी एक मुसम्मी और एक आनेमें इतनी अंजीरें कि यदि बारह व्यक्तियोंका पारसी परिवार सब खाले तो सबको अजीर्ण हो जाय। वहीं मैले-कुचैले कुछ लड़के लम्बे पट्ठे बहाए 'चली आना हमारे अँगना,' 'अँखियाँ मिलाके' आदि कुछ ऐसे फूहड़ गीत गा-गाकर पैसे माँग रहे थे जिनके प्रचारका पाप हमारे कवियों, चित्र-निर्माताओं और उनसे भी अधिक सरकारी चित्रालोचक-मण्डलको है। टीनकी छाजन और बाँसके टट्टरोंसे बने दो-एक दरिद्र उपहार-गृह (रेस्टौराँ) भी थे। किन्तु इतने मलस्वी कि उन्हें देख-लेनेतकमें भी जी मचल उठता था। फिर भी हमारे साथियोंमें कुछ टी-रसिक, चाह-चाहक ऐसे भी थे जिन्हें यदि रसखान-संग्रह सम्पादित करनेके लिये सौंपा जाता तो निश्चय यह संशोधन कर देते—

'या कप सौसर चाय भरेन पै राज तिहूँ पुरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधिको सुख चाय पै चाय पचाय बिसारौं।
रसखान कबौं इन आँखिन तै नव नीलगिरीपर चाय निहारौं।
कोटिन वे कलधौतके धाम हरामकी चाय पै चावते वारौं।'

न जाने कैसे हमारे साथियोंके ओठ उन लोक चुम्बित मलिन प्यालोंको स्पर्श कर पाए और न जाने कैसे वह कत्थई गरम काढ़ा उनके कण्ठके नीचे उतर पाया ! वहाँ बंबैया चिउड़ा मिल रहा था जो सींग दागनेके साथ लीमड़ेकी बघारसे मूँगफलीके तेलमें तला हुआ था और आश्चर्य तो यह था उसे भी लोग खा रहे थे। या तो भूखमें किवाड़ पापड़ बन गए थे या फिर 'तस्य तदेव ही मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्—जो जाहीको भावता सो ताहीके पास।

फिर गाड़ी चलने लगी। वाय और पञ्चगनीके बीच एक दुर्गम घाटी पड़ती थी। उसीके एक मोड़पर गाड़ी रुक गई। अभी कुछ क्षण पहले एक सहस्र फुट नीचे घाटीमें एक सैनिक भूयान गिर चुका था और भगवान्‌की माया कुछ ऐसी कि यद्यपि भूयान चूर-चूर हो गया था और पाँच सैनिक भी समाप्त हो गए फिर भी दो सैनिक अनाहत बचे रह गए। इस सङ्कट-मोड़पर सदा ऐसी दुर्घटनाएँ होती ही रहती हैं फिर भी चालक अपनी ऐंठ और दुरभ्यास नहीं छोड़ते।

वायसे ही वायुमें कुछ शीतलता आने लगी थी। दोनों ओरके सूखे पहाड़ अब हरियाली ओढ़ चले थे। पहाड़की ढालपर हरियाले खेतोंकी क्यारियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो नन्दन-वनतक चढ़नेके लिये किसी समर्थ साधकने सहस्र-सीढ़ी बनवा दी हो। अब हम लोग क्षयके स्वास्थ्याश्रम-तक पहुँच चुके थे। हरियाली गहरी हो चुकी थी। वृक्ष ऊँचे हो चले थे और सड़कके छोरपर ही उस आश्रमके दर्शन हो चले थे जहाँ गाँधीजी विश्राम और प्रार्थना किया करते थे। सहसा आलम-की पंक्तियाँ रो उठीं—

नैननमें जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं।

सबके हाथ भाव-प्रेरणासे संपुटित हो गए, माथे झुक गए और पलकोंने नेत्रोंका बाह्य व्यापार थोड़ी देरके लिये रोक दिया।

पञ्चगनी पहुँचकर गाड़ी फिर रुक गई। गांधीजीकी स्मृतिके अति-

रिक्त पञ्चगनीमें और कुछ नहीं है, हाट दो कौड़ीका। बस्ती उससे भी गई बीती और यदि बम्बईके सेठोंने कुछ सुन्दर वैभव-कुटीर न बनवा दिए होते तो यहाँ दिनमें भी सियार लोटते, रातमें घुग्घू फेरा लगाते और कभी रीछोंका परिवार किसीको अकेला-दुकेला पाकर मार थप्पड़ोंके उसका कचूमर निकाल दिया करता और गला मरोड़कर उसका रक्त पी जाया करता।

चाइया लोग पुनः चायकी चुस्की लेने लगे और उस संक्षिप्त चाय-पानके पश्चात् हमारा महायान चलनेका उपक्रम करने लगा।

ज्योंही पञ्चगनीसे गाड़ी चली त्यों ही मेरी दृष्टि उस गाड़ीके सामनेवाली पटरीपर बैठे उस आंग्ल वेष-मण्डित गौर वर्णके युवकपर पड़ी जो रह-रहकर वहाँ उपस्थित मानवताके कोमलतर पक्षकी ओर ऐसे आपत्तिजनक तथा अनागरिक रूपसे भ्रूसंकोच, भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात, कटाक्षलोडन तथा नेत्रविलोडन कर रहा था कि उसकी वृत्ति हम लोगोंको कुछ अच्छी न जँच पाई। उसके व्यवहारसे यह सिद्ध हो गया कि वह बम्बईमें पहली बार आया है और बम्बईका शील उसे स्पर्श भी नहीं कर पाया। ये वे ही सज्जन थे जो रातकी गाड़ीमें जागरण करके गाड़ीको कोस रहे थे। शर्माजीने मेरे कानमें अनुदात्त स्वरमें उस कुचेष्टा की भनक डाली किन्तु मैं देख रहा था दोनों ओरकी मनोहर हरियाली और उस मिट्टीको जो कालीसे पीली हो चली थी। दोनों ओर तरकारियोंके खेत थे जिनमें अप्रैलमें भी गोभी, मटर, टमाटर और रसभरी लहलहा रही थीं। जब कई बार शर्माजीने मुझे खोदा तो मैंने हल्की सी हुंकारके साथ भौं खींचकर जो उन महोदयकी ओर ताका तो वे सकपकाए, खीझे, लजाए और चोरी पकड़ लिए जानेकी स्वाभाविक ग्लानि और झेंपसे श्वेत होकर बाहर झाँकने लगे।

महाबलेश्वरकी झील आ गई थी। नैनीतालका भीमताल यदि आपने देखा हो, कश्मीरकी डल झील देखी हो, उदयपुरका उदयसागर

देखा हो या अजमेरका आनासागर देखा हो तो इस झीलकी कल्पना करनेमें आपको अधिक मानसिक प्रयास नहीं करना होगा। यदि नहीं तो अपनी आँखोंमें मेरी आँखें डाल लीजिए, आपको स्पष्ट हल्की बयारके साथ नन्हीं-नन्हीं लहरोंकी धारियाँ अपनी ओर खींचती हुई, तटवर्ती वृक्षोंकी उलटी हरियाली छाया हृदयमें प्रतिबिम्बित करती हुई, बीच-बीचमें कलैया खानेवाली चञ्चल मछलियोंकी चमकसे बिजलियाती हुई वह नीले जलकी महाराशि पूर्वसे पश्चिमतक फैली दिखाई देगी जिसके दक्षिणकी कोरपर किनारीके समान टँकी हुई सड़कपर वृक्षोंकी दुहरी छाया-कुञ्ज-गुहामें हमारा हीनयान धूल और धुएँका बादल पीछे छोड़ता हुआ अपना आनन्द गर्जन शब्दगुण आकाशकी असीमतामें परिव्याप्त करता हुआ और अपनी अकोमल धमकसे पृथ्वीको प्रकम्पित करता हुआ अगाड़ी बढ़ता चला जा रहा था।

नगरमें पहुँचकर उस चलकारासे मुक्ति मिली और हम लोग उतर पड़े। स्प्रिंगफील्ड नामक बँगला हम लोगोंने ठीक किया था, पूरी ऋतु अर्थात् तीन मास—वैशाख ज्येष्ठ, और आषाढ़के लिए दो सहस्र रुपये-पर। सामान पटका एक प्रकोष्ठमें, हरी छालके दो केले और पावभर कलाकन्दके साथ सिन्धी ग्याठींकी जो पूर्णाहुति देकर एक लोटे जलका अर्घ्य दिया तो उदर देवताने संतृप्त होकर शरीरको सतेज कर दिया और हम लोग झीलकी ओर चल दिए।

अभी भरी दुपहरी थी किन्तु बम्बईके सपाटिया सेठ झीलको ही चौपाटी और मरीन ड्राइव बनाए हुए थे। बेल पल्ले टँकी हुई गुलाबी, नीली, उन्नावी और काही साड़ियोंमें उड़ती हुई पारसी नारियाँ, श्वेत पहरन (कोट), पतलून और काले जूतोंसे मण्डित, पारसी चालकी गोल काली टोपियाँ, नौरोजिया पगड़ी या पुरोहिती सफेद पगड़ी बाँधे पारसी लोग, अनेक प्रकारकी रङ्गबिरङ्गी पगड़ियाँ और काली टोपियाँ जमाए हुए गुजराती और लाल धूप-छाँह या काली साड़ियोंका कच्छा

मारे मराठी नारियाँ उस सुन्दर ताल-तटको सुन्दरतर बना रही थीं।

जिस महाबलेश्वर मन्दिरके नामपर यह बस्ती रङ्ग जमाए हुए है वह अभी चार कोस था। आस्तिक होनेके नाते मैं देवमन्दिरका दर्शन करने चल दिया। जैसे त्र्यम्बकेश्वरसे गोदावरीकी धारा निकलती है वैसे ही महाबलेश्वरकी मूर्त्तिसे कृष्णा नदीका उद्‌गम होता है। पहुँचते ही महाराष्ट्री पण्डेने नाम-ग्राम पूछकर अपनी बहियोंमें मेरे पूर्वजोंकी वंशावली खोजनी प्रारम्भ कर दी किन्तु मुझे यह जानकर अत्यन्त गर्व हुआ कि अपने वंशमें मैं ही ऐसा पराक्रमी आस्तिक हूँ जो विन्ध्य और सतपुड़ाकी गिरि-मेखलाको लाँघकर पश्चिमी घाटके इस एकान्तस्थ तीर्थके दर्शन करने आया हूँ। सब पण्डोंको वंशानुसन्धानका गुरुभार सौंपकर मैं पश्चिमकी ओर प्रस्तरगोमुखसे निकलनेवाली जलधारा देखने लगा जो आगेके कुण्डमें निरन्तर गिरकर चौड़ी होती जा रही थी और जिसकी शीतलता और स्वच्छता किसी तृष्णाको भी सतृष्ण करनेको पर्याप्त थी।

सन्ध्यातक हम लोग लौट आए और आते ही देखा कि वही मोटरका साथी युवक हमारे बँगलेके मालीसे कुछ गपचुप बातें कर रहा है। माली घाटी था—लंबा, दुबला-पतला, मैला साफा बाँधे, घुटनोंतक मैली धोती और तनपर अधबहियाँ पहने खड़ा था। हम लोगोंसे चार आँखें होते ही वे सहसा चुप हो गए जिससे स्वाभावतः हमें यह समझनेको विवश होना पड़ा कि दालमें कुछ अवश्य काला है।

पर हम लोग थके थे। न इतनी शक्ति ही थी कि अपनी जिज्ञासा तृप्त करनेके लिये वहाँ खड़े होते। इसलिये हम दोनों बँगलेके भीतर पहुँचे और धड़धड़ाते हुए जा पहुँचे ऊपर। मेरा पलँग उसी खिड़कीके पास था जहाँसे बँगलेके उत्तर और पूर्वके सब दृश्य दृष्टिकी परिधिमें भली-भाँति समा रहे थे।

मैंने देखा कि वह युवक अभीतक उस घाटीसे बातें कर रहा है।

थोड़ी ही देरमें एक और भी व्यक्ति आ पहुँचा जिसमें असुन्दरताके सारे लक्षण ब्रह्माने एक साथ कूट-कूटकर भर दिए थे। वामन आकारके साथ उसकी अभव्य स्थूलता, रंगकी गहरी कालिमा और फैली गोल नाकने उसे असुन्दर ही नहीं, अमांगल्य भी बना दिया था। उसे देखते ही न जाने क्यों ऐसा लगा कि उसका हृदय भी निकृष्ट और कालुष्यपूर्ण होगा। वे इतने धीरे बोल रहे थे कि उनके असाधु होनेका मेरा सन्देह दृढ़-तर होता चला जा रहा था किन्तु शरीर इतना क्लान्त था कि मनकी सम्पूर्ण जिज्ञासापूर्ण उत्कण्ठा ज्यों की त्यों दबी पड़ी रह गई, उभर न पाई।

उसका नाम कामटी था और काम था सैर-सपाटेके लिए आने वालोंके निमित्त बँगले ठीक करना। किन्तु वह इतना ही न करता था। वह चोर-हाटका चण्ट चाइयाँ भी था और जो लोग वहाँ आते थे उनकी विलास-सामग्री भी जुटाता था। जिस बँगलेमें हम लोग रहते थे वह था एक ट्रस्टका जिसका स्वामी पृथ्वीसे उकताकर स्वर्ग या नरकमें बँगला बनवाकर रहने लगा था। अतः इस समय वहाँका स्वामी, व्यवस्थापक, प्रबन्धक, सञ्चालक सब कुछ वही था। उसी दुर्दर्शनीय वामनकी क्रूर कृपासे दो सहस्र रुपयेपर तीन मासके लिये बँगला ठीक किया गया था। इतना कुलक्षण होनेपर भी उसे हम अपना हितू माननेको विवश हो गए थे क्योंकि सभी परदेशियोंके लिये वह अशरण-शरण था। इसलिये भी मुझे मौन रह जाना पड़ा कि यदि वह उस युवक और घाटीके साथ मिलकर कोई अकाण्ड काण्ड भी करे तो वह उसका नित्य व्यापार होगा, उसे मैं रोक भी कहाँतक सकूँगा। मैं जानता था कि वह सड़ककी मोड़पर खड़ा-खड़ा गेहूँ, तेल आदि पदार्थ गाँवके लोगोंसे मोल लेकर बगियामें बने हुए लोहेके कड़ाहोंमें छिपा रखता था और काले रुपये लेकर परदेसियोंको मूँड़ता था।

इसी बीच एक छोटी-सी बैलगाड़ीपर और दो गोले बैलोंपर पखा-

लोंसे पानी एक कोस दूरीके झरनेसे। पीनेका पानी बस्ती भरके लिये वहींसे आता था।

हाथ-मुँह धोकर हम लोगोंने अपनी भोज-पटिकासे पूरियाँ, आलू-की सूखी तली हुई फाँकें, रस-मलाई और सोहन हलवा निकालकर गहरी मात्रामें जमाया और गंभीर पुट देकर जो लेटे तो लेटते ही स्वप्नलोकमें जा प्रविष्ट हुए।

अचानक 'सँभाल सँभाल'के चीत्कारसे हमारी नींद टूट गई और अँधेरे कमरेसे मैंने सामने देखा कि माली अपनी मलिन कुटीरके धूमिल प्रकाशमें खड़ा अपनी कन्याको हरी कमचीसे पीटे जा रहा है।

स्त्रीका पीटना मैं सहन नहीं कर सकता। जो स्त्रियोंको पीटते हैं उन्हें मैं पशुत्वसे भी नीचे नरपिशाचकी श्रेणीमें गिनता हूँ। मैं तत्काल उठ खड़ा हुआ। मैंने अपना बादामका डण्डा हाथमें लिया, उतर आया नीचे और पहुँच गया क्षणभरमें वहाँ।

घाटी मारता जा रहा था और कहता जा रहा था—'डेडकी आन, नाहीं तर मारून टाकिल। (दे पैसा नहीं तो मार डालूँगा)।

वह भी पिटती जा रही थी, रोती जा रही थी, किन्तु दृढताके साथ कहती भी जा रही थी—'आपल्येला मारून टाक, आपले कडे डेडकी नाहीं। (तू मुझे मार डल, मेरे पास पैसा नहीं है।)

वह गर्जनके साथ कमचीकी सड़ाकसे उस बालिकाके पीठपर सांटे डालता हुआ कहता जा रहा था—'तुम्हीं नाहीं देणार, नाहीं देणार ? (तू नहीं देगी, नहीं देगी ?)

वह पीठपर पड़ती हुई कमचीकी सपाकपर तिलमिलाती हुई, हाथसे आहत स्थानको मलती हुई, आँखोंके आँसुओंमें रोष और तेज घोलती हुई क्रमिक आरोहपूर्ण स्वरोंमें अवज्ञाके साथ कहती जा रही थी—'नको नको, नको।' (नहीं, नहीं, नहीं।)

मुझे देखकर वह फिर चिल्लाई—'सँभाल सँभाल।' (बचाओ, बचाओ)।

मुझे देखते ही मालीके हाथ भी रुक गए और मेरी पैनी दृष्टिसे वे दोनों धूमिल मूर्तियाँ भी रहस्य न बन पाईं जो धीरेसे एक ओरको खिसक चली थीं।

मैंने पहुँचते ही आक्रोश और अधिकार-भरे स्वरमें डाटकर पूछा—'क्यो मार रहे हो उसे?'

अपने मदविह्वल नेत्रगोलक पूरे घुमाकर शिथिल चरणोंकी डगमग गतिसे मेरी ओर घूमते हुए उसने मुझसे कहा—'तुम्हीं कोण मधी बोलनार? (तुम कौन बीचमें बोलनेवाले?)।

'तुमचा काका' (तुम्हारा चचा) कहकर मैंने जो एक डंडा कसकर उसके हाथपर जमाया तो उसके हाथसे कमची छूट पड़ी और वह भागा वहाँसे पत्तातोड़।

जैसे नया मुसलमान अल्ला ही अल्ला पुकारता है वैसे ही मैंने जो नई-नई मराठी सीखी थी उसीमें बस लगा उस कन्यासे सब कथा पूछने—'हे तुमचा कोण आहेत?' (यह तुम्हारा कौन लगता है?)

'हे हमचे वडील आहेत?' (यह मेरा पिता है।)

'कसा मारतात?' (क्यों मारता था?)

'हे दारू पियायला डेडकी माँगतात।' (यह मदिरा पीनेके लिये पैसा माँगता था।)

'तुमचा अनकी कोण सम्बन्धी?' (तुम्हारे और कौन सम्बन्धी हैं?)

'लहान भाऊ मुम्बई मधी नोकरी करतात।' (छोटा भाई बम्बईमें नौकरी करता है।)

इसके पश्चात् उसने जब अपनी कथा सुनाई कि मैं क्यों अपने पिताके क्रोधका भाजन बन गई हूँ तब मैं उस युवक और कामटीके

सान्ध्य मिलनका रहस्य समझने लगा और इस ग्लानिसे जलने लगा कि हमारे देशमें ऐसे भी घृणित पिता जीने दिए जा रहे हैं जो मदिराके एक प्यालेके लिये अपनी कन्याको भाड़ेपर चढ़ा सकते हैं।

उसकी कथा सुनकर मुझे इतना क्रोध आ रहा था कि यदि उस समय मेरे सामने वह युवक, कामटी और घाटी तीनों होते तो मैं तीनोंको यमराजका अतिथि बनाकर, उन्हें लोक-निकाला देकर ऐसी आत्मतुष्टि प्राप्त करता मानो मैंने नारकीय कीटोंसे अपनी भूमिको मुक्त किया हो, विलासी नरपिशाचोंकी पैशाचिक काम-वासनापर अंकुश लगाया हो और धूर्त्त दलालोंको नारीके सतीत्वका सौदा करनेका पूरा दण्ड दे दिया हो।

मैं उसे जैसे-जैसे देख रहा था, वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी करुणा और उसके पिताके प्रति क्रोध वेग पकड़ता जा रहा था। वह पन्द्रह वर्षकी रही होगी, बड़ी स्वस्थ और सुन्दर। उसकी लावण्यमयी आकृतिमें सरलता और तेजस्विता थी। महाबलेश्वर आनेवाले कामियोंकी यह आखेट बनेगी—इस कल्पनाने ही मुझे विचलित कर दिया। मैं उससे पूछ बैठा—

'तुमचा लग्न झाला काय ?' (क्या तुम्हारा विवाह हो गया है ?)

'हो।' (हाँ।)

'तर तुमी आपले नवरेचा घरी काय नाहीं जात ?' (तो तुम अपने पतिके घर क्यों नहीं चली जाती ?)

इस प्रश्नपर उसने अपने आँचलके छोरमें उँगलियाँ उलझाते हुए लज्जा और झेंपकी लाली अपनी कनपटी और कपोलोंपर फैलाते हुए दीर्घ निःश्वास और आन्तरिक वेदनासे प्रभावित अर्द्धस्फुट स्वरमें यह कहकर मुँह नीचा कर लिया—'माझा नवरा मुलगा आहे।' (मेरा पति अभी बालक है।)

'हाय रे मेरे देश !' कहकर मैंने अपना माथा ठोका और अपने

हिन्दीमें 'बेढब' और 'बेधड़क' बनारसी तथा कान्तानाथ पांडेय 'चोंच'ने इस शैलीका अधिक प्रयोग किया। चोंचकी एक चहक सुनिए—

हे प्रभो वाण्टेड-प्रकाशक पोस्ट हमको दीजिए।
और जितने कैण्डिडेट हों दूर उनको कीजिए॥
लीजिए हमको शरणमें मोस्ट ओबिडिएन्ट हूँ।
आपके सर्वेण्टके सर्वेण्टका सर्वेण्ट हूँ॥

'बेधड़क'का एक चौपदा लीजिए—

देखिए यह सीन कितना ग्रैण्ड है।
देह है या साइकिलका स्टैण्ड है॥
हो भले सूरत हमारी इण्डियन।
दिल हमारा मेड इन इँगलैंड है॥

'बेढब'का हँसाईका एक बहक सुनिए—

गौड डरता है उनका म्यूज़िकसे।
अभी कमसिन है, थोड़ा शाई है॥
फ़ुल नहीं फ़ेस है मुहासोंसे।
रामदानेकी मीठी लाई है॥
डाल लो कुछ ज़रूर गर्दनमें।
जब जनेऊ न हो तो टाई है॥

यद्यपि इन कवियोंने व्यंग्य (सेटायर), हास्य (ह्यूमर) परिवृत्ति (पैरडी) तथा विनोद (विट) आदिके लिये इस शैलीका प्रयोग तो किया किन्तु साहित्यिक भाषा-शैलीकी दृष्टिसे इसका प्रयोग ग्राह्य नहीं कहा जा सकता और जिन उपर्युक्त

रूपोंमें इसका प्रयोग हुआ है वहींतक इसकी सीमा भी समझनी चाहिए।

भाषा-समक

हमारे यहाँ भाषा-समक एक अलंकार भी है जिसमें दो या दोसे अधिक भाषाओंको मिलाकर रचना की जाती है किन्तु उसका विधान यह है कि एक चरण एक भाषाका हो, दूसरा चरण दूसरी भाषाका हो। यह नहीं कि जहाँ जीमें आया वहाँ जिस भाषाका चाहा शब्द भिड़ा दिया। अमीर ख़ुसरोका यह पद लीजिए जिसमें हिन्दी और फ़ारसीका अद्भुत मेल किया गया है—

ज़ेहाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल, दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जाँ, न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
शबाने हिज्राँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ो-रोज़े वसलत चूँ उम्र कोतह।
सखी पियाको जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥
यकायक अज़दिल दोचश्मे जादू, बसद फ़रेबम् बेबुर्द तस्कीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पीको हमारी बतियाँ॥
चूँ शमअ़ सोज़ा चूँ ज़र्रा हैराँ हमेशा गिरियाँ बइश्क़ आँमह।
न नींद नैना, न अङ्ग चैना, न आप आवैं न भेजैं पतियाँ॥
बहक्क़ रोज़े विसाल दिलवर, कि दाद मारा फ़रेब ख़ुसरो।
सपीत मनको दुराय राखूँ, जो जान पाऊँ पियाकी घतियाँ॥

आजकलके बहुतसे लोग प्रयोगवादका झण्डा लिए आकाश-पाताल एक किए हुए हैं किन्तु आजसे पचास बरस पहले ही हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि श्रीनाथूरामशंकर शर्माने इस प्रकारकी बहुभाषा-

मिश्र रचनाके अनेक प्रयोग कर डाले थे। उनका नागरी और ब्रजभाषाका मेल देखिए—

ताकत ही तेज ना रहैगो तेजधारिनमें,
मंगल मयंक मन्द पीले पड़ जायँगे।
मीन बिन-मारे मर जायँगे तड़ागनमें,
डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे॥
खायगो कराल काल केहरी कुरङ्गनको,
सारे खंजरीटनके पंख झड़ जायँगे।
तेरी अँखियान-सों लड़ैंगे अब और कौन,
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायँगे॥

इनकी एक बहुलोक-मेल भाषाकी रचना देखिए—

बाबाजी बुलाए बीर डूँगराके डोकराने,
जैमनको आसन बछेलके बिछाए री।
ओंड़े ऊदला महेरीके सपाट गये झार,
गए झोर रोट झार पेट भरे खाए री।
छोड़ी न गजरभत नेक हूँ न दोरियामें,
रोंथ-रोंथ रूखी दर भुजिया अघाए री।
संतनके रेवड़ जो चमरा चरावत हैं,
शंकर सो बाने बंद बेदुआ कहाए री।

उन्हींका एक पद्य ऐसा लीजिए जिसमें फ़ारसीके मुहावरे और शब्द दोनों धुआँधार भरे पड़े हैं—

बाग़की बहार देखी मौसिमे बहारमें तो,
दिले अन्दलीपको रिझाया गुलेत रसे।
हम चकराते रहे आसमाँके चक्करमें,
तौ भी लौ लगी ही रही माहके महरसे।

आतिशे मुसीबतने दूरकी कुदूरतको,
बातकी न बात मिली लज्ज़ते शकरसे।
शंकर नतीजा इस हालका यही है बस,
सच्ची आशिक़ीमें नफ़ा होता है ज़ररसे।

पण्डित रामचरित उपाध्यायकी रचना भी एक संस्कृत-नागरी मिश्रित भाषा-शैलीका उदाहरण लीजिए—

बातें थी करती सखी सँग मुझे तो भी रही देखती।
गत्वा सा कतिचित्पदानि सुमुखी, आगे खड़ी हो गई।
जाने क्यों हँसती चली फिर गई, क्या मोहिनी मूर्त्ति थी।
स्वप्ने साद्य न दृश्यते क्षणमहो, हा राम मैं क्या करूँ?

मिश्र भाषा-शैलीके ये सब प्रकार शुद्ध साहित्यिक रचनाओंके लिये सर्वथा त्याज्य हैं। इनका प्रयोग व्यंग्य, विनोद और चित्र-काव्यकी रचना तथा पांडित्य-प्रदर्शनके लिये ही किया जा सकता है।

६

रूप-शैली

पीछे 'शैली और कौशलके रूप' शीर्षक द्वितीय अध्यायमें हम रूप-शैलीके छत्तीस प्रकार गिनवा आए हैं जिनमें आजकल प्रायः व्यापक रूपसे रचनाएँ हो रही हैं। इस अध्यायमें हम उन रूप-शैलियोंका परिचय देनेके साथ-साथ उनकी रूप-योजनाके सम्बन्धमें भी कुछ विशेष विवरण देंगे जिससे भावी रचनाकारोंको उस प्रकारकी रचना करनेमें सुविधा हो, समीक्षकोंको विभिन्न प्रकारकी रूप-शैलियोंका विश्लेषण करने और अध्ययन करनेमें सुगमता हो तथा विभिन्न प्रकारकी रूप-शैलियोंके निर्माणमें वर्त्तमान रचनाकार और लेखक प्रायः जो भूलें करते हैं वे भी अपना सुधार कर सकें।

रूप-शैलियोंके प्रकार

पीछे २४ संख्यक पृष्ठपर जो हमने अनेक रूप-शैलियोंकी गणना कराई है उनमें कुछ जोड़कर हम अग्रांकित रूप-शैलियोंके सम्बन्धमें यहाँ विचार करेंगे—वर्णन, कथा, कविता, गीत, पद्य-प्रबन्ध, गद्य-प्रबंध, चम्पू, पत्र, समीक्षा, दिनचर्या, यात्रा, निमन्त्रण-पत्र, सूचना,

अभिनन्दन, अभ्यर्थना, समाचार, विज्ञापन, निबन्ध, संवाद, स्वगत-कथन, नाटक, गद्य-काव्य, भूमिका, प्रस्तावना, संक्षेपीकरण, लेख-सम्पादन, व्याख्या, आत्म-कथा, टीका, परिचय, जीवन-चरित, रेखाचित्र, श्रव्य-व्याख्या, आत्म-परिचय आदि। इनमेंसे कविताके अन्तर्गत मुक्तक, प्रगीत आदि; गीतके अन्तर्गत लोक-गीत तथा गीति-काव्य; गद्य-प्रबन्धके अन्तर्गत कथा, उपन्यास, व्यंग्याख्यान, युग-चित्र, कहानी आख्यायिका तथा नीति-कथा आदि सब प्रकारके गद्य तथा रूप; और अभिनन्दन-पत्रके अन्तर्गत स्वागत-पत्र, विदा-पत्र, मान-पत्र, कृतज्ञता-पत्र, स्नेह-पत्र और आशंसा-पत्र आदि सभी रूप आ जाते हैं। एकांकी नाटकोंपर भी हम नाटकके व्यापक और बहुमुखी रूपके अन्तर्गत ही गीति-नाट्य, भाव-नाट्य, नृत्य-नाट्य तथा श्रव्य-नाट्य आदिके साथ व्यावहारिक विचार करेंगे। इस प्रकार वर्त्तमान साहित्यके विभिन्न रूपोंकी जितनी शैलियाँ प्रचलित हैं उन सभीपर पूर्णतः व्यावहारिक रूपसे ही यहाँ विचार करेंगे।

वर्णन

लेखनका प्रारम्भ वर्णनसे ही होता है और ये वर्णन भी या तो गद्य-कथाओं और प्रबन्ध-काव्योंके बीच-बीचमें प्रसङ्गतः आते हैं अथवा स्वतन्त्र रूपसे भी इनका योजन किया जाता है। बहुतसे कवियोंने गद्य अथवा पद्यमें व्यक्ति, दृश्य, स्थान या भावका वर्णन किया है। ये वर्णन कभी तो सूक्ष्म होते हैं और कभी स्थूल।

सूक्ष्म वर्णनोंमें इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि लेखक वर्णनीय विषयका ऐसा चित्रण करे कि वर्णनीय वस्तु या विषयकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंका अङ्कन हो जाय। नीचे हम ऐसे कई प्रकारके वर्णनोंके उदाहरण दे रहे हैं।

व्यक्तिका वर्णन

महाकवि कालिदासने अपने कुमार-संभवके प्रथम सर्गमें पार्वतीजीके रूपका अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन दिया है—

'धीरे-धीरे पार्वतीजीका बचपन बीत गया और उनके शरीरमें वह यौवन फूट पड़ा, जो मदिराके बिना ही मनको मतवाला बना देता है और जो कामदेवका बिना फूलोंवाला बाण है। जब वे चलती थीं तब उनके स्वाभाविक लाल और कोमल पैरोंके उठे हुए अँगूठोंके नखोंसे निकलनेवाली चमकको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे पैर ललाई उगल रहे हों। जब वे अपने चरण उठा-उठाकर रखती चलती थीं तब ऐसा जान पड़ता था मानो पग-पगपर स्थल-कमल उगाती चल रही हों। यौवनके भारसे झुककर हाव-भावके साथ चलती हुई वे ऐसी लगती थीं मानो उनके बिछुओंसे निकलने-वाली मधुर ध्वनि सीखनेको ललचाए हुए राजहंसोंने अपनी हाव-भरी चाल उन्हें पहले ही बदलमें सिखा दी हो। ....उनकी भुजाएँ सिरसके फूलसे भी अधिक कोमल थीं इसीलिये फूलोंके अस्त्रवाले कामदेवने शिवजीसे हार जानेपर इन्हीं भुजाओंका फन्दा बनाकर शिवजीके गलेमें डाल दिया था। पार्वतीजीका गोल ढला हुआ गला और उसमेंसे लटका हुआ गोल मोतियोंका हार दोनों एक दूसरेकी शोभा बढ़ा रहे थे।.......उनके लाल-लाल ओठोंपर फैली हुई उनकी मुस्कराहटका उजलापन ऐसा सुन्दर लगता था जैसे लाल कोंपलमें कोई उजला फूल

रक्खा हुआ हो या चटकीले मूँगेके बीच मोती जड़ा हुआ हो। ....वे जब बोलने लगतीं तब उनके मुखसे ऐसी अमृतकी धारा फूट निकलती जिसके आगे कोयलकी कूक भी कानोंको ऐसी कड़वी लगती मानो किसी अनाड़ीने अनमिली वीणाके बेसुरे तार छेड़ दिए हों। ....उन बड़ी-बड़ी आँखोंवाली पार्वतीजीकी चितवन, आँधीसे हिलते हुए नीले कमलोंके समान चंचल थी जिसे देखकर यह भी नहीं स्पष्ट हो पाता था कि उन्होंने यह कला हरिणियोंसे सीखी या हरिणियोंने उनसे। उनकी लम्बी और कँटीली भौंहे ऐसी लगती थीं मानो किसीने तूलिका लेकर उनकी रचनाकी हो। ....अपने धनुषकी सुन्दरताका घमण्ड करनेवाले कामदेवका मद भी उनकी सुन्दरताके आगे चूर-चूर हो गया। उनके बाल इतने सुन्दर थे कि यदि पशु-पक्षी भी लजा सकते होते तो अपने बालोंपर इतरानेवाली चौरी हरिणियाँ अपने चँवरोंपर इठलाना भूल जातीं........।'

स्थानका वर्णन

कालिदासने रघुवंशके नवम सर्गमें वसन्तकी शोभासे पूर्ण वनस्थलीका वर्णन किया है। दशरथजी वन-विहारके लिये गए हैं। वसन्तका समय है। वसन्त-श्रीसे पूर्ण वनस्थलीका वर्णन देखिए—

'यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रके समान पराक्रमी दशरथका अभिनन्दन करनेके लिये वसन्त ऋतु भी नये फूलोंकी भेंट लेकर वहाँ आ पहुँची। ठंढक दूर करके और प्रातःकालका पाला हटाकर सूर्यने मलय-पर्वतसे विदा ली। पहले फूल खिले, फिर नई कोंपलें फूटीं, फिर भौंरे गूँजने लगे और तब कोयलकी कूक भी सुनाई देने लगी, इस क्रमसे धीरे-धीरे वनस्थलीमें वसन्त प्रकट हो गया। वासन्ती शोभासे लदी हुई तालकी कमलिनीके पास भौंरे और हंस मँडराने लगे। उन दिनों वसन्तमें

फूले हुए अशोकके फूलोंको ही देखकर कामोद्दीपन नहीं होता था वरन् स्त्रियोंने जो कोमल कोंपलें ले-लेकर अपने कानोंपर खोंस ली थीं, उन्हें देखकर भी मन हाथोंसे निकला पड़ता था। वनमें खड़े हुए कुरबकके पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्तमें वनश्रीके शरीरपर बेल-बूटे चीत-कर उसका शृंगारकर दिया गया हो। उन पेड़ोंसे इतना मधु बह रहा था कि भौंरे उसीसे लिपटे हुए मस्त होकर उन्हींपर गुनगुना रहे थे।.... सुन्दरियोंके मुखकी मदिराकी फुहारोंसे जो बकुलके वृक्ष फूल उठे थे उन्हें झुण्डमें उड़ते हुए भौंरोंने बड़ा झकझोर डाला था। वसन्तके आनेसे पलाशकी कलियाँ भी फूट निकलीं और ऐसी प्रतीत होने लगीं मानो किसी कामिनीने आवेगमें आकर अपने प्रियतमके शरीरपर नखक्षत कर दिए हों। नए बौरे हुए आमके वृक्षोंकी डालियाँ मलय-पवनके झोंकोंसे झूम उठीं और जिस समय मनहर सुगन्धवाली वनकी लताओंपर बैठकर कोयलने कूक सुनाई तो जान पड़ा मानो कोई मुग्धा नायिका ही सहसा बोल उठी हो। वनके किनारे बढ़ी हुई लताएँ ऐसी सजीव जान पड़ती थीं मानो भौंरोंके गुंजार ही उनके गीत हों, खिले हुए कोमल फूल ही उनकी मुस्कराहटमें फैले हुए दाँत हों और वायुसे हिली हुई शाखाओंवाले हाथोंसे वे अनेक प्रकारके हाव-भाव दिखा रही हों।.... तिलकके वृक्षने भी वनस्थलीकी कम शोभा नहीं बढ़ाई। तिलकके फूलों-पर मँडराते हुए काजलकी बुँदकियोंके समान काले भौंरे ऐसे जान पड़ते थे मानो वनस्थलीका भी मुख चीत दिया गया हो। वृक्षोंकी सुन्दरी नायिका नवमल्लिका भी अपने मकरन्दकी गन्धसे भरे लाल-लाल पत्तोंवाले ओठोंपर फूलोंकी मुस्कान लेकर देखनेवालोंका भी पागल बनाए डाल रही थी।......तिलकके फूलोंके गुच्छे उजले परागसे भर कर बढ़ चले थे और उनपर मँडराते हुए भौंरोंके झुण्डके कारण वे ऐसे सुन्दर लगने लगे जैसे किसी स्त्रीने अपने सिरपर मोतियोंकी जाली ओढ़ ली हो। वायुसे उड़ाया हुआ उपवनके फूलोंका पराग और उसके

पीछे भौंरोंका उड़ता हुआ झुण्ड ऐसा प्रतीत होने लगा मानो धनुषधारी कामदेवका झण्डा हो या वसन्तश्रीके मुखपर लगानेका शृङ्गार-चूर्ण हो।'

संश्लिष्ट वर्णन

ऊपर दृश्यका जो वर्णन दिया गया है वह विश्लिष्ट वर्णन है अर्थात् उसमें एक-एक वस्तुका अलग-अलग वर्णन किया गया है किन्तु इस प्रकारके विश्लिष्ट वर्णनके अतिरिक्त संशिलष्ट वर्णन भी होता है, जिसका उदाहरण कालिदासके कुमार-सम्भवके हिमालय-वर्णनमें प्राप्त है जिसमें उन्होंने केवल हिमालयके विभिन्न अङ्गों और पदार्थोंका वर्णन मात्र न करके उसके पूर्ण दृश्य-संयोजनके सौष्ठव और प्रभाव दोनोंका संयुक्त और संश्लिष्ट वर्णन किया है—

'भारतके उत्तरमें देवताके समान पूजनीय हिमालय नामका बड़ा भारी पहाड़ है। वह पूर्व और पश्चिमके समुद्रोंतक फैला हुआ ऐसा लगता है मानो वह पृथ्वीको नापने-तौलनेका मापदंड हो। राजा पृथुके कहनेसे सब पर्वतोंने मिलकर इसे बछड़ा बनाया और दूहनेमें चतुर मेरु पर्वतको ग्वाला बनाकर पृथ्वी-रूपी गौसे सब चमकीले रत्न और जड़ी-बूटियाँ दूहकर निकाल लीं। इस अनगिनत रत्न उत्पन्न करनेवाले हिमालयकी शोभा हिमके कारण कुछ कम नहीं हुई क्योंकि जहाँ बहुतसे गुण हों वहाँ यदि एक-आध अवगुण भी आ जायँ तो उसका वैसे ही पता नहीं चल पाता जैसे चन्द्रमाकी किरणोंमें उसका कलंक छिप जाता है। हिमालयकी कुछ चोटियोंपर गेरु आदि धातुओंकी अनेक रङ्ग-बिरङ्गी चट्टानें हैं। इसलिये कभी-कभी उन चट्टानोंके पास पहुँचे हुए बादलोंके टुकड़े उनके रङ्गकी छाया पड़नेसे सन्ध्याके बादलोंके समान रंग-बिरंगे दिखाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर सन्ध्या होनेके पहले ही वहाँकी

अप्सराओंको यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गई और इस हड़-बड़ीमें वे सायंकालके नाच-गानके लिये अपना श्रृंगार करना प्रारम्भ कर देती हैं। इसकी चोटियाँ इतनी ऊँची उठी हैं कि मेघ भी उनके बीचतक ही पहुँचकर रह जाते हैं, उनके ऊपरका आधा भाग मेघोंके ऊपर निकला रहता है। इसलिये निचले भागमें छायाका आनन्द लेने-वाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होनेसे घबरा उठते हैं, तब वे बादलों-के ऊपर उठी हुई उन चोटियोंपर जाकर रहने लगते हैं जहाँ उस समय धूप बनी रहती है। यहाँके सिंह जब हाथियोंको मारकर चले जाते हैं तब रक्तसे लाल उनके पञ्जोंकी पड़ी हुई छाप हिमकी धारासे धुल जाती है, फिर भी उन सिंहोंके नखोंसे गिरी हुई गज-मुक्ताओंको देखकर ही यहाँके किरात जान लेते हैं कि सिंह किधर गए हैं। इस पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले जिन भोज-पत्रोंपर लिखे हुए अक्षर, हाथीकी सूँडपर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं, उन्हें विद्याधरियाँ अपने प्रेम-पत्र लिखनेके काममें लाया करती हैं। इस पहाड़पर ऐसे छेदवाले बाँस बहुत होते हैं जो वायु भर जानेपर बजने लगते हैं उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो ऊँचे स्वरसे गानेवाले किन्नरोंके गीतोंके साथ ये संगत कर रहे हों। जब यहाँके हाथी अपनी कनपटी खुजलानेके लिये देवदारुके पेड़ोंसे माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहने लगता है कि उसकी महकसे इस पर्वतकी सभी चोटियाँ एक साथ गमक उठती हैं। यहाँकी गुफाओंमें रातको चमकनेवाली जड़ी-बूटियाँ भी बहुत होती हैं। इसलिये यहाँके किरात लोग जब अपनी-अपनी प्रियत-माओंके साथ उन गुफाओंमें विहार करने आते हैं, तब ये चमकीली जड़ी-बूटियाँ ही उनको काम-क्रीडाके समय बिना तेलके दीपक बन जाती हैं। वहाँकी किन्नरियाँ जब जमे हुए हिमके मार्गोंपर चलती हैं तब उनकी उँगलियाँ और एड़ियाँ ऐंठ जाती हैं, पर वे करें क्या? अपने भारी नितम्बों और स्तनोंके बोझके मारे वे बेचारी शीघ्रतासे

चल नहीं पातीं और चाहते हुए भी वे अपनी स्वभाविक मन्द गति नहीं छोड़ पातीं। हिमालयकी लम्बी गुफाओंमें भी अँधेरा छाया रहता है। ऐसा लगता है मानों अँधेरा भी दिनसे डरनेवाले उल्लूके समान इसकी गहरी गुफाओंमें जाकर दिनमें छिप जाता है और हिमालय उसे अपनी गोदमें शरण दे देता है क्योंकि जो महान् होते हैं वे अपनी शरणमें आए हुए नीच लोगोंसे भी वैसा ही अपनापन बनाए रहते हैं जैसा सज्जनोंके साथ। जिन हिरणियोंकी पूँछोंके चँवर बनते हैं वे चमरी हरिणियाँ जब यहाँ चन्द्रमाकी किरणोंके समान अपनी धौली पूँछें इधर-उधर घुमाती चलती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो वे इस पर्वत राजपर पूँछके चँवर डुलाकर इसका गिरिराज नाम सच्चा कर रही हों। जब यहाँकी गुफाओंमें किन्नरियाँ अपने प्रियतमोंके साथ काम-क्रीडा करती रहती हैं उस समय जब वे शरीरपरसे वस्त्र हट जानेके कारण लजाने लगती हैं तब बादल उन गुफाओंके द्वारोंपर आकर ओट करके अँधेरा कर देते हैं। गंगाजीके झरनोंकी फुहारोंसे लदा हुआ, बार-बार देवदारुके वृक्षको कँपानेवाला और किरातोंको कमरमें बँधे हुए मोरपंखोंको फरफरानेवाला यहाँका शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन उन किरातोंकी थकान मिटाता चलता है जो मृगोंकी खोजमें हिमालयपर इधर-उधर घूमते रहते हैं। इसकी ऊँची चोटियोंपरके तालोंमें खिलने-वाले कमलोंको स्वयं सप्तर्षिगण पूजाके लिये अपने सप्तर्षि मण्डलसे आकर तोड़ ले जाया करते हैं। उनके चुननेसे जो कमल बच रहते हैं उन्हें नीचे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणें ऊँची करके नित्य खिलाया करता है। यज्ञमें काम आनेवाली सामग्रियोंको उत्पन्न करनेके कारण और पृथ्वीको सँभाले रखनेकी शक्ति होनेके कारण इस हिमालयको स्वयं ब्रह्माजीने उन पर्वतोंका स्वामी बना दिया जिन्हें यज्ञमें भाग पानेका अधिकार मिला हुआ है।'

सूक्ष्म वर्णन

आजकल उपन्यासों और कथाओंके बीचमें अथवा अलग स्वतन्त्र रूपसे भी जो वर्णन लिखे जाते हैं उनमें सटीकता और सूक्ष्मताका बहुत ध्यान रक्खा जाता है अर्थात् उसमें वर्णनीय विषयके अंगोपांगोंका सूक्ष्म विवरण इस प्रकार दे दिया जाता है मानो सटीक चित्र खींचा जा रहा हो। इसमें चित्रकी सटीकता (फ़ोटोग्राफ़िक एक्यूरेसी) ही अधिक होती है। एक भिखारीका यह चित्र लीजिए—

गलीकी मोड़पर सिकुड़ा बैठा वह ऐसा लग रहा था जैसे कोई रीज कीचड़में लोटकर पीठ फेरे आ बैठा हो कि वह फटे, पुराने, मैले, थेकलीलगे काले कम्बलमें अपना तन लपेटे पड़ा था। उसके सिरपर लम्बे, धूल-भरे खिचड़ी बाल थे जिन्होंने बरसोंसे न तेल देखा होगा न कङ्घीका पुलक-स्पर्श पाया होगा। उसके मुँहपर बढ़ी हुई अस्तव्यस्त छिटपुट दाढ़ी और मूँछोंसे ढके हुए मुखपर भी दैन्य, दरिद्रता, व्यथा, चिन्ता और शोककी छाया कभी बारी-बारीसे और कभी समन्वित रूपसे अलग भी झलक जाती थी। उसके माथेपर अनगिनत सलवटोंका जाल बिछा हुआ था। उसकी भीतर धसी हुई आँखोंकी कोरोंमें कीचड़ जमा हुआ था और झुकी हुई उदास पलकें उसकी बिखरी हुई भौंहोंके तले उसकी चिन्ताओंके बोझकी दुहाई दे रहे थे। उसका मुँह रोग और भूखसे पीला पड़ गया था। उसके पपिड़ियाए हुए ओठ रह-रहकर कराहते हुए बता रहे थे कि उसने कई दिनोंसे अन्नके दर्शन नहीं किए और ऐसा भी कोई सहृदय नहीं मिला जो उसके टीनके डिब्बेमें दो बूँद पानी भी डाल सका हो जिससे वह अपने ओठतक तरकर सके। वह अपने सूखे हाथ अपने हड्डीके ढाँचेमें मुठियाकर दाँत किटकिटाता

बैठा था क्योंकि उसके ऊपर पड़ा हुआ कुर्त्ता भी तार-तार हो चुका था। उसके लटकते हुए पुराने चीथड़ोंमें वह सामर्थ्य कहाँ रह गया था कि माघके पछुआँ पवनकी निर्मम झोंक रोक सके। उसके पैरोंमें एक सड़ी-सी धोती सी उलझी हुई थी किन्तु वह भी इतनी चीर-चीर हो चुकी थी कि उसका होना न होना बराबर था। ऐसी दशा होनेपर भी उसे स्वभावतः जो दया प्राप्त होनी चाहिए थी वह न हुई, न हुई, न हुई।'

यदि सूक्ष्म वर्णनका कलात्मक रूप देखना हो तो पीछे पृष्ठ ७७-७८ पर पण्डित मातादीन शुक्लका चित्रण पढ़ लीजिए।

कथा

कथाएँ अनेक प्रकारकी होती हैं। एक तो वह जो किसी पुराण या इतिहासमें वर्णित व्यक्ति या घटनाका परिचय करानेके लिये दी जाय जैसे रामायणकी राम, सुग्रीव या सीताहरणकी कथा। दूसरी कथाएँ कल्पित होती हैं, जिनमें केवल मनोरञ्जनकी या कुतूहलको उकसानेकी वृत्ति होती है और ये कहानियाँ नानी-दादीकी कहानियोंसे मिलती-जुलती होती हैं। प्रायः सभी प्रकारकी कथाओंमें इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि उनमें आदिसे अन्ततक कुतूहलका निर्वाह हो और घटनाओंका संयोजन इस प्रकार किया जाय कि उन्हें आदिसे अन्ततक पढ़ने या सुननेमें जी न ऊबे। नानी-दादीकी कहानियोंकी शैलियोंमें लिखी हुई कथाएँ इस ढङ्गसे वर्णनकी जानी चाहिएँ कि उनमें वाचक या कथाकारको अपना स्वर उतारने-चढ़ाने, आँख-भौं मटकाने और आङ्गिक अभिनयके द्वारा भाव व्यक्त करनेकी सुविधा हो। इसका

उदाहरण पीछे 'मेढक और बैल'की कहानीमें दिया जा चुका है।

वर्णनपूर्ण कथा

यद्यपि वस्तु, दृश्य तथा व्यक्तिका अलग वर्णन भी किया जा सकता है किन्तु प्रायः वर्णनका प्रयोग लम्बी कथाओं, उपन्यासों और प्रबन्ध-काव्योंमें प्रसंगतः ही होता है। किन्तु वहाँ भी इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि वह वर्णन इतना रसमय, प्रभावशाली और कथानकसे सम्पृक्त होना चाहिए कि वह मूल कथाका अङ्ग प्रतीत हों, ऊपरसे जोड़ा हुआ नहीं। कथा पढ़ने वालोंकी साधारण प्रवृत्ति होती है कि वे बीचमें आए हुए वर्णनोंको प्रायः त्याज्य समझकर छोड़ते चलते हैं उसका कारण यही है कि वे वर्णन इस प्रकार लिखे जाते हैं मानो ऊपरसे जोड़ दिए गए हों और इसीलिये कथा पढ़नेवाला अपने स्वाभाविक कुतूहलमें बाधा पड़ते देखकर सहसा उस वर्णनको छोड़कर आगे बढ़ जाता है। किन्तु यदि वह वर्णन उसी प्रकार कथाका भाग हो जैसे पीछे 'शैलीके तत्त्व' शीर्षक अध्यायमें पृष्ठ ४३ पर दिया हुआ है तो निश्चय ही पाठकको उसमें रस मिलेगा और वह सम्पूर्ण रूपसे उसे भी कथाका अङ्ग समझकर उसका पाठ करेगा। कथाकी सफलताके लिये इसी प्रकारका वर्णन उपादेय हो सकता है। किन्तु इस प्रकारके वर्णनोंका प्रयोग छोटी कहानियोंमें प्रायः नहीं करना चाहिए।

काव्य या कविता

यद्यपि काव्य शब्द इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत गद्य-

पद्यमय संपूर्ण अलंकृत वाङ्मय समा जाता है किन्तु उसकी वास्तविक विवेचनाके लिये उसका विभेदीकरण आवश्यक है। इसलिये कविताकी श्रेणीमें भावात्मक या कथात्मक मुक्तक, नीतिके पद या राजनीति, धर्मनीति आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले फुटकर पद और छन्द आते हैं। जैसे—

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
कोटि घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधरके बीर॥

या

बतरस लालच लालकी, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनि हँसै, दैन कहे नटि जाय॥

या

तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मन्त्र है, परिहरु बचन कठोर॥

उक्तिबन्ध (बन्दिश) भी इसी प्रकारका मुक्तक छन्द ही होता है जिसमें न कोई कथा होती है, न कोई भाव ही होता है वरन् जिसमें कवि केवल उक्तिका चमत्कार भर दिखाता है। इस प्रकारके उक्तिबंध उर्दूमें बहुत हैं, जैसे—

ग़रीबख़ानेमें ख़िल्लाह दो घड़ी बैठो।
बहुत दिनोंमें तुम आए हो इस गलीकी तरफ़॥
ज़रा सी देर ही हो जायगी तो क्या होगा।
घड़ी-घड़ी न उठाओ नज़र घड़ीकी तरफ़॥

कवियोंकी वे दूरदर्शितापूर्ण उक्तियाँ भी इसी श्रेणीमें आ जाती हैं जिनमें वे केवल अपने उक्ति-कौशलका परिचय देनेके लिये एक

परिस्थति उत्पन्न कर देते हैं। एक कवि महोदय लैलाके पास खड़े एक हरिणको मजनूँ सिद्ध करनेका चमत्कार दिखा रहे हैं—

ये मजनूँ है, नहीं आहू है लैला !
पहनकर पोस्तीं निकला है घरसे ॥
नहीं हैं सरपे इसके सींग, हैं ख़ार ।
चुभे हैं पाँवमें, निकले हैं सरसे ॥

[आहू = हरिण। पोस्तीं = मृगछाला। ख़ार = काँटे।]

मुक्तकके इन रूपोंके अतिरिक्त बहुत-सी चित्रोक्तियाँ होती हैं जिनके अन्तर्गत चित्रबंध, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, प्रहेलिका तथा अन्य वाच्य-चित्रसे भरे हुए काव्य आते हैं। इनमेंसे कुछके विवरण नीचे दिये जाते हैं।

प्रहेलिका (पहेली)

जब ऐसे घुमाकर बात कही जाय कि उत्तर समझनेमें कुछ बुद्धि लड़ानी पड़े तब उसे प्रहेलिका या पहेली कहते हैं जैसे—

तरवरसे एक तिरिया उतरी, उसने खूब रिझाया ।
बापका उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया ॥

(निबौली)

अपह्नुति

अपह्नुति एक प्रकारका अर्थालंकार है जिसमें वास्तविक बात कौशलसे छिपाकर मिथ्या बातका सटीक आरोप कर दिया जाता है जैसे—

बरस-बरस वह देसमें आवै, मुँहसे मुँह लगकर रस प्यावै ।
वा खातिर मैं खरचे दाम, क्यों सखि साजन ? ना सखि आम ॥

कूट

कूट पद अनेक प्रकारके होते हैं जिनका अर्थ वही कर सकता है जो भाषाका पंडित हो और सब शब्दोंके श्लिष्ट अर्थ भी जानता हो जैसे—

केशवको गिरता लखा, द्रोण हुए अति हृष्ट।
हा केशव कह रो पड़े, कौरव देख अदृष्ट॥

[केशव = कृष्ण ; के = जलमें, शव = मृतक। द्रोण = द्रोणाचार्य ; कौवे। कौरव = धृतराष्ट्रके पुत्र कौरव ; सियार।

संस्कृतमें समासकी और एकाक्षर शब्दोंकी सुविधा होनेके कारण उसमें क्रिया, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन, कर्त्ता-क्रिया, कर्त्ता-कर्म, समास, लिङ्ग आदि गुप्त रखकर तथा मात्रा, बिन्दु, विसर्ग, अक्षर, स्थान, व्यञ्जन आदिका वैपरीत्य दिखाकर तथा च्युतदत्ताक्षर, निदर्शन आदि अनेक प्रकारकी चित्र-रचनाएँ की गई हैं।

अन्तर्लापिका

इसी प्रकारकी चित्र रचनाओंमें एक अन्तर्लापिका होती है जिसमें कई चरण दिए जाते हैं और उसी पदके अन्तमें उन सबका विचित्र उक्तिमें अर्थ होता है—

कस्तूरी किससे मिले, करि-कुल कौन हराय।
कायर रणमें क्या करे, मृगसे सिंह पराय॥

बहिर्लापिका

बहिर्लापिकामें कई प्रश्नोंका एक ही उत्तर बाहरसे निकलता है—

पान सड़ा क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ?

(उत्तर : फेरा न था)

चित्रकाव्य

बहुतसे संस्कृत कवियोंने एक या दो अक्षर लेकर ही पूरा श्लोक रच डाला है यहाँतक कि भारवि जैसे महाकवियोंने भी ऐसी रचनाओंपर हाथ माँजा है। एक उदाहरण लीजिए—

स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललोऽलोलः शशीशशिशुशीः शशन् ॥

[किरातार्जुनीय १५, ५]

[ससि (तलवार), सासुसू (बाण) तथा सास (धनुष) से सजकर यान (छह राजगुणोंमेंसे एक) तथा अयानसे लाभ प्राप्त करनेवाले जिस लल (सुन्दर) और अलोल (अडिग) अर्जुनने शशिके स्वामी (शिव) के पुत्र (कार्तिकेय) को हरा दिया था वे खरहेकी-सी छलाँग मारते हुए बड़े मनोहर प्रतीत हुए ।]

इसके अतिरिक्त पद्मबन्ध, खड्गबन्ध, गोमूत्रबन्ध आदि अनेक प्रकारकी रचनाएँ भी कवियोंने खेलवाड़के लिये की हैं जिनके अक्षरोंको एक क्रमसे सजा देनेपर छन्द भी पढ़ा जाता है और किसी वस्तुका आकार भी बन जाता है। मम्मटने इस प्रकारकी चित्र-रचनाओंको अधम काव्य माना है।

प्रगीत

कविताके अन्तर्गत ही आजकलके वे प्रगीत आते हैं जो अँगरेजीके 'लिरिक'की धाराके अनुसार रचे जाते हैं। इनमेंसे कुछ अँगरेजी की गीतिका (सौनेट) की शैलीमें अर्थात् १४ चरणों या

तीन बन्धों (स्टैञ्ज़ाज़्) में लिखे जाते हैं। हिन्दीमें बच्चनने इस प्रकारकी गीतिकाएँ बहुत लिखी हैं। उस प्रकारके एक प्रगीतका उदाहरण लीजिए—

मैं तुम्हारे ही स्वरोंमें गीत अपने गा रही हूँ।
और अपनी कल्पनामें मैं तुम्हें उलझा रही हूँ।
तुम कहाँसे भावनामें
बन गए श्रद्धाचिरन्तन।
ज्योति बनकर छा गए हो
चिर विभामय नित्य नूतन॥
मैं तुम्हारे लोचनोंमें प्यास अपनी पा रही हूँ।
जा रहे पल-पल विफलसे
कल नहीं मेरे हृदयमें।
तुम जहाँ गति देखते हो
मूर्च्छना है मन्द लयमें॥
स्वर-भरे आसावरीके किन्तु दीपक गा रही हूँ।
तुम कहाँको चल दिए
मुझको अचल संदेश देकर।
ले लिया पथ कष्टमय
विश्रामका आदेश देकर॥
मैं तुम्हारे नामसे ही यह हृदय बहला रही हूँ।

ये सब प्रगीत भावात्मक भी होते हैं और अनेक प्रकारके विषयोंपर भी रचे जा सकते हैं। आवश्यकता पड़नेपर ये विशेष राग और तालमें बाँधकर गाए भी जा सकते हैं।

गीतिकाव्य

गीतिकाव्य भी वास्तवमें मुक्तक ही है किन्तु प्रगीत और

गीतिकाव्यमें सबसे बड़ा अन्तर यह है कि प्रगीत मुख्यतः पठनीय और श्रव्य होता है भले ही उसे कोई रागमें बाँधकर गाने लगे किन्तु वास्तविक गेय काव्य या गीतिकाव्य वह है जिसका पहला चरण ऐसी टेकके रूपमें प्रत्येक आगेके पदके पश्चात् दुहराया जाता है और जिसकी रचना किसी विशेष राग और तालमें बाँधकर छन्दःशास्त्रकी मात्रा या वर्ण-गणनाके अनुसार न करके तालकी मात्राके अनुसार की जाती है, जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीका यह पद—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी-सम यद्यपि परम सनेही॥
पिता तज्यौ प्रह्लाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यौ, कंत ब्रज-बनितन, भे मुद-मंगलकारी॥
नाते एक रामके मनियत सुकृत सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँखि जो फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥

इस प्रकारके गीतोंमें कोई एक भाव-लीला, वर्णन, विवरण या विचार होता है और आदिसे अन्ततक उसी विचारकी व्यापक अभिव्यक्ति होती है इसकी टेक सदा ऐसी होती है कि वह प्रत्येक पदके भावके साथ मिलकर उसको अर्थ-व्यञ्जनाको तीव्र करती चलती है और बीचके भावको अधिक सशक्त बना देती है। मीरा, सूर, तुलसी, कबीर, नन्ददास आदिके गीत या गेयपद सब इसी कोटिमें आते हैं।

पद्यप्रबन्ध

जिस प्रकार कोई कथा कही जाती है, उसी प्रकार जब किसी

घटना अथवा किसी व्यक्तिके चरितको लेकर सुन्दर कल्पनाओं, अलङ्कारों और उक्ति-कौशलोंसे सजाकर छन्दोंमें कोई कथा कही जाती है तब वह पद्य-प्रबन्धका स्वरूप धारण कर लेती है और उसे साधारण काव्य-रसिक और काव्य-मर्मज्ञ लोग प्रबन्ध-काव्य कहते हैं। इन प्रबन्ध-काव्योंकी कई श्रेणियाँ बना दी गई हैं जिनमेंसे मुख्य है महाकाव्य, जिसमें किसी एक नायकका आदिसे अन्ततक पूर्ण जीवन चित्रित किया जाता है अथवा उस नायकके जीवनकी प्रधान घटनाओं और उनके परिणामका चित्रण किया जाता है जैसे—रामायण। इनके अतिरिक्त वे ग्रन्थ भी महाकाव्य कहलाते हैं जिनमें किसी एक व्यक्तिके बदले किसी एक वंशका चरित होता है जैसे—रघुवंश। कभी-कभी एक विशेष भाव या कई भावोंकी व्यापक मीमांसा करनेके लिये भी काव्यकी सृष्टि की जाती है उन्हें एकार्थ काव्य या भावकाव्य कहते हैं जैसे—'कामायनी।' कभी-कभी किसी बड़ी कथाका कोई एक अंश लेकर उस अंशमें आई हुई कथामात्रपर काव्यकी रचना की जाती है तब वह खण्ड-काव्य कहलाता है, जैसे मैथिलीशरण गुप्तका 'जयद्रथवध'।

इनके अतिरिक्त कुछ मुक्तक प्रबन्ध भी होते हैं जिनमें सब छन्द अलग-अलग अपनेमें स्वतन्त्र तो होते हैं किन्तु क्रमसे लगा देनेपर उनसे कथा भी पूरी बन आती है, जैसे रत्नाकरजीका 'उद्धवशतक' है। इसी प्रकारके मुक्तक-प्रबन्धोंमें तुलसीदासजीका 'बरवै रामायण' और 'कवितावली' भी है। जब कोई कवि अपने किसी काव्यमें नाटक, गद्य, पद्य, तथा गीत सबका समन्वय करके

रचना करता है उसे ललिता कहते हैं जैसे 'अलका।' इन सब भेदोंका अलग-अलग विस्तारसे परिचय दिया जा रहा है।

महाकाव्य

भारतीय साहित्यशास्त्रके अनुसार वास्तविक महाकाव्य वही ग्रन्थ कहला सकता है जिसमें अनेक सर्ग हों और वे सर्ग सब परस्पर एक दूसरेसे सम्बद्ध हों और जिसके सारे अवयव काव्य-शास्त्रके अनुसार भली-भाँति सुसंघटित हों। साहित्यदर्पणके मतानुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए और ये सर्ग भी न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े। किसी भी महाकाव्यमें आठसे कम सर्ग नहीं होने चाहिएँ। इससे अधिक जितने हों उतना ही महा-काव्य अच्छा होता है। प्रत्येक सर्गमें किसी एक विशेष छन्दमें रचना करनी चाहिए और सर्गके अन्तमें किसी दूसरे छंदकी योजना करके सर्ग समाप्त कर देना चाहिए। आवश्यकतानुसार ऐसे भी सर्ग रचे जा सकते हैं जिनमें एक छन्दके बदले अनेक छन्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं। प्रत्येक सर्गके अन्तमें अगले सर्गमें आनेवाली घटनाका आभास भी दे देना चाहिए।

महाकाव्यमें शृङ्गार, वीर अथवा शान्तमेंसे किसी एक रसको अङ्गी या प्रधान रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त हास्य, करुण, बीभत्स आदि रसोंका वर्णन अङ्ग या सहायक रूपसे करना चाहिए। महाकाव्यकी रचनाका आधार कोई ऐतिहासिक घटना या किसी महापुरुषके जीवनचरितका वर्णन होना चाहिए और उसमें अवसरके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारोंका समावेश

करना चाहिए। उसके एक सर्गमें महाकाव्यके प्रतिपाद्य विषयका वर्णन करना चाहिए और नाटककी पाँचों संधियोंका संयोजन करके कथावस्तुकी रचना करनी चाहिए अर्थात् मुखसन्धि, प्रतिमुखसंधि, गर्भसंधि, विमर्शसंधि और निर्वहण संधियोंके क्रमानुसार कथाका ग्रथन करना चाहिए।

महाकाव्यके आदिमें नमस्कार, आशीर्वाद अथवा वस्तु-निर्देश अर्थात् कथाका संकेत होना चाहिए। आवश्यकता हो तो महाकाव्यके प्रारम्भमें दुष्टोंकी निन्दा और सज्जनोंकी प्रशंसा भी की जा सकती है। महाकाव्यमें सन्ध्या, प्रभात, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, मार्ग, दिवस, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, योग, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, प्रयाण, विवाह, मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदिके साथ-साथ जलकेलि और मधुपान आदिका भी वर्णन करना चाहिए।

महाकाव्यके जो लक्षण ऊपर दिए गए हैं उनके अनुसार सब महाकाव्योंकी रचना नहीं हुई है। प्रायः कवि इस विषयमें परम स्वतंत्र रहे हैं। महाकवि कालिदासने तो पूरे रघुवंशका ही चरित लिख दिया है। वर्णनके सम्बन्धमें भी कवि स्वतंत्र रहे हैं और वास्तवमें कविको स्वतंत्र रहना भी चाहिए। महाकाव्यकी यही परिभाषा होनी चाहिए कि वह एक सहस्र छन्दोंके लगभग या उससे बड़ा हो जिसमें किसी महापुरुषके शुभ चरितका ऐसे ढङ्गसे वर्णन किया गया हो कि वह सम्पूर्ण समाजके लिये शाश्वत पथ-प्रदर्शक हो। उसमें मानव-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली

अधिकसे अधिक परिस्थतियोंका व्यापक समावेश होना चाहिए जिससे कविको अपनी प्रतिभाका विकास और विस्तार करनेका अवसर मिले तथा पाठकको जीवनकी अनुभूतियोंका ऐसा रसात्मक साक्षात्कार हो कि उसके चरित्र, बुद्धि, हृदय और आत्माका स्वतः अज्ञात रूपसे परिष्कार हो सके। इसके अतिरिक्त महाकाव्यके रचयितापर कोई प्रतिबंध नहीं रखना चाहिए। हाँ, महाकाव्यमें इतनी सरसता और इतना कुतूहल-निर्वाह अवश्य होना चाहिए कि पाठक तन्मय होकर आद्यन्त उसमें रमा रहे।

महाकाव्यके नामकरणके सम्बन्धमें भी हमारे यहाँ सिद्धान्त बनाया गया कि कविके नायकके नामपर, अथवा महाकाव्यकी घटनाके अनुसार महाकाव्यका नामकरण होना चाहिए जैसे कविके नामपर माघ और भारवि; घटनाके नामपर कुमार-सम्भव; और नायकके नामपर नैषध-चरित प्रसिद्ध हैं। कभी-कभी वस्तुके नाम-पर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे रघुवंश। किन्तु ये सब भी ठीक नहीं हैं। आगे 'कौशलके' अध्यायमें हम बतावेंगे कि रचनाओंका नामकरण कैसे करना चाहिए। उसकी यह विशेषता होनी चाहिए कि नाम ही पाठकको आकृष्ट करनेमें और ग्रन्थका विषय बता देनेमें पूर्णतः समर्थ हो।

महाकाव्यके सम्बन्धमें एक यह भी नियम है कि उसका नायक देवता या धीरोदात्त नायकके गुणोंसे सम्पन्न कोई उच्च वंशमें उत्पन्न क्षत्रिय हो अर्थात् नायक ऐसा हो 'जो हर्ष और शोकमें विचलित न हो, जिसका गर्व भी विनयपूर्ण हो, जो प्रतिज्ञा-पालनमें सदा

तत्पर रहता हो, जो कभी आत्मश्लाघा न करता हो और जो क्षमाशील तथा गम्भीर स्वभावका हो, जैसे युधिष्ठिर या राम। किन्तु यह नियम भी ठीक नहीं है। महाकविको यह पूरी छूट होनी चाहिए कि वह किसी भी महापुरुषको अपनेकाव्यका नायक बनावे और किसी भी घटनाको महाकाव्यकी कथा बनावे। दाँतेने अपने महाकाव्य 'डिवाइन कौमेडी'में स्वयं अपनेको ही नायक बनाया है। अतः, महाकाव्यके रचयिताके लिये इस प्रकारके कोई बन्धन नहीं होने चाहिएँ। हाँ, इतना अवश्य हो कि महाकाव्यका नेता ऐसे गुणोंसे सम्पन्न अवश्य हो जिसकी ओर मानव-मात्रकी स्वाभाविक श्रद्धा प्रवृत्त हो सके क्योंकि यदि वह श्रद्धेय नहीं होगा तो पाठकको महाकाव्यकी घटनाओंसे किसी प्रकारकी नैतिक और रसात्मक प्रेरणा नहीं मिलेगी।

खण्ड-काव्य

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है महाकाव्यका कोई अंश, किसी महापुरुषके जीवन-चरितका कोई एक अंश अथवा किसी विश्व-प्रसिद्ध विराट् घटनाका कोई अंग लेकर खंड-काव्यकी रचना की जा सकती है। इस खण्ड-काव्यमें न तो उतने विस्तृत और अधिक वर्णन हो सकते हैं जितने महाकाव्यमें होते हैं और न पात्रोंकी संख्या ही अपरिमित हो सकती है। जिस प्रकार छोटी कहानी या एकांकी नाटकमें कोई एक विचार, सिद्धान्त, घटना या भावका व्यक्तीकरण किया जाता है, उसी प्रकार खण्ड-काव्यमें भी एक घटना लेकर उसका एक परिणाम दिखाना चाहिए और उस परि-

णामके पश्चात् वह समाप्त कर देना चाहिए किंतु जो घटना ली जाय वह स्वतः अपनेमें पूर्ण होनी चाहिए।

भाव-काव्य

जिस प्रकार प्रबोध-चन्द्रोदय जैसे भाव-रूपकोंमें मानव-जीवनकी विशेष प्रवृत्तियाँ या मानवीय भावोंका मूर्त्त रूप देकर नाटककी रचना की जाती है वैसे ही काव्यमें भी भावोंको मूर्त्त रूप मानकर उनके आधारपर रचना की जा सकती है। इस प्रकारकी पद्यबद्ध रचनाएँ भाव-काव्य कहलाती हैं। ऐसी रचनाओंमें कभी-कभी कुछ वास्तविक, ऐतिहासिक या पौराणिक कथाका भी सन्निवेश कर दिया जाता है। किन्तु उसमें मुख्यतः किसी विशेष सिद्धान्तके प्रदर्शन अथवा भाव-व्यञ्जनाकी ही प्रधानता होती है। ऐसी रचनाओंको भाव-काव्य कहते हैं जैसे—प्रसादजीकी 'कामायनी'—इन रचनाओंमें कवि मानस-भावोंका अधिक विवरण देता है किन्तु कथाके पोषणके लिये वह प्रकृति-वर्णन और मानव-चरित्रके वर्णनका भी यथानुकूल आश्रय लेता चलता है।

मुक्तक-प्रबंध

जिस रचनामें सब छन्द या पद अलग-अलग हों किन्तु उसकी समष्टि या संयोगसे कोई कथा बन जाती हो उसे 'मुक्तक-प्रबन्ध' कहते हैं। ऐसे प्रबन्ध-काव्योंके सब छन्द अपनेमें अलग-अलग-पूर्ण भी होते हैं किन्तु अन्य छन्दोंके साथ मिलकर वे कथाके रूपमें भी परिणत हो जाते हैं जैसे—रत्नाकरजीका 'उद्धव-शतक।' इसी श्रेणीमें सूरसागर जैसे महाकाव्य भी आ जाते हैं जिनके सब छन्द

गेय पद हैं किन्तु जिनके क्रमकी रचना भागवतकी कथाके अनुसार की गई है।

ललिता

ललिता काव्य-पद्धति वह होती है जिसमें नाट्य, संवाद, गीत, छन्द, गद्य तथा काव्यके सब रूपोंकी समष्टि होती है और वह मुख्यतः शृङ्गार या वीर रसकी कथाके साथ सम्बद्ध होता है, जैसे—अलका।

योरपमें बहुत प्रकारके पद्य-प्रबन्धोंकी रचनाएँ हुई हैं जैसे—शोकगीत, कथा-गीत, समाधि-सूक्ति, इडिल, बैलेड आदि। किन्तु हमारे यहाँ अभी इस प्रकारकी मुक्तक रचनाओंकी बड़ी कमी है क्योंकि हमारे यहाँ शोकगीत या समाधि-गीत जैसी कोई वस्तु ही नहीं होती। शोकावेशकी दशामें जो इस प्रकारकी रचनाएँ हुई भी हैं वे सब गीत, प्रगीत, मुक्त आदिकी श्रेणीमें ही आ जाती हैं, उनका कोई अलग वर्ग नहीं बना और उनकी पद्धति भी नहीं चली।

गद्य-प्रबंध

हमारे यहाँ प्राचीन आचार्योंने गद्यको ही कविताकी कसौटी माना है—गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति 'गद्य ही कवियोंकी सच्ची कसौटी है' और यह पद्य भी साधारण बातचीतवाला गद्य नहीं होता था वरन् वह भी वृत्तानुगन्धीय छन्दके प्रवाहमें रचा हुआ होता था। किंतु आजकल या तो गद्य दार्शनिक हो चला है और अधिक पारिभाषिक शब्दोंसे लद चला है अथवा वह इतना उथला और

छिछला है कि उसकी ओर किसी प्रकारका कोई आकर्षण नहीं हो सकता। किन्तु जब हम साहित्यिक गद्यकी बात करते हैं तब उसमें काव्यके वे सब गुण आने ही चाहिएँ जिससे गद्य भी रसात्मक हो उसे पढ़कर लोग रसमग्न हों, केवल उसकी कथासे प्रभावित न होकर उसकी भाषा-शैलीका भी आनन्द लें। आजकल उपन्यास, कहानी आदि अनेक प्रकारकी गद्य-साहित्यकी रचनाएँ हो रही हैं किन्तु उनकी भाषामें न कोई लालित्य है न सरसता। केवल उनके कथा-रूपसे ही आकृष्ट होकर लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। किन्तु यह साहित्यके साथ बड़ा भारी विश्वासघात और साहित्य क्षेत्रमें बड़ी भारी विडम्बना है। साहित्यिक गद्यकी भाषा सरल होते हुए भी कितनी रसीली हो सकती है इसके उदाहरण हम पीछे भाषा-शैलीके प्रसङ्गमें दे आए हैं और उपन्यासकी भाषा कितनी सरल, प्रवाहपूर्ण, वेगवती और सरस हो सकती है इसका उदाहरण भी पृष्ठ २४ पर दिया जा चुका है।

गद्य-महाकाव्य

जिस प्रकार पद्यमें महाकाव्य लिखे जा सकते हैं उसी प्रकार गद्यमें भी महाकाव्योंकी रचना की जा सकती है किंतु ये महाकाव्य उसी प्रकारके होंगे जैसे कादम्बरी। जिनमें प्रबन्ध अर्थात् कथाके तो सब तत्व होंगे किन्तु साथ-साथ भाषा-शैली अलंकरण-शैली और व्यञ्जना शैलीके चमत्कार पग-पगपर मिलेंगे। जबतक शैली इस प्रकारकी व्यवस्थित नहीं होगी तबतक वह रचना कथाकी दृष्टिसे चाहे जितनी सरस हो किन्तु काव्य और साहित्यकी दृष्टिसे पूर्णतः निरर्थक

होगी। यदि आदर्श रूपमें देखना हो तो प्रसादजीको कहानियोंमें जो भाषा प्रयुक्त की गई है वही शुद्धरूपसे गद्य-प्रबन्धकी आदर्श भाषा मानी जा सकती है। इस दृष्टिसे हिन्दीके अनेक तथाकथित प्रसिद्ध उपन्यासकार गद्य-प्रबन्धके क्षेत्रसे पूर्णतः बाहर हो जाते हैं क्योंकि उनकी भाषामें सरसताकी तो हीनता है ही, भाषा और व्याकरणकी अशुद्धियाँ भी आद्यन्त भरी हुई हैं।

गद्य-प्रबंधके अन्तर्गत गद्य महाकाव्य, कथा, उपन्यास, व्यंग्या-ख्यान, युगचित्र, कहानी, आख्यायिका, चुटकुले और नीति-कथा आदि वे सब रूप सम्मिलित हैं जिनका आधार कोई इतिवृत्त होता है।

कथा

कथाके अन्तर्गत वह गद्य साहित्य आता है जिसमें किसी पौराणिक या ऐतिहासिक इतिवृत्तके आधारपर साहित्यिक रचना की जाती है और जिसका उद्देश्य उस कथाके द्वारा कोई विशेष आदर्श उपस्थित करना होता है। यह कथा किस शैलीमें लिखी जानी चाहिए इसका उदाहरण पीछे २२७ और २३४ पृष्ठपर 'भग-वान् परशुराम' तथा 'कच्छपावतार'के वर्णनमें दिया जा चुका है।

उपन्यास

आजसे दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व विश्वके किसी साहित्यमें उपन्यास जैसी कोई रचना नहीं होती थी। कथाके आधारपर रची हुई सब गद्य-रचनाएँ कथाके अंतर्गत ही आ जाती थी जैसे—कादम्बरी। ऐसी कथाएँ पूर्णतः कल्पित होती हैं किंतु उनकी

रचना अर्थात् भाषा-शैली, साहित्य और काव्यके गुणोंसे आद्यन्त इस प्रकार पूर्ण रहती है कि वह श्रोता या पाठकको कथा-कुतूहलके साथ-साथ भाषा-शैलीके कारण भी प्रभावित करती चले। यही कथा-पद्धति कुछ परिवर्त्तित रूपसे वर्त्तमान कालमें उपन्यासके नामसे व्यवहृत की जा रही है।

उपन्यासकी रचनामें कुछ तत्व होते हैं—कथावस्तु, पात्र, संवाद और वर्णन, कुतूहल, देशकाल-योजना, उद्देश्य और संघर्ष। इन सबके उचित संयोजनसे ही उपन्यासकी रचना की जाती है। इस रचनाको सरस बनानेके लिये अनेक प्रकारके कौशलोंका प्रयोग किया जाता है जिनका वर्णन हम आगे 'रचना-कौशल' वाले अध्यायमें करेंगे।

उपन्यासके लिये यह आवश्यक है कि उसमें किसी एक व्यक्तिका इस प्रकार चित्रण किया जाय कि वह अनेक परिस्थितियों और घटनाओंके बीच संघर्ष करता हुआ किसी एक निश्चित परिणामको प्राप्त हो। भारतीय सिद्धांतके अनुसार यह परिणाम सुखद होना चाहिए किंतु अन्य देशोंमें इस प्रकारका कोई प्रतिबंध नहीं है। वे यह मानते हैं कि परिणाम निश्चित होना चाहिए, वह चाहे उपन्यासकार-द्वारा व्यक्त कर दिया जाय अथवा पाठक स्वयं उसकी कल्पना कर ले। यह सब उपन्यासके रचना-कौशलपर अवलम्बित है।

उपन्यासमें व्यक्तियों, वस्तुओं और स्थानोंका वर्णन तथा संवाद भी होना चाहिए। किंतु यह वर्णन या संवाद उतना ही बड़ा हो कि वह कथाकी प्रगति और प्रवाहमें बाधक न हो और कथाकी

मूल धारासे पूर्णतः सम्बद्ध हो। उपन्यासकी भाषा-शैली शुद्ध सरल, रूढ़ोक्ति-सिद्ध और प्रवाहशील होनी चाहिए जिससे पाठक कथाके साथ-साथ भाषाका भी रस लेता चले।

जहाँतक सम्भव हो, उपन्यासमें बहुत अधिक पात्रोंका संयोजन न करके केवल उतने ही पात्रोंका प्रयोग किया जाना चाहिए जिनका चरित्र-चित्रण, सुविधा और स्पष्टताके साथ कर सकनेकी संभावनाएँ विद्यमान हों। यह चरित्र-चित्रण घटनाओंकी योजना द्वारा सिद्ध किया जाय, स्वयं रचनाकार-द्वारा वर्णित न हो अर्थात् घटनाओंका इस प्रकार संयोजन किया जाय कि पात्र स्वतः उन घटनाओंमेंसे होते हुए अपने चरित्रका वैशिष्ट्य प्रकट करते चलें।

ये सभी घटनाएँ सत्य-तुल्य प्रतीत होनी चाहिएँ, असम्भव और असंगत नहीं। उपन्यासमें आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकारके संघर्षका अत्यन्त स्वतन्त्रताके साथ प्रयोग किया जा सकता है किंतु मानसिक संघर्ष जितना अधिक होगा उतना ही वह मानव-हृदयका स्पर्श कर सकेगा अतः उसमें अधिकांश ऐसी घटनाओंका सन्निवेश करना चाहिए और ऐसी परिस्थितियाँ ला रखनी चाहिएँ जिनमें पाठकका अधिकसे अधिक मानस-मंथन हो सके। सबसे बड़ी कला तो यह है कि उपन्यासकार ऐसी दशा उत्पन्न कर दे कि पाठक स्वतः द्विविधामें पड़कर यह निर्णय न कर पावे कि ऐसी स्थितिमें मैं होता तो क्या करता, किन्तु परिणाम देखकर उसे यह निश्चय हो जाय कि हाँ, इस प्रकारका व्यवहार करनेपर यही परिणामसम्भव है। यह मानस-विक्षोभ तथा आंतरिक द्वंद्व जितना

ही प्रबल होगा उतना ही उपन्यास सफल और आकर्षण होगा।

कुतूहल ही कथाका प्राण होता है। यद्यपि सभी प्रकारकी कथाओंमें कुतूहलका अस्तित्व आवश्यक है किंतु उपन्यासमें तो यह तत्त्व नियमतः अनिवार्य है। यदि उपन्यासमें कुतूहल न हुआ तो वह उपन्यास ही क्या ? उसमें यह शक्ति होनी चाहिए कि वह आदिसे अंततक पाठकको संदेह, आशंका और उत्कण्ठामें ऐसा झुलाता रहे कि अंततक परिणाम भाँप सकनेकी गंधतक न दे।

उपन्यासका उद्देश्य सार्वभौम होना चाहिए। वह किसी विशेष दल, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग या सिद्धान्त-द्वारा प्रेरित नहीं होना चाहिए। उपन्यासके उद्देश्य और आदर्श जितने व्यापक और सार्वभौम होंगे उतना ही अधिक उपन्यास चिरजीवी, प्रभावशाली और लोकप्रिय होगा। इसीलिये उपन्यासकी कथावस्तु साधारण लोकजीवनसे न लेकर मानव-जीवनके उन विशिष्ट अंशोंसे लेनी चाहिए जिनमें असाधारण व्यक्तियोंने अपने असाधारण चरित्रसे लोकमंगलकी प्रतिष्ठा की हो या लोकमङ्गलके आदर्श उपस्थित किए हों भले ही वे व्यक्ति साधारण श्रेणी या वर्गके क्यों न हों। इतना होनेपर ही उपन्यास वास्तवमें सरस, हृदयग्राही और पूर्ण हो सकता है।

व्यंग्याख्यान

व्यंग्याख्यानमें किसी विशेष व्यक्ति वर्ग, समाज या दलको अथवा समाजकी विभिन्न कुचेष्टाओं और कुरीतियोंको लक्ष्य

करके किसी कथामें आधारपर व्यंग्य रूपसे कुछ कथन किया जाता है। ऐसी कथाओंमें किसी एक व्यक्तिको नायक बना लिया जाता है और उसे समाजकी विभिन्न स्थितियोंमें प्रतिष्ठित करके उसके आधारपर विनोदपूर्ण शैलीमें पूरी कथा कह दी जाती है। प्रसिद्ध स्पेनी लेखक सर्वान्तेने इसी प्रकारकी व्यंग्याख्यान-शैलीमें 'डौन क्विज़ोट' लिखा है और उर्दूके प्रसिद्ध लेखक रत्ननाथ दर 'शरशार'ने 'फ़िसानए आज़ाद' भी इसी व्यंग्याख्यान-शैलीमें लिखा है। नागरीकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'वासन्ती'में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित 'गंगाराम' इसका सुन्दर उदाहरण है, जिसके एक अध्यायका एक अंश देखिए जिसमें प्रारम्भिक पाठशालाओंमें पढ़ानेवाले गाँवके अध्यापका बड़ा सजीव व्यंग्य-चित्र दिया है।'

'नाटे गुरु बड़े तिकड़मी थे। वे दिनरात अण्टी गरमानेके फेरमें पड़े रहते थे। आज चटसालके लिये घड़ा चाहिए। आठ पैसेका घड़ा और सब लड़कोंपर दो-दो पैसा चन्दा। आज लोटा चाहिए। डेढ़ रुपयेका लोटा पर दुअन्नी-चवन्नी चन्दा। आज छुरी चाहिए, कल चटाई चाहिए, परसों यह चाहिए, तरसों वह चाहिए, बस चाहिए ही चाहिए। ज्यों ही गंगाराम घर जाकर कहता कि नाटे गुरुने चन्दा माँगा है त्यों ही बुढ़िया चन्दा तो देती ही, साथ ही घड़ा, लोटा, रस्सी और छुरी भी ऊपरसे दे डालती। नाटे गुरुने सोचा अच्छी कामधेनु फँसी है। इसे भरपूर दुह लेना चाहिए। उँगली पकड़ते-पकड़ते वे पहुँचा पकड़ने लगे। अब वे कभी दूध माँगते कभी चीनी, कभी मूँगकी दाल तो कभी पापड़। मौसीजी समझतीं कि नाटे गुरुको गिनतीकी पन्द्रह रुपुल्ली मिलती है, क्या खाँय क्या बचायँ। इसलिये जो कुछ मँगवाते सब जी खोलकर दे डालतीं। इधर गंगाराम भी अपनी मौसीके भोलेपन और नाटे गुरुकी चंटईमें जमकर अपना चकरडण्ड साधता रहा।'

युगचित्र

जिस प्रकार वर्णनोंमें किसी स्थान या व्यक्तिका सूक्ष्म और विस्तृत चित्रण किया जाता है उसी प्रकार युगका भी चित्रण किया जाता है। लखनऊके नवाबी युगका एक चित्रण निम्नांकित वर्णनमें देखिए—

'अमाँ! इत्ती जल्दी भूल गए? जानते हो नवाब बनते ही मैंने क्या किया? डोरके बदले सोने और चाँदीके तारोंसे कनकव्वे लड़ाए, एक-एक बाज़ी जीतनेपर लाख-लाखके जवाहरात लुटाए, महीनों-महीनों महफ़िलें जमाईं, चूने और कत्थेके बदले पानमें मोती और मूँगेका कुश्ता डलवाया, केवड़े और गुलाब-जलके फ़ौवारोंमें गरमीकी दोपहरियाँ बिताईं, रातको दिन कर देनेवाले आतिशबाज़ोंको जागीरें बाटीं, आधे तोलेकी मख़मली जूतियाँ महीन सोनेके तारोंसे कढ़वाकर पैरोंमें डालीं, ज़ाफ़-रान और मुश्ककी चटनियाँ बनवाईं, अशर्फ़ियोंके मुरब्बे बनवाए, ख़स और गुलाबके इत्रके हौज़ भरवाकर उनमें .ग़ुस्ल किया, फ़ारससे वो गद्देदार क़ालीन मँगवा-मँगवाकर महफ़िलोंमें बिछवाए कि पैर रखते ही इन्सान हाथभर उसमें समा जाय, गरमीमें शन्तरेके शर्बतके प्याऊ लगवाए, हज़ार-हज़ार गवैए और पहलवान अपने दरबारमें पाले, बनारसके मशहूर शहनाईवाले अपने नौबतख़ानेमें ला बसाए, हज़ारहा मुश्की घोड़े और फ़िटनें अस्तबलमें ला जमा कीं, मेढ़ोंकी टक्करें कराईं, बुलबुलें लड़वाईं, मुर्ग़ोंकी पालियाँ बदीं, हाथियोंकी क़तारें सजवाईं, सोनेके ताज़िए उठवाए, गोया यह पूछो कि क्या नहीं किया? वह ज़माना ही कुछ और था। आजकल क्या है? सब भुक्खड़ हैं। गाने-बजानेकी बात छेड़ो तो कहते हैं—'यह सब ख़राब काम है'। .ख़ुदाका क़हर बरसे इन मनहूसों-पर।' [रुद्र काशिकेयकी कहानी 'नवाब सन्दस'की कोठी]

जैसे उपर्युक्त युगचित्रमें एक विशेष युगका चित्र उपस्थित किया

गया है उसी प्रकार विभिन्न देशोंके विभिन्न युगोंके भी चित्र प्रस्तुत किए जा सकते हैं। योरोपीय और अमरीकी साहित्यमें कुछ लेखक तो नियमित रूपसे इसी प्रकार विभिन्न देशोंके युग-चित्र लिखते हैं, जैसे रडयार्ड किप्लिंग।

कहानी

'कहानी'से हमारा तात्पर्य उस कहानीसे है जिसे आजकल छोटी कहानी (शौर्ट स्टोरी) कहते हैं और एलन पोकी परिभाषाके अनुसार 'जो छोटी हो, आध घण्टेतककी अवधिमें पूरी पढ़कर समाप्त कर दी जा सके, वाचनीय हो और जिसमें जीवनकी किसी ऐसी एक परिस्थिति, एक भाव या एक घटनाका चित्रण हो जिसका एक ही परिणाम हो।' ये कहानियाँ अनेक कौशलोंके साथ लिखी जा सकती हैं जिनका विवरण आगे रचना-कौशलके अध्यायमें विस्तारसे दिया जायगा। विषयकी दृष्टिसे ये कहानियाँ निम्नांकित विभागोंमें विभाजित की जा सकती हैं—

पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, अन्ताराष्ट्रिय, वैज्ञानिक, प्रादेशिक (रीजनल), ऐतिहासिक, पौराणिक, सत्य, काल्पनिक आदि। आजकल बहुत-सी भविष्यवादी कहानियाँ भी लिखी गई हैं जिनमें आजसे सैकड़ों वर्ष पश्चात्‌के युगका कल्पित चित्रण किया जाता है कि आगे चलकर हमारे समाज-का या मानव-समाजका क्या रूप होगा। ये कहानियाँ भी प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुषमें तथा पत्र, प्रवचन, वार्त्ता, सूचना, संवाद, आत्म-कथा, परिचय आदि अनेक रूपोंमें कही जा सकती हैं।

वर्त्तमान शैलीकी छोटी कहानीका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है, यद्यपि भाषा-शैलीके प्रसंगमें इस प्रकारकी अनेक कहानियाँ पीछे दी जा चुकी हैं—

पाकिस्तान चलिए

बहुत दिनोंसे वे मुझसे कहते आ रहे थे कि पण्डितजी ! हम जहाँ जायँगे वहाँ आपको भी ले चलेंगे । मैंने भी यह समझकर उन्हें अपनी स्थायी स्वीकृति दे रक्खी थी कि नवाब साहब मेरे पुराने साथी हैं इसलिये वे कश्मीर, मंसूरी, नैनीताल, शिमला या दार्जिलिंगसे नीचे कहाँ जाना चाहते होंगे और साथ देने तथा दिन काटनेके लिये कोई ऐसा हमजोली ढूँढ़ते होंगे जिसके साथ वे दो घड़ी हँस-बोल लें । यों तो जो लोग पहाड़पर जाते हैं वे नाचघरों, खेलघरों और चित्र-घरोंमें पर्याप्त प्रमोदकी सामग्री पा लेते हैं किन्तु हमारे नवाब साहबको इनमेंसे किसीमें कोई रस नहीं था। चिरजीवी रहे उनकी गंगा-जमनी गुड़गुड़ी और बने रहें उनके रसोइया झम्मन मियाँ, बस उनका समाज और उनका आमोद-प्रमोद पूर्ण समझिए । मैं भी कभी पहाड़पर गया नहीं था । सुना था कि वहाँ चारों ओर हिम ही हिम छाया रहता है, लोग काँगड़ी (अँगीठी) जलाकर छातीसे लगाए चलते हैं, नौकाघरोंमें बसेरा लेते हैं और न जाने कहाँ-कहाँ पहाड़ोंपर घूमते-फिरते हैं। यहाँ तो पहाड़ जानेका अवसर नहीं मिला और सच्ची बात यह है कि अवसर मिलकर ही क्या करता, यहाँ सामर्थ्य ही इतना कहाँ था कि पहाड़के व्ययका बोझ उठा सकें । इसलिये जब-जब नवाब साहब छेड़ते तब-तब मैं उनसे भी अधिक उत्साह दिखाकर इस प्रकार उनका समर्थन करता मानो मेरा बिस्तर बँधा रक्खा हो और बस चलने भरकी देर हो ।

× × × ×

यह जो सामने आप फ़ारसी कँगूरोंवाली कोठी देख रहे हैं न ! इसी-

थियोंके समान सिर हिलाकर एम् ए एन् जी ओ 'मैंगो', मैंगो माने आमकी रामधुन लगाए हुए हैं और नवाब साहब एक विश्राम पीठपर बड़े सन्तोष और धैर्यके साथ अपनी गुड़गुड़ीका दम लगा रहे हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

मैंने पूछा—'यह क्या हो रहा है ?'

नवाब साहब बोले—मुझे अँगरेजी पढ़ा रहे हैं। यह पढ़ानेकी विधि मेरे लिये ही नहीं संसारके सब शिक्षा शास्त्रियोंके लिये विचित्र वस्तु थी। इस शिक्षा-प्रणालीके आगे फ्रोबेलका किंडरगार्टेन, हेलेन पार्खर्स्टका डाल्टन प्लैन, स्टीवेंसनका प्रोजेक्ट और गाँधीजीकी वर्धा योजना सब झख मारे और यदि कहीं मदाम मौंतेसोरी सुन लेतीं तो वे निश्चय हाराकिरी कर लेतीं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुझे तो यही जानकर अचरज हुआ कि दो वर्षतक इसी प्रणालीसे पढ़नेपर भी अभीतक मास्टर साहब आगरेकी शोभा बढ़ानेकी योग्यता क्यों नहीं प्राप्त कर पाए ?

× × × ×

बात सन् १९४५ की है। मुसलिम लीगके एक नेता शाहजहाँपुर आनेवाले थे। लीगियोंने नवाब साहबसे कहा कि आप अपने यहाँ उन्हें अतिथि ठहरा लें। लीग क्या है ? राष्ट्रीय मुसलमान किस प्रकारके होते हैं ? कांग्रेस क्या चाहती है ? स्वराज्य किसे कहते हैं ? इन सब प्रश्नोंने नवाब साहबकी एकान्त शान्तिमें कभी बाधा नहीं दी और इसका श्रेय भी उनकी माताजीको ही है। जिस प्रकार राजा शुद्धोदनने अपने पुत्र गौतमको संसारके कष्टोंका अनुभव न होने देनेके लिये बड़ा कड़ा प्रबन्ध कर रक्खा था वैसे ही उनकी माताजीने भी यह प्रबन्ध कर दिया था कि नवाब साहबके कानोंतक किसीके निधनका समाचार न पहुँचे, कोई समाचार-पत्र या पोथी उनके हाथ न पड़े,

घरमें रेडियो न लगाया जाय, कोई भिखमङ्गा या दीन-दुखिया उनके पासतक न पहुँचने दिया जाय। इसलिये जब लीगी नेता महोदय पधारे तो परदेकी ओटसे माताजीने उनसे कहला दिया कि आप कोई ऐसी बात नवाब साहबसे न कहें जिससे उनका मन बिगड़े, उन्हें डर लगे या उनके जीको धक्का पहुँचे। नेता महोदयने इस थोड़े कहेको बहुत समझा और उठकर चले गए लीगकी सभामें।

वहाँसे लौटनेपर वे नवाब साहबके साथ भोजन करने बैठे। मैं भी वहीं बैठा था। मैं तो शुद्ध सनातनी ब्राह्मण हूँ, इसलिये मैं दूरपर ही कुर्सी लगाकर बैठ गया कि कहीं 'ब्राह्मणमधर्मभोजनम्' का दोष न लग जाय। भोजन करते समय नवाब साहबने उनसे पूछा—आप किस लिये घूमते-फिरते हैं? उन्होंने कहा—'पाकिस्तानके लिये।'

'यह पाकिस्तान क्या है?'

लीगी नेताको अवसर मिल गया। उन्होंने जो दूनकी हाँकनी प्रारम्भ की उसका सारांश यह है—

'भारतके दो प्रमुख खण्ड होंगे—एक हिन्दुस्तान दूसरा पाकिस्तान। पाकिस्तानकी तीन टुकड़ियाँ होंगी, एक पच्छिमी पंजाबमें, एक पूर्वी बंगाल और आसाममें और एक रियासत हैदराबादमें। वहाँ मुसलमानोंको अलग-अलग महल मिलेंगे, चारतक निकाह (विवाह) करनेकी स्वतन्त्रता होगी, लौंडियाँ (दासियाँ) चाहे जितनी रक्खी जा सकती हैं। किसीको कोई काम नहीं करना पड़ेगा। सबको पका-पकाया भोजन मिलेगा। मतीरेसे राई-तक सभी सब्जियाँ और हाथीसे चींटीतक सब जीवोंके मांस निःशुल्क मिलेंगे। बारह प्रकारके पुलाव, अट्ठावन प्रकारके शोरबे (रसदार तरकारियाँ), पन्द्रह प्रकारके कोरमे और एक सौ ग्यारह प्रकारकी मिठाइयाँ नित्य तैयार हुआ करेंगी और जो जितना चाहे उतना अपने इच्छानुसार लेकर बिना पैसेके भोजन करे।

'तीन सौ प्रकारकी मदिराओंका प्रबन्ध किया गया है जिनमें ताड़ी-

से लेकर 'एकशा नम्बर वन' तक हैं और उनमें आबे ज़मज़म इसलिये मिला रहेगा कि सात्त्विक मुसलमानोंको भी पीनेमें संकोच न हो।

'नहाना किसीके लिये आवश्यक न होगा और जो लोग कभी नहीं नहायँगे, कभी नमाज़ नहीं पढ़ेंगे और कभी रोज़े नहीं रक्खेंगे उन्हें ही सरकारी ऊँचे पद दिए जायँगे ; क्योंकि वहाँ ऐसे व्यक्ति बहुत चाहिएँ जो चौबीस घण्टे सरकारी काम कर सकें। हाँ, मुँह धोनेके लिये स्थान-स्थानपर गुलाबजलके फुहारे बने होंगे। मगर मुँह धोना भी आवश्यक नहीं होगा—क्योंकि शेरोंके मुँह किसने धोए हैं। पहननेको तनजेब, मलमल, चिकन, मख़मल, रेशम इत्यादि सब बढ़िया कपड़े मिलेंगे। कई-कई प्रकारके इत्रके मटके जहाँ-तहाँ रक्खे होंगे जिनसे फ़र्श धोए जा सकेंगे और सड़कोंपर छिड़काव किया जा सकेगा।'

बीचमें नवाब साहबने टोका—'और हुक्का ?'

नेता महोदय बोले—'जी हाँ ! बनारसके सुँघनी साव, लखनऊके मियाँ जुमेराती और दिल्लीके मियाँ शकूरके ज़ाफ़रानी, गुलाबी और ख़शख़शी तम्बाकूकी दूकानें वहाँ उठाकर पहुँचा दी जायँगी और जो भी जिस समय जिस ढंगका तम्बाकू चाहे वहाँसे बिना पैसे ले सकता है।

'वहाँ धूल उड़ानेवाली रेलगाड़ियाँ और घड़घड़ करनेवाले हवाई जहाज़ नहीं होंगे। वहाँ चिलमनकी अम्बारीवाली साँडनियाँ (ऊँटनियाँ) रहेंगी जिनकी कोमल मदमाती चालके आगे मुश्कीकी दुलकी मात होगी। और हाँ, हिन्दुस्तान भरके सब गवयों और नाचनेवालियोंका वहाँ ऐसा जमघट होगा कि दिन-रात ठुमरी सुनिए, ग़ज़ल सुनिए और कथक नाचकी तालपर झूमिए। सभी सड़कोंपर मख़मलके गद्दे बिछे होंगे, बग़ीचोंमें नरगिस, मोगरा, गुलाब, चमेली और चम्पेकी झाड़ियाँ होंगी। यहाँ-वहाँ हरी दूबकी क्यारियाँ बिछी होंगी।'

नवाब साहबने फिर टोका—'और आम ?'

लीगी नेता बोल उठे—'जी हाँ ! बाग़ोंमें हर फ़सलके मीठे आमोंके

पेड़ होंगे। लखनऊका सफ़ेदा, बनारसका लँगड़ा, बम्बईका हाफुस सब आपको मिलेंगे। नारंगी, लीची, आड़ू, आलूबुखारे, लौकाट, केले, अनार, सेव और अंगूर सब फलोंके ढेरके ढेर चौराहे-चौराहे सजे धरे होंगे। जो जितना चाहे ले ; मगर शर्त्त यह है कि वह मुसलिम लीगका मेम्बर हो।'

नवाब साहबने पूछा—'अगर मेम्बर न हो?'

लीगी नेता : तो मुसलमान हो।

नवाब : और मुसलमान भी न हो तो?

लीगीने समझा कि सामने बैठे हुए मुझ हिन्दूका नवाब साहबको ध्यान है; इसलिये तत्काल बोल उठे—'तो किसी मुसलमानका दोस्त हो।'

नवाब : हाँ, यह ठीक है।

× × ×

इसीके कुछ दिन पीछे चुनाव हुआ और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामें मुसलमानोंके स्थानोंमें मुस्लिम लीगका बहुमत रहा। चारों ओर हल्ला हो गया—'पाकिस्तान मिल गया, पाकिस्तान मिल गया।'

अगले दिन अचानक मेरे पास नवाब साहबका दूत आया—'नवाब साहबने याद फर्माया है।'

पहुँचा तो देखा, सामान बँध रहा है। कई घोड़े-गाड़ियाँ द्वारपर खड़ी हैं—कहीं जानेकी तैयारी हो रही है। नवाब साहब झट बोले—'चलो, चलो। झट बिस्तर उठवा मँगाओ। इसी गाड़ीसे चलना है। पण्डितानीजीको भी ले लेना।'

गर्मीके दिन थे। मुझे विश्वास हो गया कि पहाड़की यात्रा है। क्योंकि जिस ढंगसे तैयारी हो रही थी उससे यही सिद्ध होता था कि दो-चार महीनेका प्रबन्ध हो रहा है। मैं कुछ पूछने ही वाला था कि

शाहजहाँपुरके कलक्टर आ पहुँचे! वे भी मुसलमान थे। नवाब साहबने बड़ी आवभगतसे उन्हें बैठाया!

कलक्टरने पूछा—'कहिए कहाँ की तैयारी है?'

नवाब साहब बोले—'पाकिस्तानकी।'

कलक्टर उनके मुँहकी ओर देखने लगे। मैंने समझा कि नवाब साहब हँसी कर रहे हैं। नवाब साहबने कलक्टर साहबका कुतूहल बढ़ाते हुए कहा—'कल पाकिस्तान मिल गया है न! मैं भी वहीं जा रहा हूँ।'

कलक्टर : कहाँ?

नवाब : पाकिस्तान, जहाँ....

'जहाँ'के पश्चात् उन्होंने पाकिस्तानका वही काल्पनिक वर्णन करना प्रारम्भ किया जो लीगी नेता महोदयने उनकी माताजीका आदेश पालन करनेकी सद्भावनासे किया था। सुनकर कलक्टर ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले—किस गूलर फूलकी टोहमें जा रहे हैं! किसने आपको चकमा दे दिया है?'

लीगी नेताने नन्दन काननका मोहक वर्णन करके नवाब साहबका जो हृदय फुलाकर बड़ा कर दिया था वह कलक्टरके वाक्यसे उसी प्रकार पिचक गया जैसे भरी हुई फुटबौलमें किसीने तकुवा गोदकर पंचर कर दिया हो।

बँधा हुआ सामान खुलने लगा। नवाब साहब पाकिस्तानकी कल्पना लिए-दिए आराम कुर्सीमें पड़ गए। मैं मंसूरीका सपना देखता हुआ घर लौट आया। माताजीके प्रबन्ध करनेपर भी लीगीके मिथ्यापूर्ण कुचकने मित्र नवाब साहबके हृदयको ऐसी ठेस पहुँचाई कि महीने भरतक न उन्होंने सूरजका मुँह देखा न मैंने उनका।

आख्यायिका

आख्यायिका भी एक प्रकारकी कहानी ही होती है किन्तु उसका

उद्देश्य कोई आध्यात्मिक या नैतिक तत्त्व प्रतिष्ठित करना होता है जैसे—केनोपनिषद्में आख्यायिकाके द्वारा ही यह सिद्ध किया गया है कि वायु अग्नि, इन्द्र आदि महाशक्तियोंके ऊपर भी कोई एक शक्ति शासन करती है जिसके बिना किसी शक्तिका कोई अस्तित्व नहीं है। आत्मज्ञान सिखानेके सम्बन्धमें नचिकेता और यमकी जो कथा उपनिषदोंमें आई है वह भी आख्यायिका ही है। केनोपनिषद्की आख्यायिका लीजिए—

केन ?

जिज्ञासुके मनमें शाश्वत प्रश्न उठा—

हमारे मनको कौन चलाता है ? कौन हमारे प्राणोंमें जीवन भरता है ? कौन हमारी वाणीमें अभिव्यक्तिकी शक्ति देता है ? कौन हमारे कानोंको सुननेकी, आँखोंको देखनेकी समर्थता प्रदान करता है ?

स्वयं जिज्ञासुके मानससे यह निराशा-भरा उत्तर मिला—

'जिससे यह सब शक्ति मिलती है वहाँतक दृष्टि नहीं पहुँचती, वाणी नहीं पहुँचती, मन नहीं पहुँचता। वह सबकी पहुँचसे बाहर है, परे है, दूर है।'

फिर व्याकुल होकर जिज्ञासु सोचने लगा—

'तो क्या मैं उस ब्रह्मको नहीं जान पाऊँगा ? क्या कोई भी उसे नहीं जान पाया ? क्या उसे कोई नहीं जान सकता कि वह कैसा है, कौन है, कहाँ है ?

सहसा कई स्वर बोल उठे—'मैं ही ब्रह्म हूँ! मैं ही ब्रह्म हूँ! मैं ही ब्रह्म हूँ !'

और जिज्ञासु देखता क्या है कि बहुतसे दिव्य स्वरूप सामने आ

खड़े हुए हैं। सब अपने-अपनेको ब्रह्म बता रहे हैं। इतनेमें देखा कि एक दिव्य यक्ष उनके सामने आ खड़ा होता है।

उन दिव्य स्वरूपोंमेंसे एकने आगे बढ़कर उस यक्षका परिचय पूछा और अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं अग्नि हूँ, चाहूँ तो ब्रह्माण्डको जला दूँ।'

यक्षने एक तृण आगे बढ़ाकर कहा—'इसे जलाइए।'

अग्निदेव अपना प्रचण्ड रूप लेकर बहुत भभके, किन्तु सब व्यर्थ। तृण न जला, न जला, न जला।

अब दूसरे दिव्य स्वरूपने आगे बढ़कर अपने पराक्रमका परिचय देते हुए कहा—मैं वायु हूँ, चाहूँ तो विश्वको एक झोंकेमें उड़ा दूँ।'

यक्षने वही तृण आगे बढ़ा दिया—'इसे उड़ाइए।'

वायुने प्रबल-प्रभञ्जनका अत्युग्र रूप धारण किया किन्तु तृण न हिला, न हिला, न हिला।

अब तीसरे दिव्य स्वरूपकी बारी आई। ये इन्द्र थे। इन्द्रके पहुँचते ही यक्ष अन्तर्धान हो गया और उसके स्थानपर तेजः पुञ्ज-धारिणी दिव्य शक्ति उमाने प्रकट होकर कहा—

'जो दिव्य यक्ष अभी अन्तर्हित हुए हैं वे ही परब्रह्म हैं। उन्हींकी शक्तिसे तुम सब शक्तिशाली हो। तुम सब कुछ नहीं हो। तुम सब उसीकी विभूतिसे विभूतिमान् हो। अपना मिथ्याभिमान दूर करो। तुम कुछ नहीं हो। जो कुछ है वही है, वही है, वही है!'

उमा भी अन्तर्धान हो गईं।

जिज्ञासुकी अब समझमें आया कि मन, प्राण, वाणी, नेत्र और श्रवणको सामर्थ्य देनेवाला वही है, मैं कुछ नहीं हूँ। उसीने सब कुछ रचा है।

केन ? (किसने)

तेन ? (उसने)

चुटकुले

चुटकुलेमें किसी ऐसे वाक्कौशल अथवा किसी ऐसी परिस्थिति-का चित्रण या वर्णन किया जाता है जो वास्तविक हो या न हो किंतु जिससे एक प्रकारकी बौद्धिक गुदगुदी उत्पन्न हो अर्थात् जिसे पढ़ या सुनकर उस परिस्थिति अथवा उक्तिसे चित्तमें आनन्दका विस्फोट हो उठे। एक उदाहरण लीजिए—

एक सज्जन अपना चित्र खिंचवाने गए। जब सब ठीक हो गया तो आप चित्रकारसे बोले—'ठहरिए! यदि मैं आँखोंमें आँजन लगा लूँ तो क्या चित्रमें आ जायगा?'

चित्रकार : जी हाँ! आप जो लगा लें सब चित्रमें आ जायगा।

सज्जन : तो ठहरिए, मैं थोड़ा इत्र भी लगा लेता हूँ जिससे चित्रमें गन्ध भी आ जाय।

इस प्रकारके चुटकुलोंमें प्रायः किसीकी मूर्खको ही आलम्बन बनाकर उसके सहारे हास्यकी सिद्धि की जाती है।

नीतिकथा

नीतिकथाके अन्तर्गत वे सब कहानियाँ आती हैं जिनमें यह आवश्यक नहीं है कि सब पात्र मनुष्य ही हों। उसमें अन्य जीव भी पात्र हो सकते हैं और वे पात्र अपने व्यवहार और बात-चीतसे कोई नैतिक उपदेश देते हैं, जैसे निम्नांकित नीति-कथा लीजिए—

बन्दर और चिड़िया

जाड़ेके दिन थे। पानी बरस रहा था। एक पेड़पर एक बन्दर चुप-चाप भीगता हुआ बैठा काँप रहा था। उसी पेड़पर बया चिड़ियाने

घोंसला भी बना रक्खा था जिसमें वह अपने बच्चोंके साथ चुपचाप पानी और जाड़ेसे बचाकर बैठी हुई थी। चिड़ियाने अपना मुँह निकाल-कर बन्दरसे कहा—'ऐ बन्दर भाई! तुम्हारे मनुष्य-जैसे हाथ-पैर हैं और तुम्हारी समझ भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है, फिर भी तुम अपने लिये घर क्यों नहीं बना लेते। इस जाड़े-पालेमें पानीसे भींगते हुए क्यों ठिठुरे जा रहे हो?' बन्दरको यह बात बुरी लगी। उसने आव देखा न ताव, वह झट घोंसलेकी ओर लपका और घोंसलेको नोच-नाचकर चल दिया। सच है—

सीखा वाको दीजिए, जाको सीख सुहाय।
सीख न दीजै बाँदरा, कि घर बएका जाय॥

चम्पू

चम्पू काव्यकी यही व्याख्या की गई है कि वह गद्य-पद्यमय होना चाहिए और उसका गद्य भी वृत्तानुगंधी अर्थात् लययुक्त होना चाहिए। संस्कृतमें इस प्रकारके बहुतसे चम्पू काव्य लिखे गए हैं जिनमेंसे नल-चम्पूकी बड़ी प्रतिष्ठा है। श्रीरामचरित चम्पूका एक अंश उदाहरणके लिए लीजिये जिसमें श्रीराम और श्री सीता जीके प्रथम दर्शनका वर्णन है—

श्रीरामचरित-चम्पू

श्रीरामसीता-मिलन

वह जनकपुरकी मनोहर, रम्य, सुन्दर, मधुर, रसमय वाटिका थी। इन्द्र-धनुके सब रसीले, चटक, मोहक रङ्ग लेकर रँग सुकोमल, मृदुल निज तन सुमन अगणित झूलते थे, झूमते थे और अपने नवल किसलय और वृन्तोंकी हिलाकर उँगलियाँ वे थे निमंत्रण दे रहे अभिराम प्रभु अतिनवलघन श्यामल-कलेवर विश्वविभु श्रीरामको, उनके धवलतनु अनुज श्री सौमित्रको भी, जो चले आए अचानक देखकर वह ललित

राजोद्यान जिसकी अपरिमित रमणीय, नव-सुमनावली झुकती चली थी जा रही अपनी सुरभिके भारसे अविराम।

पास ही था ताल जिसमें शरद्‌की मधु चन्द्रिकासे ले नवलतम हास वरुणालय खिला था कोकनद्क ले अपरिमित कोश जिनमें खेलते थे कोक-कोकी तज निशाका क्षोभ, अविरत तैरते थे शुभ्र-देह मराल खोले या समेटे पंख। और उसके सरस तटपर साम्बशिवकी वन्दिता अर्द्धाङ्गिनी गौरी महागौरी प्रतिष्ठित थीं विशद स्फटिकाभ मन्दिरमें सलोनी वरद मुद्रामें सुभासित और उनकी अर्चना करने अभी थीं जा रही मिथिलाधिपतिकी विश्ववन्द्या कन्यका सीता लिए अपना सखी-गण साथ जो ले जा रही थीं सकल पूजा-भार।

रवि-किरणोंके बिना कमल-वन लेकर प्रभा अनूप।
रघुकुल-कमल-दिवाकरको लख खिला दिव्य धर रूप॥
अतिशय मधु राजीव-नयनके नयनोंका रस-पान।
सीताके खंजन चख करते लगा एकटक ध्यान॥

किन्तु इतनेमें सखीने देख यह व्यापार मनका और नयनोंका कहीं सीमा न कर जाए बहुत ही पार, बोली वचनमें वह घोल अमृत—'सुमुखि! चलना है अभी अविलम्ब, बैठी अम्ब भी यह सोचती होंगी कि क्यों यह हो रहा है अर्चनामें आज अधिक विलम्ब।'.........

पत्र

यद्यपि हमारे यहाँ पत्र-साहित्य न तो अधिक ही है और न बहुत अच्छा ही फिर भी इधर कुछ दिनोंसे बहुत-सा पत्र साहित्य अवश्य लिखा जा रहा है। इन पत्रोंकी विशेषता यह होती है कि ये पूर्णतः व्यक्तिगत होते हैं और स्वतंत्र रूपसे किसी दृश्य, वस्तु, विषय, भाव, विचार, प्रवृत्ति, आकांक्षा, साहित्य, ग्रन्थ आदिके विषयमें समीक्षात्मक विमर्शात्मक, तथा उपदेशात्मक होते हैं। यह

रूप इस बातपर अवलम्बित है कि सम्बोध्यसे लेखकका क्या सम्बन्ध है।

शुद्ध साहित्यिक पत्र वे ही होते हैं जिनमें लेखक किसी विशेष शैलीका आश्रय लेकर उसी प्रकार प्रभाव डालनेका प्रयत्न करता है जैसा कोई निबन्धकार अपने निबन्धमें। हिन्दीमें पण्डित कमलापति त्रिपाठीके पत्र इस दृष्टिसे अत्यन्त उत्कृष्ट, सशक्त और श्रेष्ठ हैं जो 'बन्दीकी चेतना' नामसे प्रकाशित हुए हैं। उनमेंसे उस पत्रका थोड़ा-सा अंश लीजिए जिसमें ८ अगस्त सन् १९४२ को बम्बईमें 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार होनेवाली घटनाका संकेत है—

नैनी सेन्ट्रल जेल
१९ मार्च, ४३

प्रिय लालजी,

बम्बईने उस दिन इतिहासकी रचना कर दी। आज जब यहाँ बैठे-बैठे बम्बईका स्मरण करता हूँ तब घटनाओंकी विचित्र और सजीव तरंगें क्रमशः सामने उठती और लुप्त होती जाती हैं। मैंने कब सोचा था कि उनके घात-प्रतिघातसे राष्ट्रका सारा काया-पलट हो जायगा। काशीसे जब चला तब इतना तो समझ ही रहा था कि इस देशमें भीतर ही भीतर धरित्रीके गर्भमें ज्वालामुखी धधक रहा है, जिसका फूटना एक दिन अनिवार्य है। पर बम्बई इस विस्फोटका निमित्त बनने जा रही है यह मैं नहीं समझ रहा था। मैं यह भी अनुभव नहीं कर रहा था कि उसका विस्फोट इतना भीषण, इतना व्यापक और इतना प्रचण्ड होगा कि भारत वसुन्धरा एक बार आसमुद्र-हिमाचल विकम्पित हो उठेगी।

नभोमण्डल-तकको गुंजायमान करती हुई गम्भीर करतल ध्वनि और प्रचण्ड जयजयकारके बीच राष्ट्रपतिने घोषणा की कि प्रस्ताव अत्यधिक बहुमतसे स्वीकृत हो गया। ८ अगस्त सन् १९४२ को सायंकाल आठ बजे शताब्दियोंके अपमान, निर्दलन तथा पतनका बोझ लिए हुए भारतके क्षुब्ध आत्माने समस्त दानवी शक्तिका प्रतिरोध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। वातावरण गम्भीर था। भविष्य भयानक दृष्टिगोचर हो रहा था और आनेवाले प्रचण्ड भूकम्पकी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी थी। पर इन सभी बातोंसे परिचित होते हुए भी निहत्थे भारतीयोंने अपने सिरमें कफ़न बाँधकर निकलनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था। यहाँ बैठे-बैठे सोचता हूँ कि यह मेरा सौभाग्य था जो उस मुहूर्तमें वह ऐतिहासिक दृश्य देखनेके लिये मैं वहाँ उपस्थित था।........

तुम्हारा—बाबू

इसी प्रकारके पत्रोंमें वे पत्र भी आते हैं जिनमें लेखक या पत्र-कार अपने मनकी सम्पूर्ण भावनाएँ एकत्र करके किसी अपने प्रिय या इष्टके लिये पत्र लिखता है। उसका उदाहरण यह लीजिए—

अदीस अबाबा

आधी रात १० जून, १९४१

प्रिये! मधुर प्रिये! मेरे हृदयकी रानी! मेरे जीवनकी साँस! मेरे प्राणोंकी सारथि! मेरी आकांक्षाओंकी बस्ती! मेरी व्याकुलताकी शांति! मेरे भावोंकी विलास-भूमि! मेरे विचारोंकी केन्द्र-स्थली! मेरी साध-नाओंकी सिद्ध भूमि! मेरे आत्माकी एक मात्र पुकार! मेरी सर्वस्व! मेरी! मेरी तुम!

तुमने अपने नयनोंसे छूकर मेरे प्राण ही नहीं, मेरी शान्ति, मेरा सन्तोष सब सोख लिया है! तुम्हारी दुहरी लटोंमें गुँथे हुए नीले फ़ीतेमें फँसा हुआ मेरा मन व्याकुल होकर तड़फड़ा रहा है, क्या उसे मुक्ति न दोगी? तुम्हारी भौंहोंके आरोंने मेरा हृदय चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला है, क्या उसे अपनी स्नेहभरी चितवनके मरहमसे जोड़कर उसमें रक्त-वहनकी शक्ति न भरोगी? अपनी पतली नन्हीं-नन्हीं गोरी-गोरी उँगलियोंसे मेरे विरह-तप्त शरीरको छूकर क्या उसमें प्राण न डाल दोगी? अपनी कटिमें झोंक देकर जब तुम अपनी ऊँची एड़ीके सेन्डलवाले बाएँ पैरपर बल देती हुई चलने लगती हो तब तारों और ग्रहोंसे भरा हुआ आकाश मेरे आगे घूमने लगता है। तुम्हारे साए (स्कर्ट) की मदिर मन्द सरसराहट सुननेका अभ्यास होनेके कारण पूर्वी वायुके झकोरोंमें सरसरा उठनेवाली झाड़ियाँ भी मुझे ऐसा चौकन्ना कर देती हैं कि मेरा आँखें चारों ओर तुम्हें ही ढूँढ़ने लगती है। बेले (वायोलिन) के पहले तारपर कनिष्ठिकासे मींड़ खींचनेपर जो मधुर मूर्च्छनासे भरी हुई स्वर-लहरी गूँज उठती है उसका माधुर्य भी तुम्हारे रसभरे अधरकी वाणीके आगे पत्थर है।

प्रिये! मेरे शब्द रातकी घड़ियोंके साथ अलसा रहे हैं, मूर्च्छित हो रहे हैं, दम तोड़ रहे हैं। मेरे प्राणोंमें अपनी कृपाका अमृत भरकर उन्हें जीनेकी शक्ति तो प्रदान कर डालो सौंदर्यकी रानी!

ओह! अब नहीं लिखूँगा। पढ़ते-पढ़ते तुम्हारी आँखें सूज उठी होंगी। पत्र सँभालते-सँभालते उँगलियाँ कुम्हलाने लगी होंगी। मेरे इस हृदयके उष्ण उद्गार तुम्हारे हिमकठिन हृदयको पिघलाने लगे होंगे। ना! अब न पढ़ना। तुम्हें क्रौसकी सौगन्ध, ईसाकी शपथ, मरियमकी आन.......

मैं हूँ, तुम्हारे प्रेमका अनन्य प्रार्थी—
डेविड

इन पत्रोंके अतिरिक्त एक और भी प्रकारके शुद्ध साहित्यिक पत्र होते हैं जिनमें कोई लेखक, कवि या विद्वान् किसी लेखक या उसकी कृतिके सम्बन्धमें व्याख्यात्मक तथा समीक्षात्मक विचार व्यक्त करते हैं। इन पत्रोंमें जो विचार व्यक्त किए जाते हैं वे पूर्णतः व्यक्तिगत होते हैं और कभी-कभी उनमें ऐसी-ऐसी बातें भी प्राप्त हो जाती हैं जो साधारणतः व्यापक किन्तु भ्रान्त लोक-धारणाको भी ध्वस्त कर देती हैं क्योंकि बहुतसे कवियों और लेखकोंको अत्यधिक प्रचारके द्वारा ऐसी सीमातक पहुँचा दिया गया है कि उनके विरुद्ध प्रत्यक्ष रूपसे सार्वजनिक रंगमंचसे कुछ भी कहना निरापद नहीं है। किन्तु व्यक्तिगत पत्रोंमें तो इस प्रकारकी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्तियाँ प्राप्त हो ही जाती हैं। इस प्रकारके पत्र साहित्यके इतिहासके निर्माणमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। हिन्दीके एक दिवंगत समीक्षक, कवि, लेखक और विद्वान्ने 'प्रसाद'जीकी कामायनीके सम्बन्धमें अपने एक साहित्यकार मित्रको जो पत्र लिखा था वह हम यहाँ बिना नाम बताए कृतज्ञताके साथ उद्धृत कर रहे हैं—

प्रिय श्री·······जी

नमस्कार।

आपका पत्र भी मिला, संदेश भी। संदेश तो नीरस था क्योंकि संदेश-प्रदाता स्वयं अत्यन्त रसहीन जान पड़ते थे क्योंकि वे आए और तारकी भाषामें सन्देश कहकर चलते बने। किन्तु जड़ पत्र अधिक सरस और मधुमय लगा। यह आपकी लेखनीका चमत्कार

है कि आपने उस जड़को अपनी चिन्मय लेखनीका स्पर्श करके चेतन कर दिया और चेतन ही नहीं रसमय भी कर दिया।

आपने प्रसादजीको मेरे मतसे परिचित करा दिया यह बहुत अच्छा किया। मैंने उन्हें भी एक पत्रमें स्पष्ट लिख दिया था कि केशवजी (पं० केशवप्रसाद मिश्र) और राय साहब (राय कृष्णदास) भले ही कामायनीको महाकाव्य बताकर उसकी अतिशय प्रशंसा का डंका पीटें किन्तु उसमें कुछ इतने मौलिक दोष और कुछ इतनी ज्वलन्त त्रुटियाँ हैं कि यदि उनका परिमार्जन और पूर्ति न की गई तो इस ग्रन्थके सम्बन्धमें भी लोग वही कहेंगे जो केशवकी रामचन्द्रिकाके सम्बन्धमें कहते थे—

कविको दैन न चहै बिदाई।
पूछै केसवकी कविताई॥

केशवजी स्वयं संस्कृत भाषा और दर्शनके पंडित हैं। अतः वे तो शून्यका भी कोई दार्शनिक अर्थ निकाल सकते हैं। मैंने सुना है कि वे कामायनीमें अभिनवगुप्त पादाचार्यके तंत्रालोकमें प्रतिपादित प्रत्यभिज्ञा दर्शनका दर्शन कराना चाहते हैं। मैं उनके इस पांडित्यपूर्ण प्रयासकी प्रशंसा तो करता हूँ किन्तु साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि वे प्रसादजी के साथ बड़ा भारी अन्याय कर रहे हैं। कामायनीके प्रारंभमें ही प्रसाद जीने जो भूमिका लिखी है उसमें उन्होंने उन सब स्रोतों और साधनोंका उल्लेख कर दिया है जिसके आधारपर उन्होंने कामायनीका प्रासाद खड़ा किया है। उस विवरणमें उन्होंने कहीं भी नकुलीश, पाशुपत अथवा प्रत्यभिज्ञा आदि किसी दर्शनका नामतक नहीं लिया है फिर भी व्यर्थ उनके काव्यपर पाशुपत दर्शनका आरोप करना मैं कोरी पण्डितम्मन्यता और अत्याचरण ही मानता हूँ।

आपने यह ठीक लिखा है कि कामायनीमें बहुतसे स्थल बड़े सुन्दर हैं। चिन्ता सर्ग, जितना ही चिन्ताजनक है, लज्जा-सर्ग उतना ही सलज्ज और सुन्दर है। किन्तु पीछेके सर्गोंमें वैज्ञानिक और दार्शनिक

बननेके फेरमें प्रसादजीने उस काव्यको ऐसा जटिल कर डाला कि उसमें रसका तो अभाव है ही, साथ ही अत्यन्त परिश्रम करनेके पश्चात् भी कविका उद्दिष्ट अर्थ किसीकी समझमें नहीं आता। परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दीके सब प्राध्यापक अपने मनसे सांख्य और वेदान्त खोद-खोदकर अत्यन्त कष्ट कल्पना और खींचतान करके कुछ भी अर्थ तो निकाल ही लेते हैं पर किसी रसपूर्ण, चमत्कारपूर्ण अथवा रमणीय अर्थका प्रतिपादन करना फिर भी असम्भव हो जाता है। उन्होंने आनन्द सर्गकी रचनामें भी कुछ ऐसी हड़बड़ी की है कि आनन्दका ठीक रूप ही स्पष्ट नहीं हो पाता। इसीलिये मैं कामायनीको न तो महाकाव्य ही मानता हूँ न उसे रसात्मक महाकाव्यकी ही श्रेणीमें रखनेका ही दुःसाहस कर सकता हूँ। यदि प्रसादजी इस काव्यको दुहरा लेते, इसकी विश्रृंखल श्रृंखलाओंको जोड़ देते, नीरस, अति दार्शनिक तथा वैज्ञानिक जटिलताओंसे पूर्ण स्थलोंको निकाल देते और जिस रसधारामें उन्होंने 'श्रद्धा'का काव्यमें प्रविष्ट कराया है उसीका अन्त-तक निर्वाह करते रहते तो निश्चय ही उनका काव्य हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ काव्योंमें होता।

आपने जो शंका प्रकट की है, वह निर्मूल है। हिन्दीवाले लोग पढ़ते-लिखते कम हैं, इसलिये वे इसके दार्शनिक आतंकसे ही इतने अभिभूत हैं कि वे जन्मभर इसका लोहा मानते रहेंगे। इसलिये जहाँ-तक इसकी प्रतिष्ठाकी बात है उसमें कोई कमी नहीं होगी, यह मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ।

आशा है मैं आपका उचित समाधान कर सका हूँ। कुशल-मंगल लिखिएगा।

भवदीय

यह एक और पत्र लीजिए जो एक सात्त्विक स्नेह करनेवाली देवीने अपने प्रियको नव-वर्षकी मंगल-कामना करते हुए लिखा है—

१. १. '५६

मेरे परम आराध्य !

आज उषाःकालकी इस मधुर, रम्य और स्वर्णिम वेलामें मैं अत्यन्त श्रद्धा और स्नेहके साथ अपने हृदयकी शुभ और मंगल कामनाएँ आपके चरणोंमें अर्पित करती हूँ। मुझे विश्वास है कि आप उसे अवश्य स्वीकार करेंगे।

मेरी सदैव यही कामना रही कि आज इस मधुर दिवसपर कुछ क्षणके लिये भी आप मेरे निकट रहा करते किन्तु अतिशय व्यस्तताके कारण आपको कभी इतना अवकाश ही नहीं मिल सका।

आज मेरी कल्पना पुनः सागरके उसी मधुमय तटपर पहुँचकर ऊँची उठती हुई तरंग-मालाओंकी ध्वनिमें वरुणदेवके गम्भीर स्वरके मध्य दिग्दिगन्तको गुंजित करनेवाले स्नेह, सत्य और विश्वाससे भरे आपके उसी कण्ठ-स्वरको सुन रही है जिसने संसारके छल, कपट, प्रवंचना, असत्य और वासनासे बहुत ऊपर स्नेहको उस पवित्र भूमिपर पहुँचा दिया जहाँ मैंने आपके चरणोंमें पुष्प-तुल्य अपना हृदय समर्पित कर दिया।

मानसमें अंकित शंकर-तुल्य आपकी मूर्तिपर नित्य, प्रतिक्षण यह हृदय प्रेम-पुष्प चढ़ाता रहता है।

संसारके कोलाहलसे दूर, जहाँ वासनाकी गंधतक नहीं पहुँच पाती, उस पवित्र स्थानपर नित्य सती-तुल्य आपके ही ध्यानमें लीन होकर मैं प्रत्येक जन्ममें केवल आपके ही स्नेहकी कामना करती हूँ; किन्तु न जाने क्यों चारों ओर दिग्दिगन्तमें व्याप्त वह स्वर मंद होकर विलीन पड़ता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो परिवर्त्तन-शील जगत्के कर्कश और भीषण कोलाहलमें वह मधुर ध्वनि तिरोहित हो जा रही हो।

इसकी कल्पना मात्रसे हृदय विकल होकर आपको पुकार-पुकार

उठता है किन्तु वह पुकार वायुमें ही विलीन हो जाती है, और मुझे केवल ये ही पंक्तियाँ स्मरण हो आने लगती हैं—

पूरन प्रेमको मंत्र महापन, जा मधि सोधि सुधार है लेख्यो।
ताहीके चारु चरित्र विचित्रनि यों पचिके रचि राखि बिसेख्यो॥
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जू आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियो परि बाँचि न देख्यो॥

सदा आपकी—

मैं....

इसका सरस स्नेहमय उत्तर भी लीजिए—

२. १. '५६

सरस स्नेहमयि! प्राणवल्लभे!

नव वर्षके पुनीत तथा मंगल पर्वपर तुम्हारा स्नेहसिक्त पत्र पाकर हृदय पुलकित हो उठा। ऐसा कौन मन्दभाग्य कृतघ्न होगा मधुमय स्नेहका शतांश पाकर भी अपनेको धन्य न समझता हो। फिर जिसे तुमने अपना भावमय हृदय अर्पण करनेकी उदारता दिखाई हो, जिसे अपने कोमल स्पर्शसे पुलकित किया हो, अपने भुजबन्धकी मन्दार-मालासे अभिनन्दित किया हो, रसमय अमृत पल्लवोंका मधु पिलाकर रसमत्त किया हो, वह उसकी उपेक्षा करनेकी छद्मपूर्ण धृष्टता कर कैसे सकता है?

जिस प्रसंगने तुम्हारे कोमल हृदयमें शंकाके बीज बोनेका प्रयास किया है उसका आधार अत्यन्त उपेक्षणीय है। वह केवल तुम्हारे मंगलमय स्नेहकी सुरक्षाका अनिवार्य साधन मात्र है, जो तुम्हें मेरे समीप और मुझे तुम्हारे समीप पहुँचनेमें सदा कवचकी भाँति, प्राचीरकी भाँति सहायक ही सिद्ध होगा और जिसकी स्वल्प संतुष्टि हमारी स्नेह-वल्लरीके संवर्द्धनमें मधु सेचनके समान हितकर ही होगी। अतः उससे इस प्रकार सशंक होनेकी सम्भावना ही नहीं उठनी चाहिए। क्या

मैं आशा करूँ कि मेरा इतना ही प्रतीकात्मक संकेत तुम्हारी भीत कल्पनाको सुखस्थित रखनेमें पर्याप्त सहायक हो सकेगा ?

घनानन्दका काव्य-सौष्ठव और सारस्य तो मेरी वाणीमें नहीं है किन्तु यदि मैं शारदाका आवाहन करके, काव्यका कुछ माधुर्य घोलकर अपना हृदय खोलकर तुम्हारे आगे रख पाता तो मेरी वाणी यही कहती—

जा हित लोक-बबाव सही तजि भाव-कुभाव अनीति बिसेखी ।
जा मुखकी छबि चाहिबे काज सदा अति आतुर ह्वै चख पेखी ॥
जा हित प्रीति प्रतीति घनी उपजाय सुहाय हिये अवरेखी ।
ताहिको ही जौ ससंक भयौ तौ लखौं बिधि बंक भयौ बहुभेखी ॥

तुम्हारे स्नेहवचनका भिक्षुक साधक

मैं हूँ
केवल तुम्हारा

समीक्षा

किसी लेख, पुस्तक, समाज, रीति-नीति, विचार, सिद्धान्त, वस्तु, विषय, व्यक्ति आदिके सम्बन्धमें, उनके गुण-दोषकी मीमांसाके रूपमें अथवा उनकी प्रशंसा या निन्दा या गुण-विश्लेषणके रूपमें जितना कुछ लिखा जाता है वह सबका सब समीक्षाके अन्तर्गत आता है । इसी समीक्षाको आलोचना भी कहते हैं । जब हम किसी व्यक्ति, ग्रन्थ, लेख या कविताके सौंदर्यका स्वयं अनुभव करके उस सौंदर्यका विवरण इस रीतिसे देते हैं कि दूसरे लोग भी उस प्रकारका आनन्द लें तब वह समीक्षा 'अभिशंसन' (एप्रीशिएसन) कहलाती है, किन्तु जब व्यापक रूपसे किन्हीं विशेष शास्त्रानुमोदित अथवा समीक्षकों द्वारा निर्धारित सिद्धान्तोंके अनुसार

किसी विषय, वस्तु या व्यक्तिकी आलोचना होती है तब वह समीक्षा कहलाती है। एक ग्रन्थकी संक्षिप्त समीक्षाका उदाहरण लीजिए—

शिवायन

महाकाव्य। रचयिता : स्वर्गीय पण्डित सत्यनारायण झा। सम्पादक और प्रकाशक : श्री दिनेशदत्त झा, काशी। पृष्ठ-संख्या ७६८ : अमूल्य वितरित।

यह महा-काव्य सन् १६४३ के आरम्भमें छपकर पूर्ण हुआ और सन् ४६ में प्रकाशित हुआ। यह आश्चर्यकी बात है कि इतना सुन्दर ग्रन्थ वह प्रसिद्धि न पा सका जो इसे बहुत पहले प्राप्त हो जानी चाहिए थी। इधर थोड़े दिनोंसे हिन्दीमें जो कई प्रबन्ध-काव्य निकले हैं उनमें शिवायनका अपना अला महत्त्व है। कवि महोदयने अवधीकी कोमल-कान्त पदावलीमें इस ग्रन्थकी रचना की है। इसकी भाषा स्वभावत: संस्कृत-निष्ठ है। इसमें प्रार्थना इत्यादिके पद्योंकी रचना तो शुद्ध संस्कृतमें ही की गई है। इसमें चार काण्ड हैं—'विवाहकाण्ड, लीलाकाण्ड, उपदेश काण्ड और कैवल्यकाण्ड।' विवाह-काण्डमें सती और शिवके विवाहसे लेकर दक्षके यज्ञका विध्वंस, पार्वतीजीका जन्म और विवाह-तककी घटना है। लीलाकाण्डमें तारकासुर और त्रिपुरासुर आदिके संहार वर्णन है, उपदेश काण्डमें सम्पूर्ण भारतीय आचार और नीतिका विशद विवेचन है और कैवल्यकाण्डमें माया, ब्रह्म, भक्ति तथा अन्य सभी भारतीय आध्यात्मिक तत्त्वोंका विस्तृत विवरण है। प्रसादजीकी कामायनीमें जो आध्यात्मिक आनन्दवाद स्पष्ट नहीं हो पाया वह इसमें अत्यन्त स्पष्ट रूपसे समझा दिया गया है।

इसकी संस्कृतनिष्ठ भाषाका एक उदाहरण लीजिए जहाँ कापालिकाओंका वर्णन है—

असृग्रक्तवस्त्रा विवस्त्रा सशस्त्रा ।
महातांडवाऽडम्बरा आत्तअस्त्रा ॥

इनके प्रवाहपूर्ण वर्णनका एक उदाहरण लीजिए—

पुनि पुनि बढ़त पियास, कथा अमियरस पान करि ।
छाँडि सकल आयास, सुनन चहौं शंकर-सुयश ॥
सुनत बचन गुरु अति हरषाए । तन पुलकित जल-नैन बहाए ॥
धन्य जनक-जननी कुल तासू । शंकर-कथा श्रवण-रुचि जासू ॥

चौपाइयोंके ग्रथनमें इन्होंने किसी नियमका पालन नहीं किया है । छन्द या दोहेके पश्चात् तीस-तीस, चालीस-चालीस चौपाइयाँ दे डाली हैं ।

कहीं-कहीं स्तुतियाँ बड़ी सुन्दर हैं जैसे—

नमस्ते कपालिन् कपर्दिन् नमस्ते ।
नमस्ते पिनाकिन् त्रिशूलिन् नमस्ते ॥

भाषाकी त्रुटियाँ कहीं-कहीं अवश्य रह गई हैं और वे भी इसलिये कि कवि महोदयकी मातृभाषा अवधी नहीं है। 'दयऊ' के बदले 'दियऊ' बहुत खटकता है जैसे—दक्ष कलेवर अजमुख दियऊ ।

या

'कहन लगे' के बदले 'भाषण लगे'

भाषण लगे नैन भर नीरा ।

जो

'कहन लगे लोचन भरि नीरा' होता तो ठीक होता ।

कहीं-कहीं उर्दूके मुहावरे भी बहे चले आए हैं जैसे—

लगी तारकीया चमूको चबाने । लगा होश सेनानियोंका ठिकाने ॥

हमें विश्वास है कि हिन्दी जगत इस विशाल महाकाव्य उचित समादर करेगा और इसके दिवङ्गत यशस्वी कविका अभिनन्दन करेगा ।

दिनचर्या

योरपमें १८वीं और १९वीं शताब्दिमें एक नये प्रकारके साहित्यिक स्वरूपका बड़ा प्रचलन हुआ जिसे 'दिनचर्या' (डायरी) कहते हैं। किन्तु इस दिनचर्यामें केवल सोने, उठने, भोजन करने आदिका विवरण न देकर अपने जीवनमें अनुभव की हुई कोई ऐसी घटना, नई अनुभूति, विचित्र वस्तु आदिका विवरण हो जो सामान्यतः मानव-समाजके लिये भी शिक्षाप्रद, नवीन, अद्भुत, रुचिकर तथा लाभकर हो। हमारे यहाँ भी बहुतसे लोग इस प्रकार अपनी दिनचर्या लिखते हैं किन्तु न तो उनमें साहित्यिकता होती है न किसी प्रकारका कुतूहल और नवीनता। अतः दिनचर्याका साहित्यिक रूप निश्चित रूपसे भाषा-शैली और भाव-शैलीसे समृद्ध होना चाहिए। नीचे एक दैनन्दिनीसे एक दिनकी दिनचर्या दी जा रही है—

२४ दिसम्बर सन् १६४५

आज उठा तो देखा सारी धरित्री कुहरेकी चादरमें मुँह ढके नई दुलहन बनी सिकुड़ी सिमटी बैठी हुई है। बाहर इतनी कड़ाकेकी ठण्ड पड़ रही है कि निकलनेका साहस नहीं हो रहा है। यहाँ अँगीठीकी आँच बार-बार कुरेदते-कुरेदते ठण्ढी होती जा रही है। पर अकर्मण्य होकर बैठा भी कितनी देरतक रहा जा सकता था।

मैं ज्यों ही कपड़े पहनकर बाहर निकला त्यों ही श्री............आ पहुँचे। उनके मुखपर वह मधुर मुसकान नहीं दिखाई पड़ रही थी जो नित्य मधुहास बनकर उनके मुखसे छलकी पड़ती थी। वे बैठ गए और फिर आँखें पथराकर, हथेलीपर गाल रखकर चुपचाप बैठे रहे। बहुत

पूछनेपर उन्होंने जो समाचार मुझे दिया वह सुनते ही मैं हक्का-बक्का रह गया—'एँ! मनुष्य इतना नीच हो गया! इतने बड़े साहित्यकारके साथ इतना बड़ा विश्वासघात! राजर्षिकी पदवी बाँधकर नैतिकताका ढोंग करनेवाले, बौद्ध भिक्खुका वेश बनाकर औरोंको उपदेश देनेवाले लोग इतने निम्नस्तरतक उतर आवेंगे और एक विद्वानपर झूठा अभियोग लगाकर उसे फँसानेकी यह क्षुद्रता करेंगे! हरे! हरे! इन्हें किस नरकमें स्थान मिलेगा?

मैं उन्हें साथ लिए दिन भर घूमा हूँ। मेरे पैर पत्थर बन गए हैं, सिर चकराने लगा है। पर अभीतक यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि उनकी किस प्रकार सहायता करूँ? कल तड़के ही फिर निकलूँगा! जिसका हाथ पकड़ लिया है उसे छोड़ूँगा नहीं, अन्ततक निर्वाह करूँगा।

यात्रा

यात्रा-साहित्य (ट्रेविल लिटरेचर) प्रायः सभी देशोंमें बहुत रहा है। ये यात्राएँ, पर्यटन, देशाटन, तीर्थ-यात्रा, साहसपूर्ण अभियान, संकटापन्न भ्रमण आदि अनेक रूपोंमें हो सकती हैं। हमारे यहाँ पुरानी कथा-कहानियोंमें इस प्रकारके बहुतसे विवरण आते हैं। किस्सा साढे तीन यार, किस्सा तोता-मैना भी इसी प्रकारकी शैलीमें लिखे हुए हैं किन्तु साहित्यिक दृष्टिसे संस्कृतमें दशकुमारचरित और फारसीमें अलिफ लैलाकी कहानियाँ ही इस श्रेणीमें आती है जिनमें लोगोंने अपनी यात्राओंका विस्तृत विवरण दिया है। ये यात्राएँ वास्तविक भी हो सकती हैं और काल्पनिक भी। वास्तविक यात्राका सुन्दर उदाहरण पृष्ठ १०७ पर 'डेनमार्क' के विवरणमें देखिए और काल्पनिकका यह विवरण लीजिए—

कार्लाकी कन्दरामें

दिन तो निकला किन्तु सूर्य नहीं निकल पाए। बादलोंने उन्हें निकलने ही नहीं दिया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि ठीक गाड़ीके समय बादलोंने हमें निकल भागनेका अवसर दे दिया। जान पड़ता है वे जलपान करने निकल गए होंगे नहीं तो एक गहरा छींटा देनेमें उनका लगता ही क्या था। बादलोंकी आँख बचाकर हम लोग ताबड़तोड़ निकल भागे।

तिकिट लिया था मलवलीका। उधर महाराष्ट्रमें टिकटको तिकिट ही कहते हैं। बम्बई प्रान्तमें वलीसे अन्त होनेवाले बोरीवली, काँदेवली आदि अनेक गाँवोंके नाममें लगी हुई 'वली' और कुछ नहीं, उसी पल्लीका अपभ्रंश है जो गाँवके शुद्ध नामके रूपमें सर राधाकृष्णन्‌के साथ जुड़ी हुई 'सर्वपल्ली'में घुसी बैठी है। किन्तु मलवलीको आप मलपल्ली न समझ बैठिएगा। वह किसी समय रही होगी मल्लपल्ली—पहलवानोंकी बस्ती, पर आज वह सचमुच मल-पल्ली ही रह गई है। नामके साथ-साथ नगरका रूप भी अपभ्रष्ट होकर यथानाम तथारूप हो गया है।

हम लोग गाड़ीमें चढ़े ही थे कि इन्द्र भगवान्‌को हम लोगोंके निकल भागनेकी सूचना किसी पंचमाङ्गीने दे दी, इसलिये खीझ-खीझकर उन्होंने अपने ऐरावतकी सूँड़में अरब सागर भर-भरकर उँडेलना प्रारम्भ कर दिया। पर बिजलीकी रेलगाड़ीमें बैठ चुकनेपर उसकी चिन्ता किसे थी? बरसें न जी खोलकर।

हम मलवली उतरे तो धुँआधार पानी बरस रहा था। इन्द्र भग-वान् समझ बैठे थे कि हम लोग डरकर भाग खड़े होंगे किन्तु मुझे वह प्रसिद्ध श्लोक कंठस्थ था जो पूज्य मालवीयजीने अपनी हस्तलिखित सूक्ति-पुस्तिकाके पहले पन्नेपर लिख छोड़ा था—

अंगणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥

[जिस वीरने प्रतिज्ञा ठान ली है, उसके लिये यह विस्तृत पृथ्वी भी आँगनके समान सँकरी बन जाती है, अथाह महासागर भी छोटी-सी तलैया बना रह जाता है, पाताल ऊपर धरतीपर उठ आता है और विशाल सुमेरु भी बाँबी-जैसा नन्हाँ हो जाता है।] इसलिये हमने एक बार आकाशकी ओर देखा, उपेक्षाकी हँसी हँसी और रेलकी पटरी पार करके नाककी सीध चल दिए कार्लाकी ओर। कार्ला पर्वत सामने था पर दूर था। वर्षा हो रही थी पर हम लोग चले जा रहे थे। मेरे पास बरसाती थी पर वह जल बरसाती चल रही थी। 'अभयजी'के पास ऊनी कोट था पर वे उसे बरसाती बनाए हुए थे। 'मानव'के पास कम्बल था पर उन्होंने उसकी घुग्घी मार ली थी। हम लोग सौ पग भी आगे न पहुँचे होंगे कि एक अज्ञात-नामा बरसाती नदी अपना लम्बा-चौड़ा पाट और अपरिमित वेग लिए हुए मार्ग रोके बह रही थी। उसपर बना हुआ पुल जलमग्न हो चुका था और पुलके दोनों ओर उठे हुए लघड़े कुछ-कुछ सिर निकालकर कह रहे थे कि 'यह धारा राक्षसी जब हम-जैसे रात-दिनके साथियोंको निगले जा रही है तब आप लोगोंको क्या छोड़ेगी? लौट जाओ पीछे। पकड़ो अपने घरका पैंड़ा।'

मैंने तो एक बार साहस किया भी कि कूद पड़ूँ धारामें क्योंकि बरसाती पागलपन लिए हुए भी उस धाराका पाट काशीकी गङ्गाजीसे अधिक चौड़ा नहीं था। बहुत दिनोंसे तैरनेका अवसर न मिलनेके कारण तैरास भी लगी हुई थी, किन्तु अभय होते हुए भी अभयजी सभय हो रहे थे और मानवजी कोई अति मानवीय कार्य करनेको प्रस्तुत नहीं थे। इसलिये मुझे भी अपने उत्साहकी रास खींचनी पड़ी और हम लोग लौट पड़े पीछे। उसका दुःख भी नहीं हुआ क्योंकि निरर्थक दुःसाहस करके प्राण सङ्कटमें डालनेकी मूर्खता करना भी ठीक नहीं था।

'दिल्ली चलो' का आदेश पाकर आगे बढ़ती हुई स्वतंत्र हिन्द सेनाके सिपाहियोंको इम्फालमें सहसा पीछे हटनेका आदेश पानेसे जो निराशा हुई थी उससे कम निराशा हमें भी नहीं हुई। लौट पड़े हम लोग। वहीं टीनके छप्परोंतले एक जयपुरिया वैश्यकी दुकान थी। भूखमें किवाड़ भी पापड़ लगते हैं। मिर्चसे अत्यन्त विराग होनेपर भी उस दिन अतिमिर्चित बेसनके सेवसे अनुराग निभाना पड़ा। फिर समुद्री तटके मेवे—कच्चे खोपरे (नारियल)—की गिरीसे मिर्चकी कटुताका निराकरण करके लौट आए स्टेशन। अभी गाड़ीके शुभागमनमें अस्सी मिनटकी देर थी।

इसी बीच किसीने बताया कि यहीं पास की पहाड़ीपर भाजाकी कन्दराएँ हैं। घंटे-भरमें जाकर लौट भी सकते हैं। आशा फिर हरी हो उठी, उत्साह फिर उठ बैठा और उल्लास फिर चंगा हो गया। हम लोग चल दिए भाजाकी ओर। भाजाको भाजीका पुरुष सहचर माननेकी कष्ट-कल्पना नहीं करनी चाहिए। भाजा एक नन्हाँसा दस-बारह घरोंका गाँवड़ा है जिसमें यात्रियोंकी सुविधाके लिये-दो छोटी-छोटी दूकानें हैं, जिनमें दक्षिण भारतका प्रसिद्ध खाद्य चिउड़ा और अनिवार्य पेय (चाय) आपको अवश्य और सदा मिल ही सकती है। गाँवकी मेंड़ पार करते ही मिले दो बालक गणपति और नारायण—रहे होंगे दस-दस बारह-बारह बरसके। ये ही हमारे पथप्रदर्शक बने। जब गणपति और नारायण स्वयं पथप्रदर्शक हों, तब भय क्या था। हम लोग चढ़ चले पहाड़ीपर। पहले ही एक झरना पार करना पड़ा। कितने ऊँचेसे गिरता चला आ रहा था वह! मन करता था कि बैठ जायँ उस झरनेकी फुहारके तले जो शिला-खंडोंकी कोरोंपर उछलता, कूदता, खेलता, जल-सीकर बिखेरता, धड़धड़ाता बहा चला आ रहा था नीचे। किन्तु उस समय स्वयं आकाश ही झरना बना हुआ फुहारें बरसा रहा था। झरना पार करते ही पथ-प्रदर्शकोंने बाएँ घूमनेका आदेश दिया।

घुमनी पगडंडियोंकी पथरीली और सकरी बटियोंपर चढ़ते हुए हम लोग पहुँच गए पहाड़ीकी उस चोटीतक जहाँ कभी बौद्ध भिक्खु मिलकर समवेत स्वरमें कन्दरागत चैत्यके आगे तीन बार झुककर मलवलीकी विस्तृत घाटीको गुँजाते हुए कहते होंगे—बुद्धं सरनं गच्छामि, धम्मं सरनं गच्छामि, संघं सरनं गच्छामि, जहाँ थेरों और महाथेरोंने भिक्खुओंको दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध, दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद्के चार अरिय सच्चोंका उपदेश दिया होगा; जहाँ विशेष पर्वोंपर सम्मासम्बुद्ध अर्हतोंने जिज्ञासु गृहस्थों और श्रावकोंको निब्बाणुप्पत्ति (निर्वाण-प्राप्ति) के मार्ग बताए होंगे और प्रवचन आरम्भ होनेसे पूर्व सम्पूर्ण एकत्रित जन-समाज दीपदानके पश्चात् सिर झुकाकर गम्भीर तथा संयत स्वरसे कहता होगा—'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स ।' योरोपकी भवन-निर्माण-विद्याके अंतर्गत जिस गोथिक कलाकी प्रशंसा करते हुए विद्वान् लोग अघाते नहीं, उसका प्रारम्भिक मूल मैंने भाजाकी कन्दरामें देखा—पहाड़ोंको खोदकर उसमें पीपलके पत्तेके आकारकी सीधी गहरी खुदाई करके अनेक स्तम्भोंवाला ऊँचा और लम्बा भवन निकाल दिया गया है । पीछेकी ओर साँचीके स्तूपके संक्षिप्त संस्करणके समान एक चैत्य और खंभोंके पीछे दोनों ओर सँकरा-सा अलिन्द (दालान) है। खंभोंके ऊपर अद्भुत कलासे छतके ऊपरी कोणसे पीपलके पत्तेके घेरेवाले घुमावकी ऊपरी बनावटको कसकर रखनेके लिये ऐसी दृढता और कुशलताके साथ लकड़ीके थाम लगे हुए हैं कि आजतक वे सड़ नहीं पाए हैं और खाँची या तानके बिना ही अभीतक उस पर्वतका बोझ थामे हुए पिछले लगभग २२०० वर्षोंसे कंदराके सौंदर्य और आकारकी रक्षा करते हुए वे तने खड़े हैं । उस चलदल पत्राकार कन्दराके मुखपर तोरण-द्वारमें छीनियोंवाले कलाकारोंने शिलाका शरीर खोदकर शृंखलाकी बेलें, अनेक प्रकारकी मूर्तियाँ तथा आकृतियाँ सजीव कर दी हैं । बाहरके द्वारोंपर हाथी-घोड़ोंपर चढ़े हुए अनेक प्रकारके स्वरूप

उस कन्दराके जन्मकालीन समाजके रहन-सहन, उनकी वेशभूषा और आचार-व्यवहारका चित्र लिए आज भी जीवित-से विराजमान हैं।

उसीके पास एक टीनके छप्परके नीचे भेड़के झुण्डके समान पुराने चैत्योंका एक समूह भी पुरातत्त्व विभागकी ओरसे सुरक्षित कर दिया गया है। कन्दराके दोनों ओर नीचे विहार हैं जिनकी नन्हीं-नन्हीं कोठरियोंमें दुबला-पतला एक-एक बौद्ध भिक्खु रहा करता होगा, पत्थरके एक सँकरे थालेपर सोया करता होगा, जिसके पास पात्र तथा चीवरके अतिरिक्त कोई सामग्री नहीं रहती होगी। इस कन्दराके द्वारपर खड़े होकर हम लोगोंने देखी दूर-तक सामने फैली हुई विस्तृत घाटी और पर्वतमाला, जिनमें उलझे हुए थे काले-काले चलते-फिरते बादल, जो शैल-शिखरोंको गौरीपति मानकर निरंतर उनका अभिषेक करते चले जा रहे थे। तत्काल मैं मेघदूतका यक्ष बनकर देखने लगा उन मेघोंको, किन्तु अपनी विरहिणी प्रियाको संदेश भेजनेके लिये नहीं। वप्रक्रीडा-परिणत गज (टीलोंको ढानेके खेलमें लगे हुए हाथी) का प्रेक्षणीय दृश्य मैं भी देखने लगा और महाकविका चित्रण-कौशल पढ़कर समझने लगा कि पहाड़ीका ढलवाँ सिर ही हाथीका मस्तक है और बादल ही टीले हैं।

घड़ी रखनेका दुरभ्यास न होनेके कारण घड़ी-घड़ी लौट चलनेकी बात चल रही थी इसलिये भाजाकी इन कन्दराओंमें २२०० वर्ष पहले रहनेवाले बौद्ध भिक्खुओंके सौभाग्यपर ईर्ष्या करते हुए हम लोग लौट पड़े। अभी बीच पंथतक भी नहीं पहुँच पाए थे कि सहसा दूरसे रेलगाड़ीके शुभागमनका सूचक-दंड हाथ लटकाए दिखाई पड़ गया। हम लोग पैदलसे दुलकी, दुलकीसे पोई और पोईसे सरपट दौड़ते, ऊबड़-खाबड़ मार्गपर कूदते-फाँदते, गिरते-पड़ते किसी-किसी प्रकार रामराम करते गाड़ीसे पहले पहुँच गए। अभीतक घड़ीकी बड़ी सूईको एक अङ्कसे दूसरे अङ्कतक पहुँचना शेष था और कार्ला जानेका साहस भी निःशेष नहीं

हुआ था। स्टेशनपर पहुँचकर हम लोग बम्बई और कार्ला दो लक्ष्योंके बीच अस्थिर होकर खड़े ही थे कि एक अपरिचित मित्रने हमारे उत्साहको पल्लवित करते हुए सूचना दी कि लोनावालासे कार्लाको मोटर जाती है। लोनावालाका टिकट कटा लिया गया और बिना अञ्जनके ही बिजलीके सहारे दौड़नेवाली गाड़ीमें बैठकर हम लोग बातकी बातमें लोनावाला जा पहुँचे।

स्टेशनपर गहरा जलपान और लेनेके पश्चात् मोटरकी प्रतीक्षामें बैठे-बैठे एक घण्टा निकल गया और समाचार देनेवालोंने मोटरके आगमनकी जो निराशापूर्ण सूचना दी उससे भी जी बैठने लगा। पर एक बार सपरिकर होकर बिना संकल्प पूरा किए पेटी खोल देना पौरुषका अपमान करना था। इसलिये एक कानपुरी वैश्यके उपाहारगृहमें अपना बिस्तर लिटाकर हम लोग उसके छज्जेके तले बैठकर मोटरकी बाट देखने लगे।

मोटर आई। उसने बारह आने तथा छत्तीस मिनटमें हमें कार्ला पहाड़ीके पैंड़ेतक पहुँचा दिया। मेरे पास बरसाती थी और अभयजीका ऊनी कोट भी बरसाती बना हुआ था किन्तु मानवजीकी कमलीके तार भीग चुके थे और वे लोनावालाके उपाहार-गृहमें ही उसे छोड़ आए थे। भीगे कम्बलका बोझ ले चलना कोई हँसी-खेल नहीं था। तो अब किया क्या जाय! देखा, कुछ ग्वाल-बाल बाँसकी खपाचियोंमें पलाशके सूखे पत्ते जमाकर बनाया हुआ और सिरसे कमरतक छोटी-सी एकमुँहा झोंपड़ीके समान मनुष्यको ढँक ले सकनेवाला इर्ना ओढ़े बैठे हुए हैं। याचना करनेपर तो इर्ना नहीं मिल सका किन्तु अठन्नीका प्रलोभन देते ही उस गोपाल या अजापालका इर्ना मानवके सिरपर आ गया और हम लोग बढ़ चले उस जल-पंक-पूरित कच्चे पथपर जिसमें घुटनों-गहरा कीचड़ था, जाँघभर गहरा जल था, छोटे-बड़े सर्प थे और मनुष्यके नामपर केवल एक सज्जन (सम्भवतः कृषाण) थे जो इर्ना ओढ़े

हुए अपने धानके खेतोंका निरीक्षण कर रहे थे या अपनी इकलौती भैंसके पगुरानेपर उसका मनोविश्लेषण कर रहे थे।

हम लोग चढ़ चले पहाड़ीपर जो भाजाकी पहाड़ीसे चौगुनी ऊँची रही होगी। यद्यपि हम लोग चढ़ते चले जा रहे थे पर कन्दराएँ दृष्टिको छू-तक नहीं पा रही थीं। चलती हुई चींटी भी गन्तव्य-तक पहुँचकर रहती है फिर हम तो कृतप्रतिज्ञ 'अभय-मानव-हृदय' थे। पहुँच ही गए। ऊपर एक श्वान महोदयने अपने महागुर्गुरसे हमारा मधुर स्वागत किया किन्तु हम लोगोंने भी जब अपने महाहुंकारसे उन्हें दुर्दुरायमान करना प्रारम्भ किया तो उनके स्वामी बाहर निकल आए, जो संयोगसे कार्लाकी कन्दराके राजकीय संरक्षक थे।

दो-दो आने टिकट देकर हम लोग कार्ला या कार्लि कन्दराका निरीक्षण करने घुस गए। यह कन्दरा भी रूपमें भाजाकी कन्दराके समान ही थी, किन्तु बहुत बड़ी थी। कन्दराके द्वारपर पहले सिंहद्वार मिला और सिंह-द्वारके दाईं ओर एक ऊँचा गोल स्तम्भ मिला जिसके ऊपर चार सिंह-मूर्तियाँ हैं। सिंह-द्वारके पीछे एक दूसरा द्वार है जिसके दोनों ओर दो अठपहलू स्तम्भ हैं और भीतर है भव्य भवन। जान पड़ता है कोई नाट्यशाला है। दोनों ओर सुन्दर कलापूर्ण हस्तिशिरो-मंडित खम्भोंकी पंक्तियाँ, उनके पीछे दालान और सामने भव्य, ऊँचा चैत्य है जिसके ऊपर उसी समयकी बनी हुई एक लकड़ीकी छतरी थी, जिसमें सुन्दरता और भव्यता दोनोंका अद्भुत सम्मिश्रण था। किस प्रकार पहाड़ काटकर इतने ऊँचेपर और इतने दिन पहले इस सौंदर्यकी सृष्टि की गई होगी यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है? कहते हैं कि महाराज भूति या देवभूतिने विक्रम सम्वत्से २१ वर्ष पूर्व जो पर्वतके भीतर चैत्य बनवा दिया था, वैसी दिव्य कला आजका सम्पूर्ण वास्तु-विज्ञान भी क्या नहीं प्रकट कर पा सका है?

संध्या हो रही थी। हम लोग लौट पड़े। जहाँ मोटरने छोड़ा था

वहाँतक पहुँचते-पहुँचते पैर पत्थर हो चुके थे, किन्तु जब वहाँ सुना कि मोटर नहीं आवेगी तब तो मानो काठ मार गया। पर हम लोग भी चलते रहे और रातको आठ बजेके लगभग थके-माँदे पहुँचे उपाहार-गृहमें। युक्तप्रान्तीय प्राँवटोंका स्वाद उस दिन थकावट और भूखमें शतगुणित हो गया था। हम लोग रातको ही बम्बईके लिये चल दिए और जब प्रातःकाल बम्बई पहुँचे तब पानी तो नहीं बरस रहा था पर बादल भरपूर घिरे हुए थे।

निमंत्रण पत्र

यद्यपि निमन्त्रण-पत्र कोई साहित्यिक रूप नहीं है किन्तु यदि कोई व्यक्ति उसे साहित्यिक बनाना चाहे तो उसे अधिक आकर्षक, रुचिकर और हृदयहारी बना सकता है। साहित्यिक महोत्सवों, काव्य-गोष्ठियों आदिके लिये लिखे हुए निमन्त्रण-पत्रोंमें यह विशेषता होनी ही चाहिए। कवि-सम्मेलनका यह निमन्त्रण-पत्र देखिए—

काव्य-गोष्ठी

सहृदय काव्य-रस-रसिकवर !

आज श्रीपञ्चमीके वासन्ती पर्वपर, वीणा-वादिनीकी मङ्गलार्चनाके मंगल मुहूर्त्तपर, दिवस-यामिनीके मधुमिलनकी मदिर वेलामें काशीके कुशल रस-भाव-मर्मज्ञ मनीषी, परिभू, स्वयंभू कवियोंकी अमृतमयी वाणीका मधुपान करके ब्रह्मानन्द-सहोदरका सद्यः साक्षात्कार करनेके निमित्त हम आपको सादर, सस्नेह, सभाव आमन्त्रित कर रहे हैं।

आशा है आप उस सरस सभाकी शोभाको अपने मंगल चरणकी विभूतिसे पवित्र और अपनी कोकिल-काकलीसे मुखरित करनेका सौमनस्य दिखावेंगे।

वशंवद

....

आवेदन पत्र

आवेदन-पत्रका तात्पर्य यह होता है कि हम जिससे अपने किसी कार्यके लिये प्रार्थना करें वह हमारी प्रार्थनाके कारणोंको तो भली प्रकार समझ ही जाय, साथ ही वह हमारी प्रार्थनाकी रीति और शैलीसे भी इतना प्रभावित हो कि वह आवेदनपत्र पढ़कर ही उससे प्रसन्न होकर हमारा कार्य करनेके लिये कटिबद्ध हो जाय। उर्दूवालों-ने इस प्रकारके आवेदनपत्र लिखनेके बहुतसे औपचारिक रूप और ऐसी अनेक औपचारिक शैलियोंका निर्माण कर लिया था, जिनका प्रचलन अब भी न्यायालयोंमें कभी-कभी देखनेको मिल जाता है। किन्तु नागरीमें भी आवेदनपत्रोंके साहित्यिक रूप सँवारे जा सकते हैं और उसके लिये शिष्ट, संयत, प्रभावशाली औपचारिक शब्दा-वलीका भी निर्माण किया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास-जीकी विनय-पत्रिका ऐसा ही साहित्यिक आवेदन-पत्र है।

सूचना

साधारणतः साहित्यिक गद्य-रूपोंमें सूचनाकी गणना नहीं होती किन्तु जब कोई साहित्यकार किसी नये ग्रन्थ, रचना, अथवा किसी विशेष लेखकके सम्बन्धमें जनताकी जानकारीके लिये विवरण देता है वह भी सूचना ही है। प्रायः समाचार-पत्रोंमें ग्रन्थोंकी जो समीक्षा दी जाती है वह उसी श्रेणीकी होती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकारके साहित्यिक उत्सवों अथवा पर्वोंके सम्बन्धमें समा-चार पत्रों अथवा विज्ञप्तियोंके रूपमें भी यह सूचना दी जा सकती है।

श्री संपादक 'वासन्ती', काशी

महोदय !

आपको सूचना देते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि हमारी उदार नगरपालिकाने हमारे घरके आगे ऐसी सरस व्यवस्था कर दी है कि घर-बैठे आप अपने बच्चोंको वर्षा होतेही पहाड़, नदी, नाले, झील, समुद्र, द्वीप सबका वास्तविक प्रत्यक्ष परिचय करा सकते हैं। इसके अतिरिक्त हमारा नगरपालिकाने शीघ्र मुक्ति दिलानेकी उदात्त भावनासे मच्छर तथा अन्य प्रकारके ऐसे कीटाणुओंके उत्पादन-केन्द्र भी यहाँ खोल दिए हैं जिससे हमारे देशकी बढ़ती हुई जन-संख्या भी स्वयं कम हो जाय और सबको मुक्ति भी मिल जाय। आशा है इस शिक्षा-केन्द्र और मुक्ति-केन्द्रका दर्शन करके कृतकृत्य होनेका आप अवश्य कष्ट करेंगे।

अभिनन्दन

अभिनन्दनकी प्रणाली भी हम लोगोंने विदेशोंसे ही ग्रहण की है। जिस व्यक्तिमें हमारी श्रद्धा होती है, उसके आनेपर हम स्वागत-पत्र (वेल्कम एड्रेस) समर्पित करते हैं, जानेपर विदापत्र (फ़ेयरवेल एड्रेस) देते हैं और इसके अतिरिक्त सम्मानपत्र या अभिनन्दनपत्र अथवा किसीके श्रेष्ठ, लोक-कल्याणकारी कार्यके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये कृतज्ञतापत्र और विवाह आदि अवसरोंपर प्रायः कन्या-पक्षवालों तथा वर-पक्षवालोंमें परस्पर स्नेहपत्र प्रदान किया जाता है। इसी प्रकारके अभिनन्दनका एक वह भी शुद्ध साहित्यिक रूप है जिसे अभिशंसन या आशंसापत्र कहते हैं और जिसका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

नेताजी ! आपकी जय हो

चालीस करोड़ प्राणियोंके आत्माको एक साथ हर्षसे) उन्मत्त कर

देनेवाले, पराधीनताके पाशमें जकड़े हुए राष्ट्र अपने वीरतापूर्ण कृत्योंसे मानसिक संतोष और भावी आशा प्रदान करनेवाले, अपने निष्कलंक गौरवमय चरित्रसे जनमनकी श्रद्धाका उपहार पानेवाले, पशु-शक्तिपर स्पर्द्धाभरा अभिमान करनेवाली ब्रिटिश राजसत्ताको चुनौती देनेवाले तथा प्रताप और शिवाजीकी लुप्तप्राय शूरताको पुनः जागरित कर दिखानेवाले नेताजी ! आपको शतशः प्रणाम है। सातों स्वर्गों और चौदहों भुवनोंके जिस पुण्य प्रदेशमें आप अन्तर्धान होकर योगनिद्रा ले रहे या विश्राम कर रहे हैं वह पावन प्रदेश धन्य है। जिस देशमें शरीर धारण करके आपने अपने त्यागमय जीवनसे उस देशका कल्याण किया, उस भारत भूमिका कण-कण आज नन्दन-काननकी दिव्य शोभाको परास्त कर रहा है। रघु और राघवने भारतीय पराक्रमकी जो परम्परा स्थापित की थी और जिसकी रक्षाके लिये भारतीय क्षात्र धर्मने पिछली अनेक शताब्दियोंमें अपना जाज्वल्यमान जौहर दिखलाया है, उसकी रक्षा आपके हाथों देखकर स्वर्गमें पहुँचे हुए वीर पितर फूले नहीं समाते होंगे। दिव्य लोकोंके गन्धर्वोंकी गाथाओंमें आज आपकी ही गाथाएँ गाई जा रही होंगी और विद्याधरियाँ भी आपके ही सुचरितोंके गीत देव-सभामें सुनाकर अपनेको कृतकृत्य समझ रही होंगी। कायरता और आत्मसमर्पणका पाठ पढ़कर डण्डे खाते रहनेवाली जातिको वीरता और आत्म-निर्भरताका आदर्श सिखाकर निर्भयताका पन्थ दिखानेवाले नृसिंह ! आपकी जय हो !

आज इकसठवाँ शरद् शुभ्र राकेश और कमल-मालासे आपका अभिनन्दन कर रहा है। जब आप इतने बड़े नहीं थे तब भी आपकी महत्ता अवस्थाकी परमावधिसे होड़ ले रही थी। अपनी बाल्यावस्थामें ही आपने देशभक्ति और राष्ट्रीय आत्मसम्मानका मर्म पहचान लिया था। अपने जीवनकी कोमल वेलामें आपने भारतीय दर्शनसे हेलमेल बढ़ाकर आध्यात्मिक जीवनकी अनुरक्तिके

कारण अपने मनसे सांसारिक अनुरक्ति धो बहाई थी। किन्तु जिज्ञासु साधक होनेके कारण जब आप उचित निर्देश न पा सके तो निष्क्रिय व्यक्ति-साधनमय ज्ञान-मार्ग छोड़कर सक्रिय किन्तु निष्काम कर्ममार्गमें दीक्षित हो गए और सांसारिक बन्धनोंके अनेक प्रबलतम प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करके साधक ब्रह्मचारीका व्रत लेकर आप लोककल्याणमें इतने लीन हो गए कि लौकिक जीवनके जितने सुख प्राप्य थे उनकी भी आपने अवहेलना की और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लोक-संग्रहमें लगा दी। हम कैसे भूल सकते हैं उस घटनाको, जब आप भारतकी अवज्ञा करनेवाले एक अँगरेज अध्यापकको चपेटा लगाकर कौलेज छोड़कर चले आए थे। आपके उस त्यागकी कथा हम कैसे स्मृतिसे हटा सकते हैं जब आइ० सी० एस्० परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण करके भी आपने भावी जीवनके लौकिक सम्मान और सुखको सदाके लिए स्वदेशार्पण कर दिया। इसी त्यागने, इसी लोक-मंगलकी भावनाने आपको लोक-हृदयमें ऐसा प्रतिष्ठित कर दिया कि भारतीय राष्ट्रने आपकी इसी मंगलमूर्तिका ध्यान करके आपको दो बार राष्ट्रपति चुनकर अपनी श्रद्धा मूर्तिमान करके आत्मतुष्टिका अनुभव किया। त्रिपुरीमें हमारे देशके बड़े-बड़े नेताओंने जो निर्लज्जता-पूर्ण षड्यन्त्र करके आपके साथ असाधु व्यवहार किया था उसकी ग्लानि अभीतक हमें व्यथित कर रही है किन्तु आपने अपने वीर चरितसे जो उज्ज्वल कीर्ति प्रतिष्ठित-की है उसके महा-प्रकाशने सबकी आँखें चौंधिया दी हैं और सबने उस महाप्रतिमापर अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाकर उसकी महत्ता स्वीकार की है। हे जन-मन-गण-अधिनायक! आपकी जय हो।

श्रीरामने अपने पिताकी आज्ञा मानकर अपने कुल-धर्मकी रक्षाके लिये वनवास ग्रहण करके और वनमें वानरोंकी सेना एकत्र करके त्रिभुवन-विजयी रावणका मद चूर्ण किया था क्योंकि उसने भारत-लक्ष्मी महारानी सीताका अपहरण करके भारतीय आर्योंके शौर्यको चुनौती दी

थी। जिस समय विश्वविजयका संकल्प लेकर फिलिप-पुत्र सिकन्दर नद, नदी और पर्वतोंकी दुर्लंघ्य सीमाओं और मार्गके राज्योंको रौंदता हुआ आगे बढ़ा चला आ रहा था उस समय पराजित होकर भी महावीर पुरुने उसे अपने क्षात्र तेज और भारतीय शौर्यका पानी पिलाया था। जिस समय सेनापति सेल्यूकसने अपने स्वामीकी अर्जित भूमिको जीतनेका संकल्प लेकर अपनी वाहिनी सिन्धुके उस पार उतार ली थी उस समय महाप्रतापी नीतिज्ञ चाणक्यने अपनी कूटनीतिसे और पराक्रमी चन्द्रगुप्तने अपने बलसे उस यावनी सेनाको निर्वीर्य कर दिया था। जिस समय बर्बर हूणोंके झञ्झामय आक्रमणोंने सीमान्त प्रदेशको त्रस्त कर दिया था उस समय मगधके गुप्त राजाओंने भारतकी रक्षा की थी। जब अकबरकी भेद-नीतिने हिन्दू जाति और धर्मके विनाशका तर्जन किया था उस समय महाराणा प्रतापके करवालने हिन्दुओंकी नाक रख ली थी। फिर जब औरङ्गजेबने शठता और धूर्त्ततासे महाराष्ट्र केसरी शिवाजीको बन्दी कर रखना चाहा था उस समय औरंगजेबके छल-शस्त्रका उसी छल-शस्त्रसे उत्तर देते हुए छत्रपति महाराज शिवाजीने स्वतंत्र होकर औरंगजेबके कौशलको निस्तेज कर दिया था। युगों-युगोंमें इन महापुरुषोंने शत्रुसे लोहा लेनेके, दुष्ट वैरीको परास्त और प्रताडित करनेके जो साधन, उपाय और पन्थ सिखाए थे, उन्हें आप किस प्रकार भूल सकते थे! भारतीय पराक्रमकी इस तेजोमयी परम्पराकी गाँठ बाँधकर ठीक स्वतन्त्रता-दिवस (२६ जनवरी, सन् १९४१) को ब्रिटिश चर-शक्ति, राजशक्ति और रणशक्तिका मदगंजन करते हुए आप लाँघ गए पराधीनताकी सीमा और फिर आपने अँगरेजोंके स्वार्थमय और क्षुद्रतापूर्ण व्यवहारसे ऊबे हुए भारतीय सिपाहियोंको संघटित करके और उनका नेतृत्व करके जो अभूतपूर्व, अद्भुत साहसका परिचय दिया वह हमारे गौरवमय इतिहासकी उज्ज्वलतम गाथा है।

आज इसी बातपर विवाद चल रहा है कि आप इस संसारमें हैं

या नहीं। जो केवल आपके पार्थिव शरीरके अस्तित्वको महत्त्व दे रहे हैं उनकी बुद्धिपर हमें दया आती है और जो नहीं कर रहे हैं उनकी मूर्खतापर हँसी आती है। आप कहाँ हैं यह कोई भी दृढतापूर्वक नहीं कह सकता। आप यह लोक छोड़ गए या नहीं यह भी अनिश्चित है और अच्छा ही है कि यह प्रमाण नहीं मिल रहा है, अन्यथा वे लोग पुण्यतिथि मनानेकी मूर्खता किया करते। आप देवोंके समान अपना कार्य करके अन्तर्धान हो गए हैं और इसीलिये रामनवमी और कृष्णाष्टमीके समान आपका जन्म-दिवस भी हमारा पुण्य पर्व हो गया है। हे देव! आपने हमें विजयका मार्ग दिखाया है, स्वतन्त्रताका सन्देश दिया है, आपकी जय हो!

अभिनन्दनपत्र

कृतज्ञता प्रकाशक अभिनन्दनपत्रका यह रूप लीजिए—

सेवामें

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी

कुलपति काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय

जगन्नियन्ताका असीम अनुग्रह एवं हमारा परम सौभाग्य है कि आज आपकी हीरक जयन्तीके इस अमर महोत्सवपर हमें अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करनेका पुण्य अवसर प्राप्त हो रहा है। इस दिव्य मुहूर्त्तपर हमारा हृदय निःसीम आनन्दसे तरंगित और प्रफुल्लित श्रद्धासे गद्गद हो रहा है। इस अनिर्वचनीय उल्लासके सुअवसरपर भी हम अपने हृदयकी कृतज्ञता, आदर और श्रद्धाके भाव व्यक्त करनेके लिये भाषाका कोई सौम्य स्वरूप ही नहीं खोज पा रहे हैं।

आराध्य देव!

भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी इस भुवनपावनी प्राचीन नगरीमें पुण्यसलिला जाह्नवीके तटपर आपके पद-कमलोंकी छत्रच्छायामें हमें

तपस्या-जनित मुख-मंडलकी अमर ज्योतिके प्रकाशमें भारतवासी सदा-अनुप्राणित होकर जागरित होते रहे हैं।

महामना !

आज हम अत्यन्त उल्लाससे आपके मृदु तथा प्रेमपूर्ण व्यवहारसे लालित होकर आपको विश्वास दिलाते हैं कि जीवनके अंतिम क्षणतक आपके प्रदर्शित मार्गका मनोयोगके साथ हार्दिक अनुकरण करेंगे। अन्त में जगदीश्वरसे यही विनय है कि आपको दीर्घायु करें जिससे आप-जैसे परम नररत्न, महान्, देशभक्त और आदरणीय तपस्वीके नेतृत्वमें देशको इस शोचनीय स्थितिसे मुक्ति प्राप्त करनेका कमनीय सौभाग्य प्राप्त हो सके।

देव !

आशीर्वाद दीजिए कि हम भी साहस और त्यागके साथ मातृ-भूमि के प्रति अपने कर्तव्यका परिपालन करके आपका अनुगमन कर सकें।

हम हैं

आपके वात्सल्य-भाजन—

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके छात्र

अभ्यर्थना

प्रायः विशिष्ट संस्थाओं, विद्यालयों अथवा अस्पतालों इत्यादि लोकहितकारी संस्थाओंकी सहायताके लिये देशके नेता लोग अभ्यर्थनापत्र प्रकाशित करते हैं। ये अभ्यर्थनाएँ इस रीतिसे और इस ओजके साथ लिखी जाती है कि उन्हें पढ़कर लोग वांछित सहायता दें किन्तु इसके अतिरिक्त बाढ़, भूकम्प, महामारी, विप्लव, युद्ध तथा अन्य इसी प्रकारके आकस्मिक अवसरोंपर भी अभ्यर्थनापत्र निकाले जाते हैं कि उन दैवी दुर्विपाकोंसे पीडित लोग

उन्हें लोग सहायता दें। ये सब अभ्यर्थनाएँ जबतक साहित्यिक, ओजमयी, प्रभावमयी और भावमयी भाषामें नहीं लिखी जातीं तबतक उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं होता, अतः इनमें भी साहित्यिकताका पुट आना ही चाहिए। पूज्य मालवीयजी-द्वारा यह अभ्यर्थना लीजिए—

गाँधीजीका स्वागत

काशी-निवासियोंसे अभ्यर्थना

काशी-निवासी भाइयो !

संसारमें पच्चीस करोड़से ऊपर प्राणी हिन्दू धर्मके और विशेषकर वर्ण और आश्रमयुक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंके देनेवाले पतितपावन सनातनधर्मके माननेवाले हैं। इनमें इस समय सबसे अधिक व्यापक यश और मान महात्मा गाँधीका है। यह इसी बातसे स्पष्ट प्रकट है कि देश-विदेशमें जहाँ-जहाँ महात्मा गाँधी जाते हैं वहाँ-वहाँ अनगिनत नर और नारी, बूढ़े और जवान दूर-दूरसे उनके दर्शनको आते हैं। वे महात्मा गाँधी श्रावण कृष्ण १ (२७ जुलाई) को काशी आवेंगे और ७ दिन यहाँ ठहरेंगे।

प्रत्येक हिन्दू इस बातको जानता है कि जो लोग अन्त्यज, अछूत या हरिजनके नामसे पुकारे जाते हैं वे हिन्दू जातिके अंग हैं और वे सनातनधर्मके माननेवाले हैं। वेद और पुराण इस बातकी साखी देते हैं और उनके उद्धार और कल्याणका मार्ग बताते हैं। किन्तु इनकी दशा बहुत सोचनेके योग्य है। शास्त्रके अनुसार उनकी सामाजिक और आर्थिक दशाका सुधार करना हम सनातनधर्मियोंका कर्त्तव्य है। इसलिये इस बातपर जितना चाहिए था उतना ध्यान न देनेसे बहुतसे अछूतोंको मुसलमानोंने मुसलमान बना लिया और ईसाइयोंने ईसाई। कितने

वर्षोंसे अछूतोंमें शिक्षाका प्रचार करने और उनकी दशा सुधारनेके लिये कितनी सभाएँ और संघ नियमबद्ध जतन करते आए हैं। किन्तु पिछले चौदह वर्षोंमें महात्मा गाँधीने इस ओर हिन्दू जातिका ध्यान विशेष रूपसे खींचा है और इन दीन भाइयोंको हिन्दू जातिके भीतर बनाए रखनेके लिये ही उन्होंने अपने प्राणका पण लगाकर प्रसिद्ध उपवास किया और उस तपके द्वारा अँगरेज़ सरकारका निर्णय बदलवा दिया है। उसी भावनासे उन्होंने बारह महीने सारे देशमें यात्रा की है। गाँधीजी भी यह चाहते हैं और बहुतसे सनातनधर्मी विद्वान् भी यह चाहते हैं कि अछूत कहे जानेवाले लोगोंको स्वच्छतासे रहना और सदाचार सिखाया जाय और जिन सर्वसाधारण सड़कोंपर चलनेकी मनाही मुसलमान-ईसाईको भी नहीं है उनपर चलनेकी मनाही अछूतोंको न रहे। जिन सर्व-साधारण कुओंपर मुसलमान और ईसाई पानी भरते हैं उनपर अछूतोंको भी पानी भरनेकी स्वतंत्रता रहे। जिन सर्वसाधारण स्कूलोंमें मुसलमान-ईसाईके लड़के भी पढ़ते हैं उनमें अछूतोंके लड़कोंको भी पढ़नेकी रोक न रहे।

मंदिरोंमें अछूतोंके प्रवेशके विषयमें हिन्दू समाजमें बहुत मतभेद है। मेरी रायमें जहाँ प्रबन्ध हो सके और मंदिरोंके प्रबन्धकर्ता प्रसन्नतासे अनुमति दें वहाँ अछूतोंको गर्भद्वारके बाहरसे दर्शन करनेका अवसर देना चाहिए। किन्तु गाँधीजीकी भी सम्मति है और मेरी भी सम्मति है कि मंदिरवालोंकी अनुमतिके बिना बलपूर्वक किसी मन्दिरमें जानेका यत्न कोई न करे। जहाँ मन्दिरके प्रबंधकर्ता अनुमति दें वहीं दर्शन करनेका यत्न करना चाहिए।

मंदिर-प्रवेशके विषयमें जो बिल बड़े लाटकी कौंसिलमें उपस्थित है उसके विषयमें गाँधीजीकी सम्मति है कि वह बिल स्वीकृत हो जाना चाहिए। मेरी सम्मतिमें मंदिरप्रवेशके विषयमें कोई बिल नहीं बनना चाहिए। जो कुछ सुधार हम उस विषयमें चाहते हैं वह शास्त्र जाननेवाले

साधु-विद्वानोंकी संगतिसे धीरे-धीरे लोगोंकी भावना बदलनेपर होना चाहिए। इस विषयमें तथा कई और समाजिक और राजनीतिक विषयोंमें भी मुझसे और गाँधीजीसे कई बार मतभेद हुआ है तो भी मैं उनके पवित्र चरित्र, तप और निर्मल देशभक्तिके कारण सदा उनका सम्मान करता आया हूँ। मेरी सम्मतिमें जिन बातोंमें हम लोगोंसे गाँधीजीसे मतभेद है, उनमें उनसे अपना मतभेद शिष्टता और प्रेमके साथ किन्तु दृढतासे प्रकाश करना चाहिए और इस बातका यत्न करना चाहिए कि जिस सम्मति-को हम लोग ठीक समझते हैं उसी बातको गाँधीजीसे मनवावें। किन्तु इन कुछ बातोंमें मतभेद रखते हुए भी हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि गाँधीजी देशके और हिन्दू जातिके भी अत्यन्त हितचिंतक हैं। ऐसे ऊँचे पुरुषका हमको प्रेमसे स्वागत और सम्मान करना चाहिए।

मैं काशी-निवासी सब भाइयों और बहनोंसे अभ्यर्थना करता हूँ कि मतभेद रहते हुए भी उदारताके साथ महात्मा गाँधीका उचित सम्मान करें और परस्पर प्रेमपूर्वक विचारसे मतभेद मिटानेका प्रयत्न करें और ऐसे असाधारण महान् व्यक्तिकी सनातनधर्मकी सेवाको प्रेमसे स्वीकार करके सनातनधर्मियोंमें प्रेम और एकता स्थापन करें।

काशी, —मदनमोहन मालवीय

२४. ७. ३४

समाचार

इस युगमें समाचार-पत्रों तथा अन्य प्रकारकी साप्ताहिक, पाक्षिक, सावधिक, मासिक तथा वार्षिक पत्र-पत्रिकाओंमें तो प्रायः लेख, निबन्ध, प्रबन्ध आदि ही अधिक होते हैं। किन्तु दैनिक समाचार-पत्रोंमें तो समाचारोंका ही बाहुल्य होता है ये समाचार विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाले व्यक्तियों अथवा उन पत्रोंके संवाद-

दाताओं द्वारा भेजे जाते हैं। इन समाचारोंके शीर्षक तथा उनकी भाषाशैली इतनी व्यवस्थित, संयत, संक्षिप्त और प्रभावशाली होनी चाहिए कि वह पाठकको तत्काल आकृष्ट कर ले। क्योंकि यदि यह गुण न हो तो समाचारोंकी ओर साधारणतः लोगोंका आकर्षण नहीं होता। इन समाचारोंमें बहुतसे तो एक विशेष प्रकारकी शब्दावलीसे गुम्फित होते हैं जैसे खेल-कूदके समाचारपर। अभीतक हिन्दीमें इस प्रकारकी शैली व्यवस्थित रूप नहीं ग्रहण कर सकी है। काशीके 'सन्मार्ग' पत्रका एक समाचार लीजिए—

नरहठ निपट निकामसे

नारीका घूँघट उठा

जयपुर, २४ फरवरी। ख्यातिके भूखे और सुयशके प्यासे एक स्थानीय तरुणने अपनी नव-विवाहिता पत्नीपर अपनी इच्छा बलपूर्वक लादनेके लिये अनशनका आश्रय लिया। विवाहके पश्चात् ही उसने अपनी नवोढा वधूसे घूँघट त्याग कर देनेका आग्रह किया। वधूने अपने माता-पिता और समाजका विचार करके पतिका आग्रह माननेमें असमर्थता प्रकट की। इसपर उस अधीर युवकने नारीका कोमल हृदय कुचलकर उसे अपने अनुकूल बना लेनेके लिये अनशनका आश्रय लेकर पवित्र सत्याग्रहके नामपर दुराग्रह किया। फलस्वरूप पतिप्राणा साध्वीको तीसरे दिन पतिके हठके समक्ष विनत होना पड़ा।

निबन्ध

वर्त्तमान सब साहित्यिक शैलियोंमें निबन्ध ही अधिक बौद्धिक और प्रौढ समझा जाता है। ये निबन्ध कई प्रकारके होते हैं—

विचारात्मक, भावात्मक, व्यक्तिगत तथा व्यंग्यात्मक आदि। इन

सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग शैली होती है। यों तो प्रत्येक निबन्ध-लेखककी ही शैली अपनी अलग होती है किन्तु उनमें भी इन सब शैलियोंके रूप एक विशेष साँचेमें ढल गए हैं।

निबन्धमें एक विशेष लेखन-नीतिका पालन किया जाता है कि उसके प्रारम्भिक अनुच्छेदमें भूमिका या प्रस्तावना होती है जिसमें निबन्धके विषयका अत्यन्त संक्षेपमें, सूत्र रूपमें भूमिका-पद्धतिसे परिचय दे दिया जाता है। इसके अनन्तर मूल विषयकी विवेचना की जाती है। तत्पश्चात् उसका पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष स्थापित किया जाता है और अन्तमें उपसंहार रूपसे उसकी व्याख्या करके परिणाम प्रस्तुत कर दिया जाता है। इनमेंसे कुछमें तो लेखक अपने कथनका समर्थन करनेके लिये अन्य अनेक विद्वानों, कवियों आदिका उदाहरण दे देकर अपने वक्तव्यका समर्थन करता चलता है किन्तु विचारात्मक निबंधोंमें प्रायः संक्षिप्त दार्शनिक शैलीका ही प्रयोग होता है जिसमें लेखक यह प्रयास करता है कि अपनी बात थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमें व्यक्त कर दे। बहुतसे लोग कथात्मक और वर्णनात्मक रचनाओंको भी भूलसे निबन्ध कहते हैं किन्तु उनकी गणना तो स्पष्टतः कथा या विवरणके प्रसंगमें आनी चाहिए निबन्धमें नहीं।

हिन्दीमें निबन्ध लिखनेका कौशल आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लके अतिरिक्त किसीमें नहीं देखा गया। निबन्धके नामसे रची हुई अन्य सभी रचनाएँ 'लेख' की श्रेणीमें आती हैं, निबन्ध-की नहीं। 'निबन्ध' तो वह गठी हुई, संक्षिप्त, मननीय, विचारों-

को उत्तेजना देनेवाली रचना होती है जो स्वतः अपनेमें पूर्ण होती है और जो किसी लेखकके विचार, अध्ययन, चिन्तन और मनन-का परिणाम हो, अनुभव या प्रयोगका नहीं।

संवाद

संवादका अर्थ है दो या दोसे अधिक व्यक्तियोंका परस्पर वार्त्तालाप, किन्तु यह वार्त्तालाप केवल कुशल-मंगलवाला वार्त्तालाप नहीं होना चाहिए। इसमें बात करनेवाले व्यक्ति ऐसे प्रति-द्वन्द्वीके रूपमें उपस्थित होने चाहिएँ जो अपनी-अपनी दृष्टिसे अपनी-अपनी महत्ता व्यक्त करते हों या अपना-अपना पक्ष प्रतिपादित करनेके लिये अपने प्रबल युक्तिसंगत तर्क उपस्थित करते हों। यह संवाद दो मनुष्योंमें, मनुष्य और पशुमें, मनुष्य और जड पदार्थमें अथवा दो जड पदार्थोंमें भी हो सकता है। चेतन जीवोंका सर्वश्रेष्ठ संवाद तो महाकवि कालिदासके रघुवंशमें सिंह और राजा दिलीपके संवादके रूपमें अथवा पार्वतीजी और बटुरूपधारी शंकरके संवादके रूपमें अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। जड वस्तुओंके संवादमें राय कृष्णदासका सागर और मेघ या हीरा और कोयला संवाद अत्यंत सुन्दर हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त धोती और पाजामा, गाँव और नगर, टोपी और हैट, गुञ्जा और स्वर्ण आदिके भी संवाद प्राप्त होते हैं। दशकुमारचरितमें दंडीने कथाके रूपमें इसी प्रकारके संवाद प्रस्तुत किए हैं। किन्तु कथात्मक होनेसे उसकी गणना संवादमें न होकर कथामें ही की जानी चाहिए। इसी प्रकार तोता मैनाकी कहानियाँ आदि भी संवादके रूपमें होनेपर भी कथा-प्रधान

ही हैं। संवादका मुख्य तत्त्व यही है कि उनमें जोड़-तोड़का उत्तर-प्रत्युत्तर हो। ऐसा होनेपर ही संवादमें सजीवता आती है और वह आकर्षक बन पाता है। राजस्थानी भाषामें इस प्रकारके बहुतसे मनुष्यों अथवा जड़ पदार्थोंके बीच होनेवाले संवाद लिखे गए हैं जिनमें विभिन्न देशोंके पुरुष या स्त्री मिलकर परस्पर अपने-अपने देशकी महत्ताका गुणगान करते हैं और दूसरे देशकी त्रुटियाँ प्रदर्शित करते हैं। इसीसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संवादमें केवल जोड़-तोड़के उत्तर-प्रत्युत्तरकी ही प्रधानता होती है, किन्तु नाटकमें संवादकी प्रधानता नहीं होती, अभिनयकी प्रधान होता है क्योंकि उसीके द्वारा रसानुभूतिमें सहायता मिलती है।

स्वगत-कथन

स्वगत-कथन (सौलिलौकी) एक नवीन प्रकारका साहित्यक रूप है जिसका प्रचलन अतिवस्तुवादियों (सररीयलिस्ट) लोगोंने योरपमें चलाया। उनका कथन है कि मनुष्यके मनमें जो विचार आते हैं वे सर्वथा असंगत होते हैं, अतः उनकी अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार असंगत होनी चाहिए। यह एक प्रकारका सवाक् चिंतन (लाउड थिंकिंग) है जिसमें लेखक अपने मनकी सब बातें निष्कपट होकर कहता चलता है और वह कथन भी अक्रम होता है। उसमें किसी प्रकारका कोई क्रम या सम्बद्धता नहीं होती। चेतनाधारावादी (स्ट्रीम ऑफ कौन्शेसनेस-वादी) इसी सिद्धान्त को मानते हैं। इसके अतिरिक्त स्वगत-कथनकी एक साहित्यक शैली भी होती है जिसमें कोई व्यक्ति किसी भी तत्कालीन समस्या,

प्राचीन घटना अथवा तथ्यके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन करता है मानो वह स्वयं उसके सम्बन्धमें कोई चिन्तन कर रहा हो।

सन् १९४६ के दिसम्बरमें जब भारतमें अन्तरिम सरकार स्थापित हो गई थी और लन्दनमें गोल मेज़ परिषद्में मुसलिम-लीगके अध्यक्ष जिन्ना साहबको बुलाया गया किन्तु काँगरेसके अध्यक्ष श्री कृपालानीके बदले पण्डित जवाहरलालको बुलाया गया, उस समय लेखकने यह स्वगत-चिन्तन और स्वगत-कथनके रूपमें अपने ये विचार व्यक्त किए थे—

यह उड़ान क्यों ?

जान पड़ता है भारतीय राजनीतिक चक्र धीरे-धीरे ऊपर उठा और अब धीरे-धीरे 'चक्र-नेमि-क्रमेण' नीचे चला आ रहा है। चाहिए तो यह था कि यह चक्र ऊपर ही रुक जाता, गाड़ीमें जुते हुए दोनों बैलोंको भी विश्राम मिलता और देश भी सुख-संतोषकी साँस लेता। किन्तु दाल-भातमें मूसलचन्द बने हुए विदेशी सारथिको कहाँ चैन ! उसने अड़ियल बैलको पैनीसे खोद-खोदकर ऐसा उकसाया कि बेचारे सीधे बैलको भी जूएमें कन्धा लगाकर गाड़ी भगानी ही पड़ी और यही कारण है कि राजनीतिक दाँवपेंचके कौशलोंके सुन्दर और असुन्दर प्रदर्शनोंके उपरान्त भी, महीनोंतक मस्तिष्कके सब कोने कुरेदकर निकाले हुए विचारोंके सर्वसम्मत हो जानेपर भी फिर सन्धि और मेल-मिलापकी बातोंका श्रीगणेश कर दिया गया। जब लीग अन्तरिम सरकारमें पहुँच गई तब यही समझा जाने लगा कि साँपिनके दाँत टूट गए हैं, विषकी थैली झड़ गई है, अब वह दूधके कटोरेपर मुँह लगानेपर कुछ नहीं कहेगी, सम्भवतः फुफकारेगी भी नहीं। किन्तु देखते क्या हैं कि दूध पी लेनेपर साँपिनके दुहरे दाँत जम आए हैं, विष भी

बढ़ गया है और जिस साँपिनकी फुफकार हलकी सी फुसफुसाहटमें समाप्त हो जाती थी वह केवल फुफकारने ही नहीं, फन भी चलाने लगी है। अभी पिछले दिनों नेहरूजीके भाषणकी जिस प्रतिक्रियाका प्रदर्शन इन लीगियोंने किया है उसे देखते हुए यही सम्भावना स्पष्ट होती चली जा रही थी कि इस लत्तम-जुत्तममें किसी एक दलको अखाड़ेसे भागना ही होगा और भागनेका श्रेय यथासम्भव लीगको ही मिलेगा क्योंकि काँगरेसवाले तो कमर कसकर अखाड़ेमें उतरे हैं, उनके भागनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है? यह हाथा-पाई प्रारम्भ ही हुई थी कि लन्दनके कान खड़े हो गए और सहसा दोनों मल्लोंको निमन्त्रण दे दिया गया कि आप लोग हमारे अखाड़ेमें आकर लड़िए, दस-पाँच दर्शकोंको भी निमन्त्रण दिया जा सकेगा और तभी मल्लयुद्धका पूरा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

एक दिन सुना कि काँगरेस नहीं जा रही है। फिर सुना कि नेहरू-जी और सरदार बलदेवसिंह जा रहे हैं और उधर जा रहे हैं जिन्ना साहब और लियाकत अली! यह प्रहेलिका है, अंतर्लापिका है या बहिर्लापिका, राजनीतिक चाल है या मायाका जाल, कुछ समझमें नहीं आता। न्यायतः तो जिन्नाके साथ कृपालानीको बुलाना चाहिए था किन्तु यह नहीं हो सका। और काँगरेस, जिसने शिमलेकी बातचीतके समय कहा था कि गाँधीजीसे नहीं, अध्यक्ष आजादजीके साथ बातें कीजिए—वह काँगरेस अपने कागजी सिद्धान्त लिए हुए अँगड़ाई ले रही है या मन ही मन बड़बड़ा रही है। सुना है कि दिल्लीमें काँगरेसियोंने कुछ-कुछ हल्ला मचाया है किन्तु उसका फल क्या हुआ? सिद्धान्त यदि वास्तवमें सिद्धान्त है तो उसका जमकर पालन होना चाहिए, सिद्धान्तमें व्यक्ति-का कोई महत्त्व नहीं। चाहिए तो यह था कि जिस मान और परिमाणसे लीग बुलाई गई है उसी मान और परिमाणसे काँगरेस भी बुलाई जाती और तब जाते कृपालानीजी और नेहरूजी। अब केवल यही कहा

जा रहा है कि वहाँका निर्णय तबतक निश्चित नहीं समझा जायगा जब-तक अखिल भारतीय काँगरेस समिति उसे स्वीकार न कर ले। इसीके साथ यह भी घोषणा की गई है और आश्वासन ले लिया गया है कि १६ मईको मन्त्रिमण्डलने जो घोषणा की है उससे भिन्न किसी बातपर बातचीत नहीं होगी। यदि ये सब बातें सत्य और निष्कपट रूपसे कही, सुनी और समझी गई हैं तो व्यर्थमें दो वायुयान उड़ानेका जोखिम क्यों उठाया जा रहा है? जिस समय सबका ध्यान विधान-परिषद्पर लगा हुआ हो उस समय सहसा सबका ध्यान उचाटकर लन्दन पर केन्द्रित करनेका अभिप्राय क्या है? और मुसलिम लीग उसके लिये इतनी समुत्सुक क्यों है?

किन्तु बात कुछ और ही जान पड़ती है। वहाँ लीगसे कहा जायगा कि आप लोग विधान-परिषद्में हाथ बटाइए। लीग कहेगी हमें थोड़ा समय चाहिए। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मिलकर नेहरूजीकी सज्जनता और सरदार बलदेवसिंहके भोलेपनका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें मना लेंगे कि परिषद् थोड़े दिनोंके लिये टाल दी जाय। ये लोग भी अपने पूर्व अभ्यासकी उद्धरणी करते हुए 'तथास्तु' कह देंगे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और वहाँके समाचार-पत्र इन लोगोंकी सज्जनताका भूरि-भूरि सराहेंगे और ये लोग पराजित विजयके मोहमय उल्लासमें लौट आवेंगे 'पुनर्मूषिको भव' का वरदान पाकर। क्योंकि यह नहीं सम्भव है कि लीग अपने पाकिस्तानके मूर्खतापूर्ण तथा दुराग्रहपूर्ण सिद्धान्तसे तिल-भर भी डिगे। इधर काँगरेस और उसके नेता लोग लीगकी पूँछ सहलानेमें ही देशके महाकल्याणके स्वप्न देखते आए हैं। इसलिये १६ मईकी घोषणाके शब्दोंकी अनेक रहस्य-मयी व्याख्याएँ होंगी और काँगरेस-मृग स्वयं जालमें फँस जायगा और बँध जायगा। नहीं तो क्या भारतमें बात करनेके लिए कम स्थान है? बम्बईकी मलाबार पहाड़ी, दिल्लीकी भंगीबाड़ी, वाइसरायके राजसी

भवन, सभी कहीं तो कई बार बातें चल चुकी हैं और प्रत्येक बार सारे देशको निराशा हाथ लगी है। इस बीच नोआखालीमें हिन्दुओंकी दुर्गति करके लीगने जो मानवताके साथ विश्वासघात किया है उसका सबसे सीधा उत्तर तो यही था कि इस समाजका सदाके लिये केवल राजनीतिक ही नहीं वरन् ऐसा सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता कि पाकिस्तानका शव सदाके लिये समाधिस्थ हो जाता। भूलें हुई हैं, उसके लिये प्रायश्चित्त भी किए गए हैं किन्तु जान-बूझकर इस बार फिर भूल की जा रही है, इसका क्या उपाय है भगवन्? रक्षा करो! रक्षा करो! भगवन्!

टिप्पणी

कभी-कभी राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्रमें कुछ ऐसी असङ्गत घटनाएँ हो जाती हैं जिनपर विचारशील लोगोंको टिप्पणी करके उन घटनाओंकी आवृत्ति रोकनेका प्रयास करना पड़ता है। सन् १९४६ के २५ नवम्बरको मुसलिम लीगके नेता जिन्ना साहबने पण्डित जवाहरलाल नेहरूको 'गधा' कह दिया था। उसीपर यह मुँहतोड़ टिप्पणी लीजिए—

गधा कौन है?

नीतिज्ञों और शासन-सञ्चालकोंमें परस्पर जो संवाद, कहा-सुनी या वाद-विवाद चलते हैं उनमें अपने प्रतिद्वंद्वीको नीचा दिखानेकी, हरानेकी, मूर्ख बनानेकी, ललकारनेकी, लथाड़नेकी, चुनौती देनेकी और उत्तेजित करनेकी जितनी बातें कही जाती हैं उनमें सभी सदस्य अत्यन्त वाक्चातुर्य, कौशल, प्रत्युत्पन्नमतित्व और सभाशीलके साथ सदस्-भाषा (पार्ल्यामेंटरी लैंग्वेज) का प्रयोग करके अपने पूर्व पक्ष या उत्तर पक्षका निर्वाह करते हैं। किन्तु विगत सोमवारको जिन्नाने जिस

अशिष्ट भाषाका प्रयोग करके नेहरूजीके लिये अत्यन्त अशोभन उपमानका विधान किया, उसने लोकशील, व्यक्तिशील और सभाशील तीनोंका एक साथ गला घोंट दिया है और प्रत्येक विवेकशील व्यक्तिको यह विचार करनेको बाध्य कर दिया है कि वास्तवमें गधा कौन है ?

गधा बड़ा ही निरीह और दयनीय प्राणी है। नीतिकारोंने मनुष्योंको लक्ष्य करते हुए कहा है कि तीन बातें गर्दभसे सीखनी चाहिएँ—

अविश्रान्तं वहेद्भारं शीतोष्णं च न विंदति ।
सन्तोषश्च तथा नित्यं त्रीणि शिक्षेत गर्दभात् ॥

[बिना विश्राम किए भार ढोना, गर्मी-सर्दीका ध्यान न करना और सदा सन्तुष्ट रहना, ये तीन बातें गर्दभसे सीखनी चाहिएँ।]

यदि शिक्षा लेनेके लिये जिन्ना साहबने गधेको गुरु बनाना चाहा हो तो हम उन्हें बधाई देते हैं। सुबहका भूला हुआ साँझको घर लौट आवे तो वह भूला नहीं कहलाता। किन्तु जिन्नाके समान कपटी और कुटिल राजनीतिज्ञकी आँखोंमें छलकी मज्जा इतनी गहरी चढ़ी रहती है कि गुणकी परख करनेकी उनमें शक्ति ही नहीं रह जाती। शूकरकी विशेषता ही यह होती है कि संसार-द्वारा जो त्यक्त हो जाता है वही उसका भोज्य बन जाता है। इसलिये यदि जिन्ना साहब सत्को छोड़कर असत्की ओर लपक रहे हों तो यह उनका नहीं, उनके जन्मका, उनके संस्कारका दोष है। उन्हें यह विश्वास है कि गधेके साधारण गुण भी न तो मुझमें हैं, न हो सकते हैं। इसलिये मैं गधेका अवगुण ही क्यों न ले लूँ-'दुलत्ती झाड़ना।' इसलिये बुढ़ौतीकी गली हुई बुद्धिसे हड़बड़ाकर उन्होंने आव देखा न ताव, लगे दाएँ-बाएँ दुम फटकारने। किन्तु सम्भवतः वे यह नहीं समझते कि जिस तबेलेमें वे स्वयं लतियौवल कर रहे हैं उस तबेलेमें और भी काबुली जुटे हुए हैं

और कहीं ऐसा न हो ये सभी लतैल मिलकर इस बुड्ढे गधेका जबड़ा तोड़ दें।

जिन्नाके वक्तव्यमें दूसरी ध्वनि है अपनेको या लीगी सरदारोंको हाथी सिद्ध करनेकी। किन्तु खटमलको हाथी बनानेकी कल्पना करना स्वयं ऐसा हास्यकर विषय है कि उसपर एक अत्यन्त रसपूर्ण प्रहसनकी रचना भली-भाँति की जा सकती है। सब पशुओंमें हाथी सबसे अधिक बुद्धिमान् समझा जाता है और डीलडौलमें भी वह सबसे ऊँचा होता है। सम्भवतः इसीलिये घोड़ेके सुममें नाल ठोके जाते देखकर मेढकीने भी अपना पञ्जा उठा दिया है। एक ओर उत्तर-पश्चिम और दूसरी ओर पूर्वके कुकल्पित पाकिस्तानके बीच लम्बा गलियारा माँगनेवाला व्यक्ति यदि हाथीकी सूँड अपने मुँहपर लगानेकी मधुर कल्पनासे उन्मत्त होकर अपशब्द कहे तो वास्तवमें क्षम्य है क्योंकि अपने मतवालेपनकी मोहावस्थामें उसे यह ज्ञान ही नहीं रह गया है कि यदि एक छोटी-सी चींटी भी उसके नथनेमें घुस जाय तो उसका सर्वान्त उपस्थित कर सकती है।

कुछ लोगोंका कहना है कि जिन्नाने अपनी वयोवृद्धताका अनुचित लाभ उठाते हुए एक लोकप्रिय जन-नायकका आवेगमें अपमान कर डाला है। जिन्नाकी वयोवृद्धतामें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। उनके बाल धूपमें सफेद नहीं हुए हैं, उनपर जमी हुई है ब्रिटिश अधिकारियोंके पादत्राणोंसे झड़ी हुई वह धूल, जिन्हें सदा सिरपर ओढ़कर चलनेका सफल आयास जिन्ना महोदय जीवन-भर करते आए हैं और जिनके हाथकी गुड़िया बने रहकर बचपन दिखानेका उन्हें अभीतक गर्व है। अभीतक सब यही समझते थे कि पूर्ण विद्रोही और भारतीय एकताके महाशत्रु होते हुए भी वह राजनीतिका महापण्डित है और राजनीतिक शतरंजकी सम्पूर्ण चालोंको जिस काँइयाँपनसे वह काट देता है वैसा दूसरा कोई नहीं। किसीको सचमुच यह आशा भी नहीं

थी कि जीवन-भर सभा समितियों और न्यायालयोंमें वाणी साधनेवाला बैरिस्टर सहसा इतना पगला जायगा कि वह विवेकको एक कोनेमें रखकर, जीभकी लगाम छोड़कर धारा प्रवाह गाली देनेपर उतारू हो जायगा और गाली भी ऐसी, जिसे सुनकर लखनऊकी भटियारिनें भी उँगली चमकाकर, कानोंपर हाथ धरके चिल्ला उठें—'तौबा तौबा !' और इससे भी अधिक कुतूहलकी बात तो यह है कि जिन्नाकी नफीरीसे स्वर मिलाकर पें पें करनेवाले लीगी सदस्य और समाचार-पत्र भी पाजामेसे बाहर होकर अपने महानेताकी पीठ ठोंककर उन्हें पैगम्बरी महत्त्व देनेको कटिबद्ध हो गए हैं ।

हम यह मानते हैं कि जवाहरलाल नेहरू या सरदार पटेलको आपेसे बाहर होकर मुँह नहीं खोलना चाहिए था । राष्ट्र-संचालकोंमें जिस धैर्य और वाङ्नियंत्रणकी आवश्यकता है उसकी इन दोनों महारथियोंने पूर्ण अवज्ञा की है । वैसे भी नंगेके मुँह कभी नहीं लगना चाहिए । जिसने अपनी पगड़ी उतार फेंकी हो उसे दूसरोंकी पगड़ी उछालनेमें क्या देर लगती है ? ऐसी परिस्थितिमें जिस संयमसे काम लेना चाहिए था वह संयम दोनों ओरसे शिथिल दिखाई पड़ा । पण्डित नेहरू और सरदार पटेलने जो बातें आज कही हैं वे उन्हें पच्चीस दिन पहले कहनी चाहिए थीं । खेती सूख जानेपर समुद्र लाकर बरसानेसे क्या लाभ हो सकता है ? कुत्तेकी पूँछ बारह बरसतक नलकीमें डालकर रक्खी गई किन्तु जब वह निकली तो टेढ़ी ही निकली और आगे भी टेढ़ी ही निकलेगी । ये लातके देवता हैं, बातसे नहीं मानेंगे । ये समझते हैं कि हम अपनी गुण्डईसे हिन्दुओंको त्रस्त करके उन्हें विवश कर देंगे कि अल्पसंख्यक लोग निकल-निकलकर अपने बहुसंख्यक दलके साथ रहने लगें किन्तु वे जाकर लखनऊमें उन नवाबोंसे पूछें जिनके लिये—

'लखनऊ हमपर फ़िदा है हम फ़िदाए लखनऊ' है, कि क्या वे लखनऊकी चमक-दमक छोड़कर पूर्व बंगालके मच्छर-भावित प्रदेशमें जायँगे ?

यदि उन नवाबोंसे जिन्ना साहबने यह प्रस्ताव भी जाकर किया तो वे जिन्ना साहबकी आकृति देखकर ही तत्काल पहचान जायँगे कि गधा कौन है !

नाटक

नाटक वह साहित्यिक रचना है जिसे कविने अभिनेताओं-द्वारा रंगमंचपर खेलकर दिखाए जानेके लिये लिखा हो और जिसमें उसने आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव तथा संचारी भावोंका इस प्रकार संयोजन किया हो कि उसके निर्देशनके अनुसार अभिनेता आंगिक, वाचिक सात्त्विक और आहार्य अभिनय करके श्रोताओंके हृदयमें रस उद्दीप्त करें। इन नाटकोंकी रचनाओंमें नाटककार कुछ स्थान और पात्र निश्चित कर लेता है और उन स्थानोंमें उन पात्रोंके द्वारा ऐसी क्रिया दिखलाता है जो रंगमंचपर प्रदर्शित की जा सके। नाटककारका कर्तव्य है कि वह इस प्रकार दृश्य और अङ्कका ग्रथन करे कि थोड़ी-थोड़ी देरपर रंगमंचपर पात्रोंकी क्रियाएँ बदलती रहें। नाटक दृश्य काव्य है। यदि उसमें एक ही प्रकारकी क्रिया या बातचीत अधिक देरतक होती रहती है तो उसमें ऐसी नीरसता आ जाती है कि दर्शक ऊबने लगते हैं। अतः, नाटककारको प्रत्येक मिनटके भीतर ही किसीका गिरना, उठना, आना, जाना, चिल्लाना इत्यादि कोई न कोई कार्य-परिवर्तन दिखाना ही चाहिए। नाटकमें संवाद और क्रिया स्वाभाविक तथा सम्भव हो। उसे खेलनेमें ढाई या तीन घण्टेसे अधिक समय न लगे। उसका दृश्य-विधान इतना सरल

हो कि रंगव्यवस्थापकको दृश्य दिखाने तथा पात्र-चयनमें असुविधा न हो। नाटककी कथा प्रसिद्ध होनी चाहिए क्योंकि कथा प्रसिद्धा न होनेसे रसानुभूतिमें बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाती है। ये नाटक एक अंकमें भी लिखे जा सकते हैं जिसके उदाहरण पीछे दिए जा चुके हैं और अनेक अंकोंमें भी जैसे अभिनवभरत (लेखक) के देवता, बेचारा केशव, विश्वास, मंगल प्रभात, मेरी माँ, वाल्मीकि, अलका, शबरी, सेनापति पुष्यमित्र, दन्तमुद्रा, विक्रमादित्य, रजिया, गुण्डा, सिद्धार्थ, अजन्ता, अनारकली, वसंत, जय सोमनाथ आदि। ये गीतके रूपमें गीतनाट्य भी हो सकते हैं जिसमें अन्य गानेवाले लोगोंके गीतोंके साथ अभिनेता अभिनय करते चलते हैं जैसे अभिनवभरतका भगवान् बुद्ध। इसी श्रेणीमें भाव-नाट्य भी आते हैं जिनमें गद्यपाठ भीतरसे दूसरे व्यक्ति बोलते चलते हैं और अभिनेता गद्य-पाठका अभिनय करते चलते हैं। यदि यह नाट्य-प्रदर्शन केवल नृत्य-द्वारा हो तो वह नृत्य-नाट्य बन जाता है। इन नृत्य-नाट्योंमें सम्पूर्ण अभिनय-व्यापार नृत्त और नृत्य-द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रव्य नाटक (रेडियो फीचर) चले हैं जिनमें संवाद अधिक होता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि अधिकांश ऐसी क्रियाएँ या व्यापार हों जिन्हें ध्वनिके द्वारा व्यक्त कर दिया जा सके जैसे—कूदना, गिरना, घण्टा बजना, बादलकी गरज, चिड़ियोंकी चहचहाहट, रेलगाड़ीकी सीटी, घोड़ोंकी टाप या विमानकी घड़घड़ाहट आदि।

गद्य-काव्य

वास्तवमें गद्य-काव्य तो उस प्रकारकी रचनाको कहना चाहिए जैसी बाणकी कादम्बरी है अर्थात् ललित, आलंकारिक तथा साहित्यिक शैलीमें लिखा हुआ प्रबन्ध-काव्य ही गद्य-काव्य कहला सकता है किन्तु हिन्दी साहित्यमें गद्य-काव्य उस विशिष्ट शैलीकी रचनाको कहते हैं जिसमें किसी व्यक्ति, वस्तु या भावको संबोध्य मानकर उससे प्रेरणा लेने, उसे उपालम्भ देने, आत्म-निवेदन करने अथवा उसके प्रति भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति करनेके लिये कुछ कहा जाता हो। एक उदाहरण लीजिए—

गद्य-काव्य

कौन गाता है ? न गाओ गायक ! इन भग्न आशाओंको सो जाने दो ! इस जीवनमें इन्हें फिर जगानेकी आवश्यकता नहीं है !

इस तन्त्रीके सब तार बिखर गए हैं। इन्हें न हिलाओ—उलझे ही पड़े रहने दो। उनपर अपनी निर्दय उँगलियाँ न चलाओ—न सह सकेंगे वे इस आघातको। उन्हें मिलाना तुम्हारे सामर्थ्यसे बाहर है। तुम्हारी इन मृत्तिकाकी उँगलियोंसे वे कदापि न सुलझ सकेंगे। उन्हें सुलझानेवाली वह विद्युत्-शक्ति तुम कहाँसे लाओगे ?

यह पुष्प मुरझा गया है। निदाघके कठोर दाहने इसे पूर्ण कुसुमित होनेसे पहिले ही मुरझा दिया है। अब वह नहीं खिल सकता—फिर क्यों तुम उसकी एकाग्रता भंग करते हो ? पागल ! नहीं जानते कि अब ओसकी मोती-सी बूँदें, चाँदकी चाँदी-सी किरणें, प्रभातका मद-माता वायु भी उसे कुसुमित नहीं कर सकता ! क्यों व्यर्थ प्रयास करते हो ? यह अपनी फीकी मुस्कराहट लेकर मिट्टीमें मिल जानेके लिये ही तो अपने वृन्तपर खड़ा है।

गोधूलि-वेला आ गई है। दिनकी स्वर्णिम आभा धुँधली हो गई है। पश्चिमी क्षितिजकी वह लालिमा भी तो अब धुँधले अवगुण्ठनमें मुँह छिपाने जा रही है। फिर भी तुम स्वर्ण प्रभात देखनेकी आशामें बैठे हो ? जानते नहीं, ये किरणोंकी फुलझड़ियाँ अब इन धूमिल ठण्डे अधरोंको कभी सस्मित न कर सकेंगी। अब तो अन्धकार ही आवेगा—ऐसा अन्धकार—जो स्वर्ण-प्रभात न देख सकेगा। यह काल-रात्रि है ! भाग जाओ तुम ! यहाँ तुम प्रभात न देख सकोगे। यहाँका सौभाग्य-सूर्य तो सदाके लिये अस्त हो गया है। फिर अनुरागमयी ऊषाकी तुम कैसे कल्पना कर रहे हो ?

—शैलबाला

भूमिका, प्रस्तावना और परिचय

प्रायः ग्रन्थोंके प्रारम्भमें भूमिका और प्रस्तावना देनेकी भी पद्धति योरपसे हमारे देशमें आई। उसका उद्देश्य यह होता है कि लेखक और कृतिके सम्बन्धमें कुछ इस प्रकारका विवरण दे दिया जाय जिससे उस कृतिको समझनेमें सहायता मिले और लेखकने जिस विशेष पद्धति अथवा रीतिका अवलम्ब लेकर उस ग्रन्थकी रचना की हो वह भी स्पष्ट हो जाय। प्रायः प्रस्तावना तो लेखक स्वयं लिखता है किन्तु भूमिका और परिचय अन्य लोग प्रशंसाके रूपमें अथवा ग्रन्थके अध्ययनके रूपमें लिखते हैं। यह परिचय या भूमिका सदा एक प्रकारसे प्रशंसात्मक ही होती है किन्तु प्रस्तावनामें कवि या लेखक अपने काव्यके उस मर्मको समझानेका प्रयत्न करता है जिसके द्वारा उसकी रचनाका ठीक रस लिया जा सके या समझा जा सके। प्रस्तावनाके लिये आजकल बहुतसे शब्द चल पड़े हैं

जिनमें 'दो शब्द, आत्मनिवेदन, अपनी ओरसे' आदिके रूपमें प्रस्तावना की जाती है या परिचय दिया जाता है। नीचे उसके उदाहरण दिए जाते हैं—

अनारकली नाटककी भूमिका

लोगोंने इधर श्रृंगार और प्रेमको ऐसा दुर्नाम कर दिया है कि आज साहित्यमें प्रेम-कथा कहने और लिखनेमें लोगोंको झिचक होने लगी है क्योंकि अनेक साहित्यकार प्रेम-निरूपणको अज्ञानवश अश्लील समझ बैठे हैं। श्रृंगार वास्तवमें मानव-जीवनका वह मधुर सात्त्विक प्राण-रस है जिसने मानव-जीवनको प्रारंभसे लेकर आजतक परिष्कृत तथा संस्कृत करके अनेक रूपोंमें मानव-समाजको उल्लासमय, आनंद-मय, भावमय तथा रसमय बनाया है। सुसंयत पारिवारिक जीवन, पुरुषका स्त्रीके प्रति और स्त्रीका पुरुषके प्रति अखंड, अगाध, तन्मयता-पूर्ण एकात्मत्व, पारस्परिक स्नेहपूरित परिवारोंसे परिपूर्ण समाज और ऐसे व्यवस्थित समाजसे सुघटित राष्ट्र आदि महत्तम विश्व-कल्याणकी विभूतिका श्रेय श्रृंगार-भावको ही है। श्रृंगार-रसके स्वाभाविक तथा व्यवस्थित परिष्कारके अभावमें ट्रौयका युद्ध हुआ और उसीकी ललित प्रतिष्ठामें रामराज्यकी स्थापना हुई। इसी श्रृंगारके पोषक प्रेम, स्नेह या रति-भावने अपनी उदात्त भावनामें प्रतिष्ठित होकर जहाँ आध्या-त्मिक संस्कार लेकर भक्तिका स्वरूप धारण किया वहीं उसने लोक-संस्कारमें ढलकर एकनिष्ठ पत्नीव्रत, पातिव्रत्य, एकात्मता तथा आत्म-समर्पणके लोकमंगलकारी स्तुत्य आदर्श उपस्थित किए।

बाह्य रूपसे प्रेमके आदर्श अनेक प्रकारके मिलते हैं। भारतीय दृष्टिसे जिसे एक बार कन्या वरण कर ले या जो पति-रूपमें उसे प्राप्त हो उसमें वह अन्ध-भक्ति करके उसके लिये आत्मसमर्पण कर दे अथवा दैवसंयोगसे जिसे पुरुष पत्नीरूपमें ग्रहण करे या जो पत्नी-रूपमें प्राप्त

हो, उसके आत्माके साथ वह अपना आत्मा, उसके मनके साथ अपना मन मिलाकर एक-रस हो जाय। संयोगसे प्राप्त होनेवाले इस पारस्परिक मिलनमें तल्लीनता और एकात्मता स्थापित करना मानवीय आत्माका सर्वश्रेष्ठ संस्कार है। इसमें बाह्य आकर्षणके आधारपर ममता नहीं होती, इसमें रूप-रंग, आकार-प्रकार, सुख-दुःख, पद-मर्यादा, वैभव-दारिद्रय किसीका विचार नहीं किया जाता, केवल हृदयका आदान-प्रदान होता है। ऐसी एकात्मता कई जन्मोंके संस्कारसे प्राप्त होती है।

महाकवि कालिदासने अपने अभिज्ञान-शाकुन्तलमें कहा है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि।

[किसीकी सुन्दरता देखकर, किसीकी मीठी बोली सुनकर जब कोई सदासुखी मनुष्य भी एक बार उसकी ओर ललक उठता है तो समझना चाहिए कि उसका पिछले जन्मका संस्कार उसे उभाड़कर पिछले स्नेहका स्मरण दिला रहा है कि यह पिछले जन्ममें कोई आत्मीय रहा है।]

दूसरा प्रेमका आदर्श है—'पहली दृष्टिमें प्रेम' (लव एट फ़र्स्ट साइट)। जिसे एक बार देखकर अपना मान लिया उसके हो गए—

मनसे कहाँ रहीम प्रभु, दृगसे कहाँ दिवान।
देखि दृगनि जौ आदरै, मन तेहि हाथ बिकान॥

यह प्रेमका दूसरा आदर्श जब सामाजिक रूढियोंकी सीमामें रहता है तब तो वह सफल हो जाता है किन्तु जब वह समाजसे विद्रोह करने लगता है तब समाजका अंकुश उसे वहीं विनत होनेके लिये विवश करने लगता है। उसमें जो कच्चे होते हैं, वे तो पहले ही भाग खड़े होते हैं जो पक्के किन्तु असंयत होते हैं और केवल रूप, यौवन तथा शारीरिक सौन्दर्यके कारण परस्पर आकृष्ट होते हैं, वे समाजसे अलग होकर

अपना स्नेह-निर्वाह तो करते हैं किन्तु उनका जीवन नीरस हो जाता है, यहाँतक कि बाह्य सौन्दर्यके क्षीण होनेतक उनका स्नेह भी शिथिल हो जाता है। जो पक्के स्नेही, संयत और संस्कारशील होते हैं, वे संपूर्ण सामाजिक बन्धनों और मर्यादाओंका पालन करते हुए भी अपने प्रियसे एकात्मभाव बनाए रखते हैं और जीवन भर स्नेहके सात्त्विक प्रतिदानसे एक दूसरेका जीवन स्निग्ध तथा रसमय बनाए रखते हैं। यह दैवी स्नेह अत्यन्त दुर्लभ किन्तु अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। ऐसा स्नेह जो व्यक्ति संचित और सिद्ध कर सके वह साक्षात् देवी या देवता है। इस प्रकारका निष्काम, निःसंग किन्तु अगाध हार्दिक स्नेह यदि समाजमें आ जाय तो समाजका बहुत-सा पाप, अनाचार, अत्याचार तथा दुःख स्वयं नष्ट हो जाय।

इसी प्रकारके दैवी प्रेमके आदर्शमें एक वह भी निःसंग एकात्म-प्रेम है जिसमें प्रेमी अपने प्रियसे अन्ध-स्नेह करता है, उसका कुशल चाहता है, उसकी मंगल-कामना करता है, चाहे वह प्रिय उपेक्षा ही क्यों न करता हो। ऐसे आदर्शोंसे मानव-जीवनमें उदात्त भावोंका विकास होता है और सामाजिक जीवन फलता-फूलता है।

एक पुरुषको एक ही स्त्रीका होकर, एक नारीको एक ही पुरुषका होकर रहना चाहिए, यह आदर्श सामाजिक भावना है। किन्तु मानस-शास्त्री तथा समाज-विज्ञानके पण्डित कहते हैं कि जो मनुष्य होगा वह सुन्दरको देखकर उसकी ओर आकृष्ट होगा ही। यह आकर्षण कभी तो क्षणिक होता है, कभी दृढ हो जाता है। इस दृढ अवस्थामें जो समाजकी मर्यादाओंमें रहते हुए अथवा समाजके बन्धनका दंड पाकर भी एकनिष्ठ होकर उसका पालन करता रह सकता है वह सत्य-स्नेही है।

अनारकली नाटककी ऐसी ही कथा है। ऐतिहासिक नाटक इतिहास नहीं होता, नाटक होता है। उसकी कथा और उसके नायकका संकेत

इतिहासमें ढूँढ़ा जा सकता है, किन्तु कथाओंके क्रम और घटनाओंके बन्धनका पूर्वापर संबंध उससे नहीं स्थिर किया जा सकता। नाटक किसी इष्ट भाव-सौन्दर्यके लिये पोषक सामग्री—पात्र, घटना, दृश्य, भाव, रस, उक्ति आदि—का संग्रह करता है और उनके द्वारा उस भावको सुन्दरतम बनानेका उपक्रम करता है।

अनारकलीकी कथा इतनी ही मिलती है कि वह मुग़ल रनिवासकी असाधारण सुन्दरी दासी थी और शाहज़ादा सलीमसे अत्यधिक स्नेह करती थी। शाहज़ादा सलीम भी हृदयसे उससे स्नेह करता था। अकबरको यह जानकर बड़ा क्षोभ हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि अनारकलीको प्राणदण्ड दे दिया जाय। सलीमको जब यह ज्ञात हुआ तो वह अत्यन्त दुखी हुआ किन्तु तबतक अनारकलीकी समाधि बन चुकी थी।

यह भी इतिहास विदित है कि सलीमके षड्यन्त्रसे बुन्देले सरदार वीरसिंहदेवके हाथों अबुलफ़ज़लकी हत्या हुई। इस नाटकमें इन दोनों घटनाओंका नाटकीय व्यापारके लिये उपयुक्त संयोग कर लिया गया है।

परिचय

ग्रन्थोंके प्रारम्भमें जो 'परिचय' (इन्ट्रोडक्शन) दिया जाता है उसमें ग्रन्थ और लेखक दोनोंका विवरणात्मक, समीक्षात्मक और अभिनन्दनात्मक परिचय तो होता ही है साथ ही उस कृतिका अध्ययन करनेके लिये जनताको भी प्रेरणा दी जाती है। 'भाषाकी शिक्षा'के प्रारम्भमें यह परिचय लीजिए—

परिचय

भाषा-शिक्षणका ज्ञान प्रत्येक अध्यापकको अवश्य होना ही चाहिए। जबतक उसे भाषाका ज्ञान नहीं होगा तबतक वह किसी भी विषयकी

ठीक शिक्षा दे ही नहीं सकता। छात्रोंकी भलाई करनेके बदले वह उलटे उनका जीवन नष्ट कर देगा। मानसशास्त्रके अध्ययन और मननके पश्चात् शिक्षा-शास्त्रियोंने शिक्षाके सभी क्षेत्रोंमें बहुतसे आवश्यक परिवर्तन सुझाए हैं। भारतीय भाषाओंके शिक्षकोंको भी चाहिए कि वे आजकलके नये प्रयोगोंका सहारा लेकर अपने पढ़ानेके ढंग सुधार लें क्योंकि इस नवीन पद्धतिसे जो शिक्षा दी जायगी वह निःसन्देह उपयोगी होगी।

योरोपीय देशोंने भाषा-शिक्षणपर जो साहित्य-निर्माण किया है उसका विशेष सम्बन्ध उनकी भाषा, संस्कृति और उनके इतिहाससे ही रहा है, फिर भी उनमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो संसारकी सभी भाषाओंके शिक्षणमें समान रूपसे उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। हमारे देशमें भी भाषा-शास्त्र और भाषा-शिक्षण-प्रणालियोंपर वैदिक तथा उत्तर वैदिक साहित्यमें विस्तारसे विचार किया गया है किन्तु कई कारणोंसे उसका विकास रुक गया। हम उन कारणोंपर न तो यहाँ विचार करना चाहते हैं न यहाँ उसका अवसर ही है किन्तु है यह बात नितान्त सत्य। हमारे देशमें संस्कृत तथा अन्य भाषाओंके अध्यापक नई खोजों और नये प्रयोगोंसे सदा दूर रहते चले आए हैं। यदि हम लोग चाहें कि हमारी भाषा और उसके पढ़ानेकी प्रणालीका भविष्य उज्ज्वल हो तो हमें चाहिए कि हम न केवल योरोपीय प्रयोगोंका लाभ उठावें वरन् अपने देशकी प्राचीन संस्कृति और शिक्षा-प्रणालीका पुनरुद्धार और विकास भी करें।

हमारे देशमें पिछले लगभग सवा सौ वर्षोंसे अँगरेज़ोने अध्यापकों तथा शिक्षाशास्त्रियोंके मनपर ऐसा प्रभुत्व जमा रक्खा था कि वे उसीके विस्तार और विकासकी चिन्तामें ही पड़े रहते थे। ठीक भी था, क्योंकि अँगरेज़ी विद्यालयोंमें भी उसीकी तूती बोलती थी, कचहरीमें भी उसीका राज था, राष्ट्रसभामें भी अँगरेज़ीमें ही काम होता था और साधारण व्यवहारमें भी अँगरेज़ीका ही बोलबाला था। अँगरेज़ीकी इस

धाकके कारण अँगरेजी सिखानेकी न जाने कितनी पद्धतियाँ चल निकलीं और उसपर न जाने कितना साहित्य भी रचा गया। पर हर्षकी बात है कि वे दिन बदल गए और वेगसे बदल भी रहे हैं। लोगोंका ध्यान मातृभाषाकी ओर जा रहा है, उसका आदर होने लगा है। अँगरेज़ी धीरे-धीरे हटने लगी है और उसका स्थान मातृभाषाएँ धीरे-धीरे ले भी रही हैं। अतः स्वभावतः राष्ट्रभाषा हो जानेके कारण हिन्दी-भाषी तथा अहिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दी अपना स्थान पाती जा रही है।

हिन्दीको केवल एक प्रान्तवालोंकी मातृभाषा माननेकी भूल नहीं करनी चाहिए। हिन्दी वास्तवमें भारतकी राष्ट्र-भाषा, अन्तःप्रान्तीय भाषा तथा लोक-भाषा होती जा रही है। आज भी भारतके किसी भी प्रदेशमें हिन्दी जाननेवाला अपना काम भली-भाँति चला सकता है। अब भी वही समूचे भारतकी बोली है और इस देशकी दो-तिहाईसे अधिक जनता यही भाषा किसी न किसी रूपमें बोलती, लिखती या समझती है। अतः जिन ग्रन्थोंकी रचना भारतकी इस राष्ट्रभाषा, अन्तःप्रान्तीय भाषा या 'लोक-भाषा' में होगी वह रचना भारतके किसी एक प्रदेशकी ही जनताके लिये हितकारी न होकर सारे भारतीय जन-साधारणके लाभकी होगी।

वर्तमान नवीन शिक्षा-सुधार-योजनाके अनुसार अँगरेजी पढ़ना-पढ़ाना आठ-नौ वर्षकी अवस्थासे प्रारम्भ न होकर बारह वर्षकी अवस्थासे होगा। इससे पहले बालकको अपनी मातृभाषामें पढ़ना होगा। इसलिये भी यह आवश्यक है कि हिन्दीकी पढ़ाई और पढ़नेके ढंग ऐसे सुधार दिए जायँ कि आगे चलकर अँगरेज़ी या कोई नई भाषा सीखते समय उन्हें सरलता हो क्योंकि यदि कोई व्यक्ति एक भी भाषा ठीक ढंगसे सीख ले तो उसे दूसरी भाषा सीखनेमें तनिक भी कठिनता नहीं होती।

इस ग्रन्थमें उन सभी शिक्षण-सिद्धान्तों और प्रणालियोंका समा-

वेश किया गया है जो सर्व-मान्य हो चुके हैं। इसकी रचनामें मैंने भी अपने शिक्षा-सम्बन्धी ज्ञान और अनुभवका पूर्ण सहयोग दिया है। इस ग्रन्थमें जितने विषयोंका विवेचन किया गया है उतने विषय मेरी जानमें किसी एक ग्रन्थमें नहीं हैं। इसे तो भाषा-शिक्षणका कोष समझना चाहिए। इसमें केवल भाषा-शिक्षणके सिद्धान्त और उसकी प्रणाली मात्रका ही समावेश नहीं है वरन् भाषा-शिक्षकके सामने उठ खड़ी होनेवाली सभी कठिनाइयों तथा समस्याओंपर विस्तारसे विचार किया गया है और उन्हें सुलझानेके उपाय भी सुझाए गए हैं अर्थात् भाषा-शिक्षणके जितने भी पक्ष हो सकते हैं उन सभीपर इस पुस्तकमें प्रकाश डाला गया है। इसमें यह भी ध्यान रक्खा गया है कि प्रत्येक सिद्धान्त मानसशास्त्र सम्मत, तर्क-सिद्ध तथा बोधगम्य हो जिससे प्रत्येक अध्यापक सरलतासे उसे अपना सके। यह पुस्तक उन सभी अध्यापकोंके कामकी है जो प्राथमिक कक्षासे लेकर कौलेजकी उच्चतम कक्षाओंतकमें भाषाकी शिक्षा देते हैं। प्रत्येक वर्गके अध्यापकको इसमें उसकी आवश्यकताके अनुसार सारी सामग्री यथास्थान मिल जायगी।

इस पुस्तकके प्रणेता पण्डित सीताराम चतुर्वेदी स्वयं कई भारतीय तथा योरोपीय भाषाओंके ज्ञाता, सुयोग्य अध्यापक और शिक्षण-सिद्धान्तोंके पण्डित हैं। ये भाषा-शिक्षककी कठिनाइयोंसे तथा उनके दूर करनेकी विधियोंसे स्वतः परिचित हैं। कई वर्षोंसे ये काशीके टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजमें संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजीकी शिक्षण-विधियोंकी योग्यतापूर्वक शिक्षा दे रहे हैं। अतः इनकी लेखनीसे जो शिक्षण-संबंधी साहित्य निकल रहा है वह केवल पुस्तक-सिद्ध ही नहीं, अनुभव-सिद्ध भी है।

मुझे आशा है कि ट्रेनिंग कौलेजों तथा ट्रेनिंग स्कूलोंमें भाषाकी

शिक्षा देनेवाले सभी शिक्षक तथा अन्य भाषाओंके अध्यापक इस पुस्तकसे उचित लाभ उठावेंगे।

गणेश चतुर्थी, सं० १९९६ वि०	हरिकृष्णदास बूलचन्द मलकानी प्रिन्सिपल, टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज, काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय।

प्रस्तावना

प्रस्तावनाका एक वह भी रूप होता है जिसमें लेखक किसी ग्रन्थके प्रस्तुत करनेके इतिहास और कठिनाइयोंका विवरण देता है। 'भाषाकी शिक्षा'की यह प्रस्तावना लीजिए—

प्रस्तावना

कई वर्षोंसे मैं इस पुस्तकका स्वप्न देख रहा था। न जाने कितनी बार, कितने रूप, आकार तथा नाम लेकर यह पुस्तक मेरी कल्पनाके रंगपीठपर आकर अपना लास्य दिखा गई किन्तु भौतिक जगत्में वह सरूप न हो सकी। उसके कई कारण थे। मेरे बहुधन्धी जीवनकी व्यस्तताने मेरे कल्पना-लोकके द्वार सबके लिये बन्द कर दिए थे। मेरी लेखनी न जाने कितनी बार सपरिकर सन्नद्ध हुई, कितनी बार उसने बलपूर्वक मेरे विचारोंको वन्दी करनेका प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रहती चली आई। मैं अत्यन्त उत्सुक होनेपर भी अपनी लेखनीकी साध पूरी न कर सका।

फिर मैंने विचार किया कि यदि कोई गणेश मिले तो मैं व्यास बन जाऊँ। ग्रन्थकी सम्पूर्ण सामग्री सूत्र रूपमें सुरक्षित थी, उसका व्यास करने भरकी देर थी, पर कोई गणेश न मिल सके। गत वर्ष पूज्य-पाद प्रातःस्मरणीय गुरुवर महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके आशीर्वादसे तथा सौजन्यमूर्त्ति गुरुवर श्रीहरिकृष्णदास मलकानीजीके स्नेहसे जब मैं टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजमें भाषा-शिक्षण-शास्त्रका आचार्य

बनाया गया, तब इस ग्रन्थका अभाव खटकने लगा। इस क्षेत्रमें अभीतक गुरुवर पण्डित लज्जाशंकर झाजीकी 'भाषा-शिक्षण-पद्धति' एकमात्र पुस्तक थी। अतः, पढ़ानेके लिये उसी पुस्तकका आश्रय लेना पड़ा। उसकी प्रेरणासे अनेक नये विचार मनमें उठे और अनेक समस्याएँ सामने आईं, साथ ही शिक्षा-युगकी अनेक नई क्रान्तियों और गतियोंसे भी परिचय हुआ। अतः, एक ऐसी पोथीके निर्माणकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी जो एक ओर भाषा-शिक्षककी सब कठिनाइयोंका भी समाधान कर सके और दूसरी ओर उसे शिक्षण-शास्त्रसे भी भली प्रकार परिचित करा सके। फिर एक बार लेखनी जाग उठी किन्तु जागकर भी केवल ऊँघकर, जँभाई लेकर, अङ्ग तोड़कर फिर लेट गई। मेरा वश ही क्या था?

किन्तु भावना प्रबल थी। जेठकी बनारसी गर्मीकी एक मंगलमयी सन्ध्याको संयोगवश पण्डित शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' जीसे भेंट हो गई। मैंने उनसे अपनी विवशता कह सुनाई। उन्होंने गणेश बनना स्वीकार कर लिया। रुद्रसे गणेश बननेमें उन्हें कितना बड़ा त्याग करना पड़ा यह तो प्रत्येक साहित्यकार समझ सकता है किन्तु मेरे लिये उन्होंने यह परम त्याग भी स्वीकार कर लिया। रुद्र गणेश बने और पुस्तकका श्रीगणेश हो गया। नित्य संध्याको किंग-एडवर्ड छात्रावासमें मैं एक-एक अध्यायका प्रवचन करता था, रुद्रजी उसे अलंकृत करके भाषानिबद्ध करते चलते थे। धीरे-धीरे ग्रंथ पूरा हो गया। मैं उनका इसलिये विशेष कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने कृपा करके ग्रन्थके लेखकके रूपमें भी अपना नाम देनेकी अनुमति दे दी।

पुस्तक छपाईके लिये दे-देनेपर प्रिंसिपल मलकानीजीने अनेक नये संशोधन और नये विचार सुझाए। मुझे भी यह बात जँची कि पुस्तक निकले तो सर्वाङ्गपूर्ण होकर। ऐसा न हो कि कोई विषय छूट जाय। अब मेरी लेखनी भी गतिशील हो चली और जितना ग्रन्थ लिखा जा

चुका था उतना ही मैंने और बढ़ा दिया। पुस्तक छपने लगी और जैसे-जैसे वह छपती चली वैसे ही नये-नये विचार आने लगे। पुस्तक हनुमानजीकी पूँछके समान बढ़ती चली जा रही थी। मेरे प्रूफ़-संशोधनको देख-देखकर प्रकाशक और मुद्रक दोनों खीझे जा रहे थे किन्तु और कोई चारा न था। पुस्तक बढ़ती गई, बढ़ती गई, पर अनन्त तो थी नहीं, आज समाप्त हो गई। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'

—अनेक पुराण, शास्त्र और वेदका मत लेकर तथा और भी स्थानोंसे जो प्राप्त हुआ उसे रामायणमें कह डाला, उसी प्रकार भाषा-शिक्षण-शास्त्रके सभी प्राप्य ग्रन्थोंको मथकर हमने सामग्री ले ली और वह अपने अनुभवसे सिद्ध करके इस पुस्तकमें ला रक्खी। इसलिये मुझे विश्वास है कि भाषा-शिक्षककी प्रत्येक जिज्ञासा इस ग्रन्थसे तृप्त हो सकेगी।

मैं गुरुवर प्रिंसिपल मलकानीजीका विशेष रूपसे आभारी हूँ, जिन्होंने बड़ी कृपा करके इसके लिखनेमें सहायता दी और भूमिका लिखकर मुझे कृतज्ञ किया। नागरीमें ध्वनितत्वके विषयमें जो कुछ पहले लिखा गया था उसमें हिन्दी और संस्कृतके विचक्षण विद्वान्, हमारे मित्र एम्० ए०, साहित्यशास्त्री, व्याकरणाचार्य पण्डित करुणापति त्रिपाठीने कुछ परिवर्द्धन करके उक्त अध्यायको अधिक स्पष्ट और सुबोध बना दिया है। इस सहायताके लिये मैं उनका भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मेरे प्रकाशक मित्र राजा बाबूने जिस लगन और दौड़-धूपसे इस पुस्तकको शुद्ध तथा मनोहर बनानेका प्रयास किया है उसके लिये वे अधिक धन्यवादके पात्र हैं।

पुस्तकमें सब ज्ञातव्य विषयोंका समावेश कर देनेपर भी यह संभव है कि कुछ विषय छूट गये हों और अनेक स्थानोंपर छापेकी भूलें भी

रह गई हों। ऐसी स्थितिमें हमें आशा है कि पाठकगण हमें हमारी त्रुटियाँ तथा भूलें सुझानेकी अवश्य कृपा करेंगे।

काशी,
गणेशचतुर्थी,
सं० १९९६ वि० } सीताराम चतुर्वेदी

संक्षेपीकरण

आजकल दैनिक समाचार-पत्रोंके लिये संक्षेपीकरण अत्यन्त आवश्यक कला हो गई है। प्रायः बाहरसे समाचार भेजनेवाले लोग इस बातका ध्यान नहीं रखते कि समाचार-पत्रकी अत्यन्त संकुचित सीमा होती है। उसमें इतनी अधिक बातोंका समावेश होना रहता है कि साधारणतः अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें ही समाचार देना सम्भव होता है। किन्तु संक्षेपीकरणमें इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि कोई बात छूट न जाय और साथ-साथ भाषा-शैलीका भी सुघर रूप बना रहे। आचार्य रामचन्द्र शुक्लजीके 'सूरदास' निबन्धका एक अनुच्छेद लीजिए—

'जयदेवकी देववाणीकी स्निग्ध पीयूषधारा, जो कालकी कठोरतामें दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषाकी सरसतामें परिणत होकर मिथिलाकी अमराइयोंमें विद्यापतिके कोकिल कण्ठसे प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रजके करील कुञ्जोंके बीच फैलकर मुरझाए मन सींचने लगी। आचार्योंकी छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्णकी प्रेमलीला-का कीर्त्तन कर उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदासकी वीणाकी थी।'

इसका संक्षिप्त रूप यह होगा—

विदेशी शासनके कारण जयदेवके गीतगोविन्दकी जो संस्कृत

भाषाकी मधुरता लुप्त हो गई थी वही मधुरता लोक-भाषाओंकी उन्नतिके साथ मैथिली-भाषाके कवि विद्यापतिके पदोंमें और फिर ब्रज भाषाके कृष्णभक्त अष्टछापके कवियोंमें भी दिखाई पड़ने लगीं जिनमें सबसे अधिक मधुर रचना सूरदासकी थी ।

सम्पादकीय लेख

सम्पादकीय लेखमें प्रवाहशील भाषा, सुघटित वाक्यविन्यास ओजपूर्ण शैली तथा तीव्रतर रीतिसे प्रभावित कर सकनेवाले तर्कोंका प्रयोग किया जाता है क्योंकि सम्पादकीय लेखमें यह सामर्थ्य अवश्य होना चाहिए कि पाठक उसे रुचिपूर्वक पढ़े, पढ़कर उसे समझे और समझकर तदनुसार भावित हो जाय। जिन दिनों मुहम्मद अली जिन्नाको मनानेके लिये महात्मा गाँधी पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे उन दिनों बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले 'संग्राम' पत्रका यह सम्पादकीय लेख लीजिए—

बन्दर-घुड़की या ललकार

सिरपर बजरबट्टू घुमाकर, 'छुः काली कलकत्तेवाली, ब्रह्माकी पुत्री इन्दरकी साली' वाला मन्त्र पढ़कर और तीन बार फूः करके पुरुषको स्त्री बनानेवाले बाजीगरोंका कौशल देखकर यदि आप हतप्रभ होकर, आँखें फाड़कर, अवाक् होकर, दाँतों तले उँगली देकर स्तब्ध होकर खड़े रह गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। छूमन्तर करके मुट्ठीमें रक्खी हुई अँगूठीको उड़ा देनेवाली नट-विद्यापर भी आपने आश्चर्यकी परम मुद्रा साधी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु जब बम्बईके समशीतोष्ण जलवायुमें साँस लेनेवाला एक दुबला-पतला मानव ध्वनि-विस्तारक यन्त्रसे मुँह लगाकर अपना विषैला मन्त्र फूँककर उसकी झारसे

दिल्लीमें लगा लगाकर महात्माकी कुटिया और तीर्थराजके आनन्दभवनतक भी लपटें उठा दे तब वैसा ही आश्चर्य होता है जैसा वामनके बढ़नेपर बलिको कालिय नागके नाथे जानेपर नन्दको या कुवलयापीड़ हाथीके पछाड़े जानेपर कंसको हुआ था। किन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे जिन राष्ट्रनायकोंने गङ्गाजल हाथमें लेकर शपथ खाई थी और भुजा उठाकर प्रण किया था कि अब कभी मुसलिम लीगका नाम नहीं लेंगे, उनका द्वार नहीं झाँकेंगे, उनकी देहली नहीं लाँघेंगे, उनसे बात नहीं करेंगे और उनका मुँह नहीं देखेंगे, वे ही आज फिर उनसे मिलनेके लिये लिखा-पढ़ी कर रहे हैं, उनके घर दौड़े जा रहे हैं, तब तो हमारा आश्चर्य सुरसाका मुख फाड़कर खड़ा हो जाता है। राजनीतिक शतरंजके दाव-पेंचमें दिन-रात उलझे रहनेवाले खिलाड़ी भी आज यह नहीं समझ पा रहे हैं कि हिमालयका क्या बिगड़ा जा रहा था कि वह क्षुद्र टीलोंके आगे सिर झुकानेको उतारू हो गया। उसे कमसे कम अपने हिम-किरीटकी तो लाज रखनी चाहिए थी। किन्तु यह हो नहीं सका। केवल एक दुर्विनीत व्यक्तिके हठसे उत्पन्न होनेवाली भावी विपत्तिकी आशंकासे त्रस्त होकर एक नये शीलका नाटक प्रारम्भ किया गया और वह केवल इस आशासे किया गया कि बालूसे तेल निकाला जायगा, मरुभूमिमें जलधारा बहाई जायगी और नंगी शिलाओंपर वटवृक्ष लगाया जायगा। भारतीय शील क्या इतना सस्ता है कि अभिमानी और हठी दम्भियोंके तर्जनपर वह घड़ी-घड़ी अपना शीश नवाता चले। स्वदेश और विदेशके नीतिकारोंमें इस विषयपर कोई मतभेद नहीं है कि सम्पूर्ण देशके सुख और उसकी समृद्धिपर आघात करनेका जो विचार करता हो वह चाहे व्यक्ति हो, चाहे वर्ग हो, चाहे समाज हो, चाहे जाति हो, उसे देशमें रहनेका कोई अधिकार नहीं है। अँगरेज़ और योरोपीय इतिहासकारोंके मिथ्या प्रलापोंसे लदे हुए इतिहासोंमें यह पढ़कर कि आर्य लोग बाहरसे आए थे, आज एक वर्गके कुछ स्वार्थी

नेता यह तर्क देकर अपने अलगावकी पुष्टि कर रहे हैं कि जैसे आर्य बाहरसे आए वैसे ही अरब आदि जातियाँ भी आईं। जिन कायर हिन्दुओंने यवन दस्युओंके भालोंकी नोकपर स्वाभिमान और जात्यभिमान अर्पित करके अपनी शिखा, अपने सूत्र, अपना धर्म और अपने कर्म खंड-खंड करके उतार फेंके, उन हतवीर्योंकी सन्तान आज एक ओर तो अपना नाता मक्केसे जोड़ना चाहती है और दूसरी ओर यह भी चाहती है कि नैसर्गिक सीमाओंमें बँधे हुये भारतका अखंड भूभाग अनन्त भविष्यका अशांतिखण्ड बनकर अस्वाभाविक राष्ट्रभेदका बाना पहनकर संघर्ष और युद्धका केन्द्र बना दिया जाय। जिस कल्पना का विरोध स्वयं प्रकृति कर रही है, जिसके विपक्षमें राष्ट्रकी जीवन वृत्ति बोल रही है, उस असंगत कल्पनाको सजीव करनेकी धृष्टता करनेवाले शान्ति-द्रोहियोंके प्रलापको मिथ्या महत्त्व देकर हमारे अधिनायकोंने जो अभद्र भूल की थी उसकी आवृत्ति देखकर क्या यह कहना अनुचित लगेगा कि हमारे नायकोंकी राजनीति-विद्याका स्रोत सूख गया है, उनका नीतिकौशल पंगु और जड़ हो गया है, उनकी नैतिक प्रतिभा कुंठित हो गई है, नहीं तो आज वे स्वयं आत्म-विरोधी होकर एक बार निषिद्ध घोषित किए मार्गकी ओर इतनी उत्सुकतासे क्यों बढ़ते।

यह तो रही राष्ट्रिय और व्यक्तिगत आत्मसम्मानकी बात। राजनीतिज्ञ लोगोंका ध्यान है कि नैतिक आत्मसम्मान और राजनीतिक आत्मसम्मान दो अलग-अलग क्षेत्र हैं, जिनके अलग नियम हैं, अलग विधान हैं, अलग सिद्धान्त है। नैतिक आत्मसम्मान स्थिर और नित्य होता है। वह साक्षात् ब्रह्म होता है, निर्गुण, निराकार, अव्यय और शाश्वत। किन्तु राजनीतिक आत्मसम्मान मायाके समान है अनित्य और अशाश्वत। कलका घोर शत्रु आज मित्र हो सकता है इतना ही नहीं वरन् एक साथ खवेसे खवे भिड़ाकर अपनी सम्पूर्ण राजशक्ति लगाकर संघ शत्रुको एक साथ पददलित और पराजित करनेवाले परम विग्रह

मित्र भी जब लूटके मालका बँटवारा करने बैठते हैं उस समय उनकी मैत्री पूँछ दबाकर नौ-दो ग्यारह हो जाती है, उनकी एकार्थता अनेकार्थ हो जाती है, उनकी एकता अनेक रूप धारण करने लगती है। विश्वकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये जिस न्याय और शान्तिकी मृगमरीचिकाकी वे यवनिका ताने हुए थे वह तार-तार होकर झूल जाती है और नेपथ्यकी सम्पूर्ण क्रिया स्पष्ट और प्रत्यक्ष नंगी होकर दिखाई देने लगती है। विगत महायुद्धके पश्चात् होनेवाली शान्ति-सभामें रूस और ब्रिटेन-अमेरिकाके बीच जो कुत्सित कूट कौशलसे भरा हुआ वितण्डा चल रहा है वह इस राजनीतिक आत्मसम्मानके ढोलकी ज्वलन्त और प्रत्यक्ष पोल है। वही बात हमारे देशकी राष्ट्रिय राजनीतिकी भी है। आज पुनः लीगकी असम्बद्ध बंदर घुड़कीको वास्तविक ललकार समझकर विचलित हो जानेवाली ब्रिटिश सरकारके संकेतपर हमारी राष्ट्रसभाके अधिनायकको जो फिर मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ाना पड़ा है उसका राजनीतिक समाधान यही हो सकता है कि भारतीय स्वतन्त्रताके दो साझीदारोंमें बड़े साझीदार होनेके नाते कांग्रेसने वायसरायका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। किन्तु क्या इसका यह स्पष्ट अर्थ नहीं हो सकता कि ब्रिटिश साम्राज्यवादने अपनी आन और अपना आत्मसम्मान बचाकर कांग्रेस को झुकने और धृष्ट मानीके चरणचुम्बनके लिये प्रेरित बौद्ध शीलमें पड़कर सज्जनता निबाहनेके बहाने यह निमंत्रण स्वीकार करके राष्ट्रिय आत्मसम्मानका गला घोटनेमें भी संकोच नहीं किया।

हम पूछते हैं कि इस नवीन मिलनका आधार क्या होगा? पाकिस्तान ही न! यदि नहीं तो लीगके बम्बई अधिवेशनमें इतनी उछल-कूद, इतना हो-हल्ला, इतनी चहल-पहल हुई ही क्यों? यदि जिन्ना पाकिस्तानसे नीचे उतर आए तो समझा जायगा कि किसी मानव माताने इन्हें जन्म नहीं दिया, इन्हें दूध नहीं पिलाया और यदि कांग्रेस

ही किसी रूपमें पाकिस्तान सिद्धान्त स्वीकार करती है तो वह देशकी पीठमें छुरा भोंकती है, अपनी आत्महत्याके साथ राष्ट्रकी भी हत्या करती है और जो राष्ट्रिय मुसलमान देशकी अखण्डतामें विश्वास करके हमारे साथ राष्ट्रिय संग्रामोंमें जूझे हैं, उनके साथ घोर विश्वास-घात करती है। यदि यह बात नहीं है तो यह दौड़धूप और बातचीत किसलिये ? क्या जिन्नाको क़ायदेआज़मत्वसे उठाकर ख़ुदा बनानेके लिये या उनके साथियोंकी बन्दर-घुड़कीको ललकार घोषित करके जनता-को आतंकित करनेके लिये ?

व्याख्या

प्रायः परीक्षाओंमें कोई कविता या पद्यांश देकर कहा जाता है—

'निम्नांकित पद्य (अवतरण) का प्रसङ्ग-सहित या सन्दर्भ-पूर्वक अर्थ लिखो, व्याख्या करो, समीक्षा करो, अन्वय करो, साहित्यिक विवेचन करो, टीका करो' आदि। किन्तु छात्र उसका एक ही भाव जानते हैं—अर्थ लिख देना। किन्तु इन सबके रूप भिन्न हैं। नीचे तुलसीका एक प्रसिद्ध दोहा दिया जाता है और उपर्युक्त विभिन्न प्रकारोंसे उसका परिचय दिया जाता है—

> लता-भवनतें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
> निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद-पटल बिलगाइ॥

अन्वय : तेहि अवसर दोउ भाइ लता भवनतें (इहि भाँति) प्रगट भे जनु जलद-पटल बिलगाइ जुग बिमल बिधु निकसे (हों)।

अन्वयार्थ : उस अवसरपर (जब गौरीकी पूजाके लिये सीताजी आईं), वे दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) हरी बेलोंसे छाए हुए

मण्डपसे इस प्रकार प्रकट हुए मानो दो निष्कलङ्क चन्द्रमा बादलका पर्दा हटाकर प्रकट हो गए हों।

अर्थ : जिस समय गौरीकी पूजा करने सीताजी उपवनमें आईं उसी समय दोनों भाई राम और लक्ष्मण लताकुञ्जमें लटकती हुई लताओंको हटाकर इस प्रकार प्रकट हुए मानो दो निष्कलङ्क चन्द्रमा बादलोंका पर्दा हटाकर एक साथ निकल पड़े हों।

प्रसङ्ग-सहित अर्थ : मुनि विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण अपने गुरुजीके लिये फूल संग्रह करनेको जनकजीकी फुलवारीमें पहुँचकर लताकुञ्जकी ओटमें फूल चुनने लगे। जिस समय पार्वतीजीकी पूजा करनेके लिये जानकीजी उस उपवनके मन्दिरमें आईं, उसी समय राम और लक्ष्मण दोनों ही लताकुञ्जकी लटकती हुई लताओंको हटाकर जानकीजीके सामने इस प्रकार प्रकट हुए मानो सुन्दर, स्वच्छ, बिना कलङ्कवाले दो चन्द्रमा सहसा बादलका पर्दा हटाकर निकल आए हों।

भावार्थ : जिस समय सीताजी अपने उपवनमें अपनी सखियोंके साथ पार्वतीजीके पूजनके लिये पहुँची उसी समय राम और लक्ष्मण भी लताकुञ्जकी ओटसे लटकती हुई लताओंको हटाकर इस प्रकार सहसा प्रकट होकर सुन्दर लगने लगे जैसे बादलको फाड़कर एकके बदले दो निष्कलङ्क चन्द्रमा निकलकर खिल उठे हों।

व्याख्या : राजा जनकका निमन्त्रण पाकर, राम-लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रजी जनकपुर पहुँचे। वहाँ एक दिन प्रातःकाल विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण दोनों उनके पूजनके लिये फूल लेने जनकजीकी फुलवारीमें चले गए। उसी समय संयोगसे सीताजी भी उस उपवनमें मन्दिरमें गिरिजाका पूजन करनेके लिये आई हुई थीं। किन्तु राम और सीताजीके बीचमें एक लता-मण्डप पड़ता था जिसपर छाई हुई लताएँ नीचेतक लटककर ऐसी परदेके समान बन

गई थीं कि जबतक उन लताओंको हटाकर ही कोई दूसरी ओर न जाय तबतक उसके आर-पार कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उस उपवनमें जानेका मार्ग भी वही लता-मण्डप था इसलिये एक ओरसे जब सीताजी अपनी सखियोंके साथ चली आ रही थीं उसी समय दूसरी ओरसे लता-मण्डपपर छाई हुई लताओंको हटाकर रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दूसरी ओर निकल आए। रामचन्द्रजीने दाहिने हाथसे और लक्ष्मणने बाएँ हाथसे जब लताएँ हटाईं और वे लतामण्डपसे निकले तो ऐसा जान पड़ा मानो दो चन्द्रमाओंने अपने आगे छाए हुए बादलको हाथसे हटा दिया हो और वे बाहर निकलकर इस प्रकार चमकने लगे हों मानो बादलोंके आगे दो चन्द्रमा निकल आए हों। इस दोहेमें कविने उत्प्रेक्षा अलङ्कारसे बड़ा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। चमत्कार यह है कि चन्द्रमा तबतक नहीं निकलता जबतक बादल उसके आगेसे हट न जायँ और पीछे खुला आकाश न दिखाई पड़ने लगे। किन्तु यहाँ कई विलक्षण बातें हैं। यहाँ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। पृथ्वीपर केवल एक ही चन्द्रमा है और वह भी सकलङ्क है। यद्यपि अन्य ग्रहोंमेंसे मङ्गलपर २, बृहस्पतिपर ६, शनिपर ६ और वरुण (यूरेनस) पर ४ चन्द्रमा हैं किन्तु पृथ्वीपर तो एक ही चन्द्रमा है। यदि मङ्गलपर दो चन्द्रमा निकलनेकी बात कही गई होती तो उसमें कोई चमत्कार न होता। किन्तु चमत्कार यह है कि पृथ्वीपर एक साथ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। वे चन्द्रमा भी ऐसे निराले कि उनपर कलङ्क नहीं और ऐसे प्रतापी कि बादलको हटाकर निकले और निकलकर बादलोंसे आगे बढ़ आए। चित्र-विज्ञानके अनुसार श्वेत या उजलेके पीछे जितनी अधिक कालिमा होगी उतना ही अधिक श्वेत या उजला रङ्ग चमकेगा। अतः लतामण्डपकी लताओंको हटाकर ज्यों ही राम और लक्ष्मणने छोड़ा कि वे उनके पीछे गहरे नीले बादलके समान गहरे नीले रङ्गकी चादर बनकर ऐसी लटक गईं कि आगे राम और लक्ष्मणका सुन्दर रूप

का रङ्ग गोरा कहा गया है। जिस समय सीताजी अपने उपवनमें गिरिजाका पूजन करने गईं उस समय उनकी एक सखी उधर निकल गई जिधर राम-लक्ष्मण और गुरुजीके लिये सुमन-संग्रह कर रहे थे। उन्हें देखकर इन दोनों भाइयोंकी शोभाका वर्णन करते हुए उस सखीने कहा—

स्याम-गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

ऐसी स्थितिमें केवल लक्ष्मण ही सुन्दर दिखाई देने चाहिएँ थे क्योंकि रामका साँवला रङ्ग तो लताके रङ्गमें मिलकर छिप जाना चाहिए था। किन्तु गोस्वामीजीने यही चमत्कार दिखाया है कि दूर्वादल, नील-कमल और नवघन के समान श्यामल होनेपर भी उनके साँवले रङ्गमें इतना तेज था कि लताभवनकी लताओंके आगे खड़े होकर भी वे उससे भिन्न, प्रकाशमान, दीप्तिमान प्रतीत हो रहे थे। प्रश्न यह है कि यदि वे इतने तेजस्वी थे तो तुलसीदासजीने उनकी उपमा सूर्यसे क्यों नहीं दी? इसलिये कि सूर्यसे आँखें चौंधिया जाती हैं, वह देखनेमें सुखद नहीं होता। रहीमने कहा भी है—

रहिमन राज सराहिए, ससि-सम सुखद जु होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यौ तरैयनु खोय।

स्वयं गोस्वामीजीने भी कहा है—

सन्त-उदय सन्तत सुखकारी।
बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी॥

राम तो उस तमारि चन्द्रमाके समान उदित हुए जो आँखोंको भी अच्छे लगें और अन्धकार भी दूर कर दें। इस साँवले रङ्गका विचित्र चमत्कार है कि वह साँवला होता हुआ भी चन्द्रमाके समान सुखद और अन्धकार दूर करनेवाला है। यदि न विश्वास हो तो बिहारीका दोहा देखिए—

या अनुरागी चित्तकी, गति समुझै नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्वल होय ॥

जिस श्याम रङ्गमें डूबनेवाला उज्वल हो जाता है वह रङ्ग स्वयं कितना उज्वल होगा । उस साँवलेपनमें भी कुछ विचित्र गोरापन और उजलापन है ? किन्तु उसे देख वही पाता है जो उसे हृदयकी आँखोंसे देखे । फिर तो साँवलापन लुप्त हो जाता है और अखण्ड प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है, जिसका साक्षात् दर्शन सीताजीने और उस सखीने किया था जो उनका साथ छोड़कर फुलवारी देखने चली गई थी—

एक सखी सिय सङ्ग बिहाई ।
गई रही देखन फुलवाई ॥

और जब वहाँसे लौटी तो सब सुध-बुध भूलकर, क्योंकि उसे साक्षात् परम ज्योतिके दर्शन हो गए थे । इसीलिये गोस्वामीजीने उन्हें चन्द्र कहा है ।

हमें जो चन्द्रमा दिखाई पड़ता है वह गोल है, उसमें कलङ्क है । उसके हाथ-पैर नहीं हैं । किन्तु गोस्वामीने जो दो चन्द्रमा लताभवनसे प्रकट कराए हैं उनकी यह भी विशेषता है कि बादल उनपर तभीतक छाए रह सकते हैं जबतक वे चाहें और जब उनकी इच्छा प्रकट होनेकी हो तब वे झट अपने हाथसे बादल अलग करके प्रकट हो जायँ और बादल भी लताओंके समान दोनों ओर हट-बढ़कर पीछे पड़ जायँ ।

आध्यात्मिक व्याख्या : राम साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं । उन्हींकी मायासे यह सृष्टि उत्पन्न होती है, उसका पोषण और लय होता है । यह माया जबतक जीवपर व्याप्त रहती है तबतक ब्रह्मका दर्शन नहीं होता । उस ब्रह्मका साक्षात्कार तभी हो सकता है जब जीव स्वयं ज्ञान प्राप्त कर ले या तब हो सकता है जब स्वयं भगवान् अपने इष्टपर कृपा कर दें और स्वयं अज्ञानका, मोहका, मायाका आवरण हटाकर स्वयं प्रकट हो जायँ । सीताजी रामकी परा-शक्ति हैं, माया-

स्वरूपिणी हैं। उसी रामका रूप उन्हें सखियोंने लताकी ओटसे दिखा दिया। देखते ही वे योगस्थ और तन्मय हो गईं—

लोचन-मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक-कपाट सयानी॥

इसी एकात्मताके समय मायाका पट दूर हो गया। स्वयं ब्रह्म राम अपने भक्तके पास उन्हें स्वीकार करनेके लिये मायापट हटाकर प्रकट हो गए। जीव और ब्रह्मका मिलन हो गया।

बिन्दुमें सिन्धु समान, यह अचरज कासों कहौं।
हेरनिहार हेरान, रहिमन आपुहि आपुमैं॥

[बूँदमें समुद्र समा गया। ढूँढ़नेवाला स्वयं अपनेमें खो गया।]

तभी तो स्वयं पार्वतीजीने उनका समर्थन किया—

मन जाहि राच्यो मिलहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो।

और इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने लताभवनसे इन दो चन्द्रमाओंको उदय कराकर एक भव्य आध्यात्मिक सौन्दर्यका विलक्षण दृश्य उपस्थित कर दिया।

यह उपर्युक्त विशेष चमत्कार तथा व्याख्या मिलकर साहित्यिक समीक्षा या साहित्यिक व्याख्या कहलाती है।

आत्मकथा

आत्मकथाका अर्थ है अपनी कथा कहना। यह दो प्रकारकी होती है—एक तो वास्तविक आत्मकथा जिसमें कोई व्यक्ति अपने जीवनकी घटनाएँ क्रमबद्ध करके लिखता चलता है जैसे गाँधीजीकी आत्मकथा, जवाहरलाल नेहरूकी आत्मकथा या राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूकी आत्मकथा। किन्तु इसके अतिरिक्त एक दूसरा भी प्रकार है जिसमें किसी वस्तुको 'व्यक्ति' मानकर इस प्रकार लिखते हैं मानो

वही अपना जीवनचरित सुना रहा हो—जैसे रुपयेकी आत्मकथा, छतरीकी आत्मकथा या लँगड़े आमकी आत्मकथा। इस आत्म-कथाको रामकहानी या आप बीती भी कह सकते हैं। यह लँगड़े आमकी रामकहानी लीजिए—

लँगड़े आमकी राम-कहानी

मुझे वह दिन भूला नहीं है जब वसन्तके दिनोंमें काशिराजकी घनी अमराईके तरुण रसालकी बौराई हुई हरी टहनीकी फुनगीपर मधुगन्धसे गमकती हुई मञ्जरीकी सुकुमार गोदमें मेरा जन्म हुआ। रसीले भौंरोंने अपनी मनहर गुञ्जारकी तानोंसे बधाइयाँ गाईं। मदमत्त कोकिलने अपनी मीठी कूककी लोरियोंसे मुझे दिन-रात हँसाया-खिलाया। शीतल मन्द, सुगन्ध मलयज पवनने अपनी गोदके हिंडोलेपर साँझ-सबेरे मुझे झूम-झूमकर झुलाया। रङ्ग-बिरङ्गी तितलियों और छोटी-बड़ी चिड़ियोंने देश-विदेशकी कहानियाँ सुना-सुनाकर मेरा जी बहलाया। इस प्रकार राग-रङ्ग और हँसी-खेलमें यही नहीं जान पड़ा कि बचपन कब आया और कबमेंको निकल गया। अब मुझे लोग प्यारमें आँबी, केरी, अँबिया, अमौली या टिकोरा कहने लगे थे।

मेरे बचपनके साथ-साथ मधुमय वसन्त भी फाग खेलकर बीत चला। सूर्यकी किरणोंमें जलन बढ़ चली। धरतीका फाग खेलना सूर्यकी आँखोंमें काँटा बनकर खटकने लगा। पखवाड़े-भर पहले जो पवन शरीरमें फुरफुरी उठाता चलता था वह भी सूर्यकी किरणोंसे तपकर, लू बनकर अपने गरम थपेड़ोंसे सबका तन झुलसाने लगा। भरी दुपहरीमें लूके वह सनसनाते झोंके और हरहराते बवण्डर चलते कि जी सन्न रह जाता। लूका झोंका न सह सकनेके कारण हमारे बहुतसे साथी तड़प-तड़पकर गिरते जा रहे थे और मालीके लड़के ऐसे निर्दयी कि झट उठाते और उन्हें कच्चा चबा जाते। मालिन भी जबतब उठाती तो ऊपरका

छिलका छीलकर, सिलपर कूट-पीसकर, नमक-मिर्च मिलाकर, चटनी बनाकर, रोटीके साथ चट कर जाती। अपने साथियोंकी यह दुर्गति देखकर मेरा तो जी थर्रा जाता और यही डर बना रहता कि कहीं मेरी भी यही दशा न हो। जब माली सन्ध्याको अपनी मालिनसे आकर सुनाता कि आज इतने लोग लूसे चल बसे इतने खाट पकड़े पड़े हैं तो मेरा जी काँप उठता और रहा-सहा धीरज भी नौ-दौ ग्यारह हो जाता।

उन्हीं दिनोंकी बात है कि एक दिन भरी दुपहरीमें मालिनको मड़ैयामें नाक बजाते देखकर कुछ लड़के घात लगाकर अमराईमें आ घुसे और लगे हम लोगोंकी ओर आँख गड़ा-गड़ाकर घूरने। कुछ देर इधर-उधर यों ही ताक-झाँक करके वे लोग लगे ढेले उठा-उठाकर हम लोगोंपर तड़ातड़ बरसाने। हमारे जो अभागे साथी ढेलोंकी चपेटमें आए वे लगे टूट-टूटकर नीचे गिरने और लड़के भी लगे उन्हें उठा-उठाकर अपने पल्लोंमें भरने। अभी न जाने कितनी देरतक यह सब उजाड़-पजाड़ चलता रहता पर उनकी इस खटर-पटरसे मालिनकी नींद टूट गई। उसने जो इन लड़कोंको ढेला चलाते और आम बीनते देखा तो उसकी त्योरियाँ चढ़ गईं। वह ललकारती हुई उन लड़कोंके पीछे दौड़ी तो सही पर तबतक तो वे सब ले-देकर हरिण हो चुके थे। जब मालिन उनका कुछ भी न कर पाई तब उसने खीझकर धुँआँधार ऐसी फूहड़-फूहड़ गालियोंकी बौछार की कि एक बार लज्जा भी उन्हें सुनती तो लाजसे कान ढक लेती। भर-पेट गालियाँ दे चुकनेपर उसका जी ठण्ढा हुआ और वह बचे-खुचे नीचे पड़े सिसकते हुए हमारे साथियोंको छबड़ीमें बटोरकर मड़ैयामें जा लेटी।

एक दिन कुछ बनारसी छैले रङ्ग-पानी करके, छैल-छिकनिया बने, घूमते-घामते वहाँ आ पहुँचे। उनमेंसे एक लगा सब पेड़ोंको दिखा-दिखाकर समझाने कि–'ये देशी पेड़ हैं। इनके फलोंका अचार, अमचूर, अमावट और मुरब्बा बहुत अच्छा पड़ता है। इनमेंसे कुछके टपके बड़े

रसदार होते हैं और कुछ पाल डालनेपर मीठे होते हैं।' फिर हम लोगोंकी ओर घूरकर बम्बइया, मालदह, दसहरी, सफेदा, कृष्णभोग, पायरी, हाफुस, फजली और तोतापरीका नाम गिनाकर मेरा परिचय देते हुए वह बोला कि—'यह लँगड़ा है।' अपनेसे कम गुणवालोंके नाम कृष्णभोग और तोतेपरीके सामने अपना नाम 'लँगड़ा' सुनकर मेरा जी जल-भुनकर राख हो गया। जीमें आया कि अभी इसके सिरपर बरस-कर इसका सिर तोड़ दूँ।

इतनेमें उसके दूसरे साथी वैद्यजीने छेड़ दिया कि—

'पाके आमकी मीठी रसी, खाई न खाई देहे धँसी।'

'चालीस दिनतक कोई आम और गौके दूधपर रह जाय तो बकरा भैंसा हो जाय, भैंसा हाथी हो जाय और सौ बरसका झुलमुल बुड्ढा भी लाल पठ्ठा होकर निकले।' यह सुन-सुनकर तो मेरा जी बैठने लगा कि कहीं ये सचमुच मिलकर हमें डकार न जायँ।

तीसरे कविजी थे। उन्होंने तुलसीदासजीका दोहा छेड़ा—

तुलसी सन्त सुअम्ब-तरु, फूलि फलहिं पर-हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीकी वाणीमें अपना यह गौरव सुनकर बड़ा गर्व हुआ कि हम परोपकारी सन्तके पुत्र हैं और इतने बड़े कविने हमारी इतनी बड़ाई की है।

अब तो मैं फूलकर कुप्पा हो गया। क्या सचमुच हमारा इतना बड़ा माहात्म्य है? फिर भी यह बात जीमें खटकती ही रही कि मिठास और गन्धमें सबसे बढ़कर होते हुए भी हमें लोग 'लँगड़ा' ही कहते हैं। इसलिये रातको जब कोयल मेरे पास आकर कूकी तो मैंने पूछा—'कहो! हममें कोई दोष नहीं है, फिर भी हमें लँगड़ा क्यों कहते हैं?' उसने स्नेहपूर्वक समझाते हुए कहा कि मनुष्य सब बड़े मूर्ख होते हैं। इनकी बातका बुरा नहीं मानना चाहिए। ये लोग सभीके नाम

ऐसे ऊट-पटाँग रक्खा करते हैं। इसीलिये तो कबीरने इन्हें कोसते हुए कहा था—

चलतीको गाड़ी कहें, फटे दूधको खोवा।
रङ्गीको नारङ्गी कहें, देख कबीरा रोवा॥

कबीरकी बात सुनकर मेरे जीमें जी आया, जीको बड़ा ढाढ़स मिला।

अब मैं गदरा चला था। मेरे और मेरे साथियोंके हरे रङ्गपर कुछ सुनहरा पन लिए लाल रङ्ग चढ़ने लगा था। इसी बीच एक दिन मालीने मालिनसे कहा—'अब कल लँगड़े उतार लेंगे। महाराजके यहाँसे माँग आई है।' सुनते ही मेरा तो जी सूख गया। अब क्या होगा मेरे राम! पर फिर तुलसीदासजीका दोहा स्मरण करके जी कड़ा कर लिया—'मालीके जो जीमें आवे करे न! हम क्या डरते हैं।' अगले दिन तड़के ही माली जाल लेकर चढ़ ही तो आया। उसे देखते ही मेरा तो जी आधा हो गया। बातकी बातमें उसने हम सबको टहनीकी प्यारी गोदसे सदाके लिये बिलगाकर जालमें भर लिया। नीचे लाकर उसने हम सबको एक टोकरीमें पत्तोंके गद्देपर सजाकर बेलेके फूलोंसे ढककर महाराजकी सेवामें पहुँचा दिया, जहाँ तीन दिनतक हम लोग ठंढे डब्बेमें सोते रहे। बड़े दिनोंपर इतनी तरावट मिली थी!

हे छुरी! आज मैं यहाँ चाँदीके थालमें पहुँच गया हूँ। तुम अपने जीमें कोई खटका न करो और झटपट मेरी फाँकें करके थालीमें सजा दो जिससे मैं अपनी बलि देकर मनुष्यको स्वाद, स्वास्थ्य और सुख दूँ और अपना जीवन सफल करूँ, क्योंकि उसीका जीवन जीवन है जो सदा दूसरोंके काम आवे।

परिचय

साहित्यिक गद्य-रूपोंमें परिचय भी एक नया प्रकार है जिसमें किसी व्यक्तिका प्रशंसात्मक तथा गुणकीर्त्तनात्मक परिचय दिया

जाता है। इसमें न उस व्यक्तिकी व्याख्या होती है न आलोचना होती है वरन् केवल गुणोंका ही शंसन होता है। धीरे-धीरे व्यक्ति-परिचयसे अब ग्रन्थ और स्थानोंका भी इसी प्रकारका भावात्मक परिचय दिया जाने लगा है। राजकुमार रघुवीरसिंहकी 'शेषस्मृतियाँ' इसी प्रकारकी रचना है। पीछे पृष्ठ २९७ पर 'भगवान् परशुराम'-का विवरण भी इसी शैलीमें है।

जीवनचरित

यद्यपि जीवन-चरित भी परिचय ही है किन्तु परिचयमें लेखक भावात्मक होकर उस वस्तुके साथ सहानुभूतिपूर्ण तन्मयता स्थापित कर लेता है और इसीलिये उसमें भावुकता अधिक होती है, विवरण कम होते हैं किन्तु जीवनचरितमें लेखक किसी भी व्यक्तिके सब पक्षोंका विस्तारसे विवेचन करता है और उसपर यथावश्यक अपनी टिप्पणी भी देता चलता है। ये जीवनचरित तीन प्रकारसे लिखे जाते हैं—१. तिथि-क्रमसे, २ कार्यक्रमसे अर्थात् विभिन्न क्षेत्रोंमें उस व्यक्तिने जितने प्रकारकाकार्य किया हो उनमें-से प्रत्येक क्षेत्रका अलग-अलग पूर्ण विवरण हो और ३. अभि-शंसनके रूपमें जो गुणानुवादके ही समान होता है। यह जीवन-चरित भी अनेक प्रकारके कौशलोंसे लिखे जाते हैं। इनमें कुछ तो ऐसे लिखे जाते हैं जैसे लेखकने स्वयं वर्ण्य व्यक्तिके साथ रह-कर स्वतः अनुभव किया हो जैसे बौसवेलने जौन्सनका जीवनचरित लिखा या सीताराम चतुर्वेदीने पंडित मदनमोहन मालवीयजीका।

अधिकांश जीवनचरित सुनकर या पढ़कर लिखे जाते हैं अर्थात् लेखक या तो न्यायकर्ताके समान तुला लेकर उसके गुण और दोषों-की व्याख्या करता चलता है अथवा श्रद्धाभिभूत होकर गुणकीर्तन करता चलता है अथवा उसके कार्योंका परिचय मात्र देता चलता है, टिप्पणी नहीं करता। इस तीसरे प्रकारके जीवन-चरितका यह सुन्दर उदाहरण लीजिए—

महात्मा गाँधी

३० जनवरी १९४८ भारतके लिये काल-रात्रि सिद्ध हुई। उस दिन संध्याके साढ़े पाँच बजे संसारका परम तेजस्वी सूर्य समयसे पूर्व ही सदाके लिये अस्त हो गया या यों कहिए कि अस्त कर दिया गया। यूनानके दार्शनिक सुकरातके लिये विष, सन्त ईसाके लिये शूली और महात्मा गाँधीके लिये गोली—संभवतः सत्य और मानवताके उपासकोंके भाग्यमें यही प्रसाद बदा है। किसीको विश्वास नहीं होता था कि गाँधीजी जैसे महापुरुषकी हत्या भी की जा सकती है।

आजसे ८६ वर्ष पूर्व २ अक्तूबर सन् १८६९ ई० को काठियावाड़के पोरबन्दर नगरमें दीवान श्री करमचंद गाँधीके घर बालक मोहनदासका जन्म हुआ। कौन जानता था कि यही शिशु अपने युगका प्रतिष्ठित पुरुष होगा और दासत्वकी बेड़ियोंमें जकड़ी हुई भारत माताको स्वतन्त्र करके केवल भारतका ही कल्याण नहीं करेगा वरन् संसारका पथ-प्रद-र्शन करके विश्वमें भारतकी कीर्ति-पताका फहरावेगा! सम्पन्न घरानेमें जन्म होनेके कारण मोहनदासका बाल्यकाल बड़े लाड़-प्यारमें बीता। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही पोरबन्दरकी प्रारम्भिक पाठशालामें उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई और सात वर्षकी अवस्थामें वे राजकोटके मिडिल स्कूलमें पढ़ने भेज दिए गए।

गाँधीजीकी माँ पुतलीबाई बड़ी धर्मप्राण महिला थीं। जब गाँधीजी अपने पिताके साथ राजकोट जाने लगे तब उनकी माताने केवल यही शिक्षा दी कि किसी भी विषम परिस्थितिमें कभी धर्म और सत्यका मार्ग न छोड़ना। होनहार बालकने माताकी यह अमूल्य शिक्षा गाँठ बाँध ली और जीवन-पर्यन्त सदा धर्म और सत्यका निर्वाह करते रहे।

तेरह वर्षकी कच्ची अवस्थामें ही एक सम्पन्न तथा सम्मानित परिवारकी कन्या श्रीमती कस्तूर बाके साथ बड़ी धूमधामसे इनका विवाह हो गया। थोड़े ही समय उपरान्त सोलह वर्षकी अवस्थामें इनके पिताकी अकाल मृत्यु हो गई। अन्त समयमें इनके पिताने इनसे कहा कि आजीवन सत्य और धर्मका पालन करना तथा असत्य और अधर्मका विरोध करना। गाँधीजी व्याकुल हो गए किन्तु मृत्युशय्यासे दी हुई पिताकी शिक्षाको आजीवन निभानेकी उन्होंने दृढ प्रतिज्ञा कर ली।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें गाँधीजी राजकोटसे हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करके भावनगर कालेजमें भर्ती तो हो गए किन्तु थोड़े समय पश्चात् उन्होंने कौलेज छोड़ दिया। गाँधीजीके एक मित्रने उन्हें सम्मति दी कि इँगलैण्ड जाकर बैरिस्टरी कर आओ। गाँधीजी सहमत भी हो गए, किंतु उनकी माताको यह प्रस्ताव तनिक भी नहीं अच्छा लगा। वे समझती थीं कि इँगलैण्ड जानेवाले भारतीय मांस खाने लगते हैं, मदिरा पीने लगते हैं और ईसाई धर्म ग्रहण कर लेते हैं। गाँधीजीने अपनी माताजीको वचन दिया कि मैं कभी मांस और मदिराका प्रयोग नहीं करूँगा। इसपर माताजी सहमत हो गईं। सन् १८८८ ई० में गाँधीजी इँगलैण्ड चले गए। वहाँ गाँधीजीने देखा कि चारों ओर विलासिता, कृत्रिमता तथा आडम्बरका साम्राज्य है। धीरे-धीरे पाश्चात्य सभ्यताकी विलासिताके विरुद्ध उनके मनमें विद्रोह भड़क उठा। उन्होंने सादगीका व्रत ले लिया और आजीवन शाकाहारी रहनेकी दृढ प्रतिज्ञा कर ली। गाँधीजीकी अनुपस्थितिमें ही उनकी माताका स्वर्गवास हो

गया किन्तु यह दुःखद समाचार उन्हें १८९१ ई० में भारतवर्ष लौटने-पर ही प्राप्त हुआ।

गाँधीजीने आकर राजकोटमें वकालत प्रारम्भ कर दी। अध्यवसाय तथा अनवरत परिश्रमके कारण उनकी वकालत चमक निकली, किन्तु गाँधीजी अनुभव कर रहे थे कि वकालतसे केवल धन सञ्चय किया जा सकता है, सेवा नहीं की जा सकती। इसी बीच सन् १८९३ ई० में पोरबन्दरके एक व्यापारीके अभियोगके सम्बन्धमें उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा और वहींसे गाँधीजीके जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ हो गया।

उन दिनों दक्षिण अफ्रीकामें बसे हुए भारतीयोंके साथ बड़ा अमानुषिक व्यवहार होता था। वे गोरोंके साथ रेल या मोटरमें यात्रा नहीं कर सकते थे। एक दिन गाँधीजी रेलगाड़ीसे कहीं जा रहे थे। प्रथम श्रेणीका टिकट पास होनेपर भी उन्हें प्रथम श्रेणीमें नहीं बैठने दिया गया। पुलिसने उन्हें धक्के देकर डिब्बेके बाहर निकाल दिया और उनका सामान प्लेटफार्मपर फेंक दिया। गाँधीजी पूरी रात स्टेशनपर पड़े रहे। इस प्रकार गाँधीजीको कई बार अपमानित होना पड़ा और उद्धत गोरोंकी मार भी खानी पड़ी। इन अमानुषिक बर्बरतापूर्ण घटनाओं तथा भारतीयोंके विरुद्ध नये-नये आपत्तिजनक विधानोंसे गाँधीजीके हृदयको बड़ा आघात पहुँचा। गाँधीजीने उन अन्यायपूर्ण विधानों तथा अमानुषिक अत्याचारोंके विरोधमें भारतीयोंको संघटित करके विद्रोहकी आग भड़का दी। उन्होंने भारतीयोंकी शिक्षा तथा उनका रहन-सहन उन्नत करनेके निमित्त नैटाल इण्डियन काँग्रेसकी नींव डाली। गाँधीजीके इन प्रयत्नोंसे प्रवासी भारतीयोंको सच्चा नेता मिल गया और उनमें आत्म-सम्मानकी भावना जागरित हो उठी।

सन् १८९६ ई० में गाँधीजी भारत लौट आए। इसी बीच देशके कोने-कोनेमें उनकी ख्याति फैल चुकी थी। अफ्रीकामें वे जहाँ-जहाँ गए

उनका भव्य स्वागत किया गया। उन्होंने भारतीयोंपर होनेवाले अत्याचारोंका भण्डाफोड़ किया। इससे अफ्रीकाके अँगरेज गाँधीजीपर बड़े रुष्ट हो गए। छह महीने पश्चात् जब वे सपरिवार अफ्रीका लौटे तो गोरोंने उनपर ईंट और पत्थर बरसाने तककी नीचता दिखानेमें संकोच नहीं किया। यदि पुलिस घटनास्थलपर न पहुँच जाती तो वे गाँधीजीको मार ही डालते। उस समय जब लोगोंने गाँधीजीसे उनपर अभियोग चलानेके लिये कहा तो उन्होंने सच्चे सत्याग्रहीके समान उत्तर दिया—'वे अपने कुकर्मोंके लिये स्वयं ही लज्जित होंगे।' तबसे गाँधीजी बराबर सच्ची लगन और तत्परतासे भारतीयोंके हितोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न करते रहे। सन् १९०७ में भारतीयोंके विरुद्ध एक 'काला विधान' बना कि प्रत्येक भारतीयको अपना नाम अङ्कित कराना होगा तथा शिक्षित होते हुए भी अपने अँगूठेकी छाप देनी होगी। गाँधीजीने इसका विरोध किया, स्थान-स्थानपर सभाएँ कीं, सत्याग्रह किया, कई बार स्वयं कारागार गए, उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा भी कारागार गईं, किन्तु अन्तमें गाँधीजी विजयी हुए। 'काला विधान' समाप्त हो गया। सत्य और न्यायकी विजय हुई।

सन् १९१५ में गाँधीजीने भारतवर्ष लौटकर अहमदाबादके पास साबरमती आश्रमकी स्थापना की जिसके प्रत्येक आश्रमवासीको देश-सेवा और सात्त्विक जीवन व्यतीत करनेकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। इस प्रकार आश्रममें सच्चे, निःस्वार्थ देश-सेवकोंका समुदाय एकत्रित हो गया। वहाँसे गाँधीजीने भारतवर्ष भरमें अँगरेजी अत्याचारोंके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। सन् १९१७ में देशमें जब भयंकर 'रौलट कानून' बना तब गाँधीजीने उसके विरोधमें सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश सरकारने प्रजाका प्रचण्ड दमन किया, लाठियाँ और गोलियाँ बरसाईं किंतु आन्दोलन निरन्तर चलता ही रहा। इसी बीच जलियानवाला बागके हत्याकाण्डने आगमें घीका काम किया। विद्रोहकी ज्वाला भड़क उठी।

१ अगस्त सन् १९२० को गाँधीजीने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। वकीलोंने वकालत छोड़ी, छात्रोंने विद्यालय छोड़े, बहुतोंने सरकारी नौकरियोंको लात मारी, विदेशी वस्त्रोंको होलियाँ जलाई गईं, गाँधीजी कारागारमें ठूँस दिए गए और उन्हें छह वर्ष कठोर कारावासका दण्ड मिला किन्तु सन् १९२४ में ही वे छोड़ दिए गए।

उसी वर्ष वे बेलगाँव कांग्रेसके सभापति चुने गए। उन्होंने देश भरमें भ्रमण करके जनतामें अभूतपूर्व जागर्ति उत्पन्न कर दी और अछूतोद्धार तथा खादीके प्रयोगपर विशेष बल दिया।

सन् १९३० ई० में गाँधीजीने 'नमक कर' तोड़नेके लिये सुप्रसिद्ध 'दाँडी यात्रा' की। सारे देशमें नमक-कर तोड़नेका अन्दोलन चल पड़ा। ५ मईको गाँधीजी पुनः कारागारमें बन्द कर दिए गए किन्तु शीघ्र ही २५ मई सन् १९३१ को वे छोड़ दिए गए और लन्दनमें होनेवाले गोलमेज़ सम्मेलनमें आमन्त्रित किए गए। किंतु वह सम्मेलन असफल रहा और देशमें लौटनेपर गाँधीजी पुन: पकड़कर यरवदा जेल भेज दिए गए। इस बीच ब्रिटिश सरकारने अपने निर्णयमें अछूतोंको हिंदुओंसे पृथक् मान लिया था। इस निर्णयपर गाँधीजीने आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया। सरकारको हार माननी पड़ी। गाँधीजी कारागारसे मुक्त कर दिए गए और अछूतोंका पृथक् निर्वाचन रोक दिया गया।

सन् १९३५ ई० में भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध उनपर नया शासन-विधान लाद दिया गया। इधर गाँधीजीने देशी राज्योंमें प्रजापर होनेवाले अत्याचारोंके विरोधमें राजकोटमें अनशन प्रारम्भ किया। गाँधीजीकी विजय हुई और प्रजाकी माँगें स्वीकार कर ली गईं। इसी समय योरपमें द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया और इँगलैंडका पुछल्ला मानकर भारतको भी उसमें घसीट लिया गया इसलिये गाँधीजीने इसके विरुद्ध व्यक्तिगत सविनय आज्ञा-भङ्ग-आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।

सन् १९२४ ई० में गाँधीजीके नेतृत्वमें कांग्रेसने 'भारत छोड़ो'

प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्तावसे ब्रिटिश सरकार दहल गई। गाँधीजी तथा देशके अन्य प्रमुख नेता बन्दी कर लिए गए। देशमें विप्लव और विद्रोहकी लहर दौड़ गई। नेताहीन जनताने विदेशी सत्ताको उलटनेके लिये कुछ उठा न रक्खा। सरकारका क्रूर दमन-चक्र चला। निहत्थी जनतापर गोलियाँ बरसीं, सामूहिक अर्थदण्ड दिए गए, लाखों स्त्री-पुरुष काराओंमें ठूँस दिए गए, सहस्रों लाल स्वतन्त्रताकी बलिवेदीपर न्यौछावर हो गए, किन्तु स्वतन्त्रता-संग्राम चलता ही रहा।

उधर गाँधीजीने कारागारमें इक्कीस दिनका अनशन ठान दिया। सरकार दहल उठी कि यदि गाँधीजीकी मृत्यु हो गई तो देशमें विद्रोहकी आग भड़क उठेगी। किन्तु ७४ वर्षकी अवस्थामें भी गाँधीजीने यह अनशन सफलतापूर्वक पूर्ण किया। २२ फरवरी १९४४ को आगाखाँ-महलमें ही उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबाका स्वर्गवास हो गया। गाँधीजीका भी स्वास्थ्य बिगड़ चला था। अन्तमें ६ मई १९४४ को गाँधीजी छोड़ दिए गए। इस बीच मुसलमानोंके नेता मुहम्मदअली जिन्नाने द्विराष्ट्र-सिद्धान्त बनाकर मुसलमानोंके लिये पाकिस्तान बनानेकी माँग खड़ी की। गाँधीजीने कई बार मुहम्मदअली जिन्नाको समझानेका प्रयत्न किया किन्तु कुछ फल न हुआ। अन्तमें २६ मई सन् १९४६ को केन्द्रीय शासनके लिये कांग्रेस और मुसलिम लीगकी सम्मिलित अस्थायी सरकार स्थापित हुई।

अभी यह सम्मिलित सरकार भली प्रकार कार्य सँभाल भी नहीं पाई थी कि बङ्गालमें मुसलमानोंने भीषण मार काट मचा दी। गाँधीजीको इस दंगेसे भीषण आघात पहुँचा और वे बङ्गाल पहुँचे। १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतन्त्र घोषित हुआ। उसी समय सारा पञ्जाब और सीमाप्रान्त वहाँके हिन्दुओंका श्मशान बन गया। जीवित स्त्री-पुरुष जलाए गए, सम्पत्तिका विनाश हुआ, स्त्रियोंका अपहरण

हुआ, घरोंमें आग लगाई गई। क्रूरता, बर्बरता तथा आसुरी शक्तियोंसे जो भी घृणित कार्य हो सकते थे, सब किए गए। इस अत्याचारके प्रतिरोधमें हिन्दुओंने भी आत्म-रक्षाके लिये प्रतिहिंसाका आश्रय लिया। गाँधीजीने अपने प्राणकी बाजी लगाकर दिल्लीमें अनशन प्रारम्भ किया। नेताओंके प्रयत्नसे गाँधीजीने उपवास तो तोड़ दिया किन्तु उनके अन्तरात्माको शान्ति नहीं मिली। वे निरन्तर इस प्रति-हिंसाका विरोध करते रहे।

गाँधीजीकी इस पवित्र भावनाका अर्थ लोग यह लगाने लगे कि वे मुसलमानोंका पक्षपात कर रहे हैं। इसीलिये बहुतसे लोग गाँधीजीके व्याख्यानोंसे क्षुब्ध हो उठे। परिणाममें आई वही ३० जनवरी! सायं-कालके साढ़े पाँच बजेका समय! दिल्लीमें बिड़ला-भवनका प्रार्थना-स्थल! दनादन चार गोलियोंकी फट्-फट्! नाथूराम गोडसेके पिस्तौल-की चार गोलियोंने उनके वृद्ध शरीरमें निवास करनेवाले आत्माको ससीमसे असीम कर दिया। समस्त भारत शोक-निमग्न हो उठा।

यद्यपि उनका भौतिक शरीर अब इस संसारमें नहीं है, किन्तु वे अमर हैं। उनके पद-चिह्न इतने संयत, स्पष्ट और ध्रुव हैं कि भारत ही नहीं, समस्त संसार उनपर चलकर अपना कल्याण कर सकता है।

रेखाचित्र

रेखाचित्रको अत्यन्त संक्षिप्त जीवनचरित समझना चाहिए। जैसे उपन्यासका छोटा रूप कहानी होता है, नाटकका छोटा रूप नाटिका या एकांकी होता है उसी प्रकार जीवनचरितका छोटा रूप रेखाचित्र होता है जिसे लेखक अत्यन्त संक्षेपमें किसी व्यक्तिके सब गुणोंका (कार्योंका नहीं) ऐसी सटीकता, निष्पक्षता और सरसता के साथ व्यक्तिगत स्पर्श देकर लिखता है कि वह रेखा-

चित्र किसी भी व्यक्तिका पूर्ण चित्र बन जाता है। एक उदाहरण लीजिए—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्यके समीक्षा-क्षेत्रमें अक्षयकीर्ति अर्जन करनेवाले श्रद्धेय शुक्लजीके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विभूति है इनकी अगाध गम्भीरता। चाल-ढालमें, आचार-विचारमें, बातचीतमें, व्यंग्य-विनोदमें, लिखने-पढ़नेमें, जीवनके जिस किसी भी व्यापारमें देखिए, आप उन्हें कभी ऊपरी सतहपर नहीं पाइएगा।

ऊपर ही ऊपर अथवा दूर-दूरसे देखनेपर इनके संबंधमें जो धारणा बँध जाती है, सामीप्य-लाभ करते ही लोग उसे तोड़ डालनेको विवश हो जाते हैं। ऊपरसे ये जितने नीरस और रोदनशील-से देख पड़ते हैं, भीतरसे उतने ही सरस और सहास हैं। सार्वजनिक जीवनमें कर्त्तव्य-निरत रहनेवाले शुक्लजी दार्शनिक सूत्रोंकी भाँति मस्तिष्ककी नसें दुखानेवाले गद्य हैं किन्तु निजी जीवनमें सबके ऊपर स्नेह-सुधाकी वृष्टि करनेवाले शुक्लजी कविताकी सजीव प्रतिमा ही हैं। इनकी गम्भीर मुखाकृति किसी सार्वजनिक सभामें या कालेजमें इस बातपर विश्वास नहीं करने देती कि ये कभी हँसते भी हैं और इसके बाहर जहाँ कहीं भी इनसे मिलिए, इनके उन्मुक्त हास्यका वैभव बटोरते-बटोरते आप थक जाइएगा, पेट पकड़कर बैठ जाइएगा।

केवल साधारण बातचीतमें ही नहीं, साहित्यिक रचनाओंमें भी इनके व्यक्तित्वके इन दो विरोधी स्वरूपोंकी सत्ता सदैव विद्यमान रहती है। गम्भीरसे गम्भीर विषयका प्रतिपादन करते समय ये बीच-बीचमें चुटकुले छोड़ना नहीं भूलते। और वे चुटकुले इतने मार्मिक और मनोरंजक होते हैं कि वाह रे वाह! साहित्य-कलाको गौरवान्वित करनेवाले व्यंग्य-विनोदका जितना बढ़िया पुट ये दे सकते हैं, हँसने

और हँसानेकी निर्लिप्त कलापर जितना अधिकार इन्हें प्राप्त है उतना इनके समकालीन किसी और साहित्यकारमें नहीं दीख पड़ता। जिसपर ये अपनी आलोचनाकी चोट करते हैं उसे भी इनकी इस बातका लोहा मानना पड़ता है। वह भी इनकी हँसानेवाली बातपर जी खोलकर हँसता है। अपनी स्वाभाविक गम्भीरताके समुद्र-गर्भमें ये उल्लास-हासके अनमोल मोती छिपाए रहते हैं।

यों तो ये लोकबाह्य प्रवृत्तिके पालन करनेवालेसे दीख पड़ते हैं किन्तु वस्तुतः इनके भीतर लोकसंग्रहकी भावनाका एकान्त अधिवास है। लोकधर्म तथा लोकमंगलकी साधना-शक्तिपर इनकी इतनी अधिक आस्था है कि इनके मूलपर आघात करनेवाली बड़ीसे बड़ी वैयक्तिक तपस्याके महत्त्वको भी ये स्वीकार नहीं करते। जैसे इन्हें कवितामें छायावाद नहीं अच्छा लगता वैसे ही समाज-धर्ममें लेनिनवाद या गाँधीवाद भी रुचिकर नहीं है।

इसका यह आशय नहीं कि 'व्यक्तिगत' साधनापर इनकी श्रद्धा ही नहीं है और इनके निजी जीवनके साथ इसका पूरा सामंजस्य है। किन्तु इस प्रकारकी साधना-शक्तिके द्वारा प्रादुर्भूत उथल-पुथल, हो-हल्ला, अशान्ति और क्रान्तिको ये समाजकी जीवनी शक्तिके लिये अहितकर समझते हैं और चाहते हैं कि इसके द्वारा मनमानी करनेकी उच्छृङ्खलता न फैले। ये क्रान्तिके प्रेमी नहीं हैं, विकास और व्यवस्थामें विश्वास रखनेवाले हैं, इनके लिये वही काव्य-साधना कोई महत्त्व रखती है जो समाजके जीवनमें शील, शक्ति और सौन्दर्यका समन्वय ला सके; वही तपस्या सच्ची है जो लोकधर्मके राजपथको प्रशस्त बना सके। छायावादी कविताएँ इन्हें इसलिये अच्छी नहीं लगतीं कि उनमें केवल कविकी वेदना ही रहती है, लोक-वेदनासे उसका कोई सम्पर्क नहीं रहता। निर्गुणवाद तथा ऐकान्तिक तपस्यामें निरत रहनेवाले साधककी साधना ये इसलिये नहीं अपना सकते कि वह

लोक-हृदयकी सामान्य तथा सर्वसुलभ सम्पत्ति नहीं है। अलोकोपयोगी ऐश्वर्य, चाहे वह आध्यात्मिक हो या आधिभौतिक, इनके लिये कोई आकर्षण नहीं रखता। यही कारण है कि कविता इन्हें तुलसी और जायसीकी भाती है, कबीर जैसे रहस्यवादियोंकी नहीं। साधना और तपस्या इन्हें राम और कृष्णकी अच्छी लगती है; ईसा, बुद्ध और गाँधीकी नहीं।

प्रकृति देवीके तो ये अनन्य उपासक हैं। इनकी साहित्यिक प्रवृत्तिको परिपोषित करनेवाले पौष्टिक भोजन प्राकृतिक वैभव ही हैं। पहाड़ीके ऊपर चढ़नेवाले स्निग्ध श्यामल मेघ मानो अपने कुछ न खाकर इन्हींकी आत्माको परितृप्त किया करते हैं। वसुन्धराकी हरियालीको अपनी पंख-प्रभासे प्रमुदित करनेवाली मयूरबालाएँ जैसे स्वयं नहीं नाचतीं, इनके अंतस्तलके भीतर किलकनेवाले आनन्दको भी नचाती हैं। मुक्त धाराका कलकल सङ्गीत जान पड़ता है जैसे इन्हींके अन्तर्नादका विज्ञापन कर रहा हो। शरद्‌की बिखरी हुई चाँदनी रात अपनी उल्लास-ज्योत्स्नाको मानो इन्हींके लिये झूम-झूमकर बिखेरा करती हो।

प्रकृतिके महोत्सवमें लीन रहनेवाला इनका हृदय काव्यानुभूतिसे भरा हुआ है। मानव-हृदय और प्रकृतिके बीच मधुर सामंजस्य संस्थापित करनेवाली गम्भीर अनुभूतिके नाते ये बहुत ही बड़े कवि हैं। किन्तु काव्यकलाका सौन्दर्य बढ़ानेवाली अभिव्यक्तिके नाते इन्हें कवि-संज्ञाका अधिकारी मान लेना सत्यका साथ छोड़ देना है। गद्य-काव्यकी ऊँचीसे ऊँची भाव-भूमिपर प्रसन्न गौरवके साथ विचरण करनेवाला यह मनस्वी लेखक पद्य-काव्यकी सुषमाको अपनी अभिव्यक्ति-सीमाके भीतर नहीं ला सकता। हमारा यह असफल कवि ही इस समय सबसे बढ़कर सफल समालोचक है। इनकी आलोचना-शक्तिमें तेजस्विता, मनस्विता, सहृदयता, गम्भीरता और विद्वत्ताकी मात्रा इतनी अधिक है कि विरोधी भी इन्हें श्रद्धा और विश्वासकी दृष्टिसे देखनेको विवश हो जाते हैं।

हलचलसे, हो-हल्लेसे सदैव दूर रहनेवाला इनका स्वभाव विग्रह (वैराग्य) में लिपटा हुआ है। आप इन्हें गालियाँ भी दीजिएगा तो ये बोलकर उसका उत्तर कभी नहीं देंगे। हाँ, उन गालियोंका सम्बन्ध किसी साहित्यिक प्रसङ्गसे होगा तो लिखकर ये आपकी प्रवृत्तिकी कड़ीसे कड़ी आलोचना कर सकते हैं, साहित्यके क्षेत्रमें मनमानी करनेवालोंको ये कभी क्षमा नहीं कर सकते।

इनका स्वभाव है कि जिस सिद्धान्तको ये ग्रहण कर लेंगे उसे छोड़ेंगे नहीं और चाहेंगे कि उसीके अनुसार औरोंकी सिद्धान्त-धारा भी चले। अपनी ही कसौटीपर सबको कसनेका अभ्यास कुछ बढ़ गया है। यही कारण कि आधुनिक कालकी बहुत-सी बातें अच्छी होकर भी इन्हें नहीं रुचतीं। साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजनीति तथा धर्म-नीतिके सम्बंधमें अपनी बँधी हुई धारणाके अतिरिक्त ये और भी किसी प्रकारकी धारणा नहीं स्वीकार कर सकते। इनके इस रूढिवादके कारण कभी-कभी लोग इनकी वृत्तिपर भी आक्रमण कर बैठते हैं किंतु वे यह नहीं जानते कि इनका यह रूढिवाद इनके युगधर्मसे संबंध रखता है, किसी विद्वेष या वैमनस्यसे नहीं।

जिस सदाचारका, जिस चरित्रनीतिका सम्बन्ध हृदयसे न होकर सूखे सिद्धांतोंसे होगा उसे ये नहीं अपना सकते। उसकी उपयोगितापर इनका विश्वास जम नहीं सकता। मानव-सुलभ दोष-गुणको सहृदयता-की दृष्टिसे देखनेवाला स्वाभाविक आचरण ही इनके लिये कोई महत्त्व रखता है। पाप और पुण्यका औसत निकालकर जिस सदाचारका निरूपण किया जायगा वही इनकी दृष्टिमें मङ्गलकारी है। इनके आदर्श पृथ्वीपर दिखाई पड़नेवाले होते हैं, आकाशके प्रकाश-गर्भमें अदृश्य रहनेवाले नहीं।

शुक्लजी स्वाभाविक मनुष्य हैं। प्रवंचना, छल, पाखंड और पापको सरलता, प्रेम और पुण्यके आवरणमें लपेटकर चलनेवाले मनुष्याभास

नहीं। ये शान्त, सहिष्णु, सहृदय और सुखद हैं। इनका स्वभाव अतिशय मधुर और कोमल है।

अपने धर्म, अपनी जाति और अपनी संस्कृतिपर इनकी बड़ी आस्था है किंतु अपनी इस आस्थाको अभिव्यक्त करनेके लिये ये बनना नहीं जानते, जैसे हैं वैसे ही रहना इन्हें अच्छा लगता है।

श्रव्य व्याख्या (रनिङ्ग कमेन्ट्री)

श्रव्य व्याख्या प्रायः मौखिक ही होती है, जैसे क्रिकेटके मैचमें कोई एक व्यक्ति मैच देखता रहता है और उसकी व्याख्या करता रहता है। यह व्याख्या कल्पित भी होती है, जिसमें कोई व्यक्ति कल्पनासे ही किसी कल्पित दृश्यकी व्याख्या करता चलता है। इसी श्रेणीमें वे वार्त्ताएँ भी आती हैं जो रेडियोसे प्रसारित की जाती हैं। इनमेंसे कल्पित अलंकृत व्याख्याएँ ही साहित्यके अन्तर्गत आती हैं। एक उदाहरण लीजिए—

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय

सामने यह देखते हैं फाटक ! यहाँसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रारम्भ होता है। यह फाटक पहले छोटा था, अब राजा बलरामपुरकी उदारतासे गोपुरके रूपमें बन गया है।

इक्केपरसे अभी मत उतरिए। तेरह सौ एकड़ भूमि और बीस मील-की सड़कोंपर कहाँतक पैदल चलिएगा ? यह देखिए बाईं ओर प्राचीर दिखाई दे रहा है। इसके पीछे जो भवन हैं इन्हींमें महिला-विद्यालय और महिला-छात्रावास है। इस बीसवीं सदीमें महिला-विद्यालयके चारों ओर प्राचीर देखकर आपको कम अचरज तो न होता होगा, पर क्या किया जाय ? अभीतक हम लोगोंने अपनी बहनोंके शील और उनकी मर्यादाका आदर करना नहीं सीखा है। जबतक हमारे नवयुवक लक्ष्मण नहीं

बन जाते तबतक ईंटोंका प्राचीर ही उनके शीलकी रक्षा करेगा। बाहरसे देख रहे हैं, सामने फव्वारा है, दोनों ओर उपवन है, ठण्ढी अमराई है, पीछे खेलनेके मैदान हैं। आप बाहर ही रहिए, भीतर जाना ठीक नहीं है। बालिकाएँ इधर-उधर बैठी पढ़ रही हैं। अपनी धर्मपत्नीजीको भेज दीजिए, भीतरसे देख आयेँगी।

क्यों देखा न आपने? महिला-छात्रावासके भीतर कितना मनोरम उद्यान है? उसमें सामने छात्रावास है और उत्तरमें विद्यालय है। आप सितार सुन रहे हैं न? यहाँ कन्याओंको सङ्गीत भी सिखाया जाता है। भीतर ही एक बड़ा भवन है जिसमें वे अपनी सभाएँ करती हैं, उत्सव मनाती हैं और नाटक खेलती हैं। केवल स्त्रियाँ ही उनमें जा सकती हैं। इसमें बी० ए० तक पढ़ाई होती है। एम्० ए० और विज्ञान पढ़नेवाली कन्याओंको अभीतक सेन्ट्रल हिंदू कौलेजमें जाना पड़ता है। यह छात्रावास-भवन दानवीर श्रीमाखनजी खटाऊने बनवाया है।

इधर दाईं ओर जँगलेके पीछे आयुर्वैदिक महाविद्यालय और सर सुंदरलाल चिकित्सालय है। इसमें आयुर्वेदके साथ-साथ पाश्चात्य शल्य-शास्त्र भी पढ़ाया जाता है। इसमें दोनों प्रकारकी चिकित्साका प्रबंध है। पीछेकी ओर चलिए। यही आतुरालय है। देखिए, कितनी स्वच्छतासे रोगियोंकी सेवा की जा रही है। इसमें सौ रोगियोंके रखनेका व्यवस्था है। इधर आँख, नाक, कान और गलेकी विशेष चिकित्साका भी प्रबंध है। ऊपर चलिए, यह देखिए, यहाँ कीटाणुओंकी परीक्षा हो रही है।

उतर चलिए। यह देखिए, सामने कैसी सुन्दर आयुर्वैदिक वाटिका है। इसके भीतर चले चलिए। यहाँ अनेक प्रकारकी आयुर्वैदिक जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौधे, लताएँ उगाई गई हैं। इसके पश्चिममें एक भवन है जहाँ औषधियाँ बनती हैं। वाटिकाके पूरब-दक्खिनके कोनेमें एक भवन देख रहे हैं न? यहाँ मुर्दे रक्खे और चीरे जाते हैं और विद्यार्थियोंको शरीर-शास्त्रका प्रयोगात्मक ज्ञान कराया जाता है। सड़कके उस पार

वनस्पति-वाटिका है। इसमें अनेक प्रकारके वनस्पति-प्रयोगोंके लिये पेड़-पौधे उगाए जाते हैं। देखिए न, कितना सुन्दर है! बहुत देर मत लगाइए। अभी बहुत दूर चलना है।

देखिए यही संस्कृत-महाविद्यालयका भवन है जिसमें नीचे प्राच्य-विद्या-विभाग और धर्म-विज्ञान-विभाग हैं, ऊपर टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेज् है। यह राजा बलदेवदास बिड़लाने अपनी रुचि और अपने धनसे बनवाया है। इसका गीताभवन कितना सुन्दर, भव्य और दर्शनीय है। इस गीताभवनमें प्रति रविवारका प्रातःकाल गीताप्रवचन होता है और धार्मिक उत्सव होते हैं। प्राचीन ऋषियों, सन्त-महात्माओं और भारतके सम्राटोंके चित्र और उपदेश सङ्गमरमरकी शिलाओंपर खुदे हुए हैं।

यही आगे सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् है। कितना विशाल भवन है! इसीमें प्रातःकाल वकालतका कौलेज् और दिनमें सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् लगता है। ऊपर चले चलिए। यह देखिए, कितना बड़ा भव्य भवन है। इसमें दो सहस्र विद्यार्थी समा सकते हैं। नाटक भी इसी भवनमें होते हैं, एकादशीकी कथा भी यहीं होती है। हाँ, इसे आर्ट्स कौलेज् हौल कहते हैं। इक्केवाला इसीको 'आठ कालिज' कहता था।

और ऊपर चढ़ चलिए। यहाँसे पूरा विश्वविद्यालय दिखाई देगा। ऊपर आप जो मन्दिर देखते हैं वह केवल हिन्दूपनका चिह्न है। उसमें मूर्त्ति नहीं है। सामने देखिए, एम्फीथियेटरका अर्द्धवृत्ताकार चौगान है। इसीके पास विशाल पण्डाल बन जाता है जिसमें पदवीदानका उत्सव बड़ी धूम-धामसे होता है।

देखिए सभी विद्यालयोंके शिरपर मन्दिर, कलश और भारतीय कँगूरे दिखाई पड़ रहे हैं। जिस समय इधर धूप पड़ रही हो और पीछे बादल उठे हों उस समय ये भवन बड़े मनोहर लगते हैं।

इसीके बराबर यह विज्ञानका विद्यालय है। पहले यह विद्यालय भी सेण्ट्रल हिंदू कौलेज्के अंतर्गत ही था, पर अब अलग हो गया है।

यह भौतिक विज्ञान-विभागका भवन है, इसे फिजिकल लैबोरेटरी कहते हैं। ऊपर चलिए, आपके मनकी वस्तु दिखाते हैं। यह देखिए, यह जीव-शास्त्र-विभाग है। इसमें अनेक प्रकारके जीवोंके ढाँचे, मृत शरीर या लकड़ी और मिट्टीके प्रतिरूप दिखाई देंगे। यह 'जंतु-प्रदर्शनी' है। देखिए कहाँ-कहाँके जानवर यहाँ इकट्ठे किए गए हैं।

ऊपरसे ही दूसरी ओर चलिए। इधर वनस्पति-शास्त्रकी प्रयोग-शाला है। अनेक पेड़-पौधे, फल, जड़, काई, घास आदिके विषयमें यहाँ खोज की जाती है। इधर वनस्पतियोंकी प्रदर्शनी है। आप ये पौधे देखते हैं न! ये मक्खियोंको मारकर खा जाते हैं। भगवान्‌की माया तो देखिए।

उधर अब दूसरे भवनमें चले चलिए। इसे रसायन विज्ञान-प्रयोग-शाला (कैमिकल लैबोरेटरी) कहते हैं। यह नीचे देखिए, धातु और खनिज-विभाग है। इसमें धातु और खनिजशास्त्र पढ़ाया जाता है। ये सब जो आप चर्खियाँ और मशीनें देखते हैं ये तो, खानोंमें किस प्रकार काम होता है, उसे दिखानेके ढाँचे हैं। वेगसे चलिए, नाक फटी जाती होगी। यहाँ लड़के अनेक रसायनोंकी परीक्षा कर रहे हैं। सचमुच बड़ी बदबू है। यह लीजिए, यह हमारे यहाँका औद्योगिक रसायन-विभाग है। यहाँ तेल, साबुन, फुलेल, रोशनाई, पौलिश, क्रीम आदि नित्य व्यवहारकी वस्तुएँ बनाना सिखाया भी जाता है और उन्हें तैयार भी किया जाता है। आप स्वयं देख लीजिए, साबुन किस तरह बनता है। आपको जो वस्तु अच्छी लगे ले लीजिए। आगे चलिए। ये देखिए कैसे सुन्दर खिलौने हैं। ऊपर आपको भूगर्भ-प्रयोगशाला मिलेगी। न जाने कहाँ-कहाँसे कङ्कड़, पत्थर, कौड़ी, घोंघे बटोर लाए हैं और उनकी परीक्षा किया करते हैं।

क्या थक गए ? अभी तो तिहाई भी नहीं पहुँचे हैं।

धनुषाकार सड़कोंके किनारे कितने मनोहर भवन दिखाई पड़ रहे हैं। यह पासमें ही गायकवाड़ पुस्तकालय है, कितना विशाल भवन है। आपने इतना बड़ा पुस्तकालय किसी विश्वविद्यालयमें नहीं देखा होगा। इसकी चित्रशाला देखिए। कितने अनोखे, सुन्दर और पुराने चित्र इकट्ठे किए हैं। एक-से-एक नये हैं।

कितने कायदेसे पुस्तकें लगी हैं, आलमारियाँ रक्खी हैं। कुछ ठिकाना है पुस्तकोंका ! फिर भी अभी पुस्तकें कम हैं। अभी और पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आप सब लोगोंका सहयोग होगा तो पुस्तकें बढ़ जायँगी। इस भवनके दक्षिणमें सड़कके उस पार सेंट्रल आफिस है जिसमें प्रोवाइसचान्सलरका कार्यालय, रजिस्ट्रारका कार्यालय, इम्पीरियल बैंक आदि हैं।

यह सामने कृषि-अनुसन्धान-विद्यालय है। इसमें कृषिपर खोज होती है। देखिए कितनी बड़ी ईख उगाई है। और यह टमाटर देखिए, कितना बड़ा है। हमारे देशमें अभी ऐसे लोगोंकी बड़ी आवश्यकता है जो किसानोंको जाकर ऐसी सम्मति दें कि जिससे उनके खेतमें भी भारी उपज हो।

आप जो घरड़-घरड़ स्वर सुन रहे हैं वह सामनेके भवनसे आ रहा है। वही भारतका अद्वितीय विद्यालय है। यही यहाँका प्रसिद्ध इञ्जीनियरिङ्ग कौलेज् है।

यहाँ मशीनोंका और बिजलीका काम सिखाया जाता है, साथ ही लड़की और लोहेका काम भी सिखाया जाता है। ये सब लड़के, जिन्हें आप हथौड़ा चलाते, रन्दा करते और मशीन चलाते देखते हैं, सब भारत भरके भले घरोंके लड़के हैं जो यहाँ इञ्जीनियरिङ्ग कौलेज्में शिक्षा पा रहे हैं।

वह सामने जो ऊँचेपर अञ्जन चल रहा है उसीसे सारे विश्वविद्यालयमें बिजलीका प्रकाश पहुँचता है। इधर देखिए, सब बिजलीके पङ्खे और कल-पुर्जे यहींके बने हुए हैं और ये लोहेकी जालियाँ भी यहींकी ढली हैं। इसका रामपुर हाल सबसे बड़ा है। यह विद्यालय यहाँकी नाक समझिए।

उधर सामने आप देखते हैं, वह शिल्प-विद्यालय (कौलेज् औफ़ टेकनोलोजी) है वहाँ काँचका काम सिखाया जाता है। गिलास, कलमदान, फूलदान, इत्रदान, तश्तरियाँ और चूड़ियाँ आदि सभी वस्तुएँ यहाँ बनती हैं। आगे जो भवन आप देखते हैं वह हिन्दू यूनिवर्सिटीका छापाघर है। इधर पीछे गोशाला और दुग्धशाला है। इसमें बड़े परिमाणमें खेती होती है। यहाँकी गाजरें, टमाटर, सेंगरे और गन्ने अपनी मोटाई और लम्बाईमें कई प्रदर्शनियोंमें पुरस्कार पा चुके हैं।

अब लौट चलिए। देर हो चली है, पीछेकी सड़कसे चलिए। यह छात्रावासोंकी सड़क है। इधर सब छात्रावास ही हैं।

इधर बाईं ओर तो यह पुराने स्नातकोंकाभवन देख रहे हैं, उधर दाईं ओर प्रसिद्ध विश्वनाथजीका विशाल मन्दिर बन रहा है। इसके चारों ओर बीस फुट चौड़ी नहर है। गर्मीमें जब इसमें जल भर दिया जाता है तब इसकी बहार देखिए। यह तो विश्वविद्यालयका हृदय है। शरीरके अनुरूप ही उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। इसीलिये विश्वविद्यालयके बीच हीमें इसकी स्थापना भी हो रही है। यह मन्दिर भारतकी हिन्दू जातिका केन्द्रस्थान होगा। उसे उतना ही बड़ा, उतना ही विशाल होना चाहिए जितनी बड़ी हिन्दू जाति है। जब यहाँके विशाल घंटे प्रातःसायं यहाँकी भूमिमें गूँजेंगे तभी तो विद्यार्थियोंमें धर्मकी भावना जागरित होगी और हिन्दू-विश्वविद्या-

लयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण होगा। राजा बलदेवदास बिड़ला और उनके सुयोग्य पुत्रोंने मन्दिर पूर्ण करनेका बीड़ा उठाया है। इसका कलश २९६ फीट ऊँचा होगा। कुतुबमीनारसे भी ऊँचा।

चलिए, सन्ध्या हो चली है। ये आगे ब्रोचा और बिड़ला छात्रावास हैं। बिड़ला परिवारने विश्वविद्यालयको अबतक सबसे अधिक तीस लाख रुपया दिया है। इधर बाईं ओर जो एक भवन दिखाई पड़ रहा है, यह शिवाजी-भवन कहलाता है और इसमें व्यायाम-विद्यालय है, प्रातःसायं विद्यार्थी व्यायाम करते हैं।

इधर आगे क्रिकेट, हाकी और फुटबाल खेलनेके मैदान हैं। उसके आगे जालीसे घिरे हुए टेनिस खेलनेके मैदान बने हैं।

आगे बाईं ओर जो रुइया छात्रावास है इसमें आयुर्वैदिक और संस्कृत विद्यालयके छात्र रहते हैं। इसी भवनमें ऊपर सङ्गीत-विद्यालय है जहाँ मुफ्तमें सङ्गीत सिखाया जाता है।

छात्रावासोंके पीछे अध्यापकोंके निवासगृह हैं, डाकखाना है, क्लब, महिलामोदशाला और बच्चोंका स्कूल है, वहाँ जाकर क्या कीजिएगा।

यह आगे दाईं ओर लक्ष्मणदास अतिथि-भवन और कोचीन-अतिथिशाला हैं। बाईं ओर इन्दौर-अतिथिभवन है, रुकिए, यही मालवीयजीका बँगला है। इधर बाएँ हाथकी ओरवाले प्रकोष्ठमें मालवीयजीने अन्तिम श्वास ली थी। देखिए यही चित्र मालवीयजीका है। सिरपर सफेद साफा, गलेमें दुपट्टा, चन्दनका टीका माथेपर और यह अमर मुसकान—यही मालवीयजी हैं। चित्रकारने कमाल किया है। यह क्या—ये रुपए कैसे? अच्छा विश्वविद्यालयके लिये दे रहे हैं। तो मुझे क्यों देते हैं, कुलपति महोदयको दे दीजिएगा!

अच्छा तो अब तो प्रदक्षिणा भी हो चुकी और दक्षिणा भी दी जा चुकी, अब मुझे छुट्टी हो, प्रणाम।

नाटकीय आत्म-परिचय

यह भी एक नये प्रकारकी साहित्य-पद्धति है जिसमें कोई व्यक्ति स्वयं अपने सम्बन्धमें कुछ विचित्र बातें अत्यंत नाटकीय ढंगसे प्रस्तुत करता है जिसमें कुतूहल, जिज्ञासा, विवेचन, वर्णन, आत्म-निवेदन सबका समन्वय होता है। भूषण कविका यह नाटकीय 'आत्म-परिचय' लीजिए—

नाटकीय आत्म-परिचय

जी आप मुझे पूछ रहे हैं ? मेरा नाम है—'भूषण'। शिवाबावनी और छत्रसाल-दशककी रचना मैंने ही की है। आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ? क्या इसीलिये कि जिस युगमें विलासी राजाओंके आश्रित कविगण श्रृंगारकी रचनाओंमें नायकाओंके हाव-भाव उतार रहे थे उन्हीं दिनों मैंने हिंदू-कुल-गौरव वीर शिवाजी और बुंदेले वीर छत्रसालकी प्रसंशामें रचना की। यह न समझिए कि मैं श्रृंगारमें रचना कर नहीं सकता था। मेरे भाई चिंतामणि और मतिरामने वह कमी पूरी कर दी थी। उन्होंने श्रृंगारकी क्या कम रचनाएँ की हैं ? हाँ,उनका कोई प्रचारक नहीं मिला इसलिये उनका उतना आदर नहीं हो पाया जितना विहारीका, देवका या घनानंदका हुआ।

आप मेरा वास्तविक नाम, घरका नाम जानना चाहते होंगे। पर आप उसे जानकर करेंगे क्या ? 'भूषण' क्या कुछ बुरा नाम है। चित्रकूट-के सोलंकी राजा रुद्रने बड़े आदरसे यह 'कवि भूषण'की मुझे उपाधि दी थी इसलिए मैंने अपना घरका नाम छोड़कर इसे ही ग्रहण कर लिया। आप यह न समझिए कि मैं किसी एक ही राजाके पास रहा, न जाने कितने राजाओंने मेरे काव्यकी रचना की, मुझे पुरस्कार दिए। पर मेरे मनके अनुकूल यदि कोई वास्तवमें राजा होनेके योग्य व्यक्ति मिला तो वह 'महाराज शिवाजी थे या पन्नाके महाराज छत्रसाल।'

वे लोग वीर ही नहीं थे वरन् सत्य अर्थमें सहृदय, उदार तथा वास्तवमें गुणज्ञ थे। जिस दिन मैं पन्नासे चलने लगा उस दिन जब महाराज छत्रसालने कहारोंके साथ अपना भी कंधा मेरी पालकीमें लगा दिया तो मुझे रोमाञ्च हो आया। अब ऐसे गुणज्ञ लोग संसारमें कहाँ मिलते हैं ? उस समय सहसा मेरे मुखसे निकल पड़ा—

शिवाको बखानौं कि बखानौं छत्रसालको।

आप पूछते हैं कि 'शिवाजी और छत्रसाल इन दोनोंमें कौन बड़ा है ?' यह पूछना तो वैसा ही हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशमें कौन बड़ा है ? महापुरुषोंकी क्या कोई कोटियाँ होती हैं ? शिवाजी क्या कम गुणज्ञ थे जिन्होंने मेरे एक-एक छन्दपर लाख-लाख रुपए दिए। पर यह न समझिए कि मैंने रुपएके लोभमें कविता रची या मैंने उनकी चाटुकारी की। क्या आप नहीं मानते हैं कि उस युगमें हिंदू जातिकी रक्षा उन्होंने ही की ? यदि वे न होते तो हिंदू धर्मका नाम-लेवा पानी-देवा कोई न बचता। इसीलिये तो मैंने कहा है—

'शिवाजी न होते तो सुनति होत सबकी।'

शिवाबावनी और छत्रसाल-दशकके अतिरिक्त शिवराज-भूषण भी मैंने अलंकार-ग्रन्थके रूपमें लिखा है। इनके अतिरिक्त भूषण-उल्लास, दूषण-उल्लास और भूषण-हजारा भी मैंने रचा है। पर ग्रन्थके रूपमें शिवराज-भूषण ही मेरा प्रधान ग्रन्थ है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह ग्रन्थ बहुत लोगोंको अच्छा नहीं लगेगा। मेरे कुछ मित्र कहते ही हैं कि इसमें लक्षणोंकी भाषा स्पष्ट नहीं है, उदाहरण भी ठीक नहीं है, व्याकरणके नियमोंका भी पालन नहीं किया गया है, वाक्य-रचना भी अव्यवस्थित है। पर फिर भी आपको मानना पड़ेगा कि मेरी कविता कुछ कम सशक्त और प्रभावशाली नहीं है।

भावाञ्जलि

ऊपर जिन अनेक रूप-शैलियोंका वर्णन किया गया है उनके

अतिरिक्त और भी न जाने कितनी रूप-शैलियाँ हैं और हो सकती हैं। इधर थोड़े दिनोंसे भारतमें और भारतके बाहर एक नई भावाञ्जलि-शैली चली है जिसमें कोई व्यक्ति किसी अपने श्रद्धेय व्यक्ति, इष्टदेव या गुरुके प्रति भावात्मक श्रद्धा अभिव्यक्त करनेके लिये, उस श्रद्धेय व्यक्तिसे अपना भावात्मक सम्बन्ध व्यक्त करते हुए तन्मयतापूर्ण व्यक्तिगत शैलीमें लेख लिखता है। इस शैलीका यह उदाहरण लीजिए—

मेरे मालवीयजी

समस्त जाति जिसे अपनानेको व्याकुल हो, समग्र देश जिससे ममत्व जोड़नेका हठ करता हो, समूचा विश्व जिसे परम आत्मीय माननेपर अड़ा बैठा हो, उसे 'मेरे' के परम संकुचित, नितान्त क्षुद्र और अत्यन्त स्वार्थ-पूर्ण घेरेमें बाँध छोड़ना कितनी बड़ी ढिठाई है, कितना बड़ा दुःसाहस है, कितनी बड़ी मूर्खता है, यह सभी समझ सकते हैं। किन्तु फिर भी इस ढिठाई, दुःसाहस और मूर्खताके लिये न मुझे संकोच है, न भय है, न पश्चात्ताप ही है। परम संकटमें पड़ा हुआ निराश्रित आर्त्त, जब उस अणु-परमाणुमें व्याप्त परमाप्त तत्त्वको 'मेरे भगवान्' कहकर उसके परमको 'मेरे' की सूक्ष्मतम सीमामें कस डालनेका दुराग्रह करता है, उस समय उसके छोटेसे 'मेरे' में घिरा हुआ भगवान् सहसा वामनसे त्रिविक्रम बनने लगता है और सम्पूर्ण सृष्टिका ममत्व उस एकाकीके 'मेरे' में इस प्रकार गूँजने लगता है मानो उसको 'मेरे' सहसा सबके 'मेरे' हो गए हों। उसी प्रकार यदि मैं भी उन पुण्य-श्लोक ब्रह्मर्षिको 'मेरे' कहकर अपना बनानेका आग्रह करूँ तो मुझे दोष नहीं देना चाहिए।

अपने जीवनके अत्यन्त संक्षिप्त अतीतके उस पुण्य दिवसको मैं भुलाए नहीं भूल सकता जब सन् १९२० के किसी माङ्गल्य मासमें

मुजफ्फरनगर जनपद में उत्तर-प्रदेशकी राष्ट्रीय सभाके अधिवेशनमें पहली बार मैंने उन ब्रह्मवर्चस-संयुक्त तेजस्वी महापुरुषके मङ्गलमय दर्शन किए थे और उनकी अत्यन्त मधुराविणी वाणीपर अपनी अबोध बाल्यावस्थामें संचित सम्पूर्ण श्रद्धा-विभूति उनके चरणोंमें चुपचाप अर्पित कर दी थी।

उसका परिणाम यह हुआ कि शनैः शनैः एक रहस्यमयी संकल्प-धारा मेरे मानसमें निश्चित पथ बनाती हुई इतने प्रबल वेगसे बहने लगी कि पूज्य मालवीयजी मेरे जीवनके, मेरी साधनाके, मेरे विश्वासके और मेरी प्रवृत्तिके एक मात्र आलोक-दीप बन गए। इस दिव्य आलोकसे मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैं उनका प्रशंसक ही नहीं, श्रद्धालु भी बन गया, श्रद्धालु ही नहीं पुजारी भी बन गया, पुजारी ही नहीं भक्त भी बन गया।

हाई स्कूलकी परीक्षा पार कर चुकनेपर जब सभी लोग मुझे मेरठ कालेजमें नाम लिखवानेके लिये उत्साहित कर रहे थे, उस समय माताजीके स्नेह, पिताजीके वात्सल्य, भाई-बहनोंकी ममता, मित्रोंके सौहार्द और घरकी समीपता सबपर जो विशाल महत्त्वाकांक्षा अधिकार किए बैठी थी, वह थी काशी जानेकी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें पढ़नेकी, विश्वविद्यालयके कुलपतिके सम्पर्कमें आनेकी। महत्त्वाकांक्षा सफल होनेवाली थी क्योंकि पूज्य पिताजीकी कृपासे मैं विश्वविद्यालय-में प्रविष्ट हो गया। विश्वविद्यालयके साथ मेरा पैतृक सम्बन्ध भी है क्योंकि उसकी स्थापनाके लिये जो महायज्ञ हुआ था उसके होताओंमें मेरे पिताजी भी थे और फिर काशी मेरी जन्मभूमि, जन्मपुरी भी थी, वह भी कम आकर्षण नहीं था।

हिन्दू विश्वविद्यालयमें पहुँचनेपर मैं किस ऐतिहासिक क्रमसे उनके समीप, समीपतर और समीपतम पहुँचा यह मैं स्वयं नहीं बता सकता, किन्तु पहुँचकर उनका वात्सल्य-भाजन और विश्वासपात्र बन

गया यह मैं कह सकता हूँ और बड़े गर्वसे कह सकता हूँ। कल्पनाके नेत्रोंसे मैं देख रहा हूँ कि वे व्यासपीठपर बैठे हैं, पल्थी जमाए। चारों ओर अध्यापक, छात्र और छात्राओंका विशाल समूह एक दृष्टि होकर उनके दर्शन कर रहा है, एकाग्र ह कर उन्हें सुन रहा है। और मैं कल्पनाके कानोंसे अब भी सुन रहा हूँ—'विदुलाका पुत्र युद्धसे लौट कर चला आया। विदुलाने पूछा—क्या विजय लेकर लौटे हो ? उसने कहा—नहीं, मैं युद्ध करना नहीं चाहता। मैं व्यर्थ इतने प्राणियोंका संहार नहीं करना चाहता। राज्य जाता है तो जाय। विदुला कड़ककर गरज उठी—कायर ! मेरी कोखसे, क्षत्रियाकी कोखसे जन्म लेकर तू इस प्रकारकी, भगोड़ेपनकी, निर्वीर्यताकी बात करता है ? तुझे धिक्कार है। यदि तू क्षत्रियका पुत्र है तो जा, तत्काल जा, युद्ध-क्षेत्रमें लड़ते-लड़ते प्राण भी दे दे तो श्रेय है—

क्षणं प्रज्वलितं श्रेयः न च धूमायितं चिरम्।

[क्षण भरमें भभककर जल उठना अच्छा है किन्तु बहुत दिनों-तक धुँधुआते हुए धीरे-धीरे सुलगना अच्छा नहीं।] चला गया विदुलाका पुत्र और लौटा विजय लेकर।'

मैं फिर सुन रहा हूँ उनकी वाणी। वे कहते जा रहे हैं महाभारत-की कथा। अर्जुनका प्रसङ्ग आते ही वे सहसा अपना मधुर स्वर ऊँचा उठाते हुए कहने लगते हैं—विद्यार्थियो और विद्यार्थिनियो ! अर्जुन की दो प्रतिज्ञाएँ थीं—न मैं दीनताके साथ किसीके आगे गिड़-गिड़ाऊँगा और न पीठ दिखाकर भागूँगा। अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्। आप लोग भी ऐसे ही बनो। कभी किसीके आगे अपना सिर न झुकने दो और जो सामने आवे उसे ललकार दो, पीठ दिखाकर भागो मत।' उसी धारामें उपसंहार करते हुए वे कह रहे हैं—

सत्येन ब्रह्मचर्येण, व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन, सम्मानार्हः सदा भव॥

[सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्यागसे सदा सम्मान पाओ ।]

मैं फिर देख रहा हूँ कि सन्ध्या समय बिड़ला छात्रावासमें वे घूम रहे हैं । उनके साथ हैं आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुवजी और उनके पीछे-पीछे चले जा रहे हैं श्री लक्ष्मणदास एञ्जिनियर । एक छात्र भीतर कोठरीमें बैठा पढ़ रहा है । वह इन्हें देखकर सकपकाकर उठ खड़ा होता है और ये अपनी लोकविश्रुत स्वाभाविक मुसकानके साथ कहते हैं—'अरे इतना पढ़ते हो ? बुद्धि तो बढ़नी ही चाहिए पर शरीर भी तो तगड़ा होना चाहिए । क्या करोगे बहुत बुद्धि लेकर, जब कोई आकर तुम्हें उठाकर दे मारेगा ? देखो एक दोहा कण्ठस्थ कर लो—

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम ।
मन लगाइ विद्या पढ़ो, पूरे हों सब काम ॥

कहो दोहेको ।'

वह विद्यार्थी भी दोहा कहने लगता है । आचार्य ध्रुवजी अपनी छड़ी दोनों हाथोंसे पकड़े हुए, उसकी गोल मूठ कन्धेपर जमाए देख रहे हैं हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपतिकी यह शिक्षा-प्रणाली ।

विश्वविद्यालयके दीक्षा-समारोहके अवसरपर उनके उपदेशोंकी ध्वनि आजतक मैं स्पष्ट सुन रहा हूँ—

'सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमद । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव ।' और दीक्षान्त भाषणमें वे कहते जा रहे हैं—'हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना इसलिये की गई है कि यहाँके छात्र विद्या भी प्राप्त करें और साथ ही अपने धर्म और अपने देशके भी सच्चे सेवक बनें । यह विश्वविद्यालय दीनोंके लिये है । यहाँके द्वार सबके लिये खुले हुए हैं । मैं चाहता हूँ कि यहाँ आकर कोई लौट कर न जाय । सच्चरित्रता हमारे विश्वविद्यालयका मूल मन्त्र है और यही

हमारी शोभा है। केवल डिग्री देनेके लिये तो बहुतसे विश्वविद्यालय देशमें बने हुए हैं। हम प्रत्येक छात्रको शुद्ध, सात्त्विक, तेजस्वी तथा वीर पुरुष और प्रत्येक कन्याको वीर माता बनाना चाहते हैं जो ईश्वरमें विश्वास करे, प्रत्येक प्राणीका आदर करे, वीरताके साथ अन्यायका विरोध करे और आत्मसम्मानके साथ, सचाईके साथ जीविका चलाता हुआ अपना, अपने समाजका और अपने देशका कल्याण कर सके।'

आज वे दिन नहीं रहे और वे मालवीयजी भी नहीं रहे—

'नैननमें जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें।' किन्तु उनके न रहनेपर भी उनके उपदेश चिरजीवी हैं, उनके आदर्श अमर हैं, उनकी रचनाएँ सुचिर प्रतिष्ठित हैं। भावी जातिमें दृढ-संकल्पता, अध्यवसाय, लोक-कल्याण और आत्मत्यागकी सजीव भावना भरनेके लिये उनका हिन्दू विश्वविद्यालय शाश्वत सन्देश लेकर उनकी अमर कीर्तिका गुणगान कर रहा है। किन्तु फिर भी मालवीयजीकी स्मृति हटती नहीं है, उनकी अनुपस्थिति निरन्तर खटकती जा रही है क्योंकि जिस आत्मभावसे विश्वविद्यालयके प्रत्येक छात्रके हृदयमें, विश्वविद्यालयकी ईंट-ईंटमें, वृक्ष-वृक्षमें, कण-कणमें वे व्याप्त थे, वह आत्म-भाव कहीं देखनेको नहीं मिल रहा है। यों तो राम गए, कृष्ण भी गए और संसार चला ही जा रहा है, हँसता खेलता, रोता-गाता, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह उसी प्रकार चल रहा है जिस प्रकार चलना चाहिए था। इसका उत्तर शुद्ध नकारात्मक है और इसीलिये बार-बार स्रष्टाकी स्मृति प्रबल होकर मानसको विक्षुब्ध किए डाल रही है, मथे डाल रही है।

पुण्यश्लोक मालवीयजीके गुणानुकीर्त्तनके लिये, उनकी सर्वतो-मुखी क्रियाओंकी व्याख्याके लिये, उनकी व्यक्तिगत विशेषताओंकी सरणि बनानेके लिये, जिस योग्यताकी अपेक्षा होनी चाहिए उसके सर्वथा अभावमें वाणी सहसा मूक हो जाती है और मौनका सीधा-सा, सरल

सा, आधार लेकर चुप रह जानेके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं रह जाता। वे धर्मनिष्ठ थे—आचारमें भी, विचारमें भी। यदि व्यासजीके अनुसार लोककल्याणको ही हम धर्मकी कसौटी मान लें तो मालवीयजीकी रेखा उसपर सबसे अधिक प्रदीप्त दिखाई देगी। शिक्षाके क्षेत्रमें जिन रूसो, पैस्तालौज़ी, फ्रोबेल, मौन्तेसोरी आदि शिक्षा-शास्त्रियोंकी नामावली जपकर संसार फूला नहीं समाता वे सब एकत्र होकर भी मालवीयजी-तक नहीं पहुँच सकते क्योंकि इन सबने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए उन सबका लक्ष्य सामाजिक दृष्टिसे मनुष्य-के बच्चेको जीने-योग्य मनुष्य बना देना भर रहा। किन्तु मालवीयजीकी शिक्षाका उद्देश्य मनुष्यके बच्चेको केवल मनुष्य ही नहीं, ऐसा देवता बना देना था जिसकी संसार पूजा करे, जिससे शक्ति, उत्साह और प्रेरणाका वरदान माँगे, जिसके आशीर्वादसे जीवनके सम्पूर्ण दैवी तत्त्व प्राप्त कर सके। किस शिक्षाशास्त्रीने इतनी उदात्त कल्पना की है? केवल मनोविज्ञानका एक झूठा ढोंग खड़ा करके अव्यावहारिक सिद्धान्तोंके इन्द्र-जालमें लोकवृत्तिको फँसानेका एक मोहक जाल-भर विदेशी शिक्षा-शास्त्रियोंने फैलाया है पर वास्तवमें उसमें तत्त्व कुछ नहीं, उसका परिणाम कुछ नहीं

राजनीतिक क्षेत्रमें उन्होंने जिस अध्यवसाय, जिस साहस और जिस आत्मत्यागका प्रदर्शन किया वह उनका अलौकिक कार्य है। शब्दोंकी शक्ति उसतक पहुँचनेमें भी अशक्त हो रही है। किन्तु सबसे अधिक प्रभाव-शाली उनका व्यक्तित्व था, वे स्वयं थे।

प्रत्येक व्यक्तिको सदा यह अधिकार था कि वह उनसे जब चाहे जाकर मिले, चाहे जितनी देरतक उनसे बातचीत करे और चाहे जिस कामके लिये उनसे पत्र लिखवा ले। और अतुलित धैर्यके साथ वे सबकी बातें एकाग्र होकर सुनते, दुखीके दुःखमें स्वयं भी रोने लगते और जिस प्रकार भी हो सकता उसे निराश न लौटने देते। न जाने कितनी

बार ऐसा हुआ है कि केवल सहायता और लोक-कल्याणके लिये उन्होंने लिखित नियमोंकी भी अवहेलना की।

मनुष्यत्व उनका नियम था और देवत्व उनका गुण। कभी सुना करते थे—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमादिभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

[देवता लोग यह गीत गाया करते हैं कि वे देवता धन्य हैं जो स्वर्ग और अपवर्गमें रहनेवाले देवता होकर भी भारतवर्षमें मनुष्य होकर जन्म लेते हैं।]

मालवीयजी भी ऐसे ही कोई देवता थे जो हम लोगोंके महत्पुण्य-के कारण यहाँ आए और हमें शक्ति देकर, साधन देकर अन्तर्धान हो गए और अन्तर्धान होनेसे पूर्व सम्पूर्ण देश और समाजको जो दिव्य संदेश और आदेश दे गए वही उनकी स्मृतिको चिरस्थायी करनेके लिये पर्याप्त है।

यदि मैं उनसे अपने निकटतम अम्पर्कको थोड़ी देरके लिये भूल भी जाऊँ तब भी उनके देवत्वका ध्यान करके मैं उनके भक्तकी तन्मयतासे साहस, शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करनेके लिये ही उन्हें पुकार सकता हूँ—'मेरे मालवीयजी'। अपने हृदयमें बैठी हुई व्याकुल श्रद्धाको लोकके समक्ष व्यक्त करनेके लिये ही मैंने पुण्य-श्लोक मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठपर उनका जीवनचरित लिखा और प्रकाशित किया था और आज उनके प्रथम वार्षिक श्रद्धाके अवसरपर अपनी लेखनी पवित्र करनेके लिये, अपने आत्माको तृप्त और तुष्ट करनेके लिये, अपनी भावनाओंका परिष्कार करनेके लिये लोकमंगलके सात्त्विक सङ्कल्पसे यह ग्रन्थ पूर्ण करके उपस्थित कर रहा हूँ।

उपसंहार

ऊपर जिन अनेक रूप-शैलियोंका विवरण दिया गया है उनके

अतिरिक्त और भी न जाने कितनी रूपशैलियोंका प्रयोग हो रहा है और होता जायगा। जिस साहित्यमें जितनी अधिक रूप-शैलियोंका प्रयोग होता है या होगा वह साहित्य उतना ही अधिक प्रौढ, व्यापक और समृद्ध समझा जायगा। नागरीके लेखक अभी इस ओर सजग नहीं हो पाए हैं और जबतक वे रूप-शैलीमें विविधता तथा नवीनता नहीं लावेंगे तबतक न तो शैली व्यवस्थित होगी, न साहित्य ही प्रौढ हो पावेगा।

१०

भाव-शैलियाँ

इस ग्रन्थके प्रारम्भमें द्वितीय अध्यायके अन्तर्गत यह बताया जा चुका है कि लेखक किसी विशेष रूप या भाषामें ही रचना नहीं करना चाहता, वह उसे किसी ऐसे भावके साँचेमें भी ढालना चाहता है जिसका प्रभाव पाठकके मनपर पड़े और ठीक वैसा ही पड़े जैसा लेखक चाहता है, अर्थात् वह स्वयं अपनी प्रकृति अथवा विषयकी प्रकृतिके अनुसार अपने पाठकको उस प्रकृतिमें ढाल लेना चाहता है। इस दृष्टिसे उस प्रसङ्गमें मुख्य-मुख्य निम्नाङ्कित बारह भाव-शैलियोंका परिचय दिया गया है—

१. विनोदात्मक, २. आत्मचिन्तनात्मक, ३. आत्मविश्लेषणात्मक, ४. विचारात्मक, ५. प्रमाण-बहुला, ६. व्यंग्यात्मक, ७. व्यासात्मक, ८. आवेगात्मक, ९. भावात्मक, १० उपालम्भात्मक, ११. लोमहर्षक, १२. क्रमिक उत्तेजक।

किन्तु इन उपर्यङ्कित भाव-शैलियोंके अतिरिक्त और भी बहुत भाव-शैलियाँ हैं जैसे—सूचनात्मक, रचनात्मक, समर्थनात्मक, आदेशात्मक, सम्मत्यात्मक, उपदेशात्मक, तर्जनात्मक, अधिकारात्मक, प्रार्थनात्मक, व्यग्रतासूचक, उन्मादपूर्ण, हास्यपूर्ण, व्यंग्य-

उपन्यासों, नाटकों और कथाओंमें इस प्रकारकी भाव-शैलियोंका विभिन्न स्थलोंपर अत्यन्त उचित रूपसे प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि ये भाव-शैलियाँ ही वास्तवमें किसी रचनाको सरसता प्रदान करनेके लिये अत्यन्त अपेक्षित होती हैं। केवल निबन्ध ही एक-मात्र ऐसा रूप है जिसमें आदिसे अन्ततक व्यंग्य, विनोद, उपालम्भ, हास्य, आक्रोश आदिमेंसे किसी एक भाव-शैलीका प्रयोग किया जा सकता है और उस भाव-शैलीमें आदिसे लेकर अंततक उसका निर्वाह किया जाता है। कुछ कहानियाँ (छोटी कहानियाँ) भी किसी एक भाव-शैलीके आधारपर आदिसे अंततक लिखी जा सकती हैं। अतः रचनाके क्षेत्रमें रूप-शैली या भाषा-शैलीकी अपेक्षा भाव-शैलीका भी कुछ कम महत्त्व नहीं है।

पीछे पृष्ठ १४३ पर आत्मविश्लेषणकी भाव-शैलीमें और प्रति-लोम कथा-कौशल (रिवर्स प्लौट टेकनीक) में भीष्मकी कथा दी गई है, जिसमें भीष्म स्वयं चिन्तन करते हैं और अपने चरित्रका विश्लेषण करते हैं। यह वास्तवमें आत्मचिन्तन और आत्म-विश्लेषण दोनोंका समन्वित रूप है। इस प्रकारकी शैलीमें कोई व्यक्ति स्वयं किसी विषयपर चिंतन करता है और आत्मविश्लेषण भी करता चलता है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि भाव-शैलीका तात्पर्य क्या है और किसी रचनामें उसका समावेश किस प्रकार किया जा सकता है।

११

कौशल

पीछे द्वितीय अध्यायमें कौशलके सम्बन्धमें भली प्रकार समझाया जा चुका है कि जब कोई लेखक किसी रचनाको विशेषतः किसी प्रबन्ध काव्य (कथा, कहानी, नाटक, उपन्यास, महाकाव्य, खण्डकाव्य) कथाके क्रममें, उसके रूप-विन्यासमें, कथनके ढङ्गमें, कथावस्तुमें, देशकाल-योजनामें, पात्र-योजनामें और वर्णनमें कुछ विशेष चमत्कार लाकर उसे अधिक आकर्षक, सजीव, मनोहारी और प्रभावशील बना देता है तब उस योजनाको कौशल कहते हैं। उसी अध्यायमें बताया जा चुका है कि यह कौशल छह प्रकारसे आयोजित किया जाता है—

शीर्षक-कौशल, इतिवृत्त-पुरुष-कौशल, रूप-कौशल, प्रबन्ध-कौशल या कथावस्तु-निर्वाह कौशल, पात्रयोजना-कौशल, लक्ष्य-कौशल और वर्णन-कौशल।

प्रतिलोम कथा-कौशल

इन सब प्रकारके कौशलोंका पूर्ण परिचय पीछे दिया जा चुका है। पीछे पृष्ठ १४३ पर 'भीष्म प्रतिज्ञा' वाला विवरण पढ़कर यह समझना सरल होगा कि किस प्रकार सीधी-सादी भीष्म प्रतिज्ञाके

कथाको लेखकने प्रतिलोम कथा-कौशलके द्वारा कथावस्तुको उलटा चलकर उसे सुन्दरतर बना दिया है।

सत्याभास कौशल

सत्याभास-कौशलके साथ लिखी हुई यह कहानी पढ़िए जिसमें कुछ वास्तविक पुरुषों और घटनाओंका विवरण जोड़ देनेसे कहानी ऐसी बना दी गई है मानो सत्य हो—

दानवोंके बीच

सन् १९२६ की बात है। हम लोग काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें बी० ए० के प्रथम वर्षमें पढ़ रहे थे—पढ़ क्या आनन्द ले रहे थे, क्योंकि कौलेजमें पहुँचकर भी प्रथम और तृतीय वर्षमें पुस्तकोंसे वे ही छात्र उलझे रहते हैं जो पिछले जन्ममें शीतलाजीके वाहन रहे हों। किन्तु हम लोगोंमेंसे किसीको भी इतना सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इसी लिये जब हमने सुना कि इस बार आसाममें गौहाटीमें कांग्रेस हो रही तो हम लोगों की बाछें खिल गईं। उपस्थित करनेसे पहले ही प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। हमारे कुलपति पूज्य मालवीयजी भी जा रहे थे। हम लोग भी साथ लग गए। हम लोग स्वयंसेवक होकर जा रहे थे। नखशिख-वर्णनके क्रमानुसार सबके पास एक-एक जोड़ा जूता, एक-एक मटियाले रँगका जाँघियाँ, एक-एक मटियाले रंगकी अधबहियाँ कमीज, एक-एक गाँधी टोपी, एक-एक लाठी, एक एक कम्बल और एक-एक झोला था जिसमें धोती, कुर्ते और अँगोछेके अतिरिक्त गीताकी पोथीसे लेकर सूई, डोरा, बटन और दियासलाईतक गृहस्थीकी सभी सामग्री विद्यमान थी।

बड़ी धूमधामसे हम लोग गौहाटी पहुँचे। कांग्रेस हुई। श्री श्रीनिवास आयंगरजीका ओज और ललकारसे ठसाठस भरा हुआ अध्यक्ष-भाषण सुना। कांग्रेसके तीसरे दिन शुद्ध निशीथकी निशाचरी वेलामें

हम लोग एक डेरेमें जुटे और सोचने लगे इधर आसामतक आए ही हैं, चलो ब्रह्मा भी घूम लें। प्रस्ताव करने भरकी देर थी, प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। हम लोगोंने निश्चय कर लिया कि रंगूनसे प्रोमतक रेलगाड़ीमें और वहाँसे इरावती नदीके किनारे-किनारे चलकर मिंबू और पकोखूँ होते हुए मांडले पहुँचेंगे और वहाँ उस पुण्य कारावास-के दर्शन करेंगे जिसमें वंदी रहकर लोकमान्य तिलकने गीता-रहस्यकी रचना की थी।

अगले दिन पूज्य मालवीयजीको बिना सूचना दिए ही हम लोग अँधेरे-मुँह खिसक दिए। वहाँसे कलकत्ते, कलकत्तेसे रंगून, रंगूनसे प्रोम। उस समय प्रोमतक ही रेलगाड़ी जाती थी। तड़के छह बजे पहुँचकर झौवा भर केले लिए, डाभका पानी पिया और इरावतीके तटका मार्ग पकड़ा। इरावतीके उस पार, अराकान योमाकी पर्वतमाला थी और उसीसे लिपटी हुई दौड़ी हुई चली जा रही थी इरावती नदी।

वह जिधरसे आ रही थी, हम उधरको जा रहे थे।

मीलों चलनेपर हम पहुँचे अल्लोनुंगो। वहाँ बड़ा भारी लम्बा-चौड़ा गोदाम था। ब्रह्माकी सागवान लकड़ीके लाखों लट्ठे इधर-उधर बिखरे पड़े थे। बड़े-बड़े विशालकाय भीमदन्त महागज स्वयं बड़े-बड़े लट्ठे ला-लाकर डाल रहे थे। इतना बड़ा पशु छोटेसे मनुष्यकी तुच्छ सेवकाई कर रहा है। बड़ी ग्लानि हुई। किन्तु तत्काल ध्यान आया अपने देशका। इतना बड़ा देश—चालीस करोड़ सिरोंवाला, अस्सी करोड़ भुजाओंवाला देश—थोड़ेसे गोरे हाथोंकी कठपुतली बना डेढ़ सौ बरस कैसे नाचता रहा? हम बीसों उन गोदामके कार्यालयमें जा पहुँचे।

कार्यालय क्या था, नाचघर था। चित्रकारियोंसे सजे और खुदे हुए बर्मी टीकका दुखंडा सुन्दर भवन था और चिकना ऐसा कि मन-केसाथ-साथ मनवाला भी फिसल जाय। इस गोदामके स्वामी थे एक

सिक्ख सज्जन—सरदार ज्ञानसिंहजी। वे गुजराँवालाके रहनेवाले थे पर इधर तीन पीढ़ियोंसे इसी ब्रह्माके जंगलमें ही उनका परिवार जन्म लेता और पलता चला आया है किन्तु अभीतक कंघा, केश, कृपाण, कच्छा और कड़ा ये पाँचो कक्के उनसे नहीं छूट पाए थे। हमारे साथ था पिंडीलाल। उसने ही वार्त्ताका श्रीगणेश किया—

'नमस्ते सरदारजी।'

'नमस्तेजी! किस्थे घर वए जी?'

'पँजाबमें है जी, लहौरदे विच्च। गोहाटी कांग्रेस विच्च आए हुंदे, उद्दतै इद्ददा मुल्क वेक्खण वास्ते आया हाँ।'

'चंगाजी! आओ, इत्थे नूँ बैठो।'

हम लोग बैठ गए। सम्बोधनके अन्तिम अक्षरपर पंजाबी स्वराघातके साथ उन्होंने पुकारा—'धरमसिंघऽ! ल्हस्सी तो बणाला झट्ट।'

हम लोगोंने इस प्रकारके अपरिचित आतिथ्य-सत्कारकी मन ही मन सराहना भी की और उसका स्वागत भी किया। लखनवी लोकशीलके सभी सूत्र थोड़ी देरके लिये कीलित कर दिए गए, यहाँतक कि जब एक कुल्हड़के पश्चात् उन्होंने दूसरी बार भी कुल्हड़ भरे तो जीभ 'ना' कहनेको तैयार न हुई, हाथ भी कुल्हड़ पकड़े अड़े रहे और दुबारा भरे हुए कुल्हड़ अपने आप मुँहसे जा लगे। ओठसे लगे हुए उस कुल्हड़का अपमान करनेकी दुःशीलता हम कैसे कर सकते थे! पी गए। सरदारजी पञ्जाबी थे। खाना-खिलाना दोनों पंजाबवाले ही जानते हैं। इसलिये उन्होंने आँखों ही आँखोंमें ताड़ लिया कि कोसोंकी थकानके सूखे हुए ओठोंको तर करनेके लिये इतनी ल्हस्सी पर्याप्त नहीं होगी। उनका आग्रह बढ़ने लगा और वे तबतक कुल्हड़ भरते रहे जबतक मन नहीं भरा। इसके पश्चात् पंजाबकी, मालवीयजीकी, विश्वविद्यालयकी, कांग्रेसकी, गाँधीजीकी और न जाने किस-किसकी बातें हुईं। इसी बीच जब उन्हें सूचना दी गई कि हम लोग पैदल मॉडले जाने-

पर कटेबद्ध हैं तब तो वे एक हाथ कुर्सीके हत्थेपर पटककर, उछलकर, ठठाकर हँस पड़े। वह हँसी लगभग आधी घड़ीतक लहराती रही और अन्तमें वह इतनी प्रबल हो उठी कि हँसी खाँसीतक पहुँच गई। श्री-लीचीजीके हँसनेपर तो हमें क्रोध हुआ था किन्तु इनके हँसनेपर आश्चर्य हुआ। हल लोग मुँह बाकर उनकी ओर देखते रह गए—इसमें हँसनेकी क्या बात थी? हास और कासका वेग शान्त हो चुकनेपर उन्होंने इरावतीके तटवर्त्ती मार्गका कुछ-कुछ वैसा ही वर्णन करना प्रारम्भ किया जैसा श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीसे किया था।

सरदारजीने कड़ाही चढ़वा दी। गोभी-आलू-मटरकी घृतमयी रसेदार तरकारी, पालककी गरम पकौड़ियाँ, आलूकी चाट, हापड़के पापड़ और उसके साथ शुद्ध घीमें छनी हुई मटर-भरी पूरियोंने इतनी देरके लिये आगे चलने और पीछे हटनेके दो विशाल मरुस्थलोंके बीच मरूद्यानमें ला धरा। बारह बजेसे कुछ पहले ही भोजन हो गया और हम लोगोंने जमकर घण्टे भरकी पड़ी लगाई।

लगभग एक बजे हम लोग उठे तो देखा कि सरदारजी कहीं चले गए हैं। धरमसिंहने आकर पूछा कि 'तीसरे पहर आप लोग चाय पीयेंगे या लहस्सी?' इस प्रस्तावका निर्णय देनेके पूर्व हमें अपने आगे जाने या लौटनेका निर्णय कर देना आवश्यक था। अतः हमने उससे घड़ी भरकी अवधि माँगी और हम लोगोंका शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया। पिंडीलाल, तनेजा और मैं—हम तीन तो आगे बढ़नेपर तुले हुए थे किन्तु हमारे विरुद्ध लगभग छह गुने—सत्रह मत थे। मैंने सरस्वतीजी-का आवाहन किया तो आ पधारीं वे सरस्वतीजी, जो कभी मन्थराकी जीभपर बैठी थीं। मैंने अपने साथियोंके पुरुषत्वको ललकारते और धिक्कारते हुए गीतासे कर्मयोगके उद्धरण दे-देकर जब 'अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्त्तिकरमर्जुन' कहना प्रारम्भ किया तो क्षण भरमें उनके

भाव बदल गए और उन नेत्रोंमें मैं अर्जुनकी वह मूर्त्ति देखने लगा जब उसने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा होगा—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'

मेरी विजय हुई। धर्मसिंहको कह दिया गया कि हम लोग जा रहे हैं। धर्मसिंह बोला—'खाकर जाइए।' पर हम लोगोंको तो कच्चे घड़ेकी चढ़ी थी। अभी डेढ़ घंटे पहले कचरकुट्ट भी किया था। मनुष्यों-के ही पेट थे, कुण्डे तो थे नहीं। पर धर्मसिंह न माना। उसने न जाने क्या-क्या अटर सटर काजू, किशमिश, छुहारे, चिलगोजे, कोई सेर-सेर भर सूखे मेवे सबके झोलोंमें ओझ दिए और हम लोग चल दिए।

इरावती! इरावती!! इरावती!!!

वह इरावती भयानक जङ्गलोंको पार करती हुई अकेली इतनी दूरसे बहती चली आ रही है और हम पुरुष होकर, बीस-बीस पुरुष होकर उन्हीं वनोंसे भय खायँ! कुछ दूर—लगभग आध कोस—चल चुकनेपर तटका मार्ग रुक गया। खड़ा पहाड़, बीहड़ जङ्गलकी पूर्ण विकरालता लिए हुए, मनुष्यका पथ रोके खड़ा था। इरावतीको स्पर्श किया। उसका जल पिया और जैसे ही जीवनरामने धोनेको पाँव बढ़ाए कि एक विशाल मगरने थूथन उठाया, पूँछ घुमाई और छप्पसे जलमें। जान पड़ता था उसके मुँहमें मनुष्यका रक्त नहीं लगा था अन्यथा आज जीवनरामका जीवन, रामको अर्पण हो चुका था। कितनी शिथिल है जीवनकी डोर! हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। दोनों ओर मनुष्यसे भी ऊँची-ऊँची घास, चारों ओर लम्बे-लम्बे विशाल देवदार और सागौनके वृक्ष, चलनेके लिये सकरी पथरीली पगडंडियाँ, मार्ग और दिशा अज्ञात, केवल इरावतीकी कलकल ध्वनिका अकेला सहारा और उस पथमें हम बीस—झाड़-झंखाड़ों, ऊँचे खाले मार्गों और गहरी-सँकरी घाटियोंमें आँख मूँदकर चले जा रहे थे, चले जा रहे थे—गाते हुए, हल्ला मचाते हुए और लाठियोंसे दोनों ओरकी घास बिछाते हुए।

चलते-चलते तीन घंटे निकल गए, इरावतीका ध्वनि कभीकी मन्द पड़ चुकी थी। पगडंडियोंके चौराहोंसे भी कोई निश्चित पथ नहीं मिल रहा था और पल-पलपर दुश्चिन्ता बढ़ती चली जा रही थी। 'नर अहार रजनीचर करहीं' कानमें गूँज रहा था। सूर्य बहुत दूर पश्चिममें उतर चुके थे। घने जंगलमें अँधियारी भरने लगी थी। फिर भी हम लोग अपने-अपने हृदयका भय और त्रास हृदयमें छिपाए हुए बढ़ते ही चले जा रहे थे।

'वह है इरावती !'

पैर बढ़े। मुखकी उदासी ढकेलकर नेत्रों और कपोलोंपर मुस्कराहट आ चढ़ी। देखते-देखते हम लोग उस महातालके तटपर आ पहुँचे जहाँ पगडंडीकी यात्रा समाप्त हो गई थी, आगे दूरतक फैला हुआ जल-सागर था और चारों ओर दूर-दूरतक न मनुष्य न मनुष्यकी गन्ध।

वनके वृक्षोंमें घुसे हुए झींगुरोंने अपनी मन्द झनकारसे अन्धकार और वनकी भयंकरता चौगुनी कर दी। सब मिलकर मुझे गालियाँ देने लगे। मैं भी अपने ऊपर खीझ उठा, किन्तु बाण चुटकीसे छूट चुका था। लौटना असम्भव था। पर ठहरना भी तो असम्भव था।

तनेजाने प्रस्ताव किया—वृक्षपर चढ़ जाओ। पास ही बड़ा भारी वृक्ष था। बीसों उसपर चढ़ गए और विशाल शालकी शाखाओंपर लांगूलहीन शाखा-मृग बने हुए लटके रहे—पृथ्वीके समान धैर्यशील, पर्वतके समान अटल और समाधिके समान शान्त !

जाड़ेकी रात थी। पर जाड़ा कम लग रहा था, भय अधिक। तभी घासमें सरसराहट हुई। एक, दो, दस, बीस अगणित बड़े बड़े जीव वृक्षोंको तोड़ते, झाड़ियोंको रौंदते, चिग्घाड़ते, दौड़ते, घूमते सुनाई पड़ने लगे। हाथी ! हाथियोंका झुण्ड ! ! जंगली हाथियोंका झुण्ड !!! ओह ! वे आए ! आ गए ! ! इतने विकराल दाँत ! उस अन्धकारमें

भी बड़े-बड़े द्वितीयाके चन्द्रोंका जमघट ! वृक्ष काँपने लगे, उनके धक्कोंसे वृक्षकी शाखा-शाखा सिहर उठी और हम लोग ! हम लोग अंजलिमें प्राण लेकर विनियोगकी प्रतीक्षा करते हुए साँस रोके उसी वृक्षसे लिपटे बैठे रहे । लगभग एक घंटेतक यह धमाचौकड़ी मचती रही और हम लोगोंके जीवनकी डोरी रक्षा और विनाशके दो छोरोंमें बड़े वेगसे पैंगें मारती रही। ज्यों-त्यों करके गजमण्डली विदा हुई। हम लोगोंके जीमें जी आया।

सबने अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार संकटमोचनकी मनौती मानी। किन्तु अभी रात आधी पड़ी थी और विपत्तियाँ केवल प्रारंभ ही हो पाई थीं। फिर कोलाहल ! बारी-बारीसे न जाने कितने आकारोंमें, वराह, नीलगाय और भैंसोंका झुण्ड आने-जाने लगा। इसी बीच सहसा आ कूदा बंगालका चीता गुर्राता हुआ। भगदड़ मच गई, किन्तु फिर भी तीन जीवोंका स्वाहा हो ही गया।

किन्तु उस समय दार्शनिकताके स्थानपर बिभीषिका हमारे हृदयपर अधिकार जमाए बैठी थी। चीतेको हम लोगोंकी गंध मिल गई थी और वह अपने आखेटोंसे तृप्त होकर बराबर उसी वृक्षका चक्कर काट रहा था जिसपर हम लोग विराजमान थे। साहस और धैर्यकी इतनी बड़ी और कड़ी परीक्षा कभी नहीं हुई होगी। गणेशसिंहने अपनी चोरबत्ती निकाली और चीतेको प्रकाश-घेरेमें घेर लिया। उसकी नीली आखें चमक उठीं, जबड़ोंमें लगा हुआ रक्त उसके खुले हुए विकराल मुखकी गम्भीरता और भयंकरताको और भी कठोर बना रहा था किन्तु क्षणभरमें चीतेने पीठ फेर ली और चल दिया।

किन्तु अभी रात शेष थी। पश्चिमी पवन हड्डियोंतकमें घुसकर कँपाए डाल रहा था। शरीर ऐंठे जा रहे थे। दूसरा कोई मार्ग ही न था। सप्तर्षि भी आधे खगोलमें घूमकर पश्चिमी क्षितिजमें धीरे-धीरे लोप होने लगे। आज पहली बार पूर्वीय क्षितिजपर ऊषाके आँचलका

पीला छोर देखकर हम लोगोंको जैसा आनन्द हुआ वैसा उषस्सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंको भी नहीं हुआ होगा। उषा, अरुण और दिनकर बारी-बारीसे अपने शाश्वत पथपर चढ़ चले और उनके साथ-साथ हम लोग बारी बारीसे वृक्षसे उतर पड़े।

उस विस्तृत महातालके सड़े हुए, कसैले, सेवार-भरे जलसे मुँह-हाथ धोकर, अपना झोला-डण्डा सँभालकर आध घंटेतक चुपचाप हम लोग जाड़ेकी गुलाबी धूप खाते रहे। अभी झोलोंमें धरमसिंहके मेवे रक्खे हुए थे किन्तु रातके चीतेके हत्याकांडके संस्मरण सामने पड़े हुए थे, दो बारहसिंहे और एक भैंसा। हम लोग चल दिए, मेवे झोलोंमें ही रह गए, मुँहमें न पड़ सके।

पराजित सैनिकोंकी भाँति हम लोग उलटे लौट चले जा रहे थे। दामलेके हाथपर बँधी हुई कलाईकी घड़ीकी बड़ी सुई एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, घड़ीके गोल मुखपर पूरे चार चक्कर काट चुकी और पाँचवाँ चक्कर पूरा करनेकी तैयारी कर रही थी। सबके गले सूख गए थे। सूर्य सिरपर चढ़ आया था। भूखके मारे सब अधमरे हो रहे थे। एक वृक्षकी छाँहमें बैठकर झोले खोले और कुछ मेवे जठराग्निमें होम दिए।

'घंटियाँ! घंटियाँ!! कहीं पास ही गाँव है।'

पलक मारते-मारते तनेजा वृक्षपर चढ़ गया—'वह रहा गाँव! भैंसे बँधी हैं। उन्हींकी घंटी बज रही है।'

डूबतेको तिनकेका भी सहारा होता है पर यहाँ तो गाँव दिखाई दे रहा था। डूबतेको जलपोत मिल गया था।

उस गाँवमें अभी भली प्रकार पहुँच भी नहीं पाए थे कि विचित्र प्रकारकी मानवीय ध्वनियाँ प्रातःकालके कागरोरके समान काँव-काँव कर उठीं। झोपड़ियोंके पीछे और नीचेसे सैकड़ों नग्नप्राय काले-कुरूप

दानव-मूर्ति मानव भाले ताने हुए निकल पड़े। क्षणभरमें उन्होंने घेर लिया हम सबको। हम बीस थे, वे एक सौ बीस। हमारे पास बीस लाठियाँ थीं, उनके पास एक सौ बीस भाले और फरसे। बीसों लाठियाँ जड़ बनकर हाथोंमें फँसी खड़ी रह गईं, घिग्घियाँ बँध गईं, आँसू छलक पड़े और मूलचन्द तो फफक-फफककर रोने लगा। उसके रोते ही एक दानवने उसे ऐसा मुक्का मारा कि वह धम्मसे नीचे गिर पड़ा। उसके आँसुओंने हम लोगोंकी आँखोंके तालोंमें भी ज्वार ला दिया। आँखें सावन-भादों बनकर बरसने लगीं। यही कुत्तेकी मृत्यु कहलाती है, चुपचाप कायरोंकी भाँति आत्मसमर्पण कर देना। कमसे कम हम लोग युद्ध करके ही प्राण विसर्जन कर सकते थे। किन्तु यह बात उस समय सूझ नहीं पड़ रही थी।

देखते देखते उन दानवोंने कपड़े-लत्ते, जूते सब उतरवा लिये। शरीरपर एक जाँघिया, बस। हम लोगोंके हाथ पीछे बाँध दिए गए और हम लोग भालोंकी नोकपर आगे बढ़नेके लिये विवश कर दिए गए। आँखोंसे आँसू बहे चले जा रहे थे। पोंछनेवाले हाथ भी बँधे हुए थे। जो होनेवाला था उसकी कल्पना करुण हाहाकार करने लगी और हम चले जा रहे थे। सामने अग्निकुण्ड! प्रज्वलित अग्निकुंड, जिसकी लपटें अपनी प्रचण्ड धूममण्डित शिखाएँ हिला-हिलाकर हरहरा रही थीं। और उस पर दो सूअर उल्टे टँगे हुए थे। हम लोग चिल्ला उठे। दया और प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगे। किन्तु वे बर्बर, काले-कलूटे, कमरमें एक ही चिथड़ा लपेटे, गलेमें कौड़ियोंकी माला पहने, झबरे बालोंपर लाल और नीली कतरन लपेटे, कतरनमें जङ्गली पंछियोंके पंख खोंसे हमारी करुण पुकारोंपर खिलखिलाकर हँसते जा रहे थे।

हे ईश्वर! हे विश्वनाथ!! हे महावीरजी!! बचाओ इन राक्षसों-से! कितनी तन्मयता थी उस दिन देवताओंके आवाहनमें? हम लोग धरतीपर लिटा दिए गए। हाथ-पाँव बाँध दिए गए और घसीटकर

कुंडके पास पहुँचा दिए गए। भगवान् आर्त्तकी पुकारपर नंगे पाँव दौड़े आते हैं यही विश्वास था और यह विश्वास सत्य भी निकल गया। भगवान् नंगे पैरों दौड़े चले आ रहे थे।

बलिदानकी वेलासे कुछ ही क्षण पूर्व एक उन्हीं दानवों-जैसा ही मोटा-सा दानव दौड़ा आया और अपने साथियोंको सम्बोधन करके उसने न जाने क्या 'कें़को-कें़को' कहा। हमारे बन्धन खोल दिए गए। हम घुमा दिए गए, और जिधरसे आए थे उधर ही हाँक दिए गए—फाँसीका दण्ड पाए हुए अपराधियोंकी भाँति। लगभग कोसभर पृथ्वी नाप लेनेपर हम लोग रोक दिए गए, हमारे हाथ खोल दिए गए और हमें छोड़कर वे लोग रोमांचक किलकारियाँ भरते हुए भाग चले। हम बीस प्राणी, सबके शरीरपर केवल एक-एक जाँघिया, जाड़ेके दिन। कलकी स्मृति आजसे भी अधिक भयानक हो उठी।

उस घने, भयावने, अँधेरे और पथरीले वनपथपर चलनेवाला एक भी नेत्र ऐसा नहीं था जो स्रोत न बहा रहा हो, किन्तु इन धाराओंपर-द्रवित होनेवाला कहीं एक भी दय नहीं दिखाई पड़ रहा था। थकावट ने, भूखने, प्यासने, भयने और दुश्चिंताओंने पैर बाँध दिए। केवल वृक्षोंने—जिन्हें हम जड़ कहते हैं, जिनके पत्ते नोचनेमें, शाखा काटनेमें, फल तोड़नेमें हमें व्यथा नहीं होती—उन वृक्षोंने ही स्थान-स्थानपर अपने विश्वबन्धुत्वका द्वार खोलकर हमें आश्रय दिया। इस समय भी हम लोग एक शमी वृक्षके नीचे बैठ गए। आगेका मार्ग अगम भी था, अज्ञात भी। किधर जायँ कुछ ज्ञात नहीं। प्यासके मारे प्राण ओठोंपर आ पहुँचे थे, एक घूँट पीने-योग्य जल कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा था। मौन, निस्तेज और निश्चेष्ट होकर सब लोग बैठ गए, बैठते ही लेट गए। स्वयं हम लोगोंको अपने ऊपर दया आ रही थी।

सहसा घंटियाँ सुनाई दीं, वैसी ही, और तत्काल वही दृश्य फिर आँखोंके आगे घूम गया। हे ईश्वर! यदि यही करना था तो पहले ही,

उसी समय क्यों नहीं समाप्त कर डाला। किन्तु बालकृष्णमें अभी साहस था। वह चढ़ गया वृक्षपर और वहींसे उसने कहना प्रारम्भ किया मानो आकाशवाणी हो रही हो—'बाँसका बाड़ा है। गौएँ हैं। कोई मारवाड़ी जैसा दिखाई दे रहा है। चलो।'

वह उतरा। उस आकाशवाणीने बीसों निस्तेज शरीरोंमें शक्ति भर दी, शरीरोंने शयनकी मुद्रा बदलकर बैठनेकी मुद्रा धारण की, फिर खड़े हो गए, चलने लगे और लगभग घड़ी भरमें हम लोग उस वंश दुर्गके कष्टकीलित सिंहद्वारपर जा पहुँचे। मोटे-मोटे बाँसोंकी चौहरी जालीसे घिरा हुआ बाड़ा ऐसा दृढ बना था कि बड़े-बड़े हाथी भी उसे टक्कर मारकर नहीं हिला सकते थे। 'सेठजी !'—मैंने पुकारा।

बाँसोंके अन्तरालमें बने हुए बहु-छिद्रोंके झँझरेमेंसे सेठजीने झाँका और हम बीस नंगोंको देखते ही उनके प्राण सूख गए। घबराए स्वरमें वे पुकारने लगे—'ओ घनश्याम ! बिन्दूक तो ल्या। देख, देख, घणाइ जिंगली माणस आग्या है।'

घनश्यामकी बन्दूक आनेसे पूर्व ही सेठजीके भयको दूर करते हुए हम लोगोंने शुद्ध नागरीमें अपनी करुण कथा सुना दी। मालवीयजीका नाम और काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके विद्यार्थी सुनते ही उनका भय तत्काल ममत्व बन गया और धीरे-धीरे उनके हृदयमें बैठी हुई करुणा उमड़कर उस दुर्गके द्वार सरकाने लगी।

हम लोग भीतर पहुँचे और पहुँचकर उस थकावटमें, जब हमें गरम-गरम दूध मिला, तभी ज्ञात हुआ कि गौको माता क्यों कहते हैं।

पाँच दिन उस आश्रममें बिता दिए—गौओंका भरपेट दूध पीकर तथा नेवटियाजीके मधुर व्यवहार और आतिथ्यका आनन्द लेते हुए। हाँ, ओढ़नेके लिये जो कम्बल मिले थे वे कभी भुलाए न भूलेंगे। उनके भीतर घुसे हुए कीट ! उनकी सड़ी बरसाती गन्ध ! सबको

धन्यवाद है। तुमने अपने-अपने धर्मका निर्वाह करते हुए भी जाड़ेसे हमारी रक्षा की। हम तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

छठे दिन ब्रह्माके जङ्गलोंके प्रधान अधिकारी विलयिम लैंग्डन हाथियों और सेवकोंका दल लिए हुए आ पहुँचे। हम लोगोंकी कथा सुनकर उनको विस्मय भी हुआ, हर्ष भी और सहानुभूति भी, क्योंकि वे अँगरेज थे। हमारे साहसकी उन्होंने बड़ी प्रशंसा की और जब चलने लगे तो हम लोगोंको साथ ले लिया। प्रोम ले जाकर उन्होंने एक-एक कम्बल देकर हमें गाड़ीपर चढ़ा दिया और यात्राका प्रबन्ध कर दिया। हम लोग रंगून पहुँचे। वहाँ नेवटियाजीके मुनीम हम लोगोंको आकर ले गए। वस्त्र-हरणसे ठीक दस दिन पश्चात् हम लोगोंका दो-दो धोतियाँ, कुर्ते, टोपी, चादर और बिछौने प्राप्त हुए और सन्ध्याको हम लोगोंने नेवटियाजीकी ही कृपासे पैरोंमें चप्पलें डालीं, उन पैरोंमें जिनकी दशा सुदामाके पैरोंसे होड़ ले रही थी—किन्तु 'नैनके जलसे पग' धोनेवाला कोई कृष्ण न था। दस दिन रंगूनमें बीत गए।

अन्तमें एक दिन जलपोतपर हम लोग चढ़ गए—नेवटियाजी और विलियम लैंग्डन महोदयके लिये हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हुए और कलकत्ते आ पहुँचे। वहाँसे बनारस आनेमें देर नहीं लगी।

आज भी जब कभी उस दृश्यका—दानवोंके जालका स्मरण हो आता है तो जी काँप जाता है, हृदय थर्रा उठता है। अरे! वे हैं, वे हैं, बचाओ! बचाओ!! सँभालो....मुझे, सँभालो!! मूर्च्छा आ रही है। आह!

सूक्ष्म वर्णन तथा द्विपक्ष भाव-द्वन्द्व कौशल (डुएल सब्जेक्टिव कौन्फ्लिक्ट टेकनीक) तथा दुहरे शीर्षकके साथ लिखी हुई यह कहानी देखिए, जिसमें कथाके दो पक्षोंके व्यक्ति एक दूसरेसे अपरचित हैं और दोनों सशंक होकर मानसिक द्वन्द्वमें पड़े हैं—

यह पत्र आपका है ? हाँ मेरा है !

फुहारेके पास पड़ी हुई कठपटियापर लेटा हुआ मैं सान्ध्य गगनमें एक-एक करके जग उठनेवाले तारों और अदीस अबाबाके घरोंमें एक-एक करके जल उठनेवाली बत्तियोंको बारी-बारीसे देखता चला जा रहा था। इतनेमें ही मेरे सिरपर लगी हुई बत्ती भी फकसे जगमगा उठी और फुहारेकी चंचल फुहारें पानीकी इठलाती हुई झीनी चादरोंपर सतरंगे चंचल इन्द्रधनुषोंकी लहरिया छपाईकी कला प्रदर्शित करने लगीं। आकाशके दीपोंका लेखा बनानेवाली मेरी आँखें नीचे उतरकर दूबकी उस हरियालीपर चलने लगीं जो बिजलीके प्रकाशमें अपनी घनी चिकनी पत्तियोंपर छाया और प्रकाशकी लहरें बिखराकर कोमल, चिकने, गद्देदार, हरे इतालवी मखमलके कालीनका वैभव और सौंदर्य लेकर खिल उठी थी, इठला उठी थी।

मंद बयारके स्पर्शसे सिहर उठनेवाली उस दूबका रस मेरे नेत्र बहुत देरतक न ले पाए। मेरी आँखें पलकके दोनों पल्ले खोलकर दूबकी पत्तियोंपर फरफराते हुए एक श्वेत समकोण पदार्थपर टिक गई। मनको कुतूहलने गुदगुदाया। मेरा लेटा हुआ शरीर उठ खड़ा हुआ। पैर चलने लगे। उस श्वेत समकोण पदार्थके पास पहुँचकर शरीर नीचे झुका। आँखोंने उस श्वेत पदार्थका आकार-प्रकार देखकर उसकी जातिवाचक संज्ञा स्पष्ट कर दी। वह लिफ़ाफ़ा था। नासिकाने उसमेंसे महँकती हुई रातकी रानीके फुलेलकी गमकसे मनको यह सूचना दे डाली कि यह लिफ़ाफ़ा असाधारण है, किसी प्रेमीने अपने स्नेहका संदेश सुगंधित करके अपने प्रियको अर्पित करनेका सौमनस्य प्रकट किया है। यदि ऐसा पत्र किसी ऐसे पुरुष या स्त्रीको मिल जाय जो उसे बिना पढ़े, जिसका हो उसके पासतक पहुँचानेकी तत्परता दिखावे तो समझना चाहिए कि वह देवता है या देवी हैं। यदि वह खोलकर

पढ़ ले और प्रेमरसमें अपना मन डुबोकर आत्मतृप्ति कर ले तो वह मनुष्य या मानवी है और यदि वह उस पत्रको पढ़कर औरोंको भी दिखाता फिरे और पत्रके कवि या उद्दिष्टको लांछित, अपमानित या दूषित करता फिरे तो समझना चाहिए वह नीच है, हिंसक पशु है, समाजका शत्रु है।

मैं देवता नहीं हूँ, और ऐसा संस्कार बचपनसे ही माता-पिताने डाल दिया है कि नीच भी होनेका दुःसाहस नहीं कर सकता। किंतु मनुष्य अवश्य हूँ और प्रयत्न करनेपर भी देवत्वको भली-भाँति स्पर्श नहीं कर पाया हूँ।

इसलिये, सचमुच, इसीलिये—

उँगलियोंने उस लिफ़ाफ़ेको उसी प्रकार बन्दी कर लिया जैसे बंतू बच्चे समुद्र-तटपर रेंगते हुए केकड़े पकड़ लेते हैं। पैर लौट पड़े और उन्होंने शरीरको कठपटियापर लाकर टिका दिया। पत्रपर लिखे हुए किसी महिलाके नामने कुतूहलको उकसाया, कुतूहलने उँगलियोंको प्रेरित किया, उँगलियोंने लिफ़ाफ़ेके भीतरका पत्र निकाला, उसकी तहें खोलीं, सीधा किया और आँखोंसे इतनी दूर ले जाकर टाँग दिया कि आँखें झख मारकर उसे बाँचें ही। आँखोंने अवसर खोना उचित न समझा और उस पत्रके अक्षर आँखोंके द्वारा मस्तिष्कके ज्ञानकेन्द्रपर पहुँचकर बोलने लगे और अर्थ समझाने लगे।

लिखा यह था—

आधी रात, १० जून, १९४१

'प्रिये, मधुर प्रिये, मेरे हृदयकी रानी, मेरे जीवनकी साँस, मेरे प्राणोंकी सारथि, मेरी आकांक्षाओंकी बस्ती, मेरी व्याकुलताकी शान्ति, मेरे भावोंकी विलासभूमि, मेरे विचारोंकी केन्द्रस्थली, मेरी साधनाओं-की सिद्धभूमि, मेरे आत्माकी एकमात्र पुकार, मेरी....सर्वस्व !'

तुमने अपने नयनोंसे छूकर मेरे प्राण ही नहीं, मेरी शान्ति, मेरा

सुख, मेरा संतोष सब सोख लिया है। तुम्हारी दुहरी लटोंमें गुँथे हुए नीले फीतेमें फँसा हुआ मेरा मन व्याकुल होकर तड़फड़ा रहा है। क्या उसे खोल न दोगी? तुम्हारी भौंहोंके आरोंने मेरा हृदय चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला है, उसे क्या अपनी स्नेहभरी चितवनके मरहमसे जोड़कर उसमें रक्तवहनकी शक्ति न भरोगी? अपनी पतली, नन्हीं-नन्हीं गोरी-गोरी उँगलियोंसे मेरा विरहतप्त शरीर छूकर क्या उसमें प्राण न डाल दोगी? अपनी कमरमें झोंक देकर जब तुम अपनी ऊँची एड़ीके सेंडलवाले बाएँ पैरपर बल देती हुई चलने लगती हो तब तारों और ग्रहोंसे भरा हुआ आकाश मेरे आगे घूमने लगता है। तुम्हारे साए (स्कर्ट) की हल्की-हल्की सरसराहट सुननेका अभ्यास होनेके कारण पूर्वी वायुके झकोरोंमें सरसरा उठनेवाली झाड़ियाँ भी मुझे चौकन्ना कर देती हैं और मेरी आँखें चारों ओर तुम्हें ढूँढ़ने लगती हैं। बेले (बायोलिन) के पहले तारपर कनिष्ठिकासे मींड़ खींचनेपर जो मधुर मूर्च्छनासे भरी हुई स्वरलहरी गूँजती है उसका माधुर्य भी तुम्हारे रसभरे आक्रोशके आगे बेसुरा है।

'प्रिये! मेरे शब्द रातकी घड़ियोंके साथ अलसा रहे हैं, मूर्च्छित हो रहे हैं, दम तोड़ रहे हैं। मेरे प्राणोंमें अपने स्नेहका अमृत भरकर उन्हें जीनेकी शक्ति तो प्रदान कर डालो, सौन्दर्यकी रानी!'

'ओह! अब नहीं लिखूँगा। पढ़ते-पढ़ते तुम्हारी आँखें सूज उठी होंगी, पत्र सँभालते-सँभालते उँगलियाँ कुम्हलाने लगी होंगी, मेरे इस हृदयके उष्ण उद्‌गार तुम्हारे हिमकठिन हृदयको पिघलाने लगे होंगे। ना! अब न पढ़ना। तुम्हें क्रौसकी सौगंध, ईसाकी शपथ, मरियमकी आन..."

कैसा भावपूर्ण पत्र था—पत्र क्या कविता थी—योरोपकी सम्पूर्ण प्रेम-कविताएँ इसके आगे धूल थीं, धुँआलेकी कालिख थीं।

मैं भावमग्न होकर इस पत्रके कविकी प्रशंसा करता हुआ उसकी

तन्मयताका रस लेता हुआ अभी हस्ताक्षरतक पहुँच भी न पाया था कि हरी दूबपर चरर-मरर करनेवाली जूतियोंके चंचल व्यग्र स्वरोंने मेरे नेत्र पत्रसे हठात् खींचकर बिजलीके प्रकाशमें भासमान उस तरल मानवीपर केन्द्रित कर दिए जो बड़ी व्यग्रतासे अपनी चंचल आँखें इधर-उधर घुमाती हुई कोई खोई हुई अमूल्य निधि तत्परतासे खोज रही थी। वह कभी नीचे देखती, कभी अपना बटुआ टटोलती, कभी अपने पीले काँच-के हारका सुमेरु मुँहमें डालकर कुछ सोचती, कभी अपने वक्षपर साएके भीतर घुसे हुए रूमालको निकाल-निकालकर उसकी परीक्षा करती। अचानक उसने मेरी ओर देखा। मेरे हाथमें अब भी वह पत्र था। उसने और भी एकाग्रतासे देखना प्रारम्भ किया। अब उसकी चितवनमें प्रश्न था। मैं स्वयं उत्तर बनकर आँख छिपाकर बैठ रहा। फिर मैंने नेत्र ऊपर उठाए तो उसकी आँखोंमें रूखी, घृणासे भरी वैसी जिज्ञासा सी थी जैसे संदिग्ध चोरके प्रति पुलिसकी होती है।

उसका समझना तो ठीक ही था पर मैं भी स्वयं अपनेको चोर समझने लगा था। रँगे हाथों पकड़े गए हुए चोरकी व्याकुलता और आत्मग्लानि मेरे हृदयको कोसने लगी। यदि उस समय मेरे सिरपर सांध्य टोपी न होती तो मेरी सिटपिटाई हुई मुखमुद्रा बिजलीके प्रकाशमें मेरे पापका भंडाफोड़ कर देती। मैंने कुछ मन साधकर एक क्षणके लिये उसे समझनेका प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। पत्रके व्यक्तिकी भावुकताने अवश्य इसे प्रभावित कर दिया है अथवा प्रेमीका भेद खुलनेसे अधिक इसे इस बातका भय होगा कि दूसरे इस रहस्यको जानकर इस पत्रकी शब्दावलिको व्यंग्य बाण बनाकर मुझपर न छोड़ने लगें। संभव है दोनों ही बातें हों, पर मुझमें यह नैतिक साहस नहीं था कि उठकर पत्र दे दूँ, क्षमा माँग लूँ।

उसके गोरे चिट्टे रंग, चिकने कोमल गाल, सीधी लम्बी नुकीली नाक, मदभरी चंचल नीली आँखें और यूनानी शैलीकी लम्बी मुखा-

कृतिमें जो मादकता थी उसमें फ़ान्सीसी या इतालवी पिताकी छाया स्पष्ट झलक रही थी और उसके घुँघराले बाल लहरा-लहराकर यह घोषित कर रहे थे कि उसकी माता बंतू जातिकी ही होगी। खजूरकी पत्तियोंकी बारीक तीलियोंसे बुनी हुई महिला टोपी तिरछी होकर उसके सिरपर खिल रही थी और आकाशी रंगका साया उसके ढले हुए-से शरीरपर उसके यौवनका शृंगार कर रहा था। उसकी गतिमें, हाव-भावमें किसी भी संतको विचलित कर सकनेकी पूरी क्षमता थी, यह मानना ही पड़ेगा।

अधिक देरतक मैं उसे न देख पाया या यों कहिए कि देख ही न सका। फिर भी मैंने यह देखा कि मेरे पास पत्र होनेका निश्चय हो गया है और वह माँगनेका साहस नहीं कर सक रही है। वह घूमी। वह चल दी।

मैं भी झट से उठा। उँगलियोंने जिस उत्सुकतासे वह पत्र खोला था उससे अधिक त्वराके साथ उसे तह करके लिफ़ाफ़ेमें रख दिया। मैं भी पीछे-पीछे कुछ अन्तर देकर चलने लगा। वह वेगसे चली जा रही थी। मैं भी हाँफता हुआ हुआ पीछे लगा चला जा रहा था। लगभग चार सौ पगपर उसका घर था। लकड़ीके चकरडोलसे होकर वह भीतर घुस गई।

मैं बाहर खड़ा रहा और देखता रहा। उसने बत्ती जलाई। वह दर्पणके आगे खड़ी हो गई और कुछ अस्फुट स्वरमें बर्राने लगी।

मैंने देखा वह कुछ लिखने लगी। उसकी आँखोंमें प्रतिहिंसा जल रही थी।

मैंने साहस बटोरा। मैं द्वारतक पहुँचा। मैंने द्वार खटखटाया।

'कौन ?' केवल इतना ही प्रत्युत्तर था।

अपनी वाणीमें पश्चात्तापका कम्पन भरे हुए मैंने कहा—'मैं'

पहले द्वारकी बत्ती चमकी, फिर द्वार खुले। उसने मेरे हाथमें

वह पत्र देखा। वह काँपी। उसने सिर झुकाया। ग्लानि, भय, लज्जा और घृणाके कम्पके साथ मुखकी ललाई और श्वेतताका रंग क्रमश बदलते हुए वह कुछ खीझी।

मैं चोरकी दुर्बलतासे त्रस्त होकर भी साहस बटोरकर उसके आक्रोशको टालता हुआ आगे बढ़कर प्रश्नका काकु साधकर बोला—'यह आपका पत्र है?'

चीतेके समान झपट्टा मारकर उसने पत्र छीन लिया और झटकेके साथ किवाड़ बन्द करती हुई इतना बोलकर अन्तर्धान हो गई—'हाँ! मेरा है।'

अलौकिक तत्त्व-संयोग कौशल

अलौकिक तत्त्व-संयोगके कौशलसे पूर्ण यह रोमांचकारी कहानी लीजिए जिसमें एक पात्र दिखाई नहीं देता किन्तु कार्य सब करता है, बात-चीत भी करता है—

योगरोचना

अपनी बारहमासी ऊनी सदरी ऊपर डाटकर और हाथमें बादामका मोटा डंडा लेकर मैं समझ लेता हूँ कि कर्णका स्वर्ण-कवच और वशिष्ठजीका ब्रह्मदंड मेरे आगे कुछ भी नहीं है। स्वरक्षाकी इस स्वाभाविक सज्जासे सजकर मैं ठीक गोधूलि-वेलामें हृषीकेशसे पैदल स्वर्गाश्रमके लिये चल पड़ा। बाईं ओर खड़ा पहाड़ अपने वन्य वैभवकी हरीतिमासे पवनको ठंढक देता हुआ झींगुरों और झिल्लियोंकी झनझनमें संध्याके स्तोत्र गा रहा था और दाईं ओर अपने लोक-पावन जलकी शीतल फुहारें उड़ाती हुई भागीरथी चट्टानोंकी विषम सीढ़ियोंपर महानृत्य करती हुई पर्वतराजके पराजय और अपने महा-विजयके उल्लाससे दिव्य जयघोष करती हुई आर्यावर्तके पालनका महाव्रत लेकर अमेय वेगसे बहती चली जा रही थी। मैं भी इधर-उधर अपनी दृष्टिको बहलाता, फुसलाता ऊपर चढ़ा चला जा रहा था अकेला।

झिल्लीकी सांध्य झनकारके तीव्र कोलाहलमें और भागीरथीके गुरुगंभीर प्रवाह-निनादमें वह 'सुनिए' मुझे अत्यन्त स्पष्ट स्वरोंमें सुनाई पड़ा। मैं पीछे घूमा, किन्तु कोई भी शरीरधारी मेरी आँखोंकी पकड़में न आ सका। भूत-प्रेतसे न तो कभी मेरी भेंट हुई थी, न मैंने कभी भूत-प्रेत साधनेका प्रयत्न ही किया था। हाँ, श्री रामदास गौड़के सत्संगसे मुझे यह विश्वास अवश्य हो गया था कि भूत-प्रेत होते हैं और जिनके भोग अधूरे रह जाते हैं उन्हें प्रेत योनिमें पहुँचकर बचे हुए भोग भोगने पड़ते हैं। इस संस्कारके जमे हुए प्रभावने तत्काल मनमें यह धारणा बैठा दी कि यह 'सुनिए' कहनेवाला भी कोई ऐसा ही व्यक्ति है जिसने अकाल मृत्युके कारण यह कष्टमय प्रेत-योनि पाई है। इस धारणाने शरीरका रक्त जमाकर हिम कर दिया। मैं घूमा। मैं ठिठक गया, पैर जड़ हो गए, जीभ बँध गई, हाथ काँपने लगे, हाथका डंडा छूटने-छूटने हो गया, सारी देह पसीने-पसीने हो गई और मुझे ऐसा लगने लगा कि प्रेतने मुझे पकड़ लिया है और मैं मूर्च्छित होकर बस गिरने ही वाला हूँ।

'सुनिए!'

फिर 'सुनिए'—किन्तु इस 'सुनिए' का उच्चारण वैसा ही स्पष्ट था जैसे स्थान और प्रयत्न सँभालकर कोई वैयाकरण उच्चारण कर रहा हो। सुन रक्खा था कि भूत-प्रेत नकियाकर बोलते हैं पर इस 'सुनिए' में, 'नि' के स्वाभाविक अनुनासिक उच्चारणके अतिरिक्त कहीं नासिका नहीं बोल रही थी। किन्तु यह तर्क काम नहीं दे सका क्योंकि वक्ताके अदर्शनने जो स्वाभाविक भय उत्पन्न कर दिया था वह ज्योंका त्यों पैर जमाए बैठा था।

मैंने तत्काल गायत्री मंत्रका जप प्रारम्भ कर दिया क्योंकि मुझे विश्वास है कि उस सिद्ध मंत्रके आगे कोई भी भूत-बाधा नहीं टिक सकती।

हल्की मुस्कराहटके साथ बात करनेमें जो कम्पन-युक्त शब्द-विकार होता है, ठीक उसी ध्वनिमें मेरे मंत्र-जपकी उपेक्षापूर्ण खिल्ली उड़ाते हुए उस अदृश्य स्वरने कहा—'मैं प्रेत नहीं हूँ। घबराइए मत। मैं भी आपके जैसा ही एक मनुष्य हूँ। बड़े संकटमें पड़ गया हूँ। आपसे सहायता चाहता हूँ।' अपने लिये 'आप' संबोधन सुनकर डाकगाड़ीके अंजनसे होड़ लेनेवाली मेरे हृदयकी धुकधुकी कुछ मन्द पड़ने लगी। धीरे-धीरे क्रमसे मेरे पैर खुले, हाथकी उँगलियाँ डंडेको कसने लगीं, वाणी खुलने लगी, भागा हुआ साहस भी लौटने लगा और मुझे अपनी महत्तापर सहसा अभिमान होने लगा कि अदृश्य शक्तियाँ भी मेरा आदर करती हैं, मुझसे सहायता चाहती हैं। इसी एक क्षणमें मदके गर्वीले दूषित पक्षने बुद्धिको भी उकसाकर यह सम्मति दे दी कि 'इस घटनाका डंका पीटकर आत्मश्लाघाके मनमाने झूठका पुल बाँध लेना। बड़ा अच्छा अवसर है।' किन्तु इतना सब होनेपर भी कंठको इतनी शक्ति नहीं मिल पाई कि खुलकर दो बातें कर लेता। शब्दवेधी बाण चलानेवाले धनुर्धरके समान शब्दकी ओर घूमकर मेरे मुँहसे केवल एक शब्द निकला—बड़े श्रमसे—'कहिए!'

'कथा लम्बी है। भूखसे व्याकुल हूँ। कुछ पेटमें पड़े तो मुह खुले। कुछ है आपके पास?'

रेडियोपर विभिन्न वक्ताओंके भाषण या गीत सुनकर हम उनसे अपरिचित होते हुए भी जिस प्रकार उनके एक रूपकी कल्पना कर लेते हैं, उसी प्रकार इस ध्वनिकी उत्पत्ति जिस मुखसे हुई थी उसकी जो काल्पनिक मूर्त्ति मानसमें उत्पन्न हुई उसके अनुसार कोई बड़ी लटोंवाला, काक-पक्षधारी, चौड़े-ऊँचे माथेवाला, बड़ी-बड़ी आँखोंवाला, भरे हुए गोल मुखवाला, गझी मूँछ-दाढ़ीवाला, अच्छे डील-डौलवाला कोई शिखा-सूत्र धारी ब्राह्मण मुझसे बातें कर रहा था।

मैंने कहा—'चलिए मेरे साथ स्वर्गाश्रमतक, मैं भोजनका प्रबन्ध किए दे रहा हूँ।'

'चलिए ।'

और मैं चल दिया । प्रेत-लीलाकी असंख्य कल्पनाएँ आ-आकर मेरा चित्त मथने लगीं और ज्यों-ज्यों मैं ऊपर चढ़ता चला जाने लगा त्यों-त्यों वे कल्पनाएँ भी भयङ्करतर होती चली जाने लगीं । विचारोंकी इस भीड़में मार्ग जाता नहीं जाना जा सका । लक्ष्मण-झूला पार करके मैंने स्वर्गाश्रममें पदार्पण किया । बाबा काली कमलीवालेकी धर्मशालामें पहुँचकर मैंने अपनी कोठरी खोली, दीवा जलाया, झोला उठाया और बाहर जानेके लिये कोठरीके द्वारतक पहुँचा ही था कि कोठरीसे स्वर सुनाई पड़ा—

'मैं अन्न नहीं खाता । केवल फल और दूध ग्रहण करता हूँ । और सुनिए ! यह बात किसीसे कहिएगा मत । सावधान !'

'अच्छा' कहकर मैं चलने लगा और एक क्षणके लिये उलझनमें पड़ गया कि कुंडी बाहरसे लगाऊँ या नहीं । पर कोठरी बोल उठी—

'मैं यहाँ रखवाली करता रहूँगा ।'

मैं चला आया बाहर और आध घंटेमें लौटकर देखता क्या हूँ कि मेरी कोठरीके आगे भीड़ जुटी हुई है, बड़ा कोलाहल हो रहा है, बहुत-से साधु-संन्यासी भी जुटे हुए हैं और सामने मेरे पास-वाली कोठरीमें ठहरे हुए सेठ देवीदयाल मूर्च्छित पड़े हैं ।

'क्या हुआ ?' कहकर मैं आगे बढ़ा । पूछनेपर ज्ञात हुआ कि सेठ-जीने मुझे पुकारते हुए मेरे कमरेमें ज्यों ही पैर रक्खा कि किसीने कहा—'वहीं खड़े रहो ।' स्वर बहुतसे लोगोंने सुना था पर दिखाई कोई नहीं दिया । सेठजी डरके मारे मूर्च्छित हो गए । सब कुछ जानते हुए भी उस समय मैंने अनभिज्ञताका ऐसा सुन्दर नाट्य किया कि भरत मुनि भी उस समय होते तो मुझे आचार्य मान लेते । धीरे-धीरे सेठजीको चेतना तो आई पर उनके हृदयमें बैठा हुआ भय उनके पीले मुख और घबराई हुई आँखोंमें अभीतक विद्यमान था । उन्हें उठाकर चारपाईपर लिटा

दिया गया। भीड़ छँट चली। कोठरीमें जाकर मैंने भी किवाड़ दे दिए, भीतर कुंडी चढ़ा दी और मैं अपने अदृश्य अतिथिके सत्कारमें जी-जानसे जुट गया।

मैं अत्यन्त कौतुकके साथ देख रहा था कि किस प्रकार लीची उठती है और उसके छिलके तथा बीज दूसरी थालामें जा पड़ते हैं; आम उठता है और फिर छिलका-गुठली बनकर थालीमें टपक पड़ता है; दूधका लोटा अदृश्य होता है और रिक्त होकर फिर जहाँका तहाँ आ बैठता है; जलका लोटा उठता है, किवाड़ खुलते हैं, बाहर कुल्लेका स्वर होता है, अँगोछा हिलता है, उसपर हाथ पोंछनेके चिह्न पड़ते हैं और किवाड़की साँकल फिर लग जाती है। मैं एकटक होकर अर्द्धभीरु मनसे यह सब इन्द्रजाल देख रहा था। बोलनेकी इच्छा भी नहीं हो रही थी, शक्ति भी नहीं थी।

'आप भी भोजन कर लीजिए।'

मैंने कहा—'अभी मैं सन्ध्या करूँगा और फिर आकर भोजन बनाऊँगा। मैं स्वयंपाकी हूँ। बताइए! आपकी मैं क्या सहायता कर सकता हूँ?'

और वह स्वर गम्भीर होकर बोल उठा—'मैं नैमिषारण्यका शांडिल्य-गोत्री ब्राह्मण हूँ। योग सीखनेकी लालसासे योग-विद्या और और तन्त्रविद्याके आचार्य स्वामी प्रबुद्धानन्दजीके पास रहता था।'

'उन्हें मैं जानता हूँ', कहकर मैंने समर्थन किया।

वह कहता रहा—

'उनके पास मैंने थोड़े दिन हठयोग सीखा। प्राणायाम, धारणा और प्रत्याहारका साधन चलने लगा। पद्मासन, अर्द्धासन और स्वस्तिकासन लगाकर प्रणवका चिन्तन करते हुए मैं योगाभ्यास करने लगा। किन्तु वह कष्टगम्य मार्ग मुझसे निभ नहीं रहा था। मैं देखता था कि गुरुजी जलपर चलते हैं, आकाशमें उड़ते हैं, देखते-देखते अदृश्य

हो जाते हैं। मैंने सोचा कि योगको छोड़कर तन्त्रको ही क्यों न अपनाऊँ। मैं चोरी-चोरी गुरुजीकी क्रियाओंपर दृष्टि रखता रहा और प्रत्यक्षतः योग भी साधता रहा। इस प्रकार मैंने 'योगरोचना' बनानेकी विद्या सीख ली—

मैंने जिज्ञासा की—'योग-रोचना क्या ?'

वह कहने लगा—'योग-रोचना एक प्रकारका लेप होता है, जिसे शरीरपर लगा लेनेसे मनुष्य अदृश्य हो जाता है। तो मैं भी उसे चोरी-छिपे बनाता रहा और एक दिन उसे लगाकर अदृश्य हो भी गया। गुरुजीकी आँखोंसे मेरा भेद नहीं छिप सका। मैंने जिस पात्रमें योग-रोचना बनाकर रक्खी थी उसमें उन्होंने न जाने और क्या डाल दिया कि जब मैंने दूसरी बार उसका प्रयोग किया तो वह छुटाए न छूटा। मैंने गुरुजीसे बड़ा अनुनय-विनय किया किन्तु वे न पसीजे। कहने लगे—'गुरुसे छल किया है तो उसका दण्ड तुझे भोगना ही पड़ेगा। तेरे शरीरपर लगी हुई योगरोचना वज्रलेप बन गई है, यह नहीं छूटेगी। इस लेपके शरीरपर रहते हुए तू किसी प्रकारका पाप करेगा तो तेरी तत्काल मृत्यु हो जायगी।' इसलिये मुझे भोजन माँगना पड़ता है। कहींसे उठाकर मैं खा नहीं सकता क्योंकि चोरी करनेसे पाप लगेगा और मैं समाप्त हो जाऊँगा।'

'तो मैं क्या कर सकता हूँ ?'

'गुरुजीने कहा था कि यदि कोई दूसरा ब्राह्मण पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ शरीरमें रक्त-चन्दनका लेप करे तभी यह लेप छूटेगा, अन्यथा नहीं। इसीलिये आपको कष्ट दे रहा हूँ। इतनी कृपा कर दीजिए।'

उस स्वरमें अत्यन्त दैन्य और विषाद भरा हुआ था। मेरा मन भी चञ्चल हो उठा। यदि कहीं यह विद्या मेरे हाथ आ सकती!

मैंने कहा—'मैं आपका काम कर दूँगा किन्तु क्या आप यह योग-रोचनाकी विद्या मुझे सिखा सकेंगे ?'

'मैं सिखा नहीं सकूँगा, क्योंकि मैंने यह विद्या गुरुमुखसे नहीं सीखी है। इसलिये यह विद्या न तो मुझे ही फली और न तुम्हें ही फलेगी। पर मैं तुम्हें अदृश्य होनेका एक दूसरा सरल तन्त्र सिखा दूँगा।'

'अच्छी बात है। तो रक्त चन्दनका प्रयोग कब होगा ?'

'कल प्रातःकाल।'

'कहाँ ?'

'गङ्गाजीके तटपर।'

'पर मैं आपको देख कैसे सकूँगा ?'

'मैं सिद्धांजन दूँगा, उसे आँखमें लगा लेना। रक्त चन्दन इसी समय ले आना ठीक होगा।'

वार्त्तालाप समाप्त हो गया। मैं द्वार खोलकर बाहर निकला तो धर्मशालाका चौकीदार और दो-तीन यात्री मिलकर कुछ फुसफुसा रहे थे। मुझे देखते ही वे आगे बढ़े और पूछने लगे—'कहिए, आप किससे बातें कर रहे थे ?'

'किसीसे भी नहीं।'

'हमने स्पष्ट सुना है।'

'सुना होगा आपने!' मैंने उपेक्षाके साथ इतना कहकर हाटमें जाकर रक्त-चन्दन लिया और आकर अपनी अँगीठी सुलगाई। जबतक मैंने अपना भोजन बनाकर किया तबतक आस-पासके बहुतसे लोग जुट आए और ज्यों ही मैं अपनी दरी निकालकर बाहर ओसारेमें आकर बैठा कि बीसों सज्जन घेरकर पूछने लगे—

'आप कौन हैं ? क्या काम करते हैं ? यहाँ क्यों आए हैं।'

मैं उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—'मैं मनुष्य हूँ। लोकसेवा मेरा काम है। यहाँ सन्तोंसे मिलने आया हूँ।'

चौकीदार कहने लगा—'जाने दीजिए सब झमेला। आप बताइए कि यहाँ रहेंगे कबतक ?'

'मैं अभी एक मासतक यहाँ रहूँगा।'

'इतने दिन आप नहीं ठहर सकते। यह कोठरी दूसरेको दे दी गई है। कल आप छोड़ दीजिएगा।'

'बहुत अच्छा, कल छोड़ दूँगा।'

वे लोग तो बहुत देरतक काना-फूसी करते रहे, किन्तु मेरी आँख लग गई।

ब्राह्म मुहूर्तसे भी पहले मुझे किसीने हिलाकर जगाया—'उठो।' वही पहचाना हुआ अदृश्य स्वर बोल रहा था। मैं उठा।

उसने कहा—'सिद्धांजन लाया हूँ, लगा लो।' मैंने आँजन लगाया और लगाते ही मेरे सम्मुख एक दृढ, बलिष्ठ लम्बे काले केशोंवाला अद्भुत पुरुष आ खड़ा हुआ। मैं उसे प्रणाम करके अँधेरे-मुँह चल दिया उसके पीछे-पीछे। अभी गङ्गाजीका तट निर्जन था—बस मैं और वह। पत्थरकी शिलापर मैंने रक्तचन्दन घिसा और पञ्चाक्षर मन्त्र जपते हुए उसके शरीरपर लेप लगा दिया। एक विचित्र दिव्य सुगन्धि उसकी देहसे फूट पड़ी और ज्यों ही उसके शरीरपर चन्दन लग चुका त्यों ही वह धड़ामसे कूद पड़ा गंगाजीकी धारामें और तैरकर बढ़ने लगा आगे।

वह बोला—'अब मैं चला जाऊँगा।'

मैं चिल्लाया—'और मेरा मन्त्र?'

वह वहींसे चिल्लाया—'स्मरण कर लो। कृष्णा चतुर्दशीको कबूतरके कटे सिरपर मट्टी डालकर तिल बोना और उसे दूध-मिले पानीसे सींचते रहना। उसमें जो फल निकले उसे मुखमें रखनेसे कोई मनुष्य देख नहीं पावेगा। और यदि उसमें उगा हुआ तिल कपिला गायके दूधमें पीसकर गोली बनाकर सात राततक दूधमें पकाकर उस गोलीको मुखमें रक्खो तो देवता भी तुम्हें नहीं देख सकेंगे।'

वह आगे बढ़ता चला जा रहा था, उसका स्वर मन्द पड़ता जा रहा था—'और उसे धारण करनेके लिये यह मन्त्र जपना होगा....।'

मन्त्र स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ा।

मैं चिल्लाया—'मन्त्र स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ रहा है।'

वह भी चिल्लाया—'मन्त्र एक बार दिया जाता है, दो बार नहीं। तुम्हारे भाग्यमें ही नहीं है।'

और वह कोई स्तोत्र पढ़ता हुआ उस पार बहता चला गया और उसके साथ-साथ बह गईं योगरोचना, योगरोचना बनानेको विद्या और मेरी वे सब साधें भी जो योगरोचनाकी कल्पनाके साथ-साथ सहसा जागरित हो उठी थीं।

प्रति-कथन कौशल

प्रति-कथन कौशल (इण्टर-नैरेशन टेकनीक) से युक्त आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-द्वारा लिखी हुई यह प्रसिद्ध और हिन्दी साहित्यकी सर्वप्रथम मौलिक कहानी लीजिए जिसमें विद्वान् लेखकने ग्यारह वर्षके पश्चात् सहसा मिले हुए पति और पत्नीसे आधी-आधी कहानी कहलाकर उनके वियोगकी कथा पूर्ण की है। यह कहानी इस बातका भी प्रमाण है कि प्रतिभाशाली व्यक्ति जब भी कुछ लिखेगा, तभी उसकी रचनामें कोई न कोई नया कौशल निश्चय ही होगा। कौशलके लिये यह अपेक्षित नहीं है कि साहित्यके प्रौढ होनेपर ही कौशलका भी विकास हो।

ग्यारह वर्षका समय

दिनभर बैठे-बैठे मेरे सिरमें पीड़ा उत्पन्न हुई; मैं अपने स्थानसे उठा और अपने एक नये एकांतवासी मित्रके यहाँ मैंने जाना विचारा। जाकर मैंने देखा तो वे ध्यानामग्न सिर नीचा किए हुए कुछ सोच रहे थे। मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि यह कोई नई बात न थी। उन्हें थोड़े ही दिन पूरबसे इस देशमें आए हुआ है।

नगरमें उनसे मेरे सिवाय और किसीसे विशेष जान-पहिचान नहीं है और न वे विशेषतः किसीसे मिलते-जुलते हैं। केवल मुझसे मेरे भाग्यसे, वे मित्र-भाव रखते हैं। उदास तो वे हर समय रहा करते हैं। कई बेर उनसे मैंने उनसे इस उदासीनताका कारण पूछा भी; किन्तु मैंने देखा कि उसके प्रकट करनेमें उन्हें एक प्रकारका दुःख सा होता है; इसी कारण मैं विशेष पूछ-ताछ नहीं करता।

मैंने पास जाकर कहा "मित्र! आज तुम बहुत उदास जान पड़ते हो। चलो थोड़ी दूर-तक घूम आवें। चित्त बहल जायगा।"

वे तुरन्त खड़े हो गए और कहा—"चलो मित्र! मेरा भी यही जी चाहता है। मैं तो तुम्हारे यहाँ जानेवाला था।"

हम दोनों उठे और नगरसे पूर्वकी ओरका मार्ग लिया। मार्गके दोनों ओरकी कृषि-सम्पन्न भूमिकी शोभाका अनुभव करते और हरियालीके विस्तृत राज्यका अवलोकन करते हम लोग चले। दिनका अधिकांश अभी शेष था, इससे चित्तको स्थिरता थी। पावसकी जरा-वस्था थी। इससे ऊपरसे भी किसी प्रकारके अत्याचारकी सम्भावना न थी। प्रस्तुत ऋतुकी प्रशंसा भी हम दोनों करते जाते थे।

अहा! ऋतुओंमें उदारताका अभिमान यही कर सकता है। दीन कृषकोंको अन्न-दान और सूर्यातप-तप्त पृथ्वीको वस्त्र-दान देकर यशका भागी यही होता है। इसे तो कवियोंकी 'कौंसिल' से 'रायबहादुर' की उपाधि मिलनी चाहिए। यद्यपि पावसकी युवावस्थाका समय नहीं हैं; किन्तु उसके यशकी ध्वजा फहरा रही है। स्थान-स्थानपर प्रसन्न सलिल-पूर्ण ताल अद्यापि उसकी पूर्व उदारताका परिचय दे रहे हैं।

एतादृश भावोंकी उलझनमें पड़कर हम लोगोंका ध्यान मार्गकी शुद्धताकी ओर न रहा। हम लोग नगरसे बहुत दूर निकल गए। देखा तो शनैःशनैः भूमिमें परिवर्तन लक्षित होने लगा; अरुणता-मिश्रित पहाड़ी रेतीली भूमि, जंगली बेर-मकोयकी छोटी-छोटी कंटकमय

झाड़ियाँ, दृष्टिके अन्तर्गत होने लगी। अब हम लोगोंको जान पड़ा कि हम दक्षिणकी ओर झुके जा रहे हैं। सन्ध्या भी हो चली। दिवाकरकी डूबती हुई किरणोंकी अरुण आभा झाड़ियोंपर पड़ने लगी। इधर प्राचीकी ओर दृष्टि गई तो देखा चन्द्रदेव पहलेसे ही सिंहासनारूढ होकर एक पहाड़ीके पीछेसे झाँक रहे थे।

अब हम लोग नहीं कह सकते कि किस स्थानपर हैं। एक पगडंडीके आश्रय अबतक हम लोग चल रहे थे, जिसपर उगी हुई घास इस बातका शपथ खाकर साक्षी दे रही थी कि वर्षोंसे मनुष्योंके चरण इस ओर नहीं पड़े हैं। कुछ दूर चलकर यह मार्ग भी तृणसागरमें लुप्त हो गया। 'इस समय क्या कर्तव्य है?' चित्त इसीके उत्तरकी प्रतीक्षामें लगा है। अंतमें यह विचार स्थिर हुआ कि किसी खुले स्थानसे चारों ओर देखकर यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि हम लोग अमुक स्थानपर हैं।

दैवात् सम्मुख ही एक ऊँची पहाड़ी देख पड़ी, उसीको उस कार्यके उपयुक्त स्थान हम लोगोंने विचारा। ज्यों त्यों करके पहाड़ीके शिखरतक हम लोग गए। ऊपर आते ही भगवती जह्नुनन्दिनीके दर्शन हुए। इतनेमें चारुहासिनी चंद्रिका भी अट्टहास करके खिल पड़ी। उत्तर पूर्वकी ओर दृष्टि गई! विचित्र दृश्य सम्मुख उपस्थित हुआ। जाह्नवीके तटसे कुछ अन्तरपर नीचे मैदानमें बहुत दूर, गिरे हुए मकानोंके ढेर स्वच्छ चन्द्रिकामें स्पष्ट रूपसे दिखाई दिए।

मैं सहसा चौंक पड़ा और ये शब्द मेरे मुखसे निकल पड़े—'क्या यह वही खँडहर है जिसके विषयमें यहाँ अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं।' चारों ओर दृष्टि उठाकर देखनेसे मुझे पूर्ण रूपसे निश्चय हो गया कि हो न हो यह वही स्थान है जिसके सम्बन्धमें मैंने बहुत कुछ सुना है। मेरे मित्र मेरी ओर ताकने लगे। मैंने संक्षेपसे उस खँडहरके विषयमें जो कुछ सुना था उनसे कह सुनाया। हम लोगोंके चित्तमें

कौतूहलकी उत्पत्ति हुई; उसको निकटसे देखनेकी प्रबल इच्छाने मार्ग-ज्ञानकी व्यग्रताको हृदयसे बहिर्गत कर दिया। उत्तरकी ओर उतरना बड़ा दुष्कर प्रतीत हुआ, क्योंकि जंगली वृक्षों और कंटकमय झाड़ियोंसे पहाड़ीका वह भाग आच्छादित था। पूर्वकी ओरसे हम लोग सुगमता-पूर्वक नीचे उतरे। यहाँसे खँडहर लगभग डेढ़ मीलके प्रतीत होता था। हम लोगोंने पैरोंको उसी ओर मोड़ा, मार्गमें घुटनोंतक उगी हुई घास पग-पगपर बाधा उपस्थित करने लगी; किन्तु अधिक विलम्बतक यह कष्ट हम लोगोंको भोगना न पड़ा; क्योंकि आगे चलकर फूटे हुए खपड़ैलोंकी सिटकियाँ मिलने लगीं; इधर-उधर गिरी हुई दीवालें और मिट्टीके ढूह प्रत्यक्ष होने लगे। हम लोगोंने जाना कि अब यहींसे खँड-हरका आरम्भ है। दीवारोंकी मिट्टीसे स्थान क्रमशः ऊँचा होता जाता था, जिसपरसे होकर हम लोग निर्भय जा रहे थे। इस निर्भयताके लिये हम लोग चन्द्रमाके प्रकाशके भी अनुगृहीत हैं। सम्मुख ही एक देव-मन्दिरपर दृष्टि जा पड़ी जिसका कुछ भाग तो नष्ट हो गया था, किन्तु शेष प्रस्तर-विनिर्मित होनेके कारण अबतक क्रूर कालके आक्रमण-को सहन करता आया था। मन्दिरका द्वार ज्योंका त्यों खड़ा था। किवाड़ सट गए थे। भीतर भगवान् भवानीपति बैठे निर्जन कैलासका आनन्द ले रहे थे, द्वारपर उनका नन्दी भी बैठा था। मैं तो प्रणाम करके वहाँसे हटा; किन्तु देखा तो हमारे मित्र बड़े ध्यानसे खड़े हो उस मन्दिरकी ओर देख रहे हैं और मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। मैंने मार्गमें भी कई बेर लक्ष्य किया था कि वे कभी-कभी ठिठक जाते और किसी वस्तुको बड़ी स्थिर दृष्टिसे देखने लगते। मैं खड़ा हो गया और पुकारकर मैंने कहा—'कहो, मित्र क्या है? क्या देख रहे हो?'

मेरी बोली सुनते ही वे झट मेरे पास दौड़े आए और कहा, 'कुछ नहीं, यों ही मैं मन्दिर देखने लग गया था।' मैंने फिर तो कुछ न पूछा; किन्तु अपने मित्रके मुखकी ओर देखता जाता था जिसपर

विस्मययुक्त एक अद्भुत भाव लक्षित होता था। इस समय खँडहरके बीचमें हम लोग खड़े थे। मेरा हृदय इस स्थानको इस अवस्थामें देख विदीर्ण होने लगा। प्रत्येक वस्तुसे उदासी बरस रही थी; इस संसारकी अनित्यताकी सूचना मिल रही थी। इस करुणोत्पादक दृश्यका प्रभाव मेरे हृदयपर किस सीमातक हुआ, शब्दों-द्वारा अनुभव कराना असम्भव है।

कहीं सड़े हुए किवाड़ भूमिपर पड़े हुए प्रचण्ड कालको साष्टांग दण्डवत् कर रहे हैं। जिन घरोंमें किसी अपरिचितकी परछाईं पड़नेसे कुलकी मर्यादा भंग होती थी, वे भीतरसे बाहरतक खुले पड़े हैं। रंग-बिरङ्गी चूड़ियोंके टुकड़े इधर-उधर काल-महिमा गा रहे हैं। मैंने इनमेंसे एक-एकको हाथमें उठाया, उठाते ही यह एक प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे कोमल हाथ कहाँ है जो उन्हें धारण करते थे?'

हा! यही स्थान किसी समय नर-नारियोंके आमोद-प्रमोदसे पूर्ण रहा होगा और बालकोंके कल्लोलकी ध्वनि चारों ओरसे आती रही होगी। वही आज कराल कालके कठोर दाँतोंके तले पिसकर चकनाचूर हो गया है। तृणोंसे आच्छादित गिरी हुई दीवारें, मिट्टी और ईंटोंके ढूह, टूटे-फूटे चौकठे और किवाड़ इधर-उधर पड़े एक स्वरसे मानों पुकारके कह रहे थे, 'दिननको फेर होत, मेरु होत माटीको'। प्रत्येक पार्श्वमें मानो यही ध्वनि आ रही थी। मेरे हृदयमें करुणाका एक समुद्र उमड़ा। इसमें मेरा विचार मग्न होने लगे।

मैं एक स्वच्छ शिलापर, जिसका कुछ भाग तो पृथ्वी-तलमें धँसा था और शेषांश बाहर था, बैठ गया। मेरे मित्र भी आकर मेरे पास बैठे। मैं तो बैठे-बैठे काल-चक्रको गतिपर विचार करने लगा; मेरे मित्र भी किसी विचारमें ही डूबे थे; किन्तु मैं नहीं कह सकता कि वह कौन था। यह सुन्दर स्थान इस शोचनीय और पतित दशाको क्योंकर प्राप्त हुआ, मेरे चित्तमें तो यही प्रश्न बार-बार उठने लगा; किन्तु उसका

सन्तोषदायक उत्तर प्रदान करनेवाला वहाँ कौन था ? अनुमानने यथा-साध्य प्रयत्न किया, परन्तु कुछ फल न हुआ। माथा घूमने लगा। न जाने कितने और किस-किस प्रकारके विचार मेरे मस्तिष्कसे होकर दौड़ गए।

हम लोग अधिक विलम्बतक इस अवस्थामें न रहने पाए। यह क्या ? मधुसूदन ! यह कौन-सा दृश्य है ? जो कुछ देखा उससे अवाक् रह गया। कुछ दूरपर एक श्वेत वस्तु इसी खँडहरकी ओर आती देख पड़ी। मुझे रोमांच हो आया, शरीर काँपने लगा। मैंने अपने मित्रको उस ओर आकर्षित किया और उँगली उठाके दिखाया। परन्तु कहीं कुछ न देख पड़ा; मैं स्थापित मूर्त्तिकी भाँति बैठा रहा। पुनः वही दृश्य !! अबकी बार ज्योत्स्नालोकमें स्पष्ट रूपसे हम लोगोंने देखा कि एक श्वेत-परिच्छद-धारिणी स्त्री जलका पात्र लिए खँडहरके एक पार्श्वसे होकर दूसरी ओर वेगसे निकल गई और उन्हीं खँडहरोंके बीच फिर न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गई। इस अदृष्टपूर्व व्यापारको देख मेरे मस्तकमें पसीना आ गया और कई प्रकारके भ्रम उत्पन्न होने लगे। विधाता ! तेरी सृष्टिमें न जाने कितनी अद्भुत-अद्भुत वस्तु मनुष्यकी सूक्ष्म विचार-दृष्टिसे वंचित पड़ी हैं। यद्यपि मैंने इस स्थान विशेषके सम्बन्धमें अनेक भयानक वार्ताएँ सुन रक्खी थीं, किन्तु मेरे हृदयपर भयका विशेष संचार न हुआ। हम लोगोंको प्रेतोंपर भी इतना दृढ विश्वास न था, नहीं तो हम दोनोंका एक क्षण भी उस स्थानपर ठहरना दुष्कर हो जाता। रात्रि भी अधिक व्यतीत होती जाती थी। हम दोनोंको अब यह चिंता हुई कि यह स्त्री कौन है ? इसका उचित परिशोध अवश्य लगाना चाहिए।

हम दोनों अपने स्थानसे उठे और जिस ओर यह स्त्री जाती हु देख पड़ी थी उसी ओर चले। अपने चारों ओर प्रत्येक स्थानको भली प्रकार देखते, हम लोग गिरे हुए मकानोंके भीतर जा-जाके शृगालोंके

स्वच्छन्द विहारमें बाधा डालने लगे। अभीतक तो कुछ ज्ञात न हुआ। यह बात तो हम लोगोंके मनमें निश्चय हो गई थी कि हो न हो वह स्त्री खँडहरके किसी गुप्त भागमें गई है। गिरी हुई दीवारोंकी मिट्टी और ईंटोंके ढेरसे इस समय हम लोग परिवृत थे; बाह्य जगत्‌की कोई वस्तु दृष्टिके अन्तर्गत न थी हम लोगोंको जान पड़ता था कि किसी दूसरे संसारमें खड़े हैं। वास्तवमें खँडहरके एक बड़े भयानक भागमें इस समय हम लोग खड़े थे। सामने एक बड़ी ईंटोंकी दीवार देख पड़ी जो औरोंकी अपेक्षा अच्छी दशामें थी। इसमें एक खुला हुआ द्वार था। इसी द्वारसे हम दोनोंने इसमें प्रवेश किया। भीतर एक विस्तृत आँगन था जिसमें बेर और बबूलके पेड़ स्वच्छन्दतापूर्वक खड़े उस स्थानको मनुष्य-जाति-सम्बन्धसे मुक्त सूचित करते थे। इसमें पैर धरते ही मेरे मित्रकी दशा कुछ और हो गई और वे चट बोल उठे—'मित्र! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जैसे मैंने इस स्थानको और कभी देखा हो—यह नहीं कह सकता कब। प्रत्येक वस्तु यहाँकी पूर्व परिचित-सी जान पड़ती है।' मैं अपने मित्रकी ओर ताकने लगा। उन्होंने आगे कुछ न कहा। मेरा चित्त इस स्थानके अनुसन्धान करनेको मुझे बाध्य करने लगा। इधर-उधर देखा तो एक ओर मिट्टी पड़ते-पड़ते दीवारकी ऊँचाईके अर्द्धभागतक पहुँच गई थी। इस परसे होकर हम दोनों दीवारपर चढ़ गए। दीवारके नीचे दूसरे किनारेमें चतुर्दिक्-वेष्टित एक कोठरी दिखाई दी; मैं इसमें उतरनेका यत्न करने लगा। बड़ी सावधानीसे एक उभरी हुई ईंटपर पैर रखकर हम दोनों नीचे उतर गए। यह कोठरी ऊपरसे बिलकुल खुली थी, इसलिये चन्द्रमाका प्रकाश इसमें बेरोक-टोक आ रहा था। कोठरीकी दाहिनी ओर एक द्वार दिखाई दिया, जिसमें एक जीर्ण किवाड़ लगा हुआ था। हम लोगोंने निकट जाकर किवाड़ोंको पीछेकी ओर धीरेसे ढकेला तो जान पड़ा कि वे भीतरसे बन्द हैं।

मेरे तो पैर काँपने लगे। पुनः साहसको धारण कर हम लोगोंने किवाड़के छोटे-छोटे रन्ध्रोंसे झाँका तो एक प्रशस्त कोठरी देख पड़ी। एक कोनेमें मन्द-मन्द एक प्रदीप जल रहा था जिसका प्रकाश द्वारतक न पहुँचता था। यदि यह प्रदीप उसमें न होता तो अन्धकारके अतिरिक्त हम लोग और कुछ न देख पाते।

हम लोग कुछ कालतक स्थिर दृष्टिसे उसी ओर देखते रहे। इतनेमें एक स्त्रीकी आकृति देख पड़ी जो हाथमें कई छोटे पात्र लिए उस कोठरीके प्रकाशित भागमें आई। अब किसी प्रकारका सन्देह न रहा। एक बेर इच्छा हुई कि किवाड़ खटखटावें; किन्तु कई बातोंका विचार करके हम लोग ठहर गए। जिस प्रकारसे हम लोग कोठरीमें आए थे, धीरे-धीरे उसी प्रकार निःशंक दीवारपरसे होकर फिर आँगनमें आए। मेरे मित्रने कहा—'इसका शोध अवश्य लगाओ कि यह स्त्री कौन है।' अन्तमें हम दोनों आड़में, इस आशासे कि कदाचित् वह फिर बाहर निकले, बैठे रहे। इतनेमें वही श्वेतवसनधारिणी स्त्री आँगनमें सहसा आकर खड़ी हो गई। हम लोगोंको यह देखनेका समय न मिला कि वह किस ओरसे आई।

उसका अपूर्व सौंदर्य देखकर हम लोग स्तम्भित व चकित रह गए। चन्द्रिकामें उसके सर्वाङ्गकी सुन्दरता स्पष्ट जान पड़ती थी। गौर वर्ण, शरीर किंचित् क्षीण और आभूषणोंसे सर्वथारहित; मुख उसका, यद्यपि उसपर उदासीनता और शोकका स्थायी निवास लक्षित होता था, एक अलौकिक प्रशांत कान्तिसे देदीप्यमान हो रहा था। सौम्यता उसके अङ्ग-अङ्गसे प्रदर्शित होती थी। वह साक्षात् देवी जान पड़ती थी।

कुछ कालतक किंकर्तव्यविमूढ होकर स्तब्ध लोचनोंसे उसी ओर हम लोग देखते रहे; अन्तमें हमने अपनेको सँभाला और इसी अवसरको अपने कार्योपयुक्त विचारा। हम लोग अपने स्थानसे उठे और तुरंत

उस देवी-रूपिणीके सम्मुख हुए। वह देखते ही बड़े वेगसे पीछे हटी। मेरे मित्रने गिड़गिड़ाके कहा—'देवि! ढिठाई क्षमा करो। मेरे भ्रमोंको निवारण करो।' वह स्त्री क्षण भरतक चुप रही, फिर स्निग्ध और गम्भीर स्वरसे बोली, 'तुम कौन हो और क्यों मुझे व्यर्थ कष्ट देते हो?' इसका उत्तर ही क्या था? मेरे मित्रने फिर विनीत भावसे कहा—'देवि! मुझे बड़ा कौतूहल है—दया करके यहाँका सब रहस्य कहो।'

इसपर उसने उदास स्वरसे कहा, 'तुम हमारा परिचय लेके क्या करोगे? इतना जान लो कि मेरे समान अभागिनी इस समय इस पृथ्वी-मण्डलमें कोई नहीं है।'

मेरे मित्रसे रहा न गया, हाथ जोड़कर उन्होंने फिर निवेदन किया, 'देवि! अपने वृतान्तसे मुझे परिचित करो। इसी हेतु हम लोगोंने इतना साहस किया है। मैं भी तुम्हारे ही समान दुखिया हूँ। मेरा इस संसारमें कोई नहीं है।' मैं अपने मित्रका यह भाव देखकर चकित रह गया।

स्त्रीने करुण स्वरसे कहा—'तुम मेरे नेत्रोंके सम्मुख भूला-भुलाया मेरा दुःख फिर उपस्थित करनेका आग्रह कर रहे हो, अच्छा बैठो।'

मेरे मित्र निकटके एक पत्थरपर बैठ गए। मैं भी उन्हींके पास जा बैठा। कुछ कालतक सब लोग चुप रहे, अन्तमें वह स्त्री बोली—

'इसके प्रथम कि मैं अपने वृत्तांतसे तुम्हें परिचित करूँ तुम्हें शपथ पूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवाय यह रहस्य संसारमें और किसीके कानोंतक न पहुँचे, नहीं तो मेरा इस स्थानपर रहना दुष्कर हो जायगा और आत्महत्या ही मेरे लिये एकमात्र उपाय शेष रह जायगा।'

हम लोगोंके नेत्र गीले हो आए। मेरे मित्रने कहा—'देवि! मुझसे तुम किसी प्रकारका भय न करो, ईश्वर मेरा साक्षी है।'

स्त्रीने तब इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'यह खँडहर जो तुम देखते हो, आजसे दस वर्ष पूर्व एक सुन्दर ग्राम था। अधिकांश ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी इसमें बस्ती थी। यह घर, जिसमें हम लोग बैठे हैं, चन्द्रशेखर मिश्र नामी एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मणका निवास-स्थान था। घरमें उनकी स्त्री और एक पुत्र था। इस पुत्रके सिवाय उन्हें और कोई सन्तान न थी। आज ग्यारह वर्ष हुए कि मेरा विवाह इसी चन्द्रशेखर मिश्रके पुत्रके साथ हुआ था।'

इतना सुनते ही मेरे मित्र सहसा चौंक पड़े—'हे परमेश्वर! यह सब स्वप्न है या प्रत्यक्ष?' ये शब्द उनके मुखसे निकले ही थे कि उनकी दशा विचित्र हो गई। उन्होंने अपनेको बहुत सँभाला—और फिरसे सँभलकर बैठे। वह स्त्री उनका यह भाव देखकर विस्मित हुई और उनसे पूछा, 'क्यों, क्या है?'

मेरे मित्रने विनीत भावसे उत्तर दिया, 'कुछ नहीं, यों ही मुझे एक बात का स्मरण आया। कृपा करके आगे कहो।' स्त्रीने फिर कहना आरम्भ किया—

'मेरे पिताका घर काशीमें...मुहल्लेमें था। विवाहके एक वर्ष पश्चात् ही इस ग्राममें एक भयानक दुर्घटना उपस्थित हुई। यहींसे मेरे दुर्दमनीय दुःखका जन्म हुआ। सन्ध्याको सब ग्रामीण अपने-अपने कार्यसे निश्चित होकर अपने-अपने घरोंको लौटे। बालकोंका कोलाहल बंद हुआ। निद्रादेवीने ग्रामीणोंके चिंता-शून्य हृदयोंमें अपना डेरा जमाया। आधी रातसे अधिक बीत चुकी थी; कुत्ते भी थोड़ी देरतक भूँककर अंतमें चुप हो रहे। प्रकृति निःस्तब्ध हुई; सहसा ग्राममें कोलाहल मचा और धमाकेके कई शब्द हुए। लोग आँखें मीजते उठे। चारपाईके नीचे पैर देते हैं तो घुटने भर पानीमें खड़े! कोलाहल सुनकर बच्चे भी जगे। एक दूसरेका नाम ले-लेकर लोग चिल्लाने लगे। अपने-अपने घरोंमेंसे लोग बाहर निकलकर खड़े हुए। भगवती जाह्नवी-

जहाँ-जहाँ मिश्रजीका सम्बन्ध था मेरे पिता स्वयं गए, किन्तु चारों ओर-से निराश लौटे, किसीका कुछ अनुसन्धान न लगा। एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, तीसरा वर्ष आरम्भ हुआ। पिता बहुत इधर-उधर दौड़े, अन्तमें ईश्वर और भाग्यके ऊपर छोड़कर बैठे रहे। तीसरा वर्ष भी व्यतीत हो गया।

मेरी अवस्था उस समय चौदह वर्षकी हो चुकी थी। अबतक तो मैं निर्बोध बालिका थी। अब क्रमशः मुझे अपनी वास्तविक दशाका ज्ञान होने लगा। मेरा समय भी अहर्निश इसी चिन्तामें अब व्यतीत होने लगा। शरीर दिनपर दिन चीण होने लगा। मेरे देवतुल्य पिताने यह बात जानी। वे सदा मेरे दुःख भुलानेका यत्न करते रहते थे। अपने पास बैठाकर रामायण आदिकी कथा सुनाया करते थे। पिता अब वृद्ध होने लगे; दिवा-रात्रिकी चिंताने उन्हें और भी वृद्ध बना दिया घरके समस्त कार्य-संपादनका भार मेरे बड़े भाईके ऊपर पड़ा। उनकी स्त्रीका स्वभाव बड़ा क्रूर था। कुछ दिनतक तो किसी प्रकार चला। अंतमें वह मुझसे डाह करने लगी और कष्ट देना प्रारम्भ किया। मैं चुपचाप सब सहन करती थी। धीरे-धीरे आश्वासनके स्थानपर वह तीक्ष्ण वचनोंसे मेरा चित्त अधिक दुखाने लगी। यदि कभी मैं अपने भाईसे निवेदन करती तो वे भी कुछ बोलते; आना-कानी कर जाते। और पिताकी वृद्धावस्थाके कारण, कुछ नहीं चल सकती थी। मेरे दुःखका समझनेवाला वहाँ कोई नहीं देख पड़ता था। मेरी माताका पहले ही परलोकवास हो चुका था। मुझे अपनी दशापर बड़ा दुःख हुआ। हा! मेरा स्वामी यदि इस समय होता तो क्या मेरी यही दशा होती? पिताके घर क्या इन्हीं वचनों-द्वारा मेरा सत्कार किया जाता। यही सब विचार करके मेरा हृदय मेघाच्छन्न होने लगा। मुझे संसार शून्य दिखाई देने लगा। एकांतमें बैठकर अपनी अवस्थापर अश्रुवर्षण करती। उसमें भी यह भय लगा रहता कि भौजाई न पहुँच

जाय। एक दिन उसने मुझे इसी अवस्थामें पाया तो तुरन्त व्यंग-वचनों द्वारा मुझे आश्वासन देने लगी। मेरा शोकार्त्त हृदय अग्नि-शिखाकी भाँति प्रज्वलित हो उठा; किंतु मौनावलम्बनके सिवाय अन्य उपाय ही क्या था? दिन-दिन मुझे यह दुःख असह्य होने लगा। एक रात्रिको मैं उठी; किसीसे कुछ न कहा; और सूर्योदयके प्रथम ही अपने पिताका गृह परित्याग किया।

मैं अब यह नहीं कह सकती कि उस समय मेरा क्या विचार था? मुझे एक बेर अपने पतिके स्थानको देखनेकी लालसा हुई। दुःख और शोकसे मेरी दशा उन्मत्तकी-सी हो गई थी। संसारमें मैंने दृष्टि उठाके देखा तो मुझे और कुछ न दिखलाई दिया; केवल चारों ओर दुःख! सैकड़ों कठिनाइयाँ झेलकर अंतमें मैं इस स्थान-तक आ पहुँची। उस समय मेरी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। मैंने इस स्थानको उस समय भी प्रायः इसी दशामें पाया था। यहाँ आनेपर मुझे यह निश्चय हो गया कि चन्द्रशेखर मिश्रका घर यहाँ है। इस स्थानको देखकर मेरे आर्त्त हृदयपर बड़ा कठोर आघात पहुँचा।"

इतना कहते-कहते हृदयके आवेगने शब्दोंको उसके हृदय हीमें बन्दी कर रक्खा, बाहर प्रगट होने न दिया। क्षणेक पर्यन्त वह चुप रही; सिर नीचा किए भूमिकी ओर देखती रही। इधर मेरे मित्रकी दशा कुछ और ही हो रही थी; लिखित चित्रकी भाँति बैठे वे इकटक ताक रहे थे; इन्द्रियाँ अपना कार्य उस समय भूल गई थीं। स्त्रीने फिर कहना आरम्भ किया—

"इस स्थानको देख मेरा चित्त बहुत दग्ध हुआ। हा! यदि ईश्वर चाहता तो किसी दिन इस गृहकी स्वामिनी होती। आज ईश्वरने मुझको उसे इस अवस्थामें दिखलाया। उसके आगे किसका वश है! अनुसंधान करनेपर मुझे दो कोठरियाँ मिलीं जो सर्व प्रकारसे रक्षित और मनुष्यकी दृष्टिके दुर्भेद्य थीं। लगभग चारों ओर मिट्टी पड़ जानेके

कारण किसीको उनकी स्थितिका संदेह नहीं हो सकता था। मुझे बहुत सी सामग्रियाँ भी इनमें प्राप्त हुईं जो मेरी तुच्छ आवश्यकतानुसार बहुत थीं मुझे यह निर्जन स्थान अपने पिताके कष्टागारसे प्रियतर प्रतीत हुआ। यहीं मेरे पतिके बाल्यावस्थाके दिन व्यतीत हुए थे। यही स्थान मुझे प्रिय है। यहींसे मैं अपने दुःखमय जीवनका शेष भाग, उसी करुणालय जगदीश्वरकी, जिसने मुझे इस अवस्थामें डाला, आराधनामें बिताऊँगी। यही विचार मैंने स्थिर किया। ईश्वरको मैंने धन्यवाद दिया जिसने ऐसा उपयुक्त स्थान मेरे लिये ढूँढकर निकाला। कदाचित् तुम पूछोगे कि इस अभागिनीने अपने लिये इस प्रकारका जीवन क्यों उपयुक्त विचारा? तो उसका उत्तर है कि यह दुष्ट संसार भाँति-भाँतिकी वासनाओंसे पूर्ण है, जो मनुष्यको उसके सत्य पथसे विचलित कर देती है; दुष्ट और कुमार्गी लोगोंके अत्याचारसे वंचित रहना भी कठिन कार्य है।

इतना कहके वह स्त्री ठहर गई। मेरे मित्रकी ओर उसने देखा। वे कुछ मिनटतक काष्ठ पुत्तलिकाकी भाँति बैठे रहे; अन्तमें एक लम्बी ठंढी साँस भरके उन्होंने कहा—ईश्वर! यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष? स्त्री उनका यह भाव देख-देखकर विस्मित हो रही थी। उसने पूछा, 'क्यों! कैसा चित्त है?' मेरे मित्रने अपनेको सँभाला और उत्तर दिया, 'तुम्हारी कथाका प्रभाव मेरे चित्तपर बहुत हुआ है, कृपा करके आगे कहो।"

स्त्रीने कहा, 'मुझे अब कुछ कहना शेष नहीं है। आज पाँच वर्ष मुझे इस स्थानपर आए हुए, संसारमें किसी मनुष्यका आजतक यह प्रगट नहीं हुआ। यहाँ प्रेतोंके भयसे कोई पदार्पण नहीं करता इससे मुझे अपनेको गोपन रखनेमें विशेष कठिनता नहीं पड़ती। संयोगवश रात्रिमें किसीकी दृष्टि यदि मुझपर पड़ी भी तो चुड़ैलके भ्रमसे मेरे निकटतक आनेका किसीको साहस न हुआ। यह आज प्रथम ऐसा

संयोग उपस्थित हुआ है; तुम्हारे साहसको मैं सराहती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपने शपथपर दृढ रहोगे। संसारमें अब मैं प्रगट होना नहीं चाहती; प्रगट होनेसे मेरी बड़ी दुर्दशा होगी। मैं यहीं अपने पतिके स्थानपर अपना जीवन शेष करना चाहती हूँ। इस संसारमें मैं अब बहुत दिनतक न रहूँगी।'

मैंने देखा मेरे मित्रका चित्त भीतर ही भीतर आकुल और संतप्त हो रहा था, हृदयका वेग रोककर उन्होंने प्रश्न किया, 'क्यों! तुम्हें अपने पतिका कुछ स्मरण है?'

स्त्रीके नेत्रोंसे अनर्गल वारिधारा प्रवाहित हुई। बड़ी कठिनतापूर्वक उसने उत्तर दिया 'मैं उस समय बालिका थी। विवाहके समय मैंने उन्हें देखा। वह मूर्ति अद्यापि मेरे हृदय-मन्दिरमें विद्यमान है; प्रचण्ड काल भी उसको वहाँसे हटानेमें असमर्थ है।'

मेरे मित्रने कहा, 'देवि! तुमने बहुत कुछ रहस्य प्रगट किया, जो कुछ शेष है उसका वर्णन कर अब मैं इस कथाकी पूर्ति करता हूँ।'

स्त्री विस्मयोत्फुल्ल लोचनोंसे मेरे मित्रको ओर निहारने लगी। मैं भी आश्चर्यसे उन्हींकी ओर देखने लगा। उन्होंने कहना आरम्भ किया—

'इस आख्यायिकामे यही ज्ञात होना शेष है कि चन्द्रशेखर मिश्रके पुत्रकी क्या दशा हुई? चन्द्रशेखर मिश्र और उनकी पत्नी क्या हुए? सुनो! नावपर मिश्रजीने अपने पुत्रको अपने साथ ही बैठाया। नावपर भीड़ अधिक हो जानेके कारण वह उनसे पृथक् हो गया। उन्होंने समझा कि वह नाव ही पर है; कोई चिन्ता नहीं। इधर मनुष्योंकी धक्का-मुक्कीसे वह लड़का नावपरसे नीचे जा रहा। ठीक उसी समय मल्लाहने नाव खोल दी। उसने कई बेर अपने पिताको पुकारा, किंतु लोगोंके कोलाहलमें उन्हें कुछ सुनाई न दिया। नाव चली गई। बालक वहीं खड़ा रह गया और लोग किसी प्रकार अपना-अपना

प्राण लेके इधर-उधर भागे। नीचे भयानक जल-प्रवाह, ऊपर अनन्त आकाश। लड़केने एक छप्परको बहते हुए अपनी ओर आते देखा; तुरन्त वह उसीपर बैठ गया। इतनेमें जलका एक बहुत ऊँचा प्रबल झोंका आया। छप्पर लड़के सहित शीघ्र गतिसे बहने लगा। वह चुपचाप मूर्तिवत् उसीपर बैठा रहा। उसे यह ध्यान नहीं कि इस प्रकार कै दिनतक वह बहता गया। वह भय और दुविधासे संज्ञाहीन हो गया था। संयोगवश एक व्यापारीकी नाव, जिसपर रूई लदी थी, पूरबकी ओर जा रही थी। नौकाका स्वामी भी बजरेपर ही था। उसकी दृष्टि उस लड़केपर पड़ी। वह उसे नावपर ले गया। लड़केकी अवस्था उस समय मृतप्राय थी। अनेक यत्नके उपरांत वह होशमें लाया गया। उस सज्जनने लड़केकी नावपर बड़ी सेवा की। नौका बराबर चलती रही; बीचमें कहीं न रुकी; कई दिनोंके उपरांत वह कलकत्ते पहुँची।

वह बंगाली सज्जन उस लड़केको अपने घरपर ले गया और उसे उसने अपने परिवारमें सम्मिलित किया। बालकने अपने माता-पिताके देखनेकी इच्छा प्रगट की। उसने उसे बहुत समझाया; शीघ्र अनुसंधान करनेका वचन दिया। लड़का चुप हो रहा।

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गए। क्रमशः वह अपने पासके लोगोंमें हिलमिल गया। बंगाली महाशयके एक पुत्र था—दोनोंमें भ्रातृस्नेह स्थापित हो गया। वह सज्जन उस लड़केके भावी हितकी चेष्टामें तत्पर हुए। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके स्थापित किए हुए एक अंग्रेजी स्कूलमें, अपने पुत्रके साथ-साथ उसे भी वह शिक्षा देने लगा। वह दत्तचित्त होकर शिक्षामें अपना सारा समय देने लगा। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। उसके चित्तमें अन्य प्रकारके विचारोंने निवास किया। अब पूर्व परिचित लोगोंके ध्यानके लिये उसके मनमें कम स्थान शेष रहा। मनुष्यका स्वभाव ही इस प्रकारका है। नौ वर्षका समय निकल गया।

इसी बीचमें एक बड़ी चित्ताकर्षक घटना उपस्थित हुई। वंग-देशी सज्जनके उस पुत्रका विवाह हुआ। चन्द्रशेखरका पुत्र भी वहाँ उपस्थित था। उसने सब देखा, दीर्घकालकी निद्रा भङ्ग हुई। सहसा उसे ध्यान हो आया 'मेरा भी विवाह हुआ है, अवश्य हुआ है।' उसे अपने विवाहका बारम्बार ध्यान आने लगा। अपनी पाणिग्रहीता भार्याका भी उसे स्मरण हुआ। स्वदेशमें लौटनेको उसका चित्त आकुल होने लगा। रात्रि-दिन इसी चिन्तामें व्यतीत होने लगे।'

हमारे कतिपय पाठक हमपर दोषारोपण करेंगे कि 'हैं! न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप हुआ, न लम्बी-लम्बी कोर्ट-शिप हुई, यह प्रेम कैसा?' महाशय! रुष्ट न हूजिए। इस अदृष्ट प्रेमका धर्म और कर्तव्यसे घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदयमें ही हो सकती है। इसकी जड़ संसारके और प्रकारके प्रचलित प्रेमोंसे दृढतर और अधिक प्रशस्त है। आपको सन्तुष्ट करनेको मैं इतना और कहे देता हूँ कि इङ्गलैण्डके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री लार्ड बेकन्सफील्डका भी यही मत था।

'युवकका चित्त अधिक डाँवाडोल होने लगा। एक दिन उसने उस देवतुल्य सज्जन पुरुषसे अपने चित्तकी अवस्था प्रगट की और बहुत विनयके साथ विदा माँगी। आज्ञा पाकर उसने स्वदेशकी ओर यात्रा की। देशमें आनेपर उसे विदित हुआ कि ग्राममें अब कोई नहीं है। उसने लोगोंसे अपने माता-पिताके विषयमें पूछ-ताछ किया। कुछ लोगोंने कहा कि थोड़े दिन हुए वे दोनों इस नगरमें थे; और अब वे तीर्थ-स्थानोंमें देशाटन कर रहे हैं। वह अपनी धर्मपत्नीके दर्शनोंकी अभिलाषासे सीधे काशी गया। वहाँ तुम्हारे पिताके घरका अनुसन्धान करने लगा। बहुत दिन पश्चात् तुम्हारे ज्येष्ठ भ्रातासे उससे साक्षात हुआ जिससे तुम्हारे संसारसे सहसा लोप हो जानेकी बात ज्ञात हुई। वह निराश होकर संसारमें घूमने लगा।'

इतना कहकर मेरे मित्र चुप हो रहे। इधर शेष भाग सुननेको हम लोगोंका चित्त ऊब रहा था, आश्चर्यसे उन्हींकी ओर हम ताक रहे थे। उन्होंने फिर उस स्त्रीकी ओर देखकर कहा, 'कदाचित् तुम पूछोगी कि इस समय अब वह कहाँ है? यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है!'

इन दोनोंके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई। वह स्त्री भूमिपर गिरने लगी! मेरे मित्रने दौड़कर उसको सम्हारा। वह किसी प्रकार उसीके सहारे बैठी। कुछ क्षण उपरांत उसने बहुत धीमे स्वरसे मेरे मित्रसे कहा, 'अपना हाथ दिखाओ।'

उन्होंने चट अपना हाथ फैला दिया, जिसपर एक काला तीर दिखाई दिया। स्त्री कुछ कालतक उसीकी ओर देखती रही; फिर मुख ढाँककर सिर नीचाकर बैठ गई। लज्जाका प्रवेश हुआ। क्योंकि यह भी हिन्दू रमणीका उसके पतिके साथ प्रथम संयोग था।

आज इतने दिनोंके उपरान्त मेरे मित्रका गुप्त रहस्य प्रकाशित हुआ। उस रात्रिको मैं अपने मित्रका खँडहरमें अतिथि रहा। सबेरा होते ही हम सब लोग प्रसन्नचित्त नगरमें आए।

[सरस्वती १९०३ ई०, पृष्ठ २०९ से ३१७ भाग सात, सं० ९ से उद्धृत]

उपसंहार

इन सब उदाहरणोंसे यह समझना कठिन होगा कि कोई कथा या किसी विषयका निरूपण केवल एक बँधे हुए क्रमसे ही नहीं होता उसे सहस्रों कौशलोंके साथ व्यक्त करके सुन्दर बनाया जा सकता है और बनाना भी चाहिए। हमारे यहाँ हिन्दीमें रचयिता और लेखक तो बहुत हैं किन्तु किसी विशेष कौशल, भावशैली, भाषाशैली या विशिष्ट रूपशैलीमें व्यवस्थित रूपसे रचना करनेवालोंका अभी अभाव है।